

शान्तिनिकेतन से शिवालिक

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
की पण्डितृति के अवसर पर
प्रस्तुत

तार आपा जने छाड्ये तोरे
 ता' बले भावना करा चल्ये ना
 तोर आशाळता पड्ये छिडे,
 ह्य तो रे फल फलवे ना
 ता' बले भावना करा चल्ये ना ॥

आसत्रो पये आंधार नेमे
 ताइ बलेइ कि रइनि धेमे
 ओ तुड तारे बारे ज्वाळवि वाति, ह्य तो वाति ज्वल्ये ना
 ता' बले भावना करा चल्ये ना ॥

शुने तोमार मुखेर वानी
 आसवे फिरे वनेर प्राणी
 तबु ह्यतो तोमार आपन घरे पापाण हिया गल्ये ना
 ता' बले भावना करा चल्ये ना ॥

- वद्ध दुयार देखलि बले
 अमनि कि तइ आसत्रि चले,
 तोरे बारे बारे ठेलने हवे, ह्यतो दुयार टल्ये ना
 ता' बले भावना करा चल्ये ना ॥

शान्तिनिकेतन से शिवालिक

सम्पादक
शिवप्रसाद सिंह



भारतीय राष्ट्रीय प्रकाशन



Lokodaya Series Title No 250

SHANTINIKETAN SE
SHIWALIK

(Literary criticism)

Dr SHIVAPRASAD SINGH

Bharatiya Jnanpith
Publication

First Edition 1967

Price Rs 20 00

©

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय

६, अनीपुर बाय प्लेस, बलकृष्ण २७

प्रचारान कार्यालय

दुर्गाकुण्ड माग वाराणसी ५

विक्रय केन्द्र

२६२०१२१ नताजी सुभाष माग, दिल्ली ६

प्रथम मस्करण १९६७

मूल्य २० ००

संमति मुद्रणालय,
वाराणसी-५



हम एक अजीब दौरस गुजर रहे ह। परम्परामे अलगाव, मूल्यमि उदासीनता और 'जो कुठ ह उस सबम घणाका दौर काई नयी चीज नही ह। बहुत पहले घुरेपके कई दस इसी दौरमे गुजर चुके हैं। कमायेग मात्रामें आज भी दुनियाके कई और काफी हिस्सामें ऐसी ही कश्मकश जारी ह। किंतु हमारे विद्रोह, विखराव, गुस्सा, और जुगुप्साक भीतर एक विशेष बात ह। वह ह मनुष्यताक प्रति अविश्वासका भाव। यह एक गम्भीर बात ह। तांड-फाउ, गाणे गलोज चीत्कार-फूकार, बेगर्मी-नगई आदि मृत परम्पराआको बदलनके इच्छुक वादिक वगध लिए कभी-कभी साजन होत है, म मानता हूँ पर क्मे ही साथ माननर अपने ही हाथा धायल और क्षत विगत मनुष्यताका कत्रम रप दनेका पया मूलत अवैदिक ह, इनमें भी सदेह नहीं। मूर्ति भजनके इस दौरमे एक ब्रजुग साहित्यकारकी पट्टिपूर्ति मनातेका प्रयत्न नि सदेह अनेक सहकर्मियां लिए न सही मुला विराय, भ्रू-कुचनका विषय तो होगा ही। पर म इम व्यय और वकसमकी बात नही, अत प्रेरणाकी धराहर माता हूँ। विद्रोह दिशाहारा न हा सषय अलकठ न बन, और खण्ड सवास हमारे मनमे मनुष्यताका सारी सम्भावनाआका पाछ न द, इसके लिए यह आयाजन मेरे लिए एक अनिवायता बन गया। इस अनिवायताने लिए इन उत्तरत्यागि-बहीन युगम म हर प्रकारमे उत्तरदाया हूँ।

कुठ मित्रा आनाथ द्विदशक श्रद्धालुआ और शिष्यां एन बन्दू समुदायन उनके चालीस बर्योकी साहित्य-साधनाक प्रति अपनी श्रद्धाके रूपमें एक मुनिया जित व्यापक स्तरके अभिनन्दनका सक्ल्प लिया था। मई अत तज इस प्रकारके किमी पयत्नना पूव लाग भी दिवाई न पला। वही काइ मुगबुगाहट न दमकर मन बिन हुआ। जाहिर ह कि वसा प्रयत्न एक व्यक्तिकी शक्तिक बाहर था। ममुत्पाक व्यापक इच्छा मौके विरुद्ध एकानी प्रयत्न आजके युगम बुद्धिमाना नही माने जाने, वल्कि मौनमें मौन मिला दना आवुनिक ऊरर समझा जाता ह। यह मौनवाद उपरके स्तरपर उन्ही सत्त्वसे जुटा ह जा हमार समाज

और दशको मजबूतताम सारिज करनके अन्तिम प्रयत्नमें लगे ह । इस प्रयत्नमें मेरा यह प्रयत्न कुछ भी खासत खा गवा, सो मुझे आत्मतौय मिलेगा ।

मेरा यह इतना प्रयत्न नी सामगयाला ही रह जाता यदि मेरे एक बार यहोपर ही भारतीय पानपाठक मंत्री श्री लामोचन्द्रजी जनने 'शांति निवेताम गिवालिक् का समयम प्रकाशित कर देना आवाहन न दिया होता । इन बहुमूल्य जावागनके बाग सामग्रा-सकलनका दुस्तर सिधु आगे आया । समय यम था । अभिमान प्रय नामक कोई वस्तु तयार करनका सक्त्प न था क्याकि म जानना था कि वह मेरा क्षमताय बाहरयो बात ह । ए एसी पुस्तक प्रकाशित करनेकी याजना जम्पर थी जो पण्डितजीके व्यक्तित्व और उनका साहित्यको सही परिप्रेक्ष्यमें दखनेम सहायक बन सके । आचार्य द्विवेदी अपनी कतिपय प्राचीन धारणाआने बावजूद हिन्दीके विरल व्यक्ति ह जिनका साहित्यम आस्थाका एक ऐसा लीला और नन्य रूप मिलता ह, जिसे आजका हमारी पीढ़ीने साहित्यकार भी समझना पसन्द करेंग यशसे कि व आस्थाका समाम सम्भारनाआरा परये बिना ही आस्थाहीन हानका सक्त्प न ले चुके ह ।

निवृत्तके लिए, मन समयके अभाव आर निश्चित परिवर्त्पनानी बाध्यताके कारण 'क्षार योता' गही दिया । जिनम जा चीज चाी ह, वही लिखवानेका प्रयत्न किया । दा एक्का छोरा सभी बच्चुआन अपनेका तरह-तरहकी परस्नानियामें डालकर भी दर-नवर सहयोग किया और पूरा दिया । इन सभी लयकाके प्रति म आभार व्यक्त करता हूँ । इस हालतम भी कुछ चीजें मन माफिक नहीं मिली, इसलिए एकाध ऐसा चीजें भी चली गयी ह, जिन्हें समयकी छट हानेपर शायद म स्वीकार न करता ।

द्विवेदीकाक व्यक्तित्व और सृजनना परिचय-शरीक्षणत्मक सामग्रीके अतिरिक्त पुस्तकके अन्तम कुछ पत्र भी सकलित हैं । ये पत्र सन १९४० स १९६० के बीच समय-समयपर विभिन्न साहित्यकारा-द्वारा द्विवेदीजीको लिखे गये ह । ये हिन्दीके साहित्यिक विकासके दस्तावेज ता ह ही, साथ ही स्वतःस्फूर्त हानके कारण द्विवेदीजीके व्यक्तित्व और उनका साहित्यकारके विकासके साक्षी भी हैं । इन पत्रामे पण्डितजीके जीवनके विविध पथोपर बहुते स्पष्ट प्रकाश पडता ह । उनका आदिक स्थिति, स्वभाव, साहित्यिक उपर-बिधायी सपन और सकट के क्षण इन पत्रामें अच्छी तरह अभिव्यक्त हुए ह । आगा ह इनका प्रकाशन हिन्दीके इस विरल व्यक्तित्वको सही ढगसे समझनेमें सहायक हाना ।

बंधुवर विद्यानिवास मिथने निरग्रपर निरग्र गिया । आग्रह रिया तो एक
 सम्मरण भी भेजा । कुछ टासुपरेण्ट रगोन स्टाइलें भी भेजो जिनका मं
 साजनके अभावमें उपयोग न कर सता । जानता हूँ यह सत्र उर्गेने पण्डितजीके
 प्रति अपनी सहज निष्ठाकी अभिव्यक्तिके रूपमें किया तो भी वे मेरे लिए प्रथम
 स्मरणीय ह, इसमें सन्देह नहीं । सीमाग्यवती भाग्यी मिथने पण्डितजीके कुछ
 दुःख चित्र भेजे । वह इस पुस्तकको देखकर प्रसन्न होगी । उस धन्यवाद बया
 हूँ । वायुष्मान् श्री गोपाल द्विवेदीने पुराने पत्रा और कुछ चित्रके ज्ञाने ज्ञानमें
 मत्त की । मेरे छात्र श्री प्रेमचन्द्र जनने अनेक निरग्रको प्रतिलिपि तैयार की ।
 भाग्यीय नागपीठक वायवर्ता इस ग्रन्थका समग्रपर प्रकाशित करनेमें हमें
 तत्पर रहे । मैं इन सबके प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ । अन्तमें पुन मैं
 श्री श्रीमतीचन्द्रजी जैनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जो मैं अनुष्ठानक
 समन्वय वाण्य रहे । उनकी आत्मीयस्वीकृतिके बिना यह सत्र सम्भव न हीता ।

काशी
 १० ई ६१

— शिवप्रसाद टिंड

जीवन यज्ञ

- | | | |
|----|--|--|
| १ | त्रिन्पौररण | गिरप्रसाद मिह |
| २ | जश्रीघमगना मचराचरा घरा | धमवीर भारती |
| ३ | आपवाव् | राहुल् साहृत्यामन |
| ४ | जोडनेञ्चो माग्रना | प्रिद्यानिवाम मिथ |
| ५ | पण्डित्त ह्जारीप्रसाद द्विवेदी | बलराज साहनी |
| ६ | दीयेनी ली | भारती मिथ |
| ७ | दो असमथताएँ | बनारसीदाम अनुर्वेनी
रामधारी मिह 'दितकर' |
| ८ | भूली कहा हूँ | शिवानी |
| ९ | अफगावाश्री | मागती निवारी |
| १० | श्री द्विवेदीजी | |
| | साहित्य-साधना और व्यक्तित्व | सोताराम सेवमरिया |
| ११ | आचाय द्विवेदीके शब्दोंम
जय अपनेको भूल गया । | विवेनी राय |
| १२ | जीवन चित्र नगदपणमे | |

इतिहास-दर्शन

- | | | |
|----|--|------------------------|
| १३ | इतिहास लेखन और
आचार्य द्विवेदी | रतीन्द्रनाथ श्रीवास्तव |
| १४ | अपभ्रंशके अध्ययनमे
द्विवेदीजीका योग | वीरद्र श्रीवास्तव |

१५	अपभ्रंश और हिन्दीके सम्यन्धपर द्विवेदीजीके भाषाशास्त्रीय विचार	ग्लानाचन्द्र भाटिया	८३
१६	हिन्दी साहित्यका आदिनाल	त्रिबुनाथ त्रिपाठी	९०
१७	भक्तिनाव्य गवाभ और दृष्टि	शिवप्रसाद सिंह	१०३
१८	सत साहित्यके अध्ययनमे द्विवेदीजीका योग	वामुदर सिंह	११८
१९	नाथ साहित्यके अध्ययनमे द्विवेदीजीका योग	नागेन्द्रनाथ उपाध्याय	१२३
२०	भक्तिनाव्यके परीक्षणकी समस्याएँ द्विवेदीजीके समाधान	श्यामसुन्दर गुवल	१२९
२१	साहित्यके इतिहासकी सांस्कृतिक व्याख्या	रघुवर्ण	१५०

सन्तुलित दृष्टि

२२	आचार्य द्विवेदीकी दृष्टिमे लालित्य तत्त्व	रमेश कुन्तल मेघ	१६३
२३	द्विवेदी साहित्य मसूदाकी पीठिका	रामसुरेण त्रिपाठी	२०३
२४	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीकी समीक्षा दृष्टि	रामदरश मिश्र	२१३
२५	मानवतावादो दृष्टि	गम्भिरनाथ सिंह	२२८

अतीत कथा

२६	द्विवेदीजीका परकाय प्रवेश	ठाकुरप्रसाद सिंह	२४३
२७	सुन्दर और अमुन्दर	प्रभाकर मानव	२५२
२८	अतीतका पुनर्निर्माण	देवराज उपाध्याय	२५६
२९	साहित्यिक परकाय प्रवेश	नरगिनबिलोचन शर्मा	२६१
३०	निरन्ध्र इतिहास कथा	भगवतारण उपाध्याय	२६१
३१	बाणभट्टकी आत्मकथा स्पन्दनेतनाकी काव्यानुभूति	दच्चन सिंह	२६८

३२ वाणभट्टकी आत्मकथा		२७८
एक प्रतिक्रियाधर्मी विदलेपण	मपुरंग	२८६
३३ वाणभट्टकी आत्मकथा	दवराग	२९०
३४ दृष्टिबेन्द्रका स्मरण	नेमिन्द्र जन	२०३
३५ चाम्चन्द्रलेग	नवकिंगार	३१०
३६ चाम्चन्द्रलेग कुछ शकाएँ	कुंवरनागयण	३१५
३७ चाम्चन्द्रलेग पारव छधि	दृग्गाथ	
३८ द्विवेदीजीके उपयामाका		३२६
मासृतिव परिवेग	त्रिभुवन मिह	

निर्वन्ध चिन्तन

३९ निरन्धकार द्विवेदीजी	विद्यानिवाम मिश्र	३६३
कुछ प्रभावावन	प्रभाकर माचवे	३४७
४० निरन्धकार द्विवेदीजी	वृष्णबिहारी मिश्र	३५२
४१ अशोकके फूलसे देवदार वन तक	रमेशचन्द्र शाह	३६५
४२ आचार्य द्विवेदीके निरन्ध		
४३ द्विवेदीजीके निरन्ध साहित्यम—	विनोन्नी मिह	३७८
'मानव'		

विविध

४४ सहज साधना	परगुराम चतुर्वेदी	३८५
४५ मृत्युजय रवीन्द्र दो समीक्षाएँ	बनारसनाथ चतुर्वेदी,	३९१
	इलाचन्द्र जागी	३९७
४६ मेघदूत एक पुरानी कहानी	रवीन्द्र भमर	४०३
४७ मूर साहित्य	मुधा राजपाली	४०७
४८ हिन्दीका युगपुरुष	हिरण्मय	
४९ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका		४१२
लोकवार्तिक दृष्टिकोण	श्याम तिवारी	
५० द्विवेदी साहित्य		४१९
पाठवीय प्रतिक्रियाएँ	'यामनदन किंगोर	
५१ 'विश्वभारती'का सम्पादन		४२५
अन्तरके मृत्युकी बात	काशीनाथ मिह	

५२ नया मूर्याकन		
कालिदासकी लालित्य योजना	कल्याणपति त्रिपाठी	४३४
५३ मधुमचय	सकलकर्ता प्रेमचन्द्र जन	४४७

एक इण्टरव्यू कुछ पत्र

५४ एकजलती शाम द्विवेदीजीके साथ	गिरधरसाद सिंह	८०
५५ पता एक पत्र अनेक	महादेवी वर्मा मियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी वासुदेवशरण अग्रवाल देवराज, मयकान्त त्रिपाठी निराला, विद्यागी हरि, रामकुमार वर्मा, राहुल साठ्ठ्यायन, बन्धु राज साहनी, अमृत राय, मलिन विलोचन शर्मा, नन्दुलारं वाजपेयी, (सेठ) गाविन्दराज रागेष्ट्र राघव, वाग्मादास चतुर्वेदी, धार्तिप्रिय द्विवेदी, गिरधरसाद सिंह 'सुमन' सुमित्रा नन्दन पन्त, आचार्य नरेन्द्र, बालकृष्ण राव धमकीर भारती	४६८ ८९५
५६ लेखक (सम्पर्क-सूत्र)		

तत समुत्थिष्य घरा स्वदष्ट्रया
महावराह स्फुट - पद्मलोचन ।
रमातलादुत्पल - पत्र - सन्निभ
ममुत्थितो नील इवाचलो महान् ॥

जीवन-यज्ञ

*

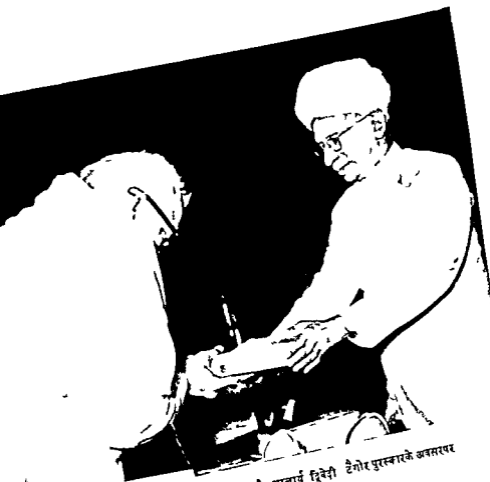
घोर जागिरवने देवकीपुत्र कृष्णसे कहा जीवन ही यज्ञ है ।
—छात्रोद्योगोपनिषद् ३।१६।१७



लिखनके लिए
टेबल - बरसी
जरूरी तो
नहीं ।

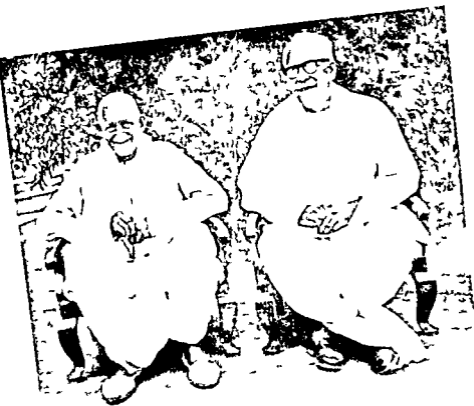


अच्छा पूछो । - द्विवेणी जो गौर डॉ० शिवप्रसाद मि-



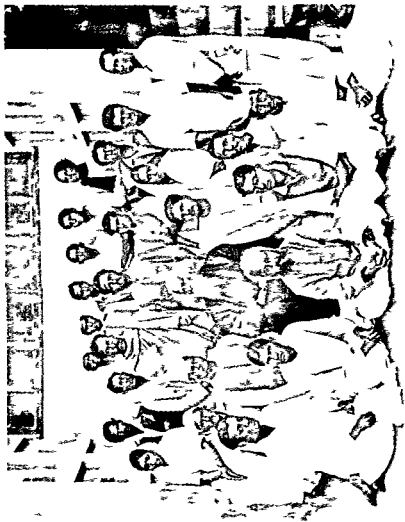
शु० पू० राष्ट्रपति डॉ० स. धाम्पन और आचार्य द्विवेदी टैगोर पुरस्कारके अवसरपर





पिता ९० अनमोल द्विवेदीके साथ





विरूपीकरण



शिवमसाद सिंह

पण्डितजीको मैं पिछ्ठे मयह बर्षोंमें देखता आ रहा हूँ । घण्टा घातें की हैं । गप्पें की हैं । सैकड़ा बार शामको साय-साय घूमा हूँ । सुगह कभी भी नहीं, इसके लिए वे अकसर चिदानेके लिए यह भी कर्त हैं कि आज तुम्हारे दरवाजेपर दस्तक दे आया, पर म सुबहकी दस्तकोवो व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके खिलाफ मानता हूँ इसलिए कभी ध्यान नहीं दिया । नाना विषयोंपर, कभी-कभार बेमतलब ही, बहसों की हैं, सभा-नोष्ठियोंमें साय-साय बँटा हूँ, कितनाकी उनके मामने निंदा प्रशंसा की ह, कई-कई बार वे अपने विरोधियोंको निंदा सुनकर खीझे ह, और कई-कई बार मेरे द्वारा प्रशंसित व्यक्तिओपर करारा व्यंग्य करके ठहाके लगाते रहे ह । ठहाके वे अपनेपर भी लगाते हैं और कुछ अवसरोपर उहींपर उही-द्वारा लगनेवाले ठहाकामें मने भी पुरजोर हिस्सा लिया है । याना मक्षेपमें यह कि इस व्यक्तित्वने नाना अक्स मेरी स्मृतिमें टँके हैं, जिनकी 'नम्बरिंग' करना भी मुशकिल है, तरतीबसे पुन प्रस्तुत कर सकना तो असम्भव ही समझिए ।

पण्डितजीका चेहरा 'फोटो फेस' मित्रबुल ही नहीं ह । यह मेरी फोटोग्रफी-की असफलता भी हो सकती है, कच्चापन भा, सही कोण और आवश्यक दूरी का अभाव भी, पर इतना तय है कि यह शतकोणिक व्यक्तित्व अक्सर घोटा दवर छूट जाता ह । इसे बाँधनेका प्रयत्न, सब-कुछको समझ लेनेकी चेष्टा प्राय व्यथ हो जाती ह । इसीलिए अपने इस प्रयत्नकी सफलताके बारेमें भी मुझे कोई मुगात्रता नहीं ह । इसका परिणाम जानता हूँ । सिर्फ विरूपीकरण, और कुछ नहीं । पर कभी-कभी मन-भाषिक चित्रण न कर सकनेकी खोज विरूपीकरणसे ही तृप्त होती ह और फिर असम्भवको सम्भव करनेके असफल प्रयत्नका भी एक स्वाद तो होना ही ह ।

उन्हें पहली बार देना तो स्टेजपर थे । यानी घुटजात फासी कुछ बना बटी रोगनिधाने बीच हुई । नत्र सञ्चति सपना अधिवेशन था । म उस समय उदयप्रताप कॉलेजका छात्र था । गलत क्षेत्र, यानी साहित्य-वाहित्यके प्रति

रसानके जरासीम बुद्धिमें पड गये थे। ऐना न होना तो मैं रात दस बजे उस जगह बसे पहुँचता, जहाँ जनता-जैगी चीज बिलकुल ही न थी। स्टेज था। वहाँ कई साहित्यकारनुमा लोग बैठे थे। उनसे अलग स्टेजपर एव और व्यक्ति थे नरेन्द्रदेव। अलग थे, इसलिए वे याद हैं। द्विवेदीजीका भाषण चल रहा था। टूटे हुए पिरामिडकी तरह तब वे बिलकुल न थे। सीधे सडे थे। उनका भाषण गुरु हुआ तो तेजी बम थी। वे जैसे जैसे गरमाते गये, श्रेक हटते गये और शब्दाकी धारा उमड़ती गयी। स्टेजपर बाकी रोसनी थी और उसकी सहरोकी हल्कोरते दो हाथ निरंतर दूरमें धुपकी हटाते अपने ही पहे हुए शब्दाकी भीडकी ठेलते, सौताअधि चित्तकी जटिमाको शकशोरते, शिवके अपुण्ड नृपकी मुद्रामें अवित वे हाथ मुम आज भी भूजे नहीं ह। लौटोपर मेरे अध्यापक माकण्डेय सिंहने पूछा वैसा था भाषण द्विवेदीजीका? मैंने कहा बहुत अच्छा। माकण्डेय सिंह साँटी प्रकटपल आदमी थे। हँमते हुए बोले—“हाथ बहुत भौजते हैं।” व्यक्तित्व के प्रभाव, भाषणकी ओजस्विता और शब्दाकी ओजस शडीम मैं दो पण्ट खडा था और मुझे उन हाथाकी हरवत नागवार बिलकुल नहीं लगी थी। इसलिए ‘भौजना’ क्रियाउठे ठेस लगी। उसके बाद भी मैंने सैकडा बार भाषण सुने, वनामें रोज ही सुनता था। बँठे होवेपर उनके हाथाकी तरह परोमें भी एक कम्पन होने लगती ह। वैसा ही कम्पन जती स्टार्ट लगानेपर मोटर गाडीम। यह कम्प द्विवेदीजीके समूचे व्यक्तित्वकी कुजी है। यह उस अपराजित अमोघशक्तिका सूचक ह जा उनके मन, बुद्धि और चित्तकी पूरी तरह समेटकर घघकती है। प्राण मन-बुद्धिका यह आवेग इतना शक्तिशाली होता है कि अभिव्यक्ति माध्यम हिल उठते है। व बोलने-संगे तो सम्पूर्ण शरीर धरधराने लगेगा, लिखने लगेगे तो पने-पर-पने फाडते जायेंगे क्याकि बध्यकी संभालनेमें शक अपनेकी ही निरपक लगने लगेगे। किन्तु यह जाला और यह आवेग सदा बतमान नहीं रहते। नहीं रह सक्ने। इससे रहित होकर शातल बुद्धिसे वे शोच-काय मल ही कर-कग लें, साहित्यका शलित्य इस शीतल बुद्धि प्रघात प्रयत्नमें बंध नहीं पाता। ऐसी स्थितिम वनाअमें बोलते हागे तो अर्थ न्यूनतर धरतीमें पडे बीजकी तरह मिनमिनाकर रह जायेगा। इम मुडमें यदि कुछ लिखने लगे तो ‘कुटज’ और दवदाह-जसे निरघाकी सृष्टि तो सम्भव नहीं, वेमन लिखी सकडा भूमिशाअमें एक दजाफा और भले ही हा जाये। यह कम्प किसी भी प्रकारकी हीनता ग्रथिका परिणाम नहीं ह जसा उनके बहुत-से विरोधी कहते ह। यह उम चेतनाका चाहा उपलक्षण मात्र ह जो अंतरम जागृत होकर सम्पूर्ण जड-सम्भारकी कपाती अभिव्यक्त होनेके लिए बसमसाती रहती ह।

पण्डितजी उस तरहके लेखकाम नहीं हैं जो भावोद्रेकको पानीका छौटा मार-मार-कर ठण्डा कर लेते हैं और फिर उसे बड़े करीनेके साथ अभिव्यक्तिसे समूचे कौशलको दृष्टि रखकर नग्नशिल्प दुःखस्त जमाकर उतारनेकी याचना करते हैं। यह सच है कि सुगीतल ढगवाले लेखका-द्वारा औसतसे 'यून स्तरकी चीजें कम लिखी जाती हैं, पर यह भी सच है कि कलाकी अल्पनीय ऊँचाई भी वे कभी-कभार ही छू पाते हैं। इस दृष्टिसे द्विवेदीजी निराला और मुक्तिबोध-जैसे ऐपणा की जातके साहित्यकार ठहरते हैं, पत और अपेयका जानके नहीं। यह अलग बात है कि समीक्षकके रूपमें उन्हें पन्त और अपेय निराला और मुक्तिबोधकी अपेक्षा कहीं अधिक पसंद है।

बछार भावोद्रेक और असौम भावैग खुदमें कोई बनी चीज नहीं रहते यदि उन्हें समझित करनेवाली समाहार चेतनाका अभाव हो। विशाल जलरागि भी बिना तटाके अवरोधके निरखक वागमें धदल जाती है। शक्ति नियमनका ही परिणाम है। 'एकाग्रिभाव छदकी आत्मा है।' आनन्दक सीमाएँ और बगार ही धाराको गति दते हैं, पण्डितजीके व्यक्ति-वमें समय और समाहारकी भी अद्भुत शक्ति है। ऐमा भावैग और आवेश मूलक आदमी इतना समी और विनम्र बसे हो सकता है? इस प्रश्नपर मैं बार-बार सोचता रहा हूँ।

नाशी हिंदू विश्वविद्यालयसे उनका हटना शायद उनके जीवनका सबसे बड़ा सक्क और सत्रास था। इमे वे अपने पापका परिणाम कहते हैं। पाप था गुरुदेवके शान्तिनिकेतनको छोड़कर आना। अस्तित्ववादियोंकी धारणा है कि सत्राम और सक्रममें मनुष्यका 'यक्ति'व अनावृत हो जाता है। मने उन दिनों भी उन्हें काफी निवृत्तसे देखा। मनके भीतर जो भी उमल पुबल रही हो बाहरसे वे उहीके शब्द उधार लूँ 'तो निर्वात दीपकी तरह बिलकुल निप्लम्प' थे। उनके मनको आघात लगा था, पर मलाल न था। उहाने अयायके विरुद्ध लडाई नहीं लडी। बहुताको उनका यह व्यवहार सला। मुधे भी। पर जब-जब मने उनके इस आचरणपर विचार किया, मुने लगा कि यहा भी लगाई है, और बहुत उग्र और भयकर पर वह नहीं और लडो जा रही है। यह युद्ध क्षेत्र उनका स्वयका मन था जिसमें आवेश आवैग और महाप्राणताका युद्ध चल रहा था— समय, आत्मविश्वास और कट्टु परिस्थितियासे उत्पन्न शोभ और निराशाके साथ। जिस दिन वे कागो छोड़कर जा रहे थे। अचानक उनके धरके भीतरसे रेडियो सिलोनसे रेकंड बज रहा था—'बनते लगे न देर, बिगडते लगे न देर। ये रेडियो भी कभी-कभी कमा परम धेहूदा असमय राग अलापने लगते हैं? उन्हें पहुँचाकर स्टेशनसे लौटा तो मन बड़ा विन्र था। कुछ ही

में उनका लेग 'बुटज' प्रकाशित हुआ। 'बादम्बिनो' अभी उद्घटित नहीं हुई थी। एक अग्रिम अब राव साहबने मुझे दिया था। मैं रातको प्रयाग होटलके कमरेमें लेटा-लेटा यह लेग पढ़ने लगा। उस निबन्धमें कुछ ऐसी कशिंग थी कि मैं तड़पकर रह गया। 'बुटज' उसी सम्पूर्ण सत्रासवालीन मन स्थितिवा दस्तावेज है। मैं पन्ना गया—“प्रकृत बुटजके फूल! यह और बात है कि आज आपात्वा नहीं, जुलाईका पहला दिन है। मगर प्रकृत भी कितना है। बार-बार मन विश्वास करनेको उतारू हो जाता है कि यद्यत् बहाना मात्र है, बालिदास ही वही 'शापनास्तगमितमहिमा' होकर रामगिरि पहुँचे थे। अपने ही हाथों इस बुटज पुष्पका अर्घ्य दकर उन्होंने मेपकी अभ्ययना की थी। शिवालिककी इस अत्युच्च पर्वत श्रृंखलाकी भौति रामगिरिपर भी उस समय और कोई पूत्र नहीं मिला होगा। बुटजने उनके सन्तत चित्तको सहारा दिया था। घय हो बुटज, तुम गाढ़ेके साथी हो।”

अपनेको दायित मान लेनेकी यह प्रवृत्ति खुदमें एक निरीह विवशता और निरा आत्मतोष बनकर रह जाती, यदि उन्हें यह बोध न होता कि 'बुटज क्या केवल जी रहा है? यह दूसरेके द्वारपर मौख माँगने नहीं जाता, कोई निबट आ गया तो भयके मारे अपमरा नहीं हो जाता, नीति और घमका उपद्रव नहीं देता फिरता, अपनी उन्नतिके लिए अपमरोका जूता नहीं चाटता, दूसराको अब मानित करनेके लिए ग्रहोकी सुशामद नहीं करता, आत्मोन्नतिके हेतु नीलम नहीं धारण करता, अँगूठियाकी लड़ी नहीं पहनता, दाँत नहीं निपोरता, बगलें नहीं झाकता। जीता है और धानसे जीता है—वाहै वास्ते? किस उद्देश्यसे? कोई नहीं जानता। मगर कुछ बड़ी बात है। स्वायत्तके दायरेके बाहरकी बात है।”

यह बड़ी बात, स्वायत्तके दायरेके बाहरकी 'बात' उनके यत्निकत्वको सममित करती है, घेरती और छँबती है, आवृत करती है और हर सत्रास और सकटमें उनका कवच बन जाती है। इसीके सामने समर्पित होकर वह समष्टिम बदल जाता है, भावेग सृजनका रूप ले लेता है और भावोद्रेक एक अद्भुत 'बवँचर' के साथ अकल्प ऊँचाइयोको अपने भीतर समेट लेता है। यह बड़ी 'बात', यह बड़ा उद्देश्य उन्हें कभी नहीं भूलता। लोग इसे आदशवादिता कहकर टालनेकी कोशिश करते हैं, इसमें उन्हें पण्डितका अतिरिक्त उत्साह और परम्पराका मोह दीखता है। कुछेकके लिए यह बकवास है, कुछेकके लिए भावुकता। आपुनिकता बादी इसे पुराणप्रियता और चालाक लोग मानसिक कमजोरी कहकर सन्तुष्ट हो लेते हैं। पण्डितजीके बहुतेरे शिष्योको पण्डितजीका यह 'अनासक्त' रूप काफी शान्तिनिकेतनसे शिवालिक

कष्टकर लगता है, क्योंकि इसीके चलते वे उचित मौत्रापर आवश्यक दन्ता नहीं दिवाने और उचित काम भी करा नहीं पाते। पर जो व्यक्ति अपने सबक और सवासके क्षणोंमें अपने प्रति निर्माही और तटम्य हो सकता है, वह परायतवाणी नहीं है बल्कि किसी उच्चतर मूल्यके लिए कष्टकर और कठोर रास्ताको अपनाये हुए है, इसमें सन्देह नहीं। यह बने बात क्या है? "जीना भी एर क्या है। लेकिन क्या ही नहीं तपस्या है। जीयो तो प्राण दाल तो जिन्दगीमें, मन दाल तो जीवन रखके उपकरणोंमें। ठीक है। लेकिन क्या? क्या जीनके लिए जीना ही बहो बात है? सारा ससार अपने मतलबके लिए ही वा जो रहा है।" इसी प्रसंगमें उन्हें यादवन्द्यके 'आमनस्तु कामाय सब प्रिय भवति' की याद आती है हान्म और हेल्थेगियसके ऐसे ही विचार याद आते हैं। तो क्या सारा जगत् सिर्फ अपने स्वार्थके लिए ही प्रयत्नगोल है? "अतरतरन कोई कह रहा है नहीं एसा सोचना गलत ढंगमें सोचना है। स्वायस भी बड़ी काई-न-काई बात अवश्य है, जिजोविपाने भी प्रचण्ड काई-न-कोई शक्ति अवश्य है। क्या है?"

इस जो कह लीजिए इतिहास विधाता, सब, समष्टि, महाकाल, महाअनात, कुछ भी पर इस 'बने उद्देश्य'के प्रति उनकी अटूट आस्था आधुनिकस आधुनिक विचारोंमें लिपटी होनेपर भी, ज्यानी-रया दिवाई पडगी। यह एक पूणता भाव है, अगाध मूल्य स्रोत, जिससे उनका हर विचार, हर धारणा और हर उद्धानना कहीं-न-कहीं जुडी रहती है। "अपने-आपको दलित शम्पाकी भाँति निबोल्कर जवनक सनक लिए निछावर नर्ण कर दिया जाता, तबतन स्वार्थ तण्ड मय है वह मोर्को बढावा देता है तण्णाको उत्पन्न करना है और मनुष्यको दयनीय कृपण बना देता है। धापण्य दोपसे जिसका स्वभाव उपहृत हा गया है उसकी दृष्टि म्यान हो जाती है, वह स्पष्ट नहीं देख पाता, वह स्वाय भी नहीं समझ पाता, परमाय तो दूरकी बात है।"

समपण, किसी भी बडेस बने मूल्यके सामने व्यक्तिकी ऐकान्तिक जिष्टाकी चीज है इसलिए एकान्त वैयक्तिक चीज है। इस विषयमें मुझे कुछ नहीं बटना, पर पण्डितजीकी 'सबके आगे अपनेको दलित शम्पाकी तरह निचाकर समर्पण' करनेकी बात मुझ आचरण और सिद्धान्तके रूपमें अवृत्त लगती रही है लगती है। मैं इस वाक्यकी बढ्ढा अनुवर्तिता दण्डनर सौध उटता हूँ। फिर घाटा गात होकर सोचता हूँ तो लगता है मुझे सोझनका काई हूँ नहीं है। पण्डित जीका 'सब' और उनका 'समपण' विलकुल उनकी चीज है और उनका चित्तमें इतन गन्दे धँसी हुई है कि इसे मा ही उगाया नहीं जा सकता। यह एक अजीब

प्रक्रिया है, अपने सम्पूर्ण जीवनके मुम्-मु राके बीच उनका अनुभूत रिश्ता है, जिसे हम आजकी ज़िम्मे जो चाहे कहें, इनके पीछे विद्यमान उस व्यक्तिकी ईमानदारोम मन्देह नहीं किया जा सकता, और निरन्तर परिवर्तित होते हुए मन्मा, सन्मा, धारणाआवे जगन्में अपनी मायताने प्रति ऐसी विलक्षण निष्ठा अपनी अनवरतताके कारण ही एत आधुनिक मूल्य बन जाती है इनमें शक नहीं। यह भी एक अजीब समपण है जिसे ठीकसे कर न सक्नेके कारण मंडोसे बड़ी प्रतिभाएँ अगफल हुई। चाहे भट्ट हों या भट्टिनी, चाहे चन्द्रलेखा हो या राजा सातवाहन। सभी इस समपणकी अग्निमें भोंके गये। पर परे किन्ते उतरे? न व्यक्ति न राष्ट्र। पर पण्डितजीकी इस धारणामें परिवर्तन नहीं होता। अनामत मस्ती और दलित द्राणाती तरह निचोड़कर किया जायेबाला समपण बिल्कुल विरोधाभास है न? वैसा ही विरोधाभास जैसा आत्म्य प्राणवेग तथा समय और नम्रताके बीच है।

यह विरोधाभास ही उनके सृजनका उपयुक्त क्षेत्र है। वे एक ऐसे बुराल कृपक हैं, जो अपनी माटीकी खूबियाँ और त्रुटियाँ दोनों समयते हैं और उमे अपने अथर परिश्रम और अध्यवसायसे ऐसी भूमिमें बदल देते हैं जिसमें हजारो वर्ष पुरानी भारतीय ससृष्टिकी रक्षा है, सावनाआका उबरक है और नवीनने नवीन प्रकारके अधिक फल देनेवाले आधुनिक बीज हैं। पण्डितजी ध्वस और उत्सर्जनकी बात सोच ही नहीं सकते। मनुष्यकी मनुष्यतामें विलक्षण आत्म्या रखने-वाला व्यक्ति स्वभावतः सृजनका पक्षधर होता है। परकी बागवानीमें लेकर गोधवे मन्धानो तक सबत्र उनकी सृजनधर्मिता नाना रूपोंमें प्रतिफलित होनी रहती है। वे इसी कारण कभी-कभी इतने निरोह और विवश भी हो जाते हैं कि अत्यंत अनभल ताकनेवालेका भी कोई नुकसान या हानि कर नहीं सकते। उनके साथ जिन लोगोंने बुरासे बुरा बरताव किया, उनके यक्ति-वपर बीचड उछाला, उनकी जीविकापर लात मारा, उनके विक्रामके सारे रास्ते काँटोने रूँधे, उनके विरोधम कुछ करता तो दूर कुछ बहनेका भी उन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया। काशी हिंदू विश्वविद्यालयमें विदा होते बक्त जाँच समितिके अध्यक्षके बार बार आप्रहपर भी उन्होंने कुछ न कहा। चलने वपन गुरुदेवकी दो पत्तियाँ अवश्य निकल पड़ी—फूल-फूलस लदे विनाल वृत्तिका धराशायी कर देना कितना आसान है। पर तुम एक छोटा-सा फूल भी तिला नहीं पाओगे नहीं पाओगे, नहीं पाओगे —

"तोरा पारिवी ने गो, पारिवी ने गो, पारिवी ने
फूल फाटाते।"

अपने जीवनके उन ध्वसात्मक क्षणोंमें भी जिसे पूरा स्थानकी ही याद रही, उसकी सृजनधर्मिताके चरणोंमें और क्या कहा जाये। पृथ्वीके अदम्य गुरुत्वात्पणकी टैलर आकाशकी ओर आगस्त भावसे देखनेवाला बीजाकुर उनका बहुत प्रिय प्रतीक है। अकुरोद्भवकी प्रक्रिया याद आते ही उनका सम्पूर्ण शरीर उल्लासमें विरल उठता है। उनका विद्वान् ह कि सृजनको अवरुद्ध करनेवाली बड़ीमे बड़ी शक्ति भी मामूली अँधुबेकी गतिको रोक नहीं सकती। "पृथ्वी लावा वर्षों तक ठण्डी होती रही। लावा वर्षों तक ऊपर तरल तप्त धातुआकी लहाछेह वर्षा होती रही। लावा वर्षा तक उसके बाहर और भीतर प्रत्यक्षाण्ड चलना रहा और जीवतत्त्व अविशुद्ध भावसे अवसरकी प्रतीक्षामें बसा रहा। अवसर आनेपर उसने सम्पूर्ण जडशक्तिके विरुद्ध विद्रोह करके मिर उठाया— अकुररूपमें। सारी जडशक्ति अपने प्रबल आकषणका सम्पूर्ण वेग लगाकर भी उसे नीचे नहीं खींच सकी।" (कल्पिता प० ९९)। हाय री अदम्य जिजीविषा। जीना चाहते हो? कठोर पापाणनी मेदकर, पातालकी छाती चीरकर, अपना भोग्य सग्रह करो, वायुमण्डलकी चूसकर, यज्ञा तूफानको रण कर अपना प्राण्य बसूल लो, आकाशकी चूमकर, अवकाशकी लहराम चूमकर उल्लास पीच लो। कुटजका यही उपदेश है

नित्वा पापाणपिठर उड्त्वा प्रामञ्जनी व्यथाम ।

पीत्वा पातालपानीय कुटजश्चुम्बते नम ॥

यही सृजनधर्मिता, यही जिजीविषा, सस्त्वके मामूली शास्त्राचार्यकी शक्ति-निरेतन ले गयी, साहित्यकी अछती घाटियामें ले आयी, प्राचीन समृति और इतिहासके अध सण्डहरोमें ले गयी अँगरेजीका नियमित अध्ययन न हाते हुए भा रिदेगी विचारधाराने उतुा निगरापर ले गयी। वे जहा भी गये, उमूक भावसे ही गये, पर कभी भी अपनी स्वकीयता छोडर नहीं। स्वकीयता, जिसमें मानवतत्त्व है, माग्य है, कालिनामना सौन्दर्य और सौभाग्य है बबोरकी फक्काना मस्ती है दिक्कालकी शाक्त धारणाएँ है मिमृणा है, रपोद्भवा 'महामानव है और इनको समेटकर अन्तभुक्त करने चलती हुई भोजपुरी सृजता है कभी उनसे अलग नहीं होती। यहा आकर नामल नामल हा जाता है। कण्टिनुअम इच्छाम, नामें कण्टम क्रियामें, विन्तुम बदल जाता है। सारा आयुनिव 'एस्पिटिव' लालित्यना क्षेत्र बन जाता है जिसकी मूल शक्ति ललिता है जा निवकी धीडा-सगा है। बहुविध क्षेत्रामें ले जानेवाली यह जिजीविषा उह सबभुन बनाती है, बसे वे पैयायी अग्निभुक्त तो है ही। कट्टु तिक्त लक्षण, कपाय, मधुर, चरपरा सभी सुपाच्य हैं, सभी गल-यचकर भारतीय

प्रक्रिया है, अपने सम्पूर्ण जीवनके सुगन्धु खवे बीच उनका अनुभूत रिश्ता है, जिसे हम आजकी दृष्टिसे जो चाहे कह लें, इसके पीछे विद्यमान उस व्यक्तिकी ईमानदारोम सदेह नहीं किया जा सकता, और निरंतर परिवर्तित होते हुए मत्वा, स्या, धारणाओंके जगत्में अपनी मायताके प्रति ऐसी विलम्बण निष्ठा अपनी अनवरतताके कारण ही एक आधुनिक मृत्य बन जाती है इसमें शक नहीं। यह भी एक अजोय समपण है जिसे ठीकसे कर न सक्नेके कारण बनीमे बडी प्रतिभाएँ असफल हई। चाहे भट्ट हा या भट्टिनी, चाहे चन्द्रलेखा हो या राजा सातवाहन। सभी इस समपणकी अग्निमें षोके गये। पर खरे किनने उतरे? न व्यक्ति न राष्ट्र। पर पण्डितजीको इस धारणामें परिवर्तन नहीं होता। अनासक्त मस्ती और दलित द्रष्टाकी तरह निबोडकर किया जानेवाला समपण, बिलकुल विरोधाभास है न? बंसा ही विरोधाभास जैसा अदम्य प्राणवेग तथा समय और नभ्रताके बीच है।

यह विरोधाभास ही उनके सृजनका उपयुक्त क्षेत्र है। वे एक ऐसे कुशल कृषक हैं, जो अपनी माटीकी खूबियाँ और श्रुटियाँ दोनों समझते हैं और उसे अपने अथक परिश्रम और अध्यवसायसे ऐसी भूमिमें बदल दते हैं जिसमें हजारों वर्ष पुरानी भारतीय ससृष्टिकी खाद है, साधनाआका उबरक है और नवीनसे नवीन प्रकारके अधिक फल देनेवाले आधुनिक बीज हैं। पण्डितजी ध्वस और उत्सन्नताकी बात सोच ही नहीं सकते। मनुष्यकी मनुष्यतामें विलम्बण आस्था रखने वाला व्यक्ति स्वभावतः सृजनका पक्षपर होना है। घरकी बागवानीमे लेकर सोधने मरुस्थानो तक सवत्र उनकी सृजनधर्मिता नाना रूपोंमें प्रतिफलित होती रहती है। वे इसी कारण कभी-कभी इतने निरीह और विवश भी हो जाते हैं कि अत्यंत अनभल शकनेवालेका भी कोई नुकसान या हानि कर नहीं सकते। उनके साथ जिन लोगोंने घुरास घुरा बरताव किया, उनके व्यक्ति-वपर बीचड उछाला, उनकी जीविकापर लात मारा, उनके विकासके सारे रास्ते काँटास रेंधे, उनके विरोधम कुछ करना तो दूर कुछ कहनेका भी उहोंने कभी प्रयत्न नहीं किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे रिदा होते बकन जाँच समितिके अध्यक्षके बार-बार आप्रहपर भी उहोंने कुछ न कहा। चलते चलते गुल्शेबकी दो पत्नियाँ अवश्य निरल पडी—फल-फूलमे लडे बिनाल वृथाओ घरागाया कर दना बितना आसान है। पर तुम एक छोटा-सा फूल भी खिला नहीं पाओगे, नहीं पाओगे, नहीं पाओगे —

“तोरा पारिवी ने गो, पारिवी ने गो, पारिवी ने
फूल फोटाते।”

अपने जीवाके उन ध्रुवात्मक क्षणोंमें भी जिसे फूट खिलानेकी ही याद रही, उसकी सृजनधर्मिताके बारेमें और क्या कहा जाये। पृथ्वीके अदम्य गुरुत्वा कणको ठेलकर आकाशकी ओर आश्वस्त भावसे देखनेवाला बीजातुर उनका बहुत प्रिय प्रतीक है। अतुरोद्भवकी प्रक्रिया याद आते ही उनका सम्पूर्ण शरीर उल्लासम विरल उठता है। उनका विश्वास है कि सजनको अवगृह्य करनेवाली बड़ीसे बड़ी शक्ति भी मामूली अंगुविकी गतिको रोक नहीं सकती। 'पृथ्वी लाखों वर्षों तक ठण्डी होती रही। लाखों वर्षों तक उसपर तरल तप्त धातुआकी लहाछेह वर्षा होती रही। लाखों वर्षों तक उसके बाहर और भीतर प्रलयकाण्ड चलता रहा और जीवतत्त्व अविभुद्ध भावसे अवसरकी प्रतीक्षामें बठा रहा। अवसर जानेपर उसने सम्पूर्ण जटशक्तिके विगृह्य विद्रोह करके सिर उठाया— अतुररूपमें। सारी जडशक्ति अपने प्रवृत्त आकषणका सम्पूर्ण बोग लगाकर भी उसे नीचे नहीं खींच सकी।' (कल्पलता प० ९९)। हाथ री अदम्य जिजीविषा। जीना चाहते हो? कठोर पापाणको भेदकर, पातालकी छाती चीरकर अपना भाग्य सग्रह करो वायुमण्डलको चूमकर, झंझा तूफानको रगड़कर अपना प्राप्य बसूँ लो, आकाशको चूमकर, अवकाशकी लहरोमें चूमकर उल्लास खींच लो। कुटजना यही उपदेश है

मिर्त्वा पापाणपिठर उडित्वा प्रामञ्जनी व्यथाम ।

पीत्वा पातालपानीय कुटजदुग्धवते नम ॥

यही सृजनधर्मिता, यही जिजीविषा सञ्चलके मामली शास्त्राचार्यको गान्ति निरन्तर ल गयी, साहित्यकी अटूती घाटियाम ले आयी, प्राचीन सम्स्कृति और इतिहासके अथ खण्डहरोंमें ले गयी, जंगरेजीवा नियमित अध्ययन न होते हुए भी विदेशी विचारधाराके उत्तु गिहरापर ले गयी। वे जहा भी गय उन्मुक्त भावसे ही गये, पर कभी भी अपनी स्वकीयता छान्कर नहीं। स्वकीयता जिसमें मानवतत्त्व है, मागत्य है, कालिदामका सौंदर्य और सौभाग्य है, कवीरकी फक्कडाना मस्ती है, दिक्कालकी शाक्त धारणाएँ हैं, विमृगा है, रसीद्रवा 'महामानव' है, और इनको समेटकर, अतभुक्त करके चलती हुई भोजपुरा सहजता है, कभी उनमें अलग नहीं होती। यहाँ आकर नामल नमिल हा जाता है। कण्ठनुग्रम इच्छाम, नादमें कर्षणम त्रियामें, विदुग्ध बदल जाता है। सारा आधुनिक 'एस्थेटिक' लालित्यका क्षेत्र बन जाता है जिसकी मल गति ललितता है जो गिहकी क्रीडा सखी है। बहुविध क्षत्रामें ल जानेवाली यह जिजीविषा उह सबभूर बनाती है वैसे ही पैगयगी अग्निभुक्त तो है ही। कट्टु तिक लवण, कपाय, संपुट, कर्परा सभी सुपाच्य है, सभी गलनकर मारतीय

जीवन-धन

जीवनकी अमृत प्राणधाराका अंश बन जाते हैं। यह उनकी जिजीविषाकी सृजन धर्मिता है, साथ ही निममता भी। “मनुष्यकी जीवन शक्ति बड़ी निमम है। वह सस्कृति और सम्यताके बधा मोहोका रौंदती चली आ रही है। गुद्ध है केवल मनुष्यकी दुःख जिजीविषा। वह गंगाकी अबाधित अनाहत धाराकी भाँति सब कुछको हजम करनेके बाद भी पवित्र है।”

किन्तु यह निममता उस समय कितनी मोहमय हो जाती है जब सम्यता और सस्कृतिको जान पानेकी लालसा गई लगे पापाणके टुकड़ोंकी भी बिना परखे फेंकना नहीं चाहती। मैं फिर एक विरोधाभासको घात कर रहा हूँ। पण्डितजी अतीतके भग्न जीण दुःख प्रति भी असौम मोहसे विजडित हो जाते हैं। शायद हमके भीतरसे कुछ मिल जाये। उस अंधकालको जाननेके लिए एक मामूली चिनगारी भी मिल जाये, तो उसे जिलाये रखना कत्तय है। इसी कत्तव्यसे प्रेरित होकर वे निरंतर तत्र-मत्र, पुराण-आगम, जन-बौद्ध, शैव शाक्त, नाथ-कापालिका के राशीभूत नीरस और फालतू-से लगनेवाले शास्त्र-साहित्यका उकेरते रहते हैं। उन्होंने खुद ही लिखा है कि “अच्छा समझिए या बुरा मेरे ज़रूर एक गुण है जिसे आप बालूमें से तेल निकालना समझ सकते हैं वशत कि यह बालू मुझे अच्छी लग जाये।” [मेरी जन्मभूमि] यह गुण उनके लिए, आजकी बौद्धिक और वर्तमानके अंध विरोधमें सीमित विद्वान्मण्डलीके सूखे प्रामाण्यवाद्के चलते काफी महँगा भी साबित हुआ है। लोग उन्हें पुराणपथी भावुक तथा यथायथम दूर कहनेमें नहीं हिचकते, किन्तु जिसने अतीत और वर्तमानके जाड्यको भेदकर सत्य जाननेका सक्लप लिया है, वह इन आरोपाकी परवाह ही कब करता है। उन्हें तो अपनेको फंडानपरस्त आधुनिक नये जानेकी आकांक्षा है और न तो परम्परापूजक कहे जानेकी चिन्ता। बालूसे तेल निकालनेकी यह शक्ति प्राचीन साहित्यके जिज्ञासुओंको आश्चर्यचकित और श्रद्धापूरित अरुण्य बनाती है। मैं तो द्विवेदीजीकी इस अनुपम शक्तिका भावुक प्रशंसक हूँ ही। चाहे वह पुराने कवियाकी रचनाएँ हैं। चाहे पुरानी दार्शनिक और साधनात्मक विद्वत्तियाँ, चाहे वह आधुनिक जगतका ज्ञान विज्ञान हो, चाहे पश्चात्य दर्शन और साहित्योपयोगी मानवशास्त्र पण्डितजीकी पकड़ विस्मयमें डाल देती है। सूक्ष्म घातोंको समझने का उाका बोध-यत्र इतना विकसित और जीवन्त है कि अबूझ से लगनेवाले तत्त्व जैसे स्वतः उनके सामने घुल जाते हैं। उन्होंने अँगरेज़ीमें लिखा तथा बहुत-सा नहीं पढ़ा है नित नूतन विचार जगतसे भी उनका परिचय नाकाफी ही बढ़ा जायेगा पर जितना भी उन्होंने पढ़ा है या पढ़ते हैं उसका आदि-अंत खूब समझते हैं। कर्मान-भी नये विचारा तकके विषयमें धिरपरिचित पक्षियोंके

भीतरमे ही वे ऐसा ध्य निकाल देते हूँ कि अचानक तबीयत उदास हो जाती है और लगता है कि यह बात मुझे क्या नहीं सूझी। दो पत्तियोंके बीचके अन्तरालके अनकहेको जान लेनेकी उनकी शक्ति हमेशा ही ईर्ष्याकी वस्तु रही है। तत्त्वको सही ढंगसँ जाननेकी यह 'डिसिप्लिन' विरल है। इसे कोई यो ही पा भी नहीं सकता इसके लिए अनवरत साधना और अभ्यासकी जरूरत है। इस शक्तिकी कुछ अन्य घाटियाँ भी होती ह, इसमें मैं इनकार नहीं करता। इसका अतिरेक कभी-कभी गिना नीवके हवाई महल भी खड़ा कर सकता ह, इसे मैं मानता हूँ, पर उपलब्धियोंके देखते खतरोंसे घबड़ानेकी काई जरूरत नहीं ह।

ऐसे आदमीके निकट उदासी शायद स्वभावतः नहीं आती। पण्डितजी उदास और निराग लोगपर फवतिरिया कसनेमें भी नहीं चूकते। देशकी अरक्षा, बढ़ती हुई अराजकता, गरीबी, घुसखोरी, भ्रष्टाचार, स्वार्थाघता, अत्याय और नाय पथा' वाली दिशाहारी घुटनकी बातें सुनकर वे तडतडाकर हँसेंगे, "और क्या सोचोगे? जरा सी स्थितियाँ उल्टी गयी, वस, हाथ-पैर फूल गये। तुम क्या समझते हो कि हमारे देशके ऋषियोंकी हजारों धपकी तपस्या निरर्थक थी? इतनी बड़ी परम्परा और इतनी बड़ी जनशक्तिवा देग या ही नष्ट हो जायेगा? इस देशका कुछ नहीं बिगड़ेगा देख लेना। नोट कर लो। कहा था न कि इस बार पाकिस्तान चढा तो खायेगा गच्छा। वही हालत चीनकी भी होगी, हाँ। बडा फूट रहा ह, गुत्रारे सा। फटेगा, फटकर रहेगा, नोट कर लो। अरे भाई, हिन्दुस्तान कोई भेड-अररी नहीं, हाथी ह, उठनेम देर लगती ह। जरा उठ जाये तो दखना। भारत पाक लडाईके समय चण्डीगढमें होते तो देखते कि जनता कितनी जाग्रत ह। महाके इण्टलैक्चुअल सो रहे ह। सोओ सोओ, तुम लोगमे कुछ न होगा "मुन्व शयीथा, निकटे जागति जाह्नवीभक्त।"

'क्या उठेगा पण्डितजी'। निराशाके बादल जब उनकी तडतडाहटसे भी नहीं छेँटते तो वे कहते ह—

'आखिर राजपूत ही हो न पराजित जातिके आदमी। और क्या साचोगे?'

म उस समय चुप हो जाता हूँ। जानता हूँ बोलनस कुछ लाभ नहीं। सही निराशा और सही उदासीका भी अपना एक ब्याकरण होता ह, ग्रास्य होता ह यह अब पण्डितजीमे पौन करे। उनके स्वभावमें ही नहीं ह कि वे उदासी और निराशाकी सिन्मियर्टी'को दखते हुए उस विचारधाराका भी कुछ अहमियत दें जो महान् परम्परा, निराम तपस्या, अप्रतिहत साधना और मुहरे आदगावादी मूल्याके विराट् स्तुपाको निरर्थक सिद्ध करके ढाहती चली

जा रही ह। ऐसा करनेके लिए उन्हें 'बड़ी बात'के उस महत किन्तु अदृश्य वायवी मूल्य-स्रोतसे अपनेकी विच्छिन्न करना पड़ेगा। जो वे कभी नहीं कर सकते। धोरसे धोर सकट और विपत्तिमें भी उनका मन उस स्रोतसे जुटा रहेगा और वे सुद ही भीतर ही भीतर निराशा और उदासीसे खोखले होते रहेंगे, पर छेड देनेपर उनके भीतर सोया प्राणप्रेग हुमवकर ऊपर आ जायेगा और इन आधुनिक धारणाओकी मटियामेट कर देनेके लिए टवराता रहेगा। उस समय पण्डितजी मेरी या आपकी उदासीको रत्ताड रहे होते ह, पर मुझे अकसर लगता ह यह जोग भरी रत्ताड अपने ही भीतर बठ गयी उदासीके विरुद्ध चल रही ह। भीतर-ही भीतर कभी वे भी गहन सवामे भरभरा जाते हामे कि इस दृनियामें ईमानदारी, माय और सत्यकी हमेगा (वल्कि कभी-कभी भी) जीत ही नहीं होती।

उदास तो म भी हाना नहीं चाहता, किसी अदृश्य सत्तासे जुड जानेसे ही ऐसी सहज आस्था और चारस्मिता मरती मिल जाती है, तो मुझे उस तरह जुडनेस भी इनकार नहीं। थोडा-बहुत प्रयत्न भी कर सकता हूँ किन्तु मैं जानता हूँ कि लाख कोशिश करके भी मेरी पीडीका कोद लेखक इस प्रयत्नके लिए वह विश्वास अजित नहीं कर पायेगा, जो इस बृडे 'यत्तिको नये-से नये लेखककी तुलनामें अपेक्षाकृत अधिक जीवत और उत्साहमय बाये रहता है। यह विश्वास पिठली पीडीका विरासतमे मिला था, इस पीडीके हमारे-जसे वृपुर्तोंके लिए यह स्राव भी चुक गया है।

हम अधिकस अधिक इतना ही कर सकते हैं कि ऐसे लागके आना-स्रोतसे कुछ ठण्डक पा लें। पण्डितजीके पास बठनेपर ऐसी ही ठण्डक मिलती ह। वे पुराने पिटे हुए रत्तीफाको बार-बार दोहराते ह हम नयाका सही लगनेवाली चीजापर उनके व्यग्यके ठहाके तडतडाते हैं, लाहियाके नामपर मुँह बिचकाते ह, इंदिराजीके नामपर खिल जाते हैं जवाहरलालके बारेमें सही आरोप लगाते वक्त भी स्नेह और श्रद्धासे विगलित हो जाते ह, नयासी धमाचीकडीकी नापसंद करते ह बावजूद इसके कि नयोके प्रति वास्तव्य और प्रोत्साहाम कमी नहीं आनी परिवित्त और माय लोगके गलत कामकी खुलकर निंदा नहीं करते भुनभुनाते हैं गलत लोमाके खिलाफ सही बात सुनकर भी मौन साय लेते ह जिस एक बार अपना लिया उस आदमीकी सकडा टुच्ची प्रवृत्तियाको ढँकते-भापते रहते ह, आच्छादन करते ह, उसके प्रति हानेवाले विराधोकी गुरा मताते ह —ये चीजें मिल-जुलकर जय कभी कभी बृहत भारी लगने लगती ह तो अबानक इसका प्रतिवाद कर बठता हूँ। यह सब हल्कके नीचे नहीं उतरता।

उस समय वे किंचित उदासी और हलकी खीझवे साथ हैंसते हुए कहते हैं—
 “रजपूत भगत न मूसर घनुद्री । राजपूत भक्त नहीं हो सकता । मूसरसे घनुप
 नहीं बन सकता ।” उस समय मुझे गुस्सा आता है और सोचता हूँ कि कहूँ
 “आपको घनुपकी जरूरत कब है । मन्त्रपूत दिव्य घनुप तो क्षमी वृत्तपर मुरदके
 साथ टेंगे ह । आपका अज्ञातवासमें ही रस आने लगा ह ।” पर चुप रह जाता
 हूँ । उनकी अस्वीकार्य धाताका भी उग्र विरोध करनेका साहस नहीं होता क्योंकि
 उनका मुदका शील, आचरण और नतिकता इतनी महान् ह कि अपना प्रतिवाद
 बीना लगने लगता ह । और फिर कौन जाने, ‘सत्र प्रत्यक्ष द्रष्टव्य सत्य नहीं
 होते । इसमें केवल एक बात सत्य ह जो अक्सर प्रत्यक्ष नहीं दीखती । एकाएक
 नहीं कहा जा सकता कि हमने जो कुछ देला ह, वट किस हद तक सत्य है ।’
 (चारचन्द्रलेख) में मौनम खो जाता हूँ । मेरी चुप्पी और उदासीको तोड़नेके लिए
 वे कहेंगे—“अच्छा, लो, लो पान खाओ । और कहो तुम्हारा लिटज क्या
 लिख रहा ह आजकल ?”

काफ़ी रात ढले अंधेरी सडकमें घर लौटते मने अक्सर अपने-आपसे ही
 पूछा ह—वट कौन-सी चीज ह, जा इस आदमीकी आत्मामें निरंतर जलती
 रहती ह सजीवनी वनस्पतिके नीचे जलनेवाली ध्यातिकी तरह । आदमी चाहे
 कितना भी धना हो, उदास हो, परशान हो, उनस मिलकर लीटनेपर लगेंगा
 कि एक नयी शक्ति पा गया ह, एक गरमाहट, एक जिंदा हानेका बोध मिल
 गया ह । निश्चय ही यट अग्निवत्त्व कही-न-वहीं एक दिव्यताके स्रोतसे जुटा ह ।



मेरा निश्चित मत है कि हंसाना हसना पूँजीवादी मनोवृत्तिनी
 उपज है । इस युगके हिन्दी साहित्यिक जो हंसना नापसन्द करते
 हैं उसका कारण शायद यह है कि वे पूँजीवादी बोजुबा मनावृत्तिसे
 मन हा मन धूना करने लगे हैं ।

—अशोकके फूल

जा रही ह। ऐसा करनेके लिए उह 'बड़ी बात'क उस महत किंतु बदर्य वायवी मूल्य-स्रोतसे अपोको विच्छिन्न करना पडेगा। जो वे कभी नहीं कर सकते। घोरसे घोर सकट और विपत्तिमें भी उनका मन उस स्रोतस जुडा रहेगा और वे खुद ही भीतर ही भीतर निराशा और उदासीसे खोजले होते रहेंगे, पर छेड़ देनेपर उनके भीतर सोया प्राणवेग हुमककर ऊपर आ जायेगा और इन आधुनिक धारणाआको मटियामेट कर देनेके लिए टवराता रहेगा। उस समय पण्डितजी मेरी या आपकी उदासीको लताड रहे होते हैं पर मुझे अकसर लगता है यह जोग भरी लताड अपने ही भीतर बँठ गयी उदासीके विरुद्ध चल रही ह। भीतर-ही भीतर कभी वे भी गहन गवासे भरभरा जाते हागे कि इस दुनियामें ईमानदारी, याय और सत्यकी हमेशा (यत्कि कभी-कभी भी) जीत ही नहीं होती।

उदास ता म भी हाना नहीं चाहता, किसी अदृश्य सत्तासे जुड जानेसे ही ऐसी सहज आन्या और चारस्मिता मस्ती मिल जाती ह, तो मुझे उस तरह जुडनेस भी इनकार नहीं। थोडा-बहुत प्रयत्न भी कर सकता हूँ, किन्तु मैं जानता हूँ कि लाख कोशिश करके भी मेरी पीढीका कोई लेखक इस प्रयत्नके लिए वह विश्वास अर्जित नहीं कर पायेगा, जो इस बड़े ब्यक्तिके नये-से नये लेखकी तुलनामें अपेक्षाकृत अधिक जीवत और उत्साहमय बनाये रहता है। यह विश्वास पिठली पीढीका विरासतमें मिला था इस पीढीके हमारे-जसे बुपूतर्कके लिए यह खात भी चुक गया ह।

हम अधिकमे अधिक इतना ही कर सकते हैं कि ऐसे लोगके आशा-स्रोतस कुछ ठण्डक पा लें। पण्डितजीके पास बठनेपर ऐसी ही ठण्डक मिलती ह। वे पुराने पिटे हुए लतीफाको धार-धार दोहराते हैं हम नयाको सही लगनेवाली चीजापर उनके ब्यग्यके ठहाके तडतडाने ह, लाहियाके नामपर मुँह बिचकाते हैं इंदिराजीके नामपर खिल जाने हैं जवाहरलालके धारम सही आरोप लगाते वक भी स्नेह और श्रद्धास विगलित हो जाते हैं, नयाकी धमाचीकडीको नापसंद करते ह बावजूद इसके कि नयाके प्रति वात्सल्य और प्रोत्साहनम कभी नहीं आती, परिचित और भाय लागोने गलत कामाकी खुलपर निंदा नहीं करते, भुनभुनाते ह गलत लोगके खिलाफ सही बात सुनकर भी मौन साध लेते ह, जिस एव बार अपना लिया, उम आदमीकी सकटा टुच्ची प्रवर्तियाको ढँकते-सापने रहने ह आच्छादन करते ह, उसके प्रति होनेवाले विरोधको बुरा बताते ह,—ये चीजें मिलजुलकर जब कभी कभी बहुत भारा लगने लगती ह तो अचानक इसका प्रतिवाद कर बठता हूँ। यह सत्र हलकके नीचे नहीं उतरता।

उस समय वे विंचित उदासी और हलकी खींचके साथ हँसते हुए कहते ह—
 “रजपुत भगत न मूसर धनुही । राजपूत भक्त नहीं हो सकता । मूसलसे धनुप
 नहीं बन सकता ।” उस समय मुझे गुस्सा आता है और सोचता हूँ कि कहूँ
 “आपको धनुषकी जरूरत कब है । मन्त्रपूत दिव्य धनुष तो शमी वृक्षपर मुरदकि
 साथ टेंगे ह । आपका अनातवासम ही रस थाने लगा ह ।” पर चुप रह जाता
 हूँ । उनकी अस्वीकार्य बातका भी उग्र विरोध करनेका साहस नहीं होता क्योंकि
 उनका खुदका शील, आचरण और नतिकता इतनी महान् ह कि अपना प्रतिवाद
 बीना लगने लगता ह । और फिर कौन जाने, ‘सत्र प्रत्यक्ष द्रष्टव्य सत्य नहीं
 होते । इसमें केवल एक बात सत्य ह जो अक्सर प्रत्यक्ष नहीं दीसती । एकाएक
 नहीं कहा जा सकता कि हमने जो कुछ देखा ह वह किस हद तक सत्य ह ।’
 (चार्ल्स ड्रलेस) म मौनम लो जाता हूँ । मेरी चुप्पी और उदासीको तोड़नेके लिए
 वे कहेंगे—“अच्छा, लो, ला पान खाओ । और कहो तुम्हारा ‘लिटज क्या
 लिए रहा है आजकल ?’

काफी रात ढले अँधेरी सड़कस घर लौटते मने अक्सर अपने-आपसे ही
 पूछा ह—वह कौन सी चीज ह, जो इस आदमीकी आत्मामें निरंतर जलती
 रहती ह सजीवनी वनस्पतिके नीचे जलनेवाली ज्यातिकी तरह । आदमी चाहे
 कितना भी धका हो, उदास हो, परेशान हो, उनसे मिलकर लौटनेपर लगेगा
 कि एक नयी गति पा गया ह, एक गरमाहट, एक जिंदा हानेका बोव मिल
 गया ह । निश्चय ही यह अग्निवस्व कही-न-वहीं एक दिव्यताके स्रोतसे जुग ह ।



मेरा निश्चित मत है कि हँसना हँसना पू जीवादी मनोवृत्तिको
 उपज है । इस युगके हिंदी साहित्यिक जो इसना गायसद करते
 ई उसका कारण शायद यह है कि वे पू जीवादी बोनुवा मनोवृत्तिके
 मन ही मन घणा करने लगे हैं ।

—अशोकके फूल

जलौघमठना सचराचरा धरा

• •

धर्मवीर भारती

जब बाहरका सारा जीवन दय, पराजय, कुष्ठा, विकृति, पाशविकता और कुरूपतासे इस कदर आक्रांत हो गया हो कि उसमें मनुष्यताके लिए तिल भर भी जगह न बचे, जहाँ जो कुछ भी मानवीय है वह कुण्ठित, बीना, भ्रष्ट और खण्डित होनेको विवश हो जाये उस समय हमारे सामने कौन-सा विकल्प है ? क्या हम इन तमाम स्थितियाँसे आँख चुराकर किसी कल्पित, अमानवीय अलौकिक सौंदर्यकी कल्पनामें अपनेको झुठलायें या इन मानवविरोधी, भ्रष्ट व्यवस्थाओंको ही अपने अस्तित्वकी एकमात्र आधारभूमि मानकर मनुष्यताकी धातीपर से अपना विश्वास ही खा बठें ? इतिहासमें सिर्फ आज नहीं अनेक बार ऐसी अचवारमय स्थितियाँ आनी हैं। शायद यह जरूर है कि सक्टकी यह गहनता और व्यापकता इतनी कभी नहीं थी जितनी कि आज है।

कुछ जातियाँ, खास तौरसे वे, आन्तरिक रूपसे अत्यधिक कल्पना प्रवण रही हैं और सांस्कृतिक स्तरपर वैभव-भम्पन, उनमें बहुधा एक अद्भुत क्षमता दीखती है मियकी और प्रतीकाके निमाणकी और फिर उन मियकी और प्रतीकाके सहारे ऐस अवसरपर अपनी उस आन्तरिक सकल्पशक्तिको जगानेकी, जो इस गहन सक्टके समय उनके सण्डित होते हुए व्यक्तिको उनकी पिसती हुई, क्षय होतो हुई मानसिकताको नयी ताकत देती है और वे पुन इस सक्टसे जूझती हैं और मनुष्यताके तत्त्वको फिरसे स्थापित करती हैं। परम्परा, समाज-व्यवस्था, राजसत्ता, धर्म, नियम, आचार, नतिकता सबको बठोरतम बजनाओंको निममता से जाँचकर स्वीकार या अस्वीकार करती है और उनके स्वीकार या अस्वीकार की एकमात्र बमौठी होती है—सक्टके समझा अपने मनुष्यत्वकी रक्षा और इसकी प्रतिष्ठा करना हुआ मनुष्य। और वे साहससे उद्घोष करती हैं 'शावार ऊपरे मानुष सत्य तहार ऊपरे नाई।'

वह कौन-सा क्षण था जिस समय एक अत्यन्त सवेदनशील, अध्ययन-समृद्ध, गहन दृष्टिवाले लेखकने उन सारी गलित बजनाओं, सूठी स्थितियों, ध्रान्त किंतु

हजारों वर्षोंसे प्रतिष्ठित मानवविरोधी धारणाओंके नीचे पिसती हुई, हर तरफने डरी हुई मानसिकताकी एक अमृतवाक्य देनेका सक्त्प किया, एक मूलमंत्र—
 “किसीमे भी न डरना, गुस्मे भी नहीं, मंत्रसे भी नहीं, लोकसे भी नहीं, वेदसे भी नहीं।” (बाणभट्टकी आत्मकथा) हजारों सालसे वेदसे, शास्त्रसे, पचायतसे, गुस्मे, जात विरादरीसे, स्वर्गसे, नरकसे, कमफलसे सगुन असगुनसे, बलाससे लेकर आँगनकी तुलसी तकमें वास करनेवाले तनीस करोड़ देवताओंसे, पचा-पचायतसे, साधु-ष्कीरसे, राजासे, पटवारी और सिपाहीसे ाकर राह बाटनेवाली बिल्लो तकसे डरनेवाला कायर जाति जा दूसरी ओर नृशस होकर जिंदा औरता को जलाने तककी अमानुषिकतापर उतर आती थी, उसकी सारी व्यवस्थावे बीच खडे होकर किम पीडा और किम साहसस उमने लङ्कारा था ‘पावण्डी। तेरे सब शास्त्र पाठण सिखाते हैं तुझे घोला देते हैं, जो तेरे भीतर सत्य ह उसे दवाने को कहते ह जा तेरे भीतर मोहन ह उसे भूलनेको कहते ह । तू जिसे पूजता ह उसे छोडनेको कहते हैं।’ और इसीलिए मूल मंत्र था डर मत । कुछ भी डरसे मत स्वीकार, अपने मनुष्यत्वको, अपनी देहका, अपने मनको गँहिन या त्याज्य मानकर मत आरम्भ कर, तूने देह धारण की, यह देह धारण ही तेरे पापका प्रमाण ह, अत इसे दण्ड मानकर स्वीकार करना, यह चिन्तन मानवविरोधी ह, क्यों नहीं मनुष्य अपने सत्यको दवता समझ लेता आय ?’

क्यों है सबरूप समृद्ध परिपूर्ण यह आस्था, गिरीप फूला-सी मृदुल और वज्रमे भी कठोर !

गतिनिषेत्तनम जिस कुटियामे द्विवेदीजी रहते थे वहाँसे प्रार्थना प्रागणको जाने वाली पगडण्डीपर एव विशाल शिरीष वृक्ष पडता ह । उतरते पातगुन चढते चत्रके दिन थे । नर्मदेश्वरजी और शिवनाथजी भोरमें ही भुये उठा देते थे और फिर हम लोग द्वि-वे भवनने, पीछे सन्ने होकर पण्डितजीकी प्रतीक्षा करते थे । भोरके धुँधलकैमें प्राथना प्रागणकी ओर जाते हुए नमःेश्वरजी और शिवनाथ जीसे तमाम दुनियाकी बातें करते हुए पण्डितजीको यह क्या मालूम था कि धीरे-धीरेकीका भेजा हुआ यह दुबला-पतला सनोवी स्वभावका शोधछान, जो चुपचाप पीछे-पीछे चल रहा ह, (निगाह बचाकर गिरीपका एव क्षत्रेदार फूल भी तोड लेता ह) वह मन-ही-मन पण्डितजीकी ‘बाणभट्टकी आत्मकथा से मिला हुआ एव गुह्यमंत्र दोहरा रहा ह ‘किसीमे भी न डरना, गुस्मे भी नहीं, मंत्रसे भी नहीं, लोकसे भी नहीं, वेदसे भी नहीं।’

अपनी उस कोष्ठके बरामदमें बठे हुए, कभी नाय सम्प्रदायपर बात करते हुए, कभी सूफी फकीरोके लतीफे सुनाते हुए, कभी टठावर निम्नल हँसी हँसते हुए और कभी आम्र बन्धन नीचे घास और सूते पत्तापर बठे छात्रागो लेकर दते हुए पण्डितजी और निपुणिका (निडनिया) के हाथवा पान खाते हुए, चण्डी मण्डपम बाबासे निडर होनेका मात्र लेते हुए, नीका युद्धके समय गगामें डूबती हुई भट्टिनोका बचाते हुए और उनके उपास्य महाबाराहकी मूर्तिका उद्धार करते हुए बाणभट्ट मेरे मनमें ये दोष छविर्षा एक-दूसरेमें घुलती मिलती रहती थी । मैं प्रयागसे आया हुआ बटुक था । हमारी गरीम सगममें जहाँ गगा-जमुना मिलती है वहाँ दूरने एक रेखा स्पष्ट दीप्तती है, उधर हरा जल, इधर दूधिया, रेखा मिलबुल पास जाओ तो सब घुला मिला, पता नहीं चलना कहसि जमुना खत्म होती है कहसि गगा गुप्त हो जाती है । डॉ० प्रयोधचन्द्र बागचीसे तत्रवा और गति भिक्षुमे महायानका पाठ लेकर लौटता था और अक्सर चुपचाप हिन्दी भवनवाले अपने कमरेकी गिर्कीसे पण्डितजीको अपनी कुटियाके बरामदे में बठे देखता रहता था कभी बाणभट्ट कभी पण्डितजी तबम बराबर माना यह आदत बन गयी । कितनी बार पण्डितजी मिले, उनसे बातें बहुत कम करना, यस उन्हें देखना (नामद उनमे खुलकर बातें एक ही बार हुई जब वे दोपहरके खातेपर रघुबन्धीके यहाँ आये थे और साथमें ये छाटे-से मुकुन्दजी सफेद कमीज हाफपट पहने ।) और हमेगा शुभ्र आदीके कुरना धोती और दुपट्टेमें उनकी हँसती हुई छविने बार-बार यह प्रश्न जगाया कि वह कौन-सा क्षण हागा, किस आत्म मन्थनकी परिणति होगी, किन अनुभवका साभात्कार होगा जो उन्हें उस विस्फोटक सत्य तक ले आया कि ' किमीस भी न डरो लोभसे भी नहीं, वदसे भी नहीं । '

आज यह कहनेमें कोई सकोच नहीं मुझे कि बाराणसाके जिस समुदायने पण्डितजीका विरोध किया वह 'गाम' इसीलिए कि 'बौद्धिकता और चिन्तनके धरातलपर वह बाणभट्टकी आत्मकथा', 'सूर साहित्य', 'कबीर', 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' व लेखने बहुत छाटा था । पण्डितजीने पट्टी बार एक दृष्टि दी थी जिसमे हम अपनी सारी साहित्य-परम्पराकी जीवामे सम्पुक्ति और युगत उगकी प्रतिबद्धताके आंतरिक धरातलको समझ सकें । न केवल साहित्य वरन् जीवनके धरातलपर भारतीय मानसिकता जिस चिन्तन-भारत-त्रयमे दो हजार वर्षसे प्रमत्त था उस खुली चुनौती देनेका एक माहसपूर्ण प्रयास इस चिन्तनने किया था ।

इस चुनौतीका मूलविदु 'कबीर'में नहीं बरन 'सूर-साहित्य'में मिलता है । वही, जहाँ पण्डितजीने कतिपय पश्चिमी अध्येताओंकी इस धारणाका विरोध किया है कि भारतीय भक्ति-आन्दोलन मध्यकालीन ईसाई प्रभावाकी देन है । पण्डितजीने उस समय ईसाई भक्ताकी और भारतीय वैष्णव भक्ताकी मूल जीवन-दृष्टिका अंतर बताते हुए कहा था कि ईसाई परिवर्त्यता मनुष्य जीवनमें सारे दुःख और बेदनाको उस आदिम पापका दण्ड मानती है जो आदमने अदमने वागम किया था बर्जित फलको चखकर । इसीलिए अपने शरीरको बष्ट पहुँचाकर तप पूत होना ही पश्चात्तापका एक मात्र भाग है ईसाइयतमें ।

विदु तत्रसे लेकर भक्ति तक जो हमारी जीवन-दृष्टि विकसित हुई वह प्रवृत्तियाके हननकी नहीं थी, और 'बाणभट्टकी आत्मकथा'के गुरुने विरतिवज्रमे यही कहा था "देखा । न तो पवृत्तियाको छिपाना उचित है न उनसे डरना कतव्य है न लज्जित होगा मुक्तियुक्त है ।" और इसी बातको सुचरिताने कहा था "मानव देह बरल दण्ड भागनेके लिए नहीं बनी है आय । यह विघाताकी सर्वोत्तम सृष्टि है । गुरुने अब यह रहस्य मुझे समझा दिया है । मैं जिसे अपने जीवनका सत्रसे बड़ा कल्प समझती थी, वही मेरा सबसे बड़ा सत्य है ।"

भारतीय मानसिकताको हजारों वर्षोंमें अनकानक भयाकी सृष्टि करके दबाया गया था । इसी भयके बश वह एजागी होकर कभी एक ओर कभी दूसरी ओर झुकानो रही । कभी दहसे और कभी चेतनास मुक्ति पानेकी विचित्र अमानुषिक राह उसने ढूँढी । कभी अपने पापी बन्धनमय शरीरका जिन्तारमे बन्दबाकर 'कामी बरवत' लेना और कभी केवल मदिरा और मद्युनने चरम उन्मादमें जीवित शवसाधन कर अपनेको पगुताने घरातपर उतार देना, दोनों ही एवागितायाम अपनी मानवाय मानसिकता और उसकी साधकताको प्रतिष्ठित करनेका आग्रह नहीं था, दोनों ही मैं पलायन था, एमें दहको ही दण्डीय मानकर और दमरम मानवायताको बोन मानकर ।

इन दिना अतिरजनाजाका अतिक्रमण कर सही रास्ता वैष्णव चिन्तनने सुझाया था जिसने यह बताया था कि मनुष्य अपने देह और मन दातपि पवित्र है लेकिन उसकी साधकता केवल आत्मनिष्ठ हिंस गुहावासी पशुकी भाँति अमानुषिक और आश्रमक बने रहनेमें नहीं है बरि समग्र मानवताकी ऐतिहासिकताका साधक अंग बननेमें है । इसी बातका अगर वाग्यक गजाननमें कहें तो सुचरिताने गानमें 'वस्तुन कल्पय भी मनुष्यका अपना सत्य है उस स्वीकार के ही वह साधक हो सकता है । दशानन वह मनुष्यना नष्ट कर देता है । समस्त गुण और अवगुण अशक निविकार चित्तसे नारायणको नरी साँप दिये

जाते तबतक वे भार-मात्र है।”

हमने प्रारम्भमें यह कहा था कि महानतम सङ्कटके क्षणमें महान् जातीय प्रतिभा जिन साधक मियवा और प्रतीकोंकी कल्पना करती है उसमें उम आनिवी आन्तरिक सञ्चल्य क्षमताका पता चलता है। यह केवल सयोगका वात नहीं कि द्विवेदीजीने वैष्णवताके अनेकानेक अन्तार प्रतीकाम से महावागहका प्रतीक चुना। कल्प और कीचडमें घँमती हुई घरतीका उद्धार महावाराहने किया। सारे कालिदा और कीचडमें घँमर भी उममसे सरणीय मातीय तत्त्वको बचा ले आने और उसको पुन प्रतिष्ठित करनेकी श्रमता। यह प्रतीक बहुत-बहुत कहता है जिस आजके मन्दममें समझा जाये तो बहुत से महत्त्वपूर्ण विचारमूत्र निकल सकते हैं।

आजके मानवीय सङ्कटका विवचन करते हुए उस कीचडकी दाया, उस सैलावका जिक्र बार-बार आया है जिसकी यज्ञा 'जोषमगा सचराचरा घरा' से होनी है। एक आर मूल्योंका सम्पूर्ण विवटन दूसरी बार मनुष्यम नूतन मूल्यावेपणकी क्षमता और साहसका क्षय हमें वहाँ के आया है इनके लिए मुझ 'मानव मूल्य और माहित्य' में भी सलाखी प्रतीक सूचना—“इस ब्रम भग्नताके दौरमें स्थिति बिल्कुल विपरीत होती है, निरथक विशृङ्खल क्षणाका एक सामा हीन मलात्र, मनुष्य जल्पनायन-जैसा। उसके चारा आर जो भी वहाव है वह उसे वही ल नहीं जाता। इन्से उधर थपेड दवर ताडता रता है एक अस्पष्टताकी कुहेनिका न मनुष्यक अन्दर अन्तरात्मा रह जाती है आ ससार का मूल्याका कर सके और न उमके बाहर कोई व्यवस्था जिमका मूल्याका किया जाये। ऐसा लगता है जम एक गूँय दूधरे गूँयने सलाखमें फँस गया है।”

और गूँयके इसी सलाखमें-मे उपजता है भय, और अविवक और निष्क्रियता और सङ्कपहीनता और निरुद्देश्य हिमता। और वही भय सम्प्रतिमें आन्तरिक रणता बनकर पैठ जाता है। अस्तित्ववादा ग्रन्थिल मामेल कहता है “हम आज कउत है हमारी सङ्कृति मरणो-मुख है। इसके अथ क्या है? क्या कोई मूचाल उमे नष्ट कर रहा है नहीं मरणो-मुख सम्प्रतिम मतलब होता है कि हमारी सङ्कृतिका आन्तरिक मूल्य कुछ नहीं रता। मनुष्यमें आन्तरिक रणता आ गया है? क्या यह आन्तरिक रणता केवल एक गिविस्म या एक व्यवस्थाकी सङ्कृतिम है? नहीं हमारी वतमान स्थितिम दोनो ओरकी व्यवस्थाएँ प्रगतिवी सङ्गु है। अत वे जान-बूचकर मनुष्यकी आन्तरिकताको रण और कुष्ठित बना रही है। व्यक्तिव आन्तरिकताके विरुद्ध इस गुप्त कीटाणु युद्धके तरीके बन हो विचित्र और गुणम हैं। व्यलिमे भयका सकार किया जाना है।

भय-संचारकी इस टेक्निकका पूणतम विकास पूँजीवादी दगामें अणुबमके रूपमें हुआ ह और साम्यवादी दगामें चिन्तन-भारत-भयके रूपमें ।”

इस अणुबम और चिन्तन-भारत-भयने हमें इतिहासके उस भागपर लाकर सजा कर दिया ह जहाँ आजका किंगोर-मानम एक ओर रेडगाड बन गया ह दूसरी ओर बीटनिक । एक ही सिक्केके दो पहलू । दोमूँहा भय । और उसीसे पैदा होता है पागण्ड और हमें आश्चर्य नहीं होता जब हम पाने हैं कि उसी पागण्डका एक अदना भारतीय प्रवक्ता माकमवादका अण्डा हाथमें लेकर मारि जुआनाकी निगरत और मानसिक ऐय्याशीकी बकालत करता नउर आता ह—आलाचनाकी अगालनमें ।

भय और उससे उत्पन्न इन तमाम पागण्डपूण स्थितियाका एन्सास भारतमें सूब अछी तरह हो रहा ह ।

‘वाणमट्टकी आमकथा क प्रसारनका आज बीम बप हो गय । लगभग उतना ही समय गुजरा हमें आगानी पाये हुए । आमाजनकी आमानक दम्पुअसि मुक्त करानेका स्वप्न देखकने दया था, लकिन आजगाक वाग्ने बीस वर्षोंमें क्या आजामर दस्यु घट या परागिन हुए ? क्या सचमुच भट्टिनीके महानाराजकी रणा हुई ? क्या सचमुच हमारी राष्ट्रीय मानसिकता भयम मुक्त हुई या नय-नये बगस नये-नये गान्ध नये-नये दबता नयी-नयी जाति, बग और बण चेतनाका नया अहकार, नये-नये राजपुरुष और नयेसे नये पागण्डका अहकार हमको प्रसता गया हम नये नयाक गिकार जाने गये । और न केवल जीवन बरन् साहित्य चिन्तनने स्वरपर यह मिय्याचारो झूठ चेहरावाला गहित पागण्ड और भी मुक्तर हाता गया और भी बेगम होता गया ।

और कभी कभी भ कि उसी तरह बिना कुउ बहे पणितजाका आर चुरचाप शमता ह कि ‘किजोस भी न डरना वा मूलमत्र दनेवाग्की वाणी मद्र क्या रहो ? जिमने लोकमे भी और बस भी निडर हानका वान क्नी थी वह पिछर कितने ही वर्षोंमें ऐसी ज्वलत ममम्याआपर या ता चुप है या जय वह बालना ह ता कुउ ऐसा जिममें मिसाका भा नाराज न करलेका वनुग्ता होती ह । न लाज नाराज हो न बेद नाराज हो, न गुह नाराज हा, न मत्र । क्या नामवरो और बगामरकी कित्ता उसके प्रवर चितनपर कही बाज बन गयी ह ? या जिन घरातगापर उसने चिन्तन किया था वास्तविक साहित्यिक जगत्में उसस कही पुयन घरातगा बछरद सागात्कारन उसको बगत और

दु खी कर दिया ह ?

लेकिन द्विवेदीजीने ही लिखा था कि "दु ख तो केवल माका विकल्प ही ह ।" अपनेको नि शेष भावसे दे देनेके बाद वह दु ख कितने बड़े सुरमें परिणत हो जाता है यह भी उहीने लिखा ह । अपनेको सत्यके प्रति नि शेष भावसे अर्पित कर देनेकी क्षमता उनमें है यह मैं जानता हूँ और इसीलिए मैं जानता हूँ कि कहीं धारे धीरे वह विस्फोटक क्षण पक रहा है । और फिर वे उसी ज्वलन्त वाणीमें कहते "अमृत पुत्रो, प्रजामें मृत्युका भय छा गया है । यह अगुम लक्षण है । जहाँमें नी मिले वहाँसे उमे बलपूर्वक सींच लाओ । यदि तुम नहीं समझते कि पाय पाना मनुष्यका धर्मसिद्ध अधिकार है और उमे न पाना अघम है तो भारतवर्षका भविष्य अघकारसे आच्छन्न ह । म्लेच्छवाहिनी सेना पहली बार नहीं आ रही ह अन्तिम बार भी नहीं आ रही है, तुम यदि आज तुवरमिलिन्द और श्री हृषदेवकी आशापर बैठे रहोगे, तो मन्भवत आज यह विपत्ति टल जाये, परन्तु कल नहीं टलेगी । तुवरमिलिन्द और श्री हृषदेव सदा नहीं रहेंगे पर तुम्ह सदा रहना है । राजा, महाराजा और सामन्त स्वायत्तके गुलाम बनते जा रहे ह । प्रजा भीरु और कायर होती जा रही ह । धर्माचरणमें व्याघात इसीलिए उत्पन्न हुआ है कि राजा अघे ह, प्रजा अधी है, विद्वान् अधे है । यह बड़ा अगुम लक्षण ह । अपने-जापको बचाओ, धर्मपर दृढ़ रहो, पायके लिए मरना सीखो मृत्युका भय माया है ।" (बाणभट्टकी आरम्भकथा)

उन्हें नहीं मालूम कि जीवनके कभी-कभी कितने गहन अघकारमय क्षणमें बाणभट्ट, सूर साहित्य और कवीर के उनके कितने ही वाक्योंने मुझे कितना उजाला और कितनी शक्ति दी ह । केवल मुझे ही नहीं उनके कितने ही पाठका को, गिण्याका, मित्राको । यदि आज इस बलाम उन्हें श्रद्धा देनेका अधिकारी अपनेको पाता हूँ तो भी यह उहीकी प्रेरणा ह और यदि उनमें कुछ निवेदन भी करनेका सामर्थ्य पाता हूँ तो यह भी उहीकी प्रेरणा है । आज उनकी पण्डितिक अवसरपर भी घुँघलकमें उसी तरह गिरीष वृषके नीचे चुपचाप उन्हें मन-ही-मन प्रणाम कर रहा हूँ और उनसे पाये हुए इस गुरुमन्त्रको दोहरा रहा हूँ कि ' सत्यके लिए किसीने भी न डरना लोकमें भी नहीं, वृत्तमें भी नहीं ।'



आर्षवाक्

• •

राहुल साकृत्यायन

“स्टेशनसे हम सीधे शांतिनिकेतन पहुँचे, और पहले कामकी फिक्कमें पड़े। शांतिनिकेतनमें बहतर भारतके सम्बन्धमें जितनी पुस्तकें ह, उतनी कलकत्ता युनिवर्सिटीको छोड़कर भारतमें और कहीं नहीं मिलेंगी। ता भी इन पुस्तकोंको पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। अब हम २५ तारोख तकके लिए ५० हजारी प्रसाद द्विवेदीके अनिधि थे। द्विवेदीजाब साय इतनी घनिष्ठताके साथ रहनेका यह पट्टला अवसर था, लेकिन उसका यह अर्थ नहीं कि मेरी इससे पहले उनके साथ कम घनिष्ठता थी। मैं उनकी विद्या, लेखनी और निणय शक्तिका भारी प्रशंसक हूँ। कहा करता था हिंदीके साहित्यकार जय ऐसी गम्भीरता प्राप्त करेंगे, तब हिंदी तेजीसे आगे बढ़ेगी। द्विवेदीजीके परिवारके सभी लड़के-लड़कियाँ मेरे मनोरंजन और सहायताके लिए तैयार रहते थे। द्विवेदीजी स्वयं सरजू पारी कुलकलक हैं, बाँह उठा उठाकर जिनके लिए ऋषियानि कहा, “तुम्हें मछली मास खाना चाहिए,” और वह आज ऋषि-वाक्यक विरुद्ध जायें, यह काई अच्छी बात है? पर अगली पीढ़ी ऋषियानि रास्तपर चली आयी है, यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ‘१ मासा मनुष्यो भवति (बिना मासक पूज्य अतिथिकी सेवा नहीं की जा सकता) ऋषियोकी इस बातसे द्विवेदीजी सहमत थे। बंगाल में मामसे ज्यादा बंगाली हमसे बग़ायी मछली अच्छी लगती है। मैं उसीको तर्जोह दे रहा था। ऐस समानधर्मा बंधुअनि साय इतना कम रहनेका मौका क्या मिलता है, मुझे तो यही गिकायत थी।”

—मेरी जीवन यात्रा तपह ४ पृ० २८१ ६६
(प्रतिलिपि दिक्क-द्वर्ग)

■

अनुष्ठानकी सामग्रीकी एक सूची है, कुछ जोड़ना तो नहीं है, सूची पन्ते-पड़ते देखा लिखा है—पाद भर ओम मैं चकराया यह क्या ? पता चला ओम अक्षर प्लास्टिकपर छपा हुआ टिकुलीकी शकलमें त्रिकता है और यह छिपकाया जाना है वकमें रामनामका हिंसाव रखनेकी बात तो सुनी थी, पर ओमके रूपमें पर मात्माके तुम्हेंकी बात मुझे अद्भुत कल्पना लगी और मैंने पञ्चाङ्गकी जीवत सस्कृतिको प्रणाम किया। प्रणाम हम लोगाने भी किया, पर हँसते-हँसते पेटमें बल पड़ गया।

पण्डितजी केवल सुनी सुनाया भोजपुरी कथाआ, सस्कृत कवियोंके विनोदो और पुरानी कथाआके ही जीवत कोश हा, सो बात नहीं, ये तुरत कहानी गढ़ लेनेमें भी माहिर हैं और गढ़कर सद्भसे जोड़नेमें तो जैसा ऊपर कह चुका हूँ उन्हें कमाल हासिल है। यह सयाजन कौशल ही उनका आन्तरिक स्वभाव भी है। वे तोड़नेवाले भाइको चुनौती देते हैं—साइ तू तोड़ता जाये, मैं जोड़ता जाऊँगा देखना है तुम कितना तोड़ते हो और मैं कितना जोड़ता हूँ। यही उनकी जीवन साधनाका मम है और यही उनकी साहित्य साधनाका।

■

जब जब मैं कन्नकोके चिड़ियाघरमें गया हूँ तब-तब मुझे लगा है कि ससारके जीवोंमें सबसे अधिक गम्भीर और चिन्तामग्न चेहरा उस चिड़ियाघरमें रखे हुए एक बनमानुसफा है। अब मैंने अपनी रायमें सशोधन कर लिया है वस्तुतः ससारके सभी बनमानुस गम्भीर और तत्त्वदर्शा दिवाई देते हैं।

—अशोकके पूल

पण्डित हजारीप्रसाद द्विवेदी

• •

बलराज साहनी

द्विवेदीजामें एक दोष है। डोलम-ढाङ्गम रहते हैं, हजामत हफ्तेम एग बारसे अधिक नहीं करते, तिसपर जो व्यक्ति पहली नजरमें उन्हें जंच जाये उसकी खर, जो न जंचे उसे सामने बिठाकर उसके मुँहकी ओर दखते रहत हैं। इसलिए कई महानुभाव शांतिनिवेतनसे यह धारणा बनाकर लौटते हैं कि द्विवेदीजी बरागी आत्मा हैं।

दूर बठ हुए लोग द्विवेदीजीके आलोचनात्मक लेखोंको पढ़कर यह अनुमान कर रते हैं कि शास्त्राचार्य पचपन और साठके दरमियान हागे। प्रेमचन्द तयकी यही भम रहा। वास्तवम यह दोनो बातें गलत हैं।

म नी उही सौभाग्यशालियोंमेंसे हूँ जिनकी ओर वह एकटक देगा करने ह। किन्तु दूर-ही-दूरसे मुझे यह देखनका अवसर भिला ह कि वह इतने विरक्त नहीं ह। जिस मण्डीके साथ शामका भर करने निकल पड़ें उसका अट्टहास मोलके घेरमें बान चीरता है। उनसे गुभवितक शांतिनिवेतनम मानेवान् बटाहियसे प्राय यही सवाल-जवाब करके मन्तुए हो जाने हैं—

पण्डितजी हँस रहे ह न ?”

हाँ हँस रहे ह।

देवनेम छह फुटसे कम नहीं। एक ऐसे बनारसी महापण्डितक पिण्य रह चुके ह जिनका सत्तर बषकी अवस्थामें नी डेढ सौ गपाटा (डण्ट-बठक) प्रात बानका नियम या जिहोने डबल निमोनिपाका इलाज नी सपाटसे करनेकी कागिन की ओर भर गये। आयु इक्तीस बष है। गाडी दखनके बहद गोकान ह। दूरस थ्यतो हुई गाणीका गब्द सुनते ही गास्वाथ व चम्पल छोडकर लाइन की तग्न भाग लड होते हैं।

द्विवेदीजी जावनस अमक प्रेम रखते ह। एक सच्चे पारिहासिककी तरह वर उसकी क्रीडाको निर्लस होकर दखने ह, ओर अपने समेत सभी वस्तुआपर

जीवन-थन

हैंस सकते हैं। किन्तु साथ ही उनमें जीवनने चरम उद्देश्य, साहित्य व कलाकी आपत्ताके प्रति गहरी श्रद्धा है। पान और अनुभवके लिए अतोपनीय भूत है। सूईसे लेकर सोशलिज्म तक सभी वस्तुओंका अनुसंधान करनेके लिए उत्सुक रहते हैं। किसी विषयपर भी अवल धारणाएँ उनको नहीं। बोलनेके बजाय मुनता अधिक पसन्द करते हैं। इसीलिए जिस मूर्तिमान समस्याको नहीं समझ पाते उसे सामने बिठाकर ताकते रहते हैं।

आत्म-सम्मानका उनमें एकदम अभाव है, फिर भी अपनी क्षमताओं व श्रुतियोंकी जाँच स्वयं ही करना पसन्द करते हैं। इसलिए प्रशंसात्मक पत्रोंको पाहकर फेंक देते हैं। अखबाराम तमवीरों छपवाना बृद्धापेपर स्थगित कर रखा है। रूपये-पैसेकी परवाह नहीं करते। ऐमा आदमी अगर न हों तो कौन होंसे !

उनकी आलोचनाओंके गम्भीर तथा सारगर्भित होनेका कारण यह है कि वह साहित्यको गैलकी चीज नहीं समझते। मुद्दतसे उनके विचारमें, उद्ग और कुछ हद तक यूरॉपियन रोमाण्टिक साहित्यन, सस्तमें छूट जानेकी, अर्थात् शृंगार और मुहावरेबाजोंकी प्रथा चालू कर दी है। हिंदा-साहित्यका पहला वस्तव्य यह है कि खे हुए विकासको अपनी पुरानी षपन्न मीवोंके बलपर उभारे। सस्ठुतने समृद्ध साहित्यके लिए अगाध पक्षपात रखनेके कारण उहें आधुनिक हिंदी-साहित्यमें काफी श्रुतियाँ नजर आती ह। कहानियाँ बहुत कम पत्ते हैं। गद्य-कविता व अतियथाथवाद (सुरियलिज्म) के प्रति उनकी उपाग उनकी दम निम्नोद्धत रचनामें सीमित हुई ह

दय कविता

??

छप छप्

[कौन किसकी मुनता ह—]

अनन्तका नतन ५

गद्य नीहारिका, पैराबोला हाइपरबोला !

× × - × × - - × ×

[कौन किसे मुनने देता है]

मुद्दरकी आवाज कानाको राये जाती ह।

[कोई मानो कुण्डी सटसटा रहा है]

सरलमें पिता वरत ह माती।

धिसा करत ह चदन
असोप फुत्कार
विराट नतन ।
छप छप् !

[कौन किसकी सुनता है—]
उफ !

सठाकी पगडियाँ, सुदरियाकी साडियाँ,
पहलवानोके लँगोट, आगरेकी दालमोट
छप् छप छप् !

[कौन किसे सुनने देता है !]

ज्यातिप व नश्य विद्याके भी माहिर ह । आठ सालसे महाभारतप
अनुसंधान कर रहे हैं ।

बहुत लोग, इन पक्तियाका लेखक भी उन्हीम-स ह, अभिलाषा रखते हैं कि
श्री हपकी तरह द्विवदीजीको भी बाई हकीम उडदकी दाल और बासी भात
खिला द, ताकि अनुसंधान-अनुसंधानको त्याग कर लगते-हाय एक नावल लिख
डालें । अपनी मोहक भापाको अपना वास्तविक काम करने दें । जहाँ अभी
साहित्यके मान बन ही नहीं पाये, वहाँ आलोचकका क्या काम ? और जिसके
पास लेखक होनकी सामग्री विद्यमान ह वह आलोचक बने क्यों ? नावल न सही,
कोई कटास पूण निबन्ध-सग्रह ही सही ।

यह नही कि उनके प्रना-पूण परिहासको उनकी कृतियाम अवसर नही
मिला । अवसर मिला ह । लकिन यदि उसना प्रवाह एक बार उसकी अपनी
गहन अनुभूतियोम-स छलककर बहे तो श्रीयुत 'बच्चन'के लिए एक बेहतर
मधुसाला हो ।

(मार्च १९३६ के 'हस' से साभार)
प्रतिलिपि श्री राधागोविन्द पाण्डेय पुरातत्त्व विभाग बनकला ।

हैंस सकते हैं। विन्तु साथ ही उनमें जीवनके चरम उद्देश्य, साहित्य व कलाकी आमताके प्रति गहरी थढ़ा है। गान और अनुभवके लिए अतापणीय भूष ह। सूईसे लेकर सोशललिज्म तक सभी वस्तुआका अनुसंधान करनके लिए उत्सुक रहते ह। किसी विषयपर भी अचल धारणाएँ उनकी नहीं। बोलनके बजाय सुनना अधिक पसंद करते हैं। इसीलिए जिस्त मूर्तिमान् समस्याका नहीं समझ पाते उसे सामने बिठाकर ताकते रहते हैं।

आत्म-सम्मानका उनमें एकदम अभाव है, फिर भी अपनी क्षमताओ व श्रुतियोंकी जाँच स्वय ही करना पसंद करते ह। इसलिए प्रशमात्मक पत्रोंको फाड़कर फेंक देते ह। असवारोंमें तसवीरें छपवाना बुढापपर स्थगित कर रखा ह। रूपये-पैसेकी परवाह नहीं करते। ऐसा आदमी अगर न हूँ तो कौन हूँसे।

उनकी आलोचनाओंके गम्भीर तथा सारगर्भित होनेका कारण यह ह कि वह साहित्यको खेलकी चीज नहीं समझते। मुद्दतमे, उनके विचारमें, उर्दू और कुछ हद तक यूरोपियन रोमाण्टिक साहित्यने, सन्धेमें छूट जानेकी, अर्थात् शृंगार और मुहावरेबाजीकी प्रथा चालू कर दी है। हिन्दी साहित्यका पहला वस्तु यह ह कि रके हुए विकासकी अपनी पुरानी वषपन नीवोंके बल्पर उभार। सस्कृतके समृद्ध साहित्यके लिए अगाध पक्षपात रखनके कारण उह आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें काफी श्रुतियाँ मजूर आती ह। कहानियाँ बहुत कम पढ़ते ह। गद्य-कविता व अनियथायवाद (सुरियलिज्म) व प्रति उनकी उपेक्षा उनकी इस निम्नोद्धत रचनामें सीमित हुई ह

अथ कविता

??

छप छप

[कौन किसकी सुनता ह—]

अन-तथा नतन ५

गल, नीहारिका, पैरायोला हाइपरबोला ।

× × - × × - - × ×

[कौन किसे सुनने शता ह]

सुदरकी आमाज बानाकी साये जाती ह ।

[कोई मानो कुण्डी सदरता रहा ह]

खरलमें पिसा करत ह माती ।

दान्तिनिवेदनसे शिवालिख

घिमा करत ह चदन
 असेप फुत्कार
 विराट नतन ।
 छप् छप् ।

[कौन किसकी सुनता ह—]

उफ !

सेठाकी पगडियाँ, सुन्दरियाकी साडियाँ,
 पहलवानकी लँगोट, आगरेकी दालमोट
 छप् छप् छप् ।

[कौन किस सुनने दता है !]

ज्यातिप व नशत्र विद्यावे भी माहिर ह । आठ सालसे महाभारतपर अनुमन्धान कर रहे हैं ।

बहुत लोग, इन पत्नियोंका लेखक भी उन्हीमन्स हैं, अभिलाषा रखते ह कि थी हपकी तरह द्विवदीजीको भी बाई हकीम उडदकी दाल और वासी भात तिला दे, ताकि अनुमन्धान-अनुमन्धानका त्याग कर लगते-हाय एक नावेल लिख डालें । अपना मोहक भाषाका अपना वास्तविक काम करने दें । जहाँ अभी साहित्यके मान बन ही नहीं पाये, वहाँ आलोचकका क्या काम ? और जिसक पास लेखक होनेकी सामग्री विद्यमान ह वह आलोचक बने क्या ? नावेल न सही, कोई कथाश्रवण निबन्ध-संग्रह ही सहा !

यह नहीं कि उनके प्रज्ञा-युक्त परिहासका उनकी वृत्तियाम अवसर नहीं मिला । अवश्य मिला ह । लेकिन यदि उसका प्रज्ञाह एक बार उसकी अपनी गहन अनुभूतियोग-से छलककर बहे तो श्रेयुत बचन ने लिए एक बेहतर मधुसागर हा ।

(मार्च १९३६ के 'इस' मे साभार)

प्रतिष्ठित श्री राधागोविन्द पाण्डेय पुस्तकालय विभाग कच्छता ।



दीयेकी लौ

• •

भारती मिश्र

एक दिन छोटा भाई घरमें घुसते ही चिल्लाकर बोला—“धरम रहकर इतना भी रायाल नहीं रहता ? बाबूजी क्या पहनकर जा रहे क्या नहीं, इतना भी नहीं दस सकती।” मैं चुपचाप सुनती रही पर जब उपदेश ब्राह्मण और चीखना चिल्लाना बढ़ता ही गया तो हलकी-सी झडप भी हो गयी। शान्त होनेपर पता चला कि बाबूजी बाथरूम-स्त्रीपर पहने ही कॉलेज चले गये हैं।

ऐसा अक्सर होता है, और होता रहेगा। जूते सामने लाकर रस दो पर वे स्त्रीपर पहने चले जायेंगे। स्वेटर उन्नटा डाल लेंगे, जेयम चदमा रखा रहेगा और वे परेशान होकर चारो ओर साजते फिरेंगे। वे प्राय अपना कलम तिय मेरे कमरेम आ जायेंगे—“मुनू पता नहीं कौन मेरी दावात उठा ले गया। कलममें स्वाही चाहिए।” अकसर दावात उठानेकी ताहमत भाइयापर मडी जाता पर दावात डैलनपर पता चलता कि वह किसी मोटी थोसिस, मा भारी भरकम प्रायवे नीचे दबी है। दावात मिलनेपर वे ठठाकर हँसें—‘थीनिसें भी बसी होने लगी ह, चार किलासे कम न होगी।’

पढनके कमरम पहुँचिए तो देखकर दग रह जायेंगे। आपकी बिश्वास न होगा कि यह पन्नेका कमरा है। विलगुलु किताबाके गादाम-जता लगा। उन्हे हमेशा पढनेके लिए छोटा और बानेका कमरा चाहिए। दीवारास सटी आल मारियाँ पुस्तकामे ठसाठम भरी हुई। इनमें-स अपने कामकी किताबें सिफ बाबूजी ही निकाल सकते हैं। शादीक पहले इन किताबाको टीक-ठाक करते मुझे यह बिश्वास हो चला था कि किताबें मैं भी निकाल सकती हूँ पर अब जाती हूँ तो उस भूलभुलयाम सुदको घिरी पानी हूँ।

इस भूलभुलयाको सुलझानेका सकल्प करती हूँ हाथ लगाती हूँ तो मर लौटन का दिन आ जाता ह। वह अथसुल्ची बैसीकी बैसी रह जाती ह। मैं जानती हूँ कि अगली बार बाऊंगी तबतक इसवे ब्यूह और बढ जायेंगे, सुलझानेकी कोसिसा सुदम अभिमयुकी तरह भिरकर रह जायगी, पर कुछ बग नहीं

पत्नी । कमरेम जिधर सिडकी होती है, उधरको दरी बिछी होती है । दरीके
 ऊपर दूदा, पीर मद्देपर मानुजीके बँडोका भासा । सामने तिलोकी डेरर पीर
 उसके ऊपर-नीचे, पगल-मसल, सर्वत्र विताबोका जगल । पाप मानुजीके पास
 पहुँचा पाहे तो पीरउते दरीपर बिछे भासा तब कही रास्ता ग सुतेगा । खुद
 जानी बहानेन जाने लिए रोज रास्ता बनाता पत्नी है, पगे तो जाते है,
 पर जाने लीउोका रास्ता भी अपने-आप बन्द हो जाता है । वितामें उन्हे अपने
 मोपसे जानेने लिए रास्ता ही गही देती । उन्हे इस हँसे लुडोने लिए अगर
 कोई सटामुक्तिपुनक जगदरो तरतीब दे दे, तो उसनी आफत । मागी तम बोई
 न-बोई बागज अरु गुम हो जाता है । माँ सल्लवर कहती है—'म कभी गहीं
 साक कहेंगे उस मरको ।' पर हास प्रतिज्ञा करेपर भी अगर माँ सपाई
 करता गही बन्द करतीं, तो मानुजी बासजोके लोकी शिवागत क्यो बन्द कर
 दें भाग । सो सपाई पीर शिवागने साय-साय चलतो रहती है ।

पड़े तिलोके समय उनके बसलमे पाडगना रसा रहता है और अब-सम
 उससे पात्र वितालवर वे दारो रहते हैं । पात्र अपने ही हाथसे लगाता उगना
 सोरु है, या भूँ भी कह सकते ह कि गही जाना वितास है । अपने पास आने
 जानेवालोको अपने ही हाथसे लगाकर पात्र देते ह । परम माँ, मानुजी पीर पड़े
 भार्दे सिवा पीर निसीको भी पात्र दानेकी आदत गहीं है । इसलिये अब कभी
 माँ बाहर जाती है तो पागकी सार सँभालना भार वे सार ही उठा लेते है ।
 हम लोग एगेगा या तो पात्रे डालना भूत्र जाते है या मुपारी मगता । साहित्य-
 विवेकामे जहाँ उहे हर पण्डे पागकी अहरत पड़ती थी वहीपर मगारसना
 असर गह हुआ है कि वे पात्र दाने लगे है ।

मेरे छोटे भाई लोग लुहरे ही शताम है । इनके कारण मानुजीको कई
 बार परेशानिबोना भी सामना करता पड़ा है पर वे कभी जाने मारासा
 गहीं हुए । हम लोगोकी भोजी-सी परेसामी भी उह परेसाम कर देती
 है । माँको एव दो बार उन्हे छोड़कर जाता पड़ा । माँकी अनुपरिपत्तिम
 मे ही मरनी देसभाल करती थी । ऐसे समयमें मानुजीके साथ मेरी
 सगड़ी प्रतिउगिता होती थी । हम-दोनों ही अपने कामकी जल्दीसे जल्दी
 पूरा करके एसरेको हसीपर तुते रहते । मं जहाँ रसोईम पहुँचो मानुजी
 हाजिर, बोई काम करके पहुँची मानुजी वहाँ मोपूद । ऐसे समयमें वे खुद
 ही समय पातोम एसापट बन बैठते है । मेरे उन्हे वितापि भार सगमाया नि
 साहित्य और भोजन बनानेकी काम एव ही गहीं है । अहरो गहीं है कि साहित्य
 में आपका पात्र अभिर है तो पात्रसाराम भी हाँ पर वे माँके तम तो ? मागी

दीयेकी लौ

• •

भारती मिश्र

एक लिन छोटा भाई घरमें घुसते ही चिल्लाकर वाला—“घरम रहकर इतना भी लयाल नहीं रहता ? बाबूजी क्या पहनकर जा रहे क्या नहीं, इतना भी नहीं देत सकती ।’ म चुपचाप सुनती रही पर जब उपदेश झाडना और चीखना चिल्लाना बढ़ता ही गया तो हलकी-सी झडप भी हो गयी । शान्त होनेपर पता चला कि बाबूजी बाथरूम-स्लीपर पहने ही बालज चले गये हैं ।

ऐसा अक्सर होता ह, और होता रहेगा । जूते सामने लाकर रख दो पर वे स्लीपर पहने चले जायेंगे । स्वेटर उल्टा डाल लेंगे, जेबम चरमा रखा रहेगा और व परेशान होकर चारो ओर खोजते फिरेंगे । वे प्राय अपना कलम लिये मेरे कमरम आ जायेंगे—“मुनू पता नहीं कौन मेरी दावात उठा ले गया । कलममें स्याही चाहिए । अक्सर दावात उठानेकी ताहमत भाइयापर मढी जाती पर दावात ढूँढनेपर पता चलता कि वह किसी मोटी थोसिस या भारी भरकम ग्रायके नीचे दबी ह । दावात मिलनेपर वे ठठावर हँसेंगे—“थोसिसें भी बची होन लगी हैं चार किलासे कम न होगी ।”

पढनक कमरमें पहुँचिए तो देखकर दग रह जायेंगे । आपको विस्वास न होगा कि यह पढनेका कमरा है । बिलबुल किताबाक गोदाम-जसा लगगा । उन्हें हमेसा पढनके लिए छोटा और बौनेका कमरा चाहिए । दीवारासे सटी आल मारियां पुस्तकासे ठसाठस भरो हुई । इनम-से अपने कामकी किताबें सिफ बाबूजी ही निवाल सकते ह । सादीके पहले इन किताबाको ठीक ठाक बरते मुझे यह विस्वास हो चला था कि किताबें मैं भी निवाल सकता हूँ पर जब जाती हूँ तो उस भूलभुलैयाम खुदको घिरी पाती हूँ ।

इम भूलभुलैयाका मुल्शानेका सकल्प करती हूँ हाथ लगाती हूँ तो मेर लौटन का दिन आ जाता ह । वह अघमुलथी धँसीकी बखी रह जाती ह । म जानती हूँ कि अगली बार आऊगी तबतव इसके ब्यूह और बढ़ जायेंगे, मुल्शानकी कासिस खुदमें अभिम-युकी तरह घिरकर रह जायगी पर कुछ बग नहीं

वाला नहीं, कोई शिनायत करनेवाला नहीं, कोई डरल चम्मच लेकर उत्पात करनेवाला भी नहीं। सब उदात्त।" कई बार करते हैं कि सब लडके लडकियाँ तो बड़ हो गये ह अब नाती-पोतावो लेकर ही रहनेका मन करता है।

अपने बाबूजीको मैने सिर्फ पिता रूपमें ही नहीं जाना माँ, मिन जीर गुरके रूप भी प्रनम देखे हैं। मैं उहीके पास हिंदीमें एम० ए० कर रही थी। पहले तिन जब मैं उनके क्लासमें गयी तो मनमें उत्कण्ठा थी कि देखें मेर बाबूजीका प्रोफेसर रूप बसा ह। म ही नहीं मेरे साथके और विद्यार्थी भी, जो दूर-दूरसे उनका नाम सुनकर आयें थे, शायद उन्हें गुरु रूपम देखनेको उत्सुक थे। सभी मनमें याडा सहमें हुए भी थे।

क्लासमें उहोने हंसते हुए प्रवेश किया और अपनी कुरसीके पास आकर लडे हो गये। अपनी मूँछोके अदरये हंसते हुए सारे क्लासपर नजर दौड़ायी। घूमती हुई नजरें क्षण भरके लिए मेरे ऊपर आकर स्थिर हो गयी—मात्र क्षण भरके लिए और उस दिन वह क्षण मुझे घण्टेके समान लगा। तभी उनके मुँहपर मुसकान आयी, साथ ही उनकी निगाहें आगे बड़ गयी।

उस दिन पडाई नाम भरको ही हुई या यूँ कहिए कि हुई ही नहीं।

मेरी सन्पाठिन और सहपाठी हमेशा यही सोचते थे कि म घरमें अकलेम उनसे खूब पड-सम्प लेती हूँ और किसीके सामने प्रकट नहीं करना चाहती। उन्हें शायद यह नहीं पता कि दोपक अपने आस-पाम चाहे जितनी भी रोशनी फलाता ह, उसके नीचे हमेशा अंधेरा ही रहता ह। हम लोग वही अंधकार ह जिन्हें जबरन कभी कभी अपने स्वाथक त्रिए न्येनी लीकी अपना ओर खायकर शुका लेना पता ह।



आममानमें निरंतर सुवना मारनमें कम परिश्रम नहीं है और मैं निश्चित जानता हूँ कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ इसी-लेख नहीं है। पुस्तकको छुआ तक नहीं और आलोचना ऐसी लिखी कि प्रसौख्य विवभित। यह क्या कम साधना है।

— अशोकके फूल

कभी तो मरे उठानेम पहले ही सुबह पाँच बजे वे आधा खाना बनाकर रख देने थे । एक दिन बुद्धिमानी करके मैंने भण्डारवाले कमरमें ताजा लगा दिया और अपने सिरहाने चाबी लेकर सो गयी । दूसरे दिन उठकर दखा तो चाबी अपनी जगह थी और बाबूजी अपनी खाटपर गहरी नीदमें सोये थे । सुरा-खुरा मं सीधे रसाईम पहुँची । लेकिन यह क्या ? एक ओर पराठे बने पडे ह—और दूसरी प्रेशर-बुकरमें साग—आलू, मूली, प्याजके पत्ते और न जाने क्या-क्या सब्जियाँ—एक साथ मिलकर बनी रखी हैं । छूकर यही पता चलता ह कि एक घण्टा पहले बना हांगा । बाबूजीके उठनेपर जय पूछा तो उन्हाने बताया कि मेरे सब्जिके नोचेसे चाबी लेकर उन्हाने रोटी बना ली और जब कोई सब्जी नहीं दिखी तो अँधेरेमें ही बगाचेमे जाकर जो भी सब्जी दिखी तोडकर ले आये । उस दिन उस सब्जीका खानमें हम बहन मादयोने जिस बहादुरीका प्रदान किया, गुरुदवका नीमके पत्ताका गरवत पीनेम उसके शताशका भी परिचय शायद ही दना पडा हो ।

एक ओर हम लगाक लिए जहाँ उन्हें इतनी चिन्ता रहता ह वही दूसरी ओर घरम क्या हो रहा है क्या आ रहा ह, क्या जा रहा है इसका उह पता भी नहीं रहता । पैसा लाकर देना भर जानते है । बाकी इतजाम करना-नकरना सब मापर निभर ह । घरमे रहकर भी घरके हल्बलसे दूर अपनेमें मगन रहत ह ।

घरमे अगर दो-चार छोटे बच्चे आ जायें तो फिर बाबूजीको देखिए । उनक सारे नाती-भाते उनस इतनी जल्दा हिल मिल जाते हैं कि किनीका अपन माँ-बापकी याद ही नहीं रहती । बच्चोके जानेसे उनका काम भी बड जाता ह । व खुद कहते ह कि बच्चोके साथ बातें करते हुए ही काममें मन लगता है । उनकी गरारतासे मन बहल जाता है । म अपने बच्चेको टेपर चण्डोगड गयी ता राजा सार दिन अपने नानाक कमरम हा बठे रहते । कभी नानाकी लाल नीली पसिल गायब हा जाती तो कभी कलम या चश्मा । सार दिन उनपर बेमिर परके प्रश्नोकी बीछार होती रहती और व धयक साथ सबका उत्तर देने हुए अपना काम करते रहते । बच्चोका अभाव उनके मनको हमेशा खटवता रहता ह । उनकी ३० ६ ६७ की लिखी चिट्ठीका ही एक अक्ष है— और राजा साहबको प्यारका चपत दना । नाना नानीका माण करत ह कि नहीं । आऊँगा ता चपत माऊँगा । सिर तो अभी उनका चपत लायब ही होगा [उस समय राजाका मुण्डन हुआ था] यहाँकी चहल-पहल गतम हो गयी ह । अब बडा उदाय लग रहा ह । अभी जलपानक समय सिफ तीन ही बठे थे । बोड झपट्टा मारने

वाग्य नहीं, कोई प्रिकायत करनेवाला नहीं, कोई डबल चम्मच लेकर उल्टाव करनेवाला भी नहीं। सब उपास।" कई बार कहते हैं कि सब लम्बे-लम्बियाँ ठा बड हा गये हैं अब नाती-भोतीका लेकर ही रूनेका मन करता है।

अबने बाबूजीका मैंने सिर्फ पिता-पुत्रों ही नहीं जाना माँ मित्र और गुरुक रूप भी मनमें रहे हैं। मैं उर्हकि पास लिन्दोमें एम० ए० कर रही थी। पहले दिन जब मैं उनके क्लासमें गया तो मनमें उचकटा था कि दन्ने मेर बाबूजीका प्रोफेसर-रूप कैसा ह। मैं ही नही मेरे साथके और विद्यार्थी भी जा दूर-दूरसे उनके नाम सुनकर आये थे, गानद उन्हें गुरु-रूपमें देखनेको उत्सुक थे। सभी मनमें योग्य सटमें हुए भी थे।

क्लासमें उर्हनि हैसते हुए प्रवेश किया और अपनी कुरसीके पास आकर सहे ही गये। अपनी मूँठके अन्दरम हँसते हुए सारे क्लासपर नजर दौलायो। धूमता हुई नजरें धा भरके लिए मेरे ऊपर आकर स्थिर हा गयीं—भाष क्षण भरके लिए और उस दिन वह धा मुझे घण्टेक समान लगा। सभी उनके मूँठपर मुसकान जायो साथ ही उनकी निगाहें आगे दड गयीं।

उस दिन प्याई नाम भरको हो हुई था मुँ कहिए कि हुई ही नहीं।

मेरी सपनाजिमें बार सटपाठी हमेशा यही साबते थे कि मैं घरमें अकेलेमें उनस खूब पठ-समथ लेती हूँ और किसीके सामन प्रकट नहीं कग्ना चाहती। उन्हें गायद मह नहीं पता कि दोषक अपने प्राण-भास चाह त्रिजनों भी रागनी पगता है उसके नाचे हमेशा अँधेरा ही रहता ह। हम एग बही अकार हैं जिहें बदरत कमी कमी अपने स्वार्थके लिए जियेको गीअ अपनी ओर झोचकर मुका लेना पठता ह।

■

आममानने निरन्तर सुबहा मारनने कम परिधन नहीं है बार मैं निश्चित जानता हूँ कि रहस्यवाना आन-चना जिन्ना बड हमी-लेन नहीं है। पुस्तकको छुआ तक नहीं और आनोचना एमी लिखी कि प्रैनाक्य विचम्पित। मह क्या कम साधना है।

— उशोकके फूल

वभी तो मेरे उठनेसे पहले ही मुबह पाँच बजे वे आधा खाना बनाकर रख देने थे। एक दिन बुद्धिमानों करके मैंने भण्डारवाले कमरेमें ताला लगा दिया और अपने सिरहाने चाबी लेकर सा गयी। दूसरे दिन उठकर देखा तो चाबी अपनी जगह थी और बाबूजी अपनी सादपर गहरी नीदमें सोये थे। सुश-नुग म सीध रसोईम पहुँची। लेकिन यह क्या? एक ओर पराठे बने पडे हैं—और दूसरी प्रेशर-कुकरमें साग—आलू मूली प्याजके पत्ते और न जाने क्या-क्या सब्जियाँ—एक साथ मिलकर बनी रखा है। धूकर यही पता चलता ह कि एक घण्टा पहले बना होगा। बाबूजीके उठनेपर जब पूछा तो उन्होंने बताया कि मेरे तकियके नीचे चाबी लेकर उठाने राटी बना ली और जब काई सब्जी नहीं दिखी ता अंधेरेमें ही बगीचम जाकर जो भी सब्जी देखी ताडकर ले आये। उस दिन उस सब्जीको खानम हम बहन भादपोने जिस बहादुरीका प्रदान किया, गुल्बको नीमके पत्तोंका शरबत पीनेमें उसने दाताशका भी परिचय शायद ही दता पया हा।

एक ओर हम लोगोंके त्रिए जहाँ उन्हें इतनी चिन्ता रहती है वही दूसरी ओर घरमें क्या हो रहा है, क्या आ रहा ह क्या जा रहा है इसका उह पता भी नहीं रहता। पैसा लाकर देना भर जानते ह। बाकी इतजाम करना-न करना सब मापर निभर है। घरमें रहकर भी घरके हल्चलसे दूर अपनम मगन रहत है।

घरम अगर दा-बार छोटे बच्चे आ जायें तो फिर बाबूजीका दखिए। उनके सारे नानी-पोने उनम इतनी जल्पी हिल मिल जाते हैं कि किमीका अपन माँ-बापकी याद ही नहीं रहती। बच्चेके आनेसे उनका धाम नी बड जाता ह। वे सुद कहते हैं कि बच्चेके साथ दाने करते हुए ही काममें मन लगता ह। उनका शरारतोस मन बहल जाता है। मैं अपने बच्चेको लेकर चण्डीगढ गयी तो राजा सारे तिन अपने नानाके कमरम ही बठे रहते। वभी नानाकी लाल नीनी पर्सिल गायब हा जाती तो कभी कलम या चश्मा। सारे दिन उनपर बेसिर-परके प्रश्नाकी बौछार हाती रहती और वे धैयके साथ सबका उत्तर देने हुए अपना काम करते रहते। बच्चाका अभाव उनके मनकी हमेशा सटकता रहता ह। उनकी ३० ६-६७ की लिखी चिट्ठीका हा एन अ' है— 'और राजा साहबका प्याजकी चपत दना। नाना नानीको याद करत ह कि नहीं। आऊँगा ता चपत माऊँगा। फिर तो अभी उनका चपत लायक ही होगा [उस समय राजाका मुण्डन हुआ था] यहाँकी पहल पहल सतम हो गयी है। अब बडा उदास लग रहा है। अभी जलपानने समय सिफ तीन हा बठे थे। बाई सपट्टा मारने

बाग़ नहा, कोई शिकायत करनेवाला नहीं, कोई झगल बम्बध लेकर उत्पात करनेवाला भी नहीं। सब उदास।" कई बार कहते हैं कि मय लडके लडकियों तो बन हो गये हैं अरु नातौ-भोताका लेकर ही रहनेका मन करता है।

अपने बाबूजीको मने सिफ पिता रूपम ही नहीं जाना माँ, मित्र और गुरुके रूप भी उनमें देते हैं। म उहीवे पास हिंदीमें एम० ए० कर रही थी। पढ़ते तिन अरु मैं उनके क्लासमें गयी तो मनमें उत्पण्ठा थी कि दस्ये मेर बाबूजीका प्राइमर हप बँसा ह। मैं ही नहीं मेरे साथके और विद्यार्थी भी, जो दूर-दूरसे उनका नाम सुनकर आये थे, गायद उन्हें गुरु रूपमें देखनेको उत्सुक थे। सभी मनमें चाग सहम हुए भी थे।

क्लासमें उहीने हँसते हुए प्रवेश किया और अपनी कुरसीके पास आकर खड़े हो गये। अपनी मुँछाके आदरमें हँसते हुए सारे क्लासपर नजर टोडायी। धूमती हुई नजरें क्षण भरके लिए भर ऊपर आकर स्थिर हो गयी—माय क्षण भरके लिए और उस दिन वह क्षण मुझे घण्टेके समान लगा। तभी उनके मुँहपर मुसफान आया, साय हाँ उनकी निगाहें आगे बढ़ गयी।

उम तिन पडाई नाम भरको ही हुई मा यूँ कहिए कि हुई ही नहीं।

मेरी सम्पाठिणें और सहपाठी हमेंगा यही साबते थे कि म घरमें अक्लेश उनमें खूब पत्र-समय लेती हूँ और किसीन सामने प्रकट नहीं करना चाहती। उन्हें साय यद नहीं पता कि दीपक अपने आस-पास चाह तिनती भी रोशनी फैलाता ह उनके नाचे हमेंगा अँघेरा ही रहता है। हम लोग बड़ी अघरार ह किहूँ जवरन कमी जमी अपने स्वायक त्रिण त्रियती लौना अपनी ओर मीचकर लावा लेना पता है।



आमनामने निरंतर मरगा मारनमें अघ परिधम नहीं है और मैं विश्व जानता हूँ कि रहस्यवादी आलोचना निगना कुछ हँसी-खेल नहीं है। पुस्तकको छुआ ठर नहीं और आलोचना ऐसी त्रिणी कि प्रमोदय विदम्बित। यह मरगा वम माधना है।

- अशोककै फूल

दो असमर्थताएँ

फीरोजावाद

२३ ६ ६७

प्रियवर,

अवश्यमेव बंधुवर हजारीप्रसादजी द्विवेदीके विषयमें कुछ लिखनेका विचार ह। इपर स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। इस कारण विलम्ब होनेकी आशा है। श्री द्विवेदीजीको मेरा प्रणाम लिख दें। वे मुझपर निरंतर कृपा करते रहे ह। यद्यपि उम्रम में बड़ा हूँ, पर अकलमें व ही बड़े ह। वे विद्वान हैं और मैं विद्वत्तामें कीमा दूर हूँ। बंधुपर द्विवेदीजीके अनेक महन्वपूर्ण पत्र मेरे पास सुरक्षित ह। इनका भी संग्रह हो जाना चाहिए। वे बहुत ही सहृदय व्यक्ति ह। विनम्र श्रद्धालु और अपने-आपको पीछे रखनेवाले। आपके इस यत्नी पूण सफलता चाहता हूँ।

विनीत

वनारसीदास चनुर्वेदी

*

५ सफरजग लेन नयी दिल्ली

जुलाई ७, १९६७

प्रियवर,

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि हिंदीके महास्तम्भ पण्डित हजारीप्रसादजी द्विवेदी आगामी श्रावण शुक्ल एकादशीको अपने जीवनका साठवाँ वर्ष पूरा कर रहे ह तथा वाशिंग्टनके साहित्यिकान मह आभाजन किया ह कि इस अवसरपर उन्हें एक ग्रन्थ भेंट किया जाय। मुझपर आरम्भसे ही द्विवेदीजीकी कृपा रही है और आरम्भम ही मैं उनपर श्रद्धा रखता आया हूँ। विद्वान और लेखक वे आज बे-जोड़ ह किन्तु मनुष्यताकी दृष्टिमें भी उनके समकक्ष पहुँचनेवाले लोग देशमें कम ही होंगे। उहाने जो कुछ लिखा ह उसका अधिकांश चिरामु होगा।

बहुत अच्छा होता यदि मैं इसी समय द्विवेदीजीका सम्मरण लिख पाता। किन्तु इन गिनों मेरी मनोदशा खिन्न है अतएव इस मागलिक अवसरपर मैं मायबर हजारीप्रसादजीको प्रणाम करता हूँ और भगवान्से मनाता हूँ कि वे उन्हें शतायु करें।

रामधारीसिंह दिनकर

भूली कहीं हूँ

• •

शिताली

पण्डितजीका गुम्फामें परिचय मेरे जीवनमें एक खेप्ट सम्पत्तके रूपमें मक्का सक्ति रहा ह। अपने यत्नित सौभाग्यम म उस उदारमता व्याक्तबने स्नेहमय सायमें, आठ बप तर री। आज जब उन आठ बपोंके सम्मरण मँजाने बटती हूँ ता सहसा १९३५ के आधमरणमचके रोगी परते स्वय ही सम्मरण कर उठ जाते ह। आथमय शगर माड'स एरु एरु सम्मके हागियेमे त्रिभाजित दगग धूलूमरित मैदान था और उमीमे लगी थी गुम्फाग। एक ही कुतार में ता-नगर और मालना लनाक मायम सडे, एक ही नत्रोंके बने कच्ची मिट्टीके कपरम्य छाये मकानामें पदला मकान था बने पण्डितना, यत्नितमें गृह्यामीकी ही भाति मरु छोटा-सा बरामगा फिर एक कमरा कानमें विछा लकनेका सगत आम्भारीमें टगी विभिन्न आकारकी पुस्तकाका स्पाकार गट्टर फिर एक बगमगा आगन और आंगनम ही लगी छोटी-सी कोठरीमें बनी भाभी-जीकी सुग्ग्य रनाई, जूनि आनी, उत्तरमगाव नयुननि पव-परिचित साध सामगारी गुग्ग लपट, बगालके घण्ट, 'बडबनी' 'कापीर डालना और 'आठू पल'क मनया नवीन अटपटे स्वादना कसकको, पल्लममें घो-पोडकर बग ली। पण्डितजाक यहाँ तो हम उन्नरप्रणीय छानाओका अज ही था। भूर लगा तो उर ली। कभी भी समय अममय हमारा आक्रमण निरोह भाभी जाका रमोईपर होना और ब हँसकर ही हमारा स्वागत कन्ती। गारो बून्ने कन्की आनगा भाभीजी, कभा मूरीका पूग कनिस्तर ही उजार क हमार सम्मग लय ली, सरसकि तेलमें मनी, हरी मिच और कच्चे प्याजमें बनी बह मूर, सुरदुलभ पणाय लगती और देवत हा-दखन पूरा कनिस्तर माफ हो जाना। घाती डौला कुरता और अणैकी चाग्गारी पण्डितजी दूर ही-मे पचाने जाने। लम्बा बंद न दुमं न स्बूल प्रगप्ल माया, आंमिं अन्टी चमक और अपरार, घान-वापर उतर आनेवागी स्निग्ग हँसी।

उत्ते पण्डितका अपना अनुठा दग था। कभी-कभा अपने कट्टर गुग्गीकी

कहानियाँ सुनाते और कभी मामा-य-भी बूँदाबाँदी होओपर ही भोगनेकी छुट्टी कर देत । यह आश्रमकी एक विशेष प्रकारकी मौलिक छुट्टी होती थी, वर्षा होनेपर । कई भी कभी अपने अघ्यापकके साथ 'भोगनेकी छुट्टी मनाने जा सकता थी । कभी अनिलचन्द्रक साथ गाने हो टहला मचाते हम लोग 'श्रीनिकेतन'की ओर चले जात

शान्तेर गगैर गाय, विद्युत चमकिया जाय,
क्षण क्षण शबरी मिहरिया उठे हाय ।

शबरी मिहरे न सिहरे समवेत कण्ठस्वरमे आश्रमकी दिगाएँ अवश्य ही मिहर उठती ।

पण्डितजीको कथाम, इस छुट्टीके अनिर्दिष्ट, एक प्रकारकी छुट्टी और भी होती थी, जब कभी कुछ चुने छात्र छात्राओंके पण्डितजीके लिए ब्लैक, गायुन आदि देने आश्रमकी एकमात्र दुकान 'कोर्पापरेटिव स्टोर' तक भेजा जाता । लाने वापक लिए समुचित पारिश्रमिककी भी व्यवस्था रहती, इसीमे इस उदार प्रस्ताव को स्वीकार करने कभी-कभी पूर्ण कक्षा ही चल पड़ती । किन्तु प्रत्येक शांत व्यक्तिकी भाँति पण्डितजीका क्रोध भी घडा विफट हाता था । एक बार हमारी कक्षाक एक अत्यंत निरौह छात्र शरणप्रसादको पण्डितजीन पढ़ाते समय आँवला की गुठली चूकाने पकड़ लिया । उन दिनों आश्रममें छात्र छात्राओंके इस कामकी भयानक सभी शिष्यापरमाण थे । जिसे देखो वही आँवलेकी गुठलियाँ मुँहमे भरे सुपारी-सी कुतर रहा ह । एक-दो बार पहले भी पण्डितजी कुछ अर्थ छात्राओंको इस उद्दण्ड कुडक-कुडकके लिए डपट चुक थे— तुम लोग यहा आँवला गाने आता हो या पढ़न ? अब किसीको गुठली चूकवाते देला तो बाहर निगाल दूगा—समझी ।”

उन्होंने कहा था, पर समझोवालियाँ खूब समझती थी कि गरजनवाला यह निरौह मेघ कभी बरसता नहीं ।

उस बार हमारी कक्षाका शरणप्रसाद, न जान कम एकडमें आ गया । 'क्या शरणप्रसाद', पण्डितजीका चेहरा तमतमा उठा, 'किनती दउन गुठलियाँ ह मुँहमें ? माना मह । शरणप्रसादने भाँते बह्याकी भाँति भुँह छाल कर श्रैगव्य-गान करा लिये । स्पष्ट था कि गुठली बाजीगरी सफार्म जीभके नीचे छिपा ली गयी ह ।

'हूँ ?' पण्डितजी बोले हम क्या समझते नये जीभके नीचे छिपा ली ह । खड रनो परा पीरियड । इस दमने—” भेरी आर उँगली दिनाकर उन्हने कहा— 'अभी नया-नयी आयो ह पहाडय कसे मिर भकाये शांत गऊ-सी बटी

रहती ह, एक तुम हो इतने दिनामे आश्रमम हो, परु भर सीधे नही बैठ सकते ।’

उस सावजनिक सभाम अपनी प्रशसा सुनकर म प्रसन्नताका गहवर सहसा रोक ही नही पायी । ऐसी खासी उठी कि जीभके नीचे बड़े छल्लसे छिपायी गया थाँवलकी गुठली, गोली-सी छिटक कर सीधी पण्डितजीकी गोदम जा गिरा । पहल बे चाक फिर ठहाका मारकर जारम हँस पड ।

उस उदार गुरका बह रासीभूत अट्टहास, आज भी रह रहकर मेरी स्मृति-प्राचीरमे गूँज उठता ह । कान उमेठकर लेखनीकी सही पकड सिखानेवाले उस सहृदय गुरुके सस्मरण क्या एक आध ह ?

घटा तले हिंदीकी कथाक मुट्ठी भर छान छात्राएँ पण्डितजीको घेरकर बठे ह । उन दिनो हमारे पाठ्य क्रममें ‘सुंदर काण्ड’ था और पढाते थे स्वय पण्डितजी । अपनी अण्डीकी चान्दर गुडी-मडीकर लपेटे पण्डितजी हिल हिलकर ‘सुंदर-काण्ड’ पढाने लगते ता लगता पूछनेका कुछ ह ही नहीं । एक-एक दाहा चापाई, उलझे तागे सी स्वय ही मुलपती चली जाती । लगता जैसे अवनींद्र ठाकुरकी रोचक ‘गल्पेर फ्लास’ का ही पीरियड चल रहा हो ।

तब एक काब्य-सग्रह भा हमारे पाठ्य-क्रमम था, उस पारियडको भी पण्डितजी ही लेते पर काब्य-सग्रह पढानेमें पण्डितजीका न जाने क्या विनोप रचि नही रहती । “क्या करागी यह सब यहा पडकर, घरम पढ लेना ।’ एक दिन म पीछे पड गयी “घरपर भला कौन बठा है पढानेवाला, परीक्षा सिरपर आ गयी ह अब ता आप पढा ही दागिए ।’

‘मूरख कही की’ वार-वार एक कविताका अर्थ समझा देकी जित्से पण्डितजी झल्लाकर बाल, “क्या घरा ह इसमें समझानेरो

मुझे आज भी यह कविता याद ह और म सोचता हूँ पण्डितजी भी नही भूठे हागे ।

कविता थी—

काकिल वाला ता ।

प्रागामें मधु घोने तो ”

‘अब कोकिल ह ” पण्डितजी वाल, बीया ता ह नही जा बाँव काव होगा ! कुट्टू-कुट्टू कर रही होमी बस घुल गया हागत प्राणाम मधु जायत भागो— छुट्टी ! इस मरल सहन सजीव व्याख्याक पन्चान भला कुछ पूछनेका प्रश्न ही कम उठ सक्ता था ? कभा कभी इस मिनिट पहल ही एसा अप्रत्यागित छुट्टी मिल जाती पर कभी व्याकरणकी कथाक अनुशासनकी पतली जानल्ला रस्सी

कहानियाँ सुनाते और कभी सामान्य-सौ बँदाबाँदी होनेपर ही भोगनेकी छुट्टी कर देते । यह आश्रमकी एक विदोष प्रकारको मौलिक छुट्टी होती थी वर्षा ऋतुपर । कोई भी कभी अपन अध्यापकके साथ 'भोगनेकी छुट्टी' मनाने जा सकती थी । कभी अनिलचंदाके साथ गाते ही हस्ता मचाते हम लोग 'श्रीनिकेतन की ओर चले जान

'शावनेर गाँव गाय, विद्युत चमकिया जाय
क्षण क्षणे, शवरी मिहरिया उठे हाय '

शवरी सिहरे न मिहर, समवेत कण्ठस्वरम आश्रमकी दिगाएँ अवश्य ही सिहर उठतीं ।

पण्डितजीकी कथाम, हम छुट्टीके अतिरिक्त, एक प्रकारकी छुट्टी और भी होती थी, जब कभी कुछ चुने छात्र छात्राश्रमा पण्डितजीके लिए बन्ड साबुन आदि लेने आश्रमकी एकमात्र द्कान कोआंपरेटिव स्टोर' तब भेजा जाता । लाने वालेके लिए समुचित पारिश्रमिककी भी व्यवस्था रहती, इसीसे हम उदार प्रस्ताव को स्वीकार करने कभी-कभी पूरी कथा ही चल पत्ती । किन्तु प्रत्येक शात व्यक्तिकी भाति पण्डितजीका क्रोध भी बडा विकट हाता था । एक बार हमारी कथाके एक अत्यंत गिरीह छात्र शरणप्रसात्को पण्डितजीन पढात समय आँदले की गुठला नडात पकड लिया । उा दिना आश्रमम छात्र-छात्राका इस 'शामलकी भक्षण स रामा अध्यापन परेगान थे । जिये देतो वही आँदलेकी गुठलियाँ मुँहमें भरे सुपारी-सौ कुतर रहा ह । एक-दा बार पहले भी पण्डितना कुछ आय छात्राश्रमा इम उद्दण्ड कुडक-कुडकन लिए डपट चुक थे— तुम लोग यहाँ आँदले लाने आती हो या पढने ? अब किसीकी गुठली कडनात देला तो बाहर निनाल दूँगा—समझी ?'

उहाने कहा था पर समझतेवालियाँ लूख समझती थी कि गरजनबाला यह निराह मय कभी करसता नहीं ।

उस बार हमारी कथाका शरणप्रसात् न जाने कबने पकडमें आ गया । 'कथा शरणप्रसात्', पण्डितजीका चेहरा तमतमा उठा, 'कितनी दजन गुठ लियाँ ह मुँहमें ? खाग मँट । शरणप्रसात्न भाल बहूयाकी भाति मुँह खाल कर भलोक्य-गान करा लिये । स्पष्ट था कि गुठली बाजौगरी मफाईम जीभके नीचे छिया ली गयी ह ।

'हूँ ?' पण्डितजी बोले, हम मया समझते नहीं, जीभके नीचे छिया ली ह । खड रणे पूरा पारियड । इमे देखो—' मेरी ओर उँगली दिखाकर उलान कहा—'अभी नयो-नयो आयी ह पहाइन कसे मिर मचाये गात गऊ-सौ बडी

रहती है, एक तुम हो इतने दिनोंमें आश्रम हो, पर भर सीधे नहीं बठ सकते ।”

उस सावजनिक सभामें अपनी प्रथमा सुनकर मैं प्रसन्नताका गह्वर सहसा राक ही नहीं पायी । ऐसी खाँसी उठी जि जीभके नीचे बड छलरलसे छिपायी गयी आँवलेकी मुठली, गोली-सी छिटक कर सीधी पण्डितजीकी मोदमें जा गिरी । पहले वे चाके फिर ठहाका मारकर जोरमें हँस पडे ।

उस उदार गुम्का वह राशीभूत अट्टहास, आज भी रह रहकर मेरी स्मृति-प्राचीरमें गूँज उठता ह । वान उमेठकर लेखनीकी सही पकड सिखानेवाले उस सहृदय गुरुके मस्मरण क्या एक आव है ?

घटा तले हिन्दीकी कथाके मुट्टी भर छात्र-छात्राएँ पण्डितजीको घेरकर बठे ह । उन दिनों हमारे पाठ्य क्रममें ‘सुन्दर काण्ड था और पढ़ाते थे स्वय पण्डितजी । अपनी अग्नीकी चादर मुडी मुडीकर लपेटे पण्डितजी हिल हिलकर ‘सुन्दर-काण्ड’ पढ़ाने लगते तो लगता पूछनेको कुछ ह ही नहीं । एक-एक दाहा चाँपाई, उलझे ताने सी स्वय ही सुलझती चली जाती । लगता जमे अबनीद्र ठाकुरकी रोचक ‘गल्भेर पलास’ का ही पीरियड चल रहा हो ।

तब एक काय-सग्रह भी हमारे पाठ्य-क्रममें था उस पीरियडको भी पण्डितजी ही लेते पर काय-सग्रह पढ़ानेमें पण्डितजीको न जाने क्यों विशेष रचि नहीं रहती । “क्या करोगी यह सब यहाँ पठकर घरमें पड लेना ।” एक दिन मैं पीछे पल गयी “घरपर भला कौन बठा ह पढ़ानेवाला, परीक्षा सिरपर आ गयी ह अब ता आप पढ़ा ही दाजिए ।”

‘मूरख कहीं की’ वार-वार एक कविताका अर्थ समझा देनेकी जिदने पण्डितजी झल्लाकर बाल, क्या घरा ह इसमें समझानेको

मुझ आज भी वह कविता याद ह और मैं सोचती हूँ पण्डितजी भी नही भूले हाग ।

कविता थी—

“बाकिल बोला ता ।

प्राणोमें मधु घोले तो

‘अब बाकिल हूँ’ पण्डितजी बाल, ‘कौसा ता ह नही जा बाव काँव होगा । कुहू-कुहू कर रही होगी घस घुल गया हागा प्राणोमें मधु जाआ भागो— छुट्टी । हम सरल सहा सजीव व्याख्याके पश्चान भला बुछ पूछनेका प्रश्न ही कौन उठ सकता था ? कभी कभी दस मिनट पहल ही ऐसी अप्रत्यागित छुट्टी मिल जाती पर कभी व्याकरणकी कथाम अनुशासनकी पतली जाण्वा रस्ती

पर, किता ब्रू नट पिताकी ही भाति पण्डितजी हम चढाकर एक एक नया-
 नुना कदम रखता सिंसात थे—

“व्याकरणकी क्लासमें फाँकी देकर क्या कभी एक दगत्ता निबन्ध भी लिख
 पाओगी तुम लग ? और यह ‘गडरा’,” अबानक वे मुझपर बरस पड़ते, ‘गितनी
 ही साधो धी उतनी ही क्षतान हा गयी है। देखेंगे अब हम तुमका, एक दिन कान
 जडसे उखाड़ कर रख देंगे। आ ही वहीग जयतीसे,”—‘जड’क बीच एक विशेष
 मोड़-भा लीचकर पण्डितजी ऐम सहमा दते, लगता कान सचमुच ही जडसे उखडा
 जा रहा ह, पर बहता व्यथ है—न तो वह मुझे एक दिन दखनेका कभी आया,
 कणद्वय कभी भी समूल सुरक्षित है और मेरी बडी बहम जयन्तीसे मेरी शिकायत
 जडतेका भयावह धमकी सदा कभी हा तक सीमित रही ।

पाठ्य-क्रमकी पुस्तकोकी ही पढानेका पण्डितजीका विशेष चिंता नही रहती,
 बसे कर्त्ता कम, बरण, अधिकरणकी नीरस दारहखडी जिस महत व्यक्तित्वने
 बडे परिश्रमसे रटापी है—यह जब स्मरण करती ह तो गवस फूलकर कुप्पा ही
 उठता हूँ ।

कभी-कभी हमारी पूरी कक्षाको ही तार निरालनपर, पण्डितजीके घर
 जानका निमन्त्रण मिल जाता—“जाओ भाया सब, आज इस पारियडका इस
 ब्ला नहीं पढायेंगे हम, गुरुत्वके पास जाना ह सझाका घरपर जाना, वही
 प्लायेंगे ।” पता नही इस युगके शिक्षागाम्त्रा इम विचित्र शिक्षा पद्धतिक विषय
 न क्या कहग पर ऐसी सरस कक्षा, बोलता चलता फिरता पाठ्य-क्रम और छात्र
 छात्राआनी भीडका पाइड पाइपरकी सी जादुइ बशी धुनम खीचे लिने जा रह
 पण्डितजी । क्या अनुशासनहीनताके इम युगम जहाँ प्रतिघप परीक्षा भवनमें
 उद्दण्ट छात्र-वग, क्रुद्ध बबर आन्विसिपाकी-सी हृदयदानताम, जनेन अध्यापना
 को अपने अचूक भाये या छुरका निशाना बना समयस पूव हा अवकाश प्ररण
 करग दते ह यह सब कुछ अविश्वसनीय नही ग्यना ?

गुरुकी परिभाषा शामद अब बदल गयी ह । पर लाप बदल हमारी वह
 पोबाल कथावी स्मृति कभी नहा बदल सकती—जी वाजुजे निर्मित यण
 प्रियासकी जटिल अनिरामतापूण नगरी, खण्णीगडम रङ्गकर भी पण्डितजी
 दिखय ही नपी सम्यक्ताके विघटनकारी मरूपामे अछूती गुरुपत्नीके अपने उस
 कभी मिट्टाक आंगनम जुटा हमारी मुँडली कक्षाकी भाडका नहा भूए हाग ।

‘व एव कर आकाशके रहस्यमय सौरमण्डलमे पन्चिच चलता । ‘वह
 रहा स्प’ सहमा एक ही अंगूठकी धुंगीपर गोल घमते पण्डितजी ससपिने
 परिचय ने लगत ।

“अर कही ह पण्डितजी !”

“अर इत मूरख कुमुमन। कुट नहीं मूनता—दखती नहीं।”

कि आनागवाकी दुन्ह पहेंगे मुगम हा छठो। आज जब मेरा पुत्र, बटूमय विष्णो यनासि विभूषित नैनीताकी ओम्बरखेटरास विराट आकाशकी महिमा पहेंगे बार दख, मुझे अपनी पाण्डियपूण दगीलासि प्रभावित करनेकी चटा करता है तो मुझे हँसी आती है— इतना पावरफुल छुदबीन ह कि बस—’ मैं बस इत नन्हें मन्दिपका समझाऊँ कि जिस गणिनाली मुदबीनस मेने घोसगन्का दवा ह दसस वह कभी नहीं दस सकता।

पण्डितजी एक एक ताकी महिमा समनाते जात और आकाशक सम्य जानगात ताग, जस पुक-पुकर परिचित मिनकी भाति मुसकराकर हमसे हाथ मिताने गते। न तब हमार पास मुदबीन थी न काई यत्र। विचित्र आज खरपना विचित्र सचायक था। कबल कथनलीका टेपरेकाड था और लम्बे-लम्बे हायाका हिंग हिलाकर समथाया गया मुगम रावक पाठ। अचानक रात क मानेका घंटा बजता, आश्रमक प्रत्येक घण्टका अपना अनोखा ही आराह-अवराग रगता। एक-दो तीन चार-पाच—तीत-समयका ध्यान आता और हम भाजनालयकी आर भागते।

दूतग दिन व्याकरणका पाठियड ह। आज पण्डितजी गुरुदजका नया लिखा व्यायास चार अध्याय ल थाये ह। कई जिना तब पन्थानर पण्डितना हमें मुनात रह। मीरसिरीर विराट वृषनी छायामें एक बार पण्डितजी गुरुबकी उनग जिवा गयी पति डक आना बालुकडागार पण्डित हजारीरसादके’ को पक्का घंटा दख तक हँसते रहे थे। उनकी इसा हँसीके विषयमें मुझे कुछ कट्ना ह। जस मुनाकी गुगा जीहरी नेचुरल और कन्चडकी परिभाषामें बाँच कर ग्य दने हैं—हँसीका भी इसी मापदण्डसे मापा जा सकता है। कल्चड पक्का दनाकरी लाजिमाकी ही भाति कल्चड हँसीका पाती भी मुझे छिडला लगता ह। किसी विदगा कन्चिकके जटिल परिदासका न ग्रहण कर पानेपर भा कथ्य जवरन गीच कर निरागी गयी हँसी, जा सककी हँसी बर हो जाने पर भा बला दख तक हाथमें गूँजता रहता ह, एसी ही कन्चड हँसा ह।

पर एक दूमरी ही हँसा हाता ह—अमली पानादार मातीकी दमकस म्वय दमकनी और दूसराना दमकाती दिगाएँ गुजाना राख-चर टन्त्रा पगही सरलेका सा सरम जल्धार जो पास खड सोगाको भिगाती चला जाना ह— एसी हा हँसा था पण्डितजीकी। हा सकता ह अय बदल गया ह, पर एगा हँसा बलती कम ह। पण्डितजी हँसत तो पूरा शरीर हिलन लगता। आश्रम

म गज-गज भरकी दूरीपर असह्य कर्पाएँ रियगे रहनी । पण्डितजी हँसने लगते, और सब मुड मुडकर दबने लगने । एक ही रम्मीमें बैठो, पहाडा मंदिरकी सी कई घण्टियाँ एक साथ सनकने लगती ।

“कथा जी कमला, कल बडे सखेरे तुम्हारा भाई सकट लाल लगेट लगाये छण पेल रहा था” अचानक अपनी छात्राके लाल लंगोटधारी छण्ट प्रेमो महोदर की स्मृति पण्डितजीका मुदगुदा जाती और वे एव टहावा लगाकर हँस उठते ।

एक बार पण्डितजीने बडी सी दाढी रख ली थी । बस फिर क्या था—दूरी करी उनके पीछे पड गयी । “छि छि पण्डितजी !—एकदम जागी बारा लग रहे हैं आप । कटवाना ही हागी दाढी !”—पण्डितजी बार-बार कहत कि “कुछ फुडियाँ निकल गयी ह, इसीसे दाढी बढा ली ह कोइ शौक्रमे थाड ही पाली है !” पर उनकी कौन सुनता ? आज अपनी बचपानी ज़िदपर हँसी भी आती है ।

अन्तराष्ट्रीय साहित्यिक ख्यातिके उम विद्वान गुरुका क्या मुँहलगी कथा थी हमारी— कभी साबुन-प्लेडके मूत्यसे नी अधिक बडी वर्दमानोम बगुल किया गया कमाशन । कभी दाढी कटवानकी ज़िद, कभी अकारण ही सामाय सो बूँदावादीका बहाना बनानर भांगी गयी छुट्टी ।

गत बप, अपने क्षणिक प्रयाग प्रवासके बीच भी समय निवात्तर पण्डितजी मुसस मिलने आयें । वही परिचित स्नेहस्निग्ध हँसी, वही माट होनरिमका चरमा और डीला कुग्ता—या नहीं थी सो अपनीकी चारर, और सायद उसी के बिना मेरा रेषाचित्र जा कुछ अधूरा-सा बुना जा रहा ह ।

एक बार पण्डितजीने मुसस किया था—“तुम्हारी पुस्तिवा भिन्नी पटर बडी प्रसन्नता हुई । शान्तिनिवेतनका उन दिनोंका तुमन एसा मजोब बिप थीचा ह कि कई दिना तक उन म्मृतियामे पीछा नही छूटा । उन छानोनी पुस्तिकाम शान्तिनिवेतन जितना सजीब हुआ ह उतना बड उड पायामे गरी हा पाया । तुमम छाने उगी बिन्नु महत्वपूण आत्मीयता-पञ्च दाताने द्वारा, सम्पूणका जीवत बनानेकी बडा क्षमता ह ।”

उक्त पुस्तिका मन एव परिचित प्रकाशकक विशेष आग्रहपर लिखी थी—साथमें प्रकाशन एक सुभावनी पुरस्कार-याचनाकी भी घोषणा की थी । सोभाग्य से पुरस्कार मुझे नही मिला पर अपने गुरु-द्वारा प्रदत्त प्रशमाका यह अनूठा बाहेनूर मेरा साहित्यिक मजूपाका सरस जाभगाता रहा ह ।

उसी दिनम भरी तरानी एव एमे गहन धनमें धनमृगीता-नी निर्भीक छत्राँ

लगाने लगी ह जहाँ उमे क्रूरमे क्रूर व्यापने वाणाता भी भय नहीं रहा ह । पर आज सब सम्स्मरणाकी पाटली खोल कर—लिखने बटी हूँ तो—सम्पूर्णको जीवन्त बनानेकी क्षमता सत्सा गो बटी हूँ । 'गुरुगापान स्मृतिभ्रष्टा वाग्ना आभास हो रग है ।

पण्डितजीने बहुरूपी व्यक्ति बकी कई रगीन स्लाइडें एक एककर उगर आती ह—

हिल हिलकर सुंदर काण्ट पढाते पण्डितजी ।

सकटके लाल लंगाटकी स्मृतिपर टहाका लगाने पण्डितजी ।

'जन्म मे कान उखानेकी घमती दते पण्डितजी ।

दाने बढाये, अण्डाकी चारर लपटे मिट्टीके कच्चे आंगनमें गोर-गाल पर के जंगूटेकी घुंगीपर घूमने, आनाशके अनिधियामे परिचय कराने पण्डितजी और अन्तमें—बारमे उतरते रोगी कृते जोर धामें पहलेमे कुछ-कुछ घन्टे पण्डितजी—क्या पाकम बार-बार बिाड जाता ह ? अच्छे चित्रे लिए कगनाग बकग्राउण्डकी बटा महत्त्व देते ह । चित्र बने भी बसे ? एग बार यदि पण्डितजा फिर उसी कच्चे मकानके आंगनम लडे हो सक्ते । गुनीमुनी कर खोला गये चारर—तीला घुरला और बादमें दया विश्वभारती' का नारगी रजिस्टर—एक बार भी यदि गरनकर कह सक्ते—देव लगे तुमकी एक दिन—कान जन्म उखाडकर रग दें ।

तब शायद फिर सम्पूर्णको जीवन्त बनानेकी क्षमता पा लेनी ।

एक बार पूज्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजीने मेरे एक पत्र उतरमें लिखा था अपनी पुरानी छात्रमण्डलीको कभी भूल सक्ता हूँ । मेरे मामले तुम सब छागी-छोटी छात्राओंके रूपमें वसी प्रकार साकार हो । तुम लोगको बने भूल सक्ता हूँ । नामवाजमें भूलकर भूगना भी कोई भूगना ह । गुरुदवने लिखा था—

'अयमने चलि पधे

भुक्ति ने कि फूल

भुक्ति न रि तारा

तबुओ ताहारा

प्राणेर नि स्वाम दायु करे सुमधुर

भूतेर गूयना माँझ भरि ये सुर

भूते थाका नय ने ते भोग—'

'अमनस्क पथिक यदि राह चरते तारा और खिन्ने फूँका नहीं देख पाता तो क्या उन्हें भूल जाना है ? वे ही तो उनके प्राणोंकी निश्वास वायुको सुमधुर बनाने ह । भूलनेकी शून्यामों वे ही तो म्वर भर त्त ह । इसे भला भूलना कहते ह ?'

गुरुपत्नीकी मीठी स्मृति भी मेरे प्राणानी निश्वास-वायुको चिरतन मानुषसे भरती, भूलनेको शून्याम मीठे स्वर भरती रहेगी और इसीत न भी कहती हूँ—

भली कहां हूँ ?



जो लोग दावारास घिर और छतस हके कमरमें रात काटनेके अभ्यस्त हैं उनसे यदि कहें कि रात जीवन्त भरतु है तो न जाने क्या कहेंगे । लेकिन जो कोई भी आँख-बान रखनेवाला भला आदमी तारावचित आलमानके नीचे घण्टा आध-घण्टे के लिए आ सजा होगा वह अनुभव करेगा कि रात सचमुच ही जीवन्त वदार्थ है । वह मौस लेती हुई जान पड़ती है उसक अग अगमें सम्पन हाता है प्रसन्न होती है उदास होती है धंधुआ जाती है गिन उठता है ।

—वेतु दशन

अफलाकाक्षी

• •

मालती तिवारी

बहुत दिन पहले एक लेरा पढा था 'आँव माइमेलक' जिसमें लेखक चात्स लम्बने बताया था कि अपने ऊपर लेख लिखना कितना कठिन है। मुझमें भाई साहबने कहा कि बाबूजीके बारेमें एक पारिवारिक लेख लिखो, तो लगा कि 'आँव हिममेलक' लिखना भी कोई आसान नहीं। हो सकता है जिसको मैं बहुत अधिक मन्त्र देती हूँ, औरोंके लिए वही नगण्य लगे। फिर भी मने रोचा है ईमानदारी से कुछेक ऐसी घटनाएँ माहिँय जगतके मामने रख दें जिसका माहिँयस काई मालूम न है।

बहुत छुटपनकी बातें तो भूल-सा गयी हैं, पर जब थोड़ी बडी हुई तब हम गग छह भाई-बहन थे और सभी लोग बाबूजीके हाथमें खाना पसंद करते थे। इसीलिए दिनमें तो रागतों-अभ्यागतमें घिरे हानेके कारण बहुत अवसर नहीं मिलता था, पर रातको सभी बच्चोंका बिठाकर एक ही घागीमें भवको पिलाने थे। यह क्रम बहुत दिना तक चलता रहा था।

गातिनिकेतनमें हम लोगोंको प्राय ही मलेरिया हो जाता करता था। उस बीमारीमें औरोंको चाहे जो भी दवाई लगे, हम लोगोंके लिए तो निश्चित रूपमें शक्ती राम बाण दवा थे। रात रात भर जागना दवाई दना, प्यारसे मिरमें तेल लगाना और सब तरहकी गदगा निर्विकार होकर माफ करना। उन दिना ये काम मैं नहीं कर पाती थी क्योंकि वे खुद ही घागी बीमार रहती थी।

तीमारदारा करना ही नहीं बन्धि 'आँपरेगन' करना भी बाबूजीको खूब आता है। जहाँ किसीको फोना हुआ नहीं कि बाबूजी पेट स्पिन्ट, रुई बन्डे और मन्हम लेकर तैयार हो जाते। इस क्रियामें बाबूजीका वेद जानद मिलना।

जब हम चण्णैगड गये तब सिफ मैं, बाबूजी और छोटा भाई लाञ्जी साथमें थे। उहीं दिनों सयागवण एन फोडा मेरी पीठपर निजल जाया। कई दिन तो मैं उने छिपानी रही, पर जब वह पवन लगा और भयानक दू गुरू

हुआ ता मुझे कहना ही पडा। वस बाबूजीने अपने अस्त्र शस्त्र सँभाले और फोड़फो यो देखा जसे बाज नाजुक पक्षीको दखता ह। म अपने भयको समेटूँ सँभालूँ नि बाबूजी विजय गवस बोले—“लो हो गया ऑपरेशन।” वे परम आनदस र्ईम मन्म लपटवर उसपर लगाते रहे। ऑपरेशन करत समय उनका मन बच्चा-जसा खुश रहता ह और बार-बार सबसे अपनी वडाई खूब करते ह। चाहे काई मान या न माने बाबूजी ता अपनेका एक कुशल डॉक्टर मान ही लेते ह।

बाबूजी एक पक्के पाकवला ममन भी है। नित्य नवीन खाना बनाना उनका हाँवी ह। यह और बात ह कि उस परम प्रयागमे बने खाद्य पदार्थको कोई खा भी पाता है या नहीं। बाबूजीका कहना ह कि तरी माँ ता लकीरकी पकीर ह वस तशुदा ढगस खाना बनाती है। इस सब्जीम यही ममाला पढगा और इसी तरीकेमे पकाया जायेगा। यह क्या बात हुई। उस तरह तो बलाची चतना ही मर जायेगी। बिना प्रयोगके भी बलाका विकास हो सकता ह क्या ? मगर उाके सभी 'एक्सपेरिमेण्ट' माँ की अनुपस्थितिमें ही सम्भव होते ह। शुभ-गुरुमें चण्डीगढम यह बाधा नहीं थी। माँ अभी पहुँची ही नहीं थी। सो जब म पढने जाती थी ता बाबूजी अतिगय वास्तव्यम प्रेरित होकर, मुझे तबलीफा और परेशानियासे बचनके लिए खाना सुद ही तयार कर लेत थे। उस स्वाच्छिष्ट एव पीष्टिव भोजनके खाते समय मुझ लगता कि गल्लेजम लौटकर टुगुना कष्ट उठा लेना ज्याना अच्छा होता। हालाँकि बाबूजी स्वय भी इसे नहीं गा पाने थे पर अजीब मुद्रा बनाकर बार-बार कहते— खानो खानो दखो ता क्या बढिया बना है।' हम किसी तरह हाँ हाँ करते करते पानीक साथ निगलते जाते। पर हमारी मुरब्बत भरी प्रसासस बाबूजीका और उत्साह आ जाता और वे हमारी खाली प्लेटें इस प्रयागवादी खानमे भर दते। इस परम स्वाच्छिष्ट और अतीव पीष्टिक भोजनसे छुट्टी पानके उद्देश्यमे म कॉलेज जानेके पहले ही बुकर चढाने लगी। लकिन जम मुझ फोटा हो गया तो बाबूजीका रास्ता फिर किलयर हो गया। जिन दिन मरा ऑपरेशन हुआ उस दिन म जरा दर तक साथी रही एकाणव खटर-भटरकी आवाजस ना सुल गयी। देखा—बाबूजी इधर उधर दौड रहे है। म हगन थी नि यह क्या हो रहा ह। तुरन्त ही बात साफ हो गयो एक दगची स्टोवपर चढ़ी ह और कुछ जल रहा ह। मन शट उसे कपडेमे उतार कर रग दिया। थोड़ी दरम बाबूजी सडमी लेकर आये। यह भाग-दौड उछीने लिए थी। बोले 'दया आज तुम लोगके लिए पर येनेकी वह पम्पकगस' पानी बनायी ह कि बग हाँ। पर देगवी थोड़ी छाटी थी और छतनी बनी इसी

कारण वह अदर तक नहीं जा पा रही थी, पर कोई बात नहीं, पक गया ह।” क्या बताऊँ उस अपूर्व व्यजनका स्वाद। उस पकीटोकी पहली विशेषता यह थी कि उसमें स्वादोंका आरकेन्द्रा बज रहा था यानी मिठाई, नमकीन, मिर्चई और खटाईका सम्मिलित स्वाद, दूसरी विशेषता थी कि एक तरफ ता ये अदभुत पकीडियाँ कच्ची थी, दूसरी तरफ बिल्कुल जली हुई। सब मिलाकर ऐसा मधुर स्वाद था कि बस ‘समुझि मन ही मन रहिए।”

इसी तरह बाबूजीका कहना ह कि अँचारमें मसाला और तेल होना चाहिए फिर चाहे ककड-मयर, लोहा-लक्कर कुछ भी डाल दो स्वादिष्ट अँचार हा ही जायेगा। इसी बातपर एक दिन हमने बाबूजीके साथ एकमत होकर भँसीड और आमरा अँचार बनाया। इसमें कोई शक नहीं कि वास्तवमें वह बहुत स्वादिष्ट बना था। यद् दूसरी बात ह कि माँ बुरी तरह नाराज हुई थी कि कितना सारा मसाला उसमें नष्ट किया गया और कितने तेलका सत्यानाश हो गया।

छर, तेल चाहे कितना भी नष्ट हुआ हो पर मेरी समझमें कोई बहुत नुकसान नहीं हुआ क्योंकि उस नुकसानकी पूर्ति बाबूजी कर ही दते हैं। वह ऐसा कि अपने बालमें तेल बाबूजी महीनो नहीं लगाने। पर जब भी भूले भटके कभा तेल लगाकर दान्ती बना लेते ह (क्यान्नि दाढ़ी भी जरा कम ही बनाते ह) तो उस तिन खूब ‘टन्न मन्न हाकर ‘गुप्प’ बन बठे रहते हैं। ताकि सभी उन्हें आते-जाते देख लें और कहें कि वाह! वाह! कसी दिव्य छटा ह। माँ प्राय गुस्सा करती ह कि ‘औराना दखिए मत्र लाग कस तरीकेसे रहते ह। साफ कपडा पहनते ह ढगस बाल बनाते ह और एक आप ह कि बस न कभी तेल लगाते ह और न साफ कपडा ही पहनते ह’। रोज रोजका कहना था नि एक दिन आखिरका गुस्सा आ ही गया और बाबूजी भर भर पहुँचे हमारे कमरेमें। उन त्तिना मेरी तबीयत ठीक न थी। म एक ‘टाँनिक’ लिया करती था। बाबूजीने समझा भाई बलिया तेल ह। सा पूरी ट्येली भरकर चुपाट लिया निरपर और खूब जार शारसे रान्न लगे। दवामें लस रवाना थी सो बाल चिटचिट चिटचिट करने लगा। बाबूजीने मुझसे कहा “दख ता तुलू यह तेल कमा चिटचिट चिटचिट कर रहा ह ?” म बीमार थी फिर भी हँसी रोक न पायी। बोली—“यह ता दवा थी। टाँनिक।”

“क्या ?”

बाबूजी अजर हरानोम बाटे—“बन्नु ता आ रही थी पर मने सोचा भाई ‘माँडन आयल’ होगा। व चुपचाप राम राम करते बायम्में घुस गये

और साबुन लगाकर सूब मल-मलकर नहाया । फिर उन्होंने देखा तो पासम तेलकी दीशी दिख गयी । इस बार बड इत्मीनानसे उन्होंने तेल लगाया । उनके मनमे सन्तोष था कि बालका हस्तापन नी चला जायगा और उस टॉनिक की गन्ध भी । परम सन्तोषके साथ तेल मालिश करते जब बाहर आये तो उन्ह लगा कि कहीसे फिनायलकी गन्ध आ रही ह । काफी अवपणके बाद पता चला कि यह गन्ध उनके मिगमे आ रही ह और उन्होंने इस बार मुगचित तल समझकर फिनायल लगा ली ह । और फिर न पूछिए कि क्या हसी हुह, आसमानमे गिरे तो एजुरपर अटके ! दवाई धोकर फिनायल लगा ली ।

सर ऐसी घटनाएँ प्राय होती ही रहती है पर उसके लिए काइ राना या गाना ता नही छाड सकता न ? कम लोगाको पता ह कि बाबूजीको गानेका भी शौक ह । इसमें काई फफ नही पडता कि सभी गानाका एक ही राग हाता ह । मतलब यह कि बाबूजी एक अच्छे संगीत निर्माता भी ह । जिन रागाका लेकर लाग बड-बड गान करते है, रियाज करत ह व सब बाबूजीन पास आवर परम प्रेमसे 'एकलय हो जाते है । उसमे काई भेदभाव या अलगग नही रहता । व रवीन्द्र संगीतसे लेकर ससृष्टये श्लोक और हिन्दीके गीत एक ही रागम गा लेत ह ।

बगीचा लगातम नी धानूजी निपुण ह । हालाकि उसस फलकी आशा नही रखते, क्याकि 'गीता में ऐसा ही कुछ भगवान्ने कह लिया ह । पर मांसे यहाँ भी बच नही सवते । किसी-न किसी बातपर मतभेद होता ही रहता है ।

साहित्यिक जगतके लिए बदाचित यह नया समाचार ह कि 'बाबूजी' एक कुशल और निपुण चित्रकार भी है । यह दूसरी बात ह कि व चित्र और किसाके लिए बोधगम्य हा या न हो पर बाबूजी तो बनाते ही रहते ह । मला कीन 'मॉडन आर्टिस्ट' चित्र बनाना सिफ इसीलिए बढ करेगा कि हमें या आपको समझमें नही आता । सी, बाबूजी भी चित्र बनाते ही रहते है और सदा ही आधुनिकतम कलासारामे धार काम आगे रहते ह ।

इस तरह बाबूजी गत्य चिकित्सासे लेकर पाकविद्या संगीत-कला, चित्रकला, उद्यान-कला आदि विविध विषयोके ममन ह । उनक बच्चे सब विषयामें उनक विद्वन्स्त सहायक रहते है और माँ सबकी बटोर समीक्षिका । बाबूजी निर्विचार भावसे अपनी कला-साधनाम लगे रहते ह । पर ह व विगुड अफग बाभी हो ।



श्री द्विवेदीजी

साहित्य-साधना और व्यक्तित्व

• •

श्रीताराम सकसरिग

श्री द्विवेदीजीका जितना भी सम्मान हम कर सकें वह कृतव्य-जैसा लगता है। था तो वे अपने साहित्य और विद्वत्ताके द्वारा सदा सम्मानित रहेंगे, पर जो लोग उनका गान-द्वारा लाभान्वित हुए हैं, तथा समाजको उनकी विद्वत्ताना, उनके साहित्यका, और मुझे ऐसा लगता है कि उनके चर्चित्वका भी जो लाभ मिला है उसमें समाजका यह एक साधारण कृतव्य है कि वह कुछ अशाम उस श्रेणमें उद्भूत है, उस चर्चित्व प्रति अपनी श्रद्धा सम्मान, कृतव्यता आदि प्रकट करके।

द्विवेदीजीके साहित्यके सम्बन्धमें साहित्यकार लोग लिखेंगे, मैं अपनेको साहित्यपर लिखनेका अधिकारी नहीं मानता। पर उनके व्यक्तित्वको जो छाप मेरे मनपर प्रथम दिन पड़ना मिला उस समय पड़ी वह स्थायी और बहुत महत्वपूर्ण है। यह प्रथम दृष्टि बादमें अपनापामें परिणत हो गया।

सन् १९३४ में अपने विशारदकी लक्ष्मिका लैकर श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदीक साथ शान्तिनिवेदन गुरुद्वके दान करने गया। अथ बातोंके अन्तर्गत गुरुदेवने कहा कि "मैं हिंदीका एक चेर विश्वभारतीमें करना चाहता हूँ जिसके लिए मेरे पास हिंदीका एक बहुत ही बड़ा विद्वान् है। उक्त सम्मानके योग्य कर्ममें मैं नहीं दाना। श्री निबन्धनात्मी गुप्त इस स्थानके लिए मुझे साठ रुपया दते थे। वह भी इस वयसे बढ़ जायेगा। मेरे पास जो सज्जन हैं वेसा आत्मा सोजनेपर भी नहीं मिल सकता। व ता विश्वभारतीके भाग्यसे बढ़ा आ गये हैं।" यह परिचय था गुरुदेव श्री द्विवेदीजीके सम्बन्धमें। जब हिंदी जगतने उन्हें नहीं पहचाना था और उनका साहित्य भा सामने नहीं आया था। गुरुदेवकी मूर्ध और उनका गान तथा सबसे अधिक उनके हृदयकी विशालता, जो मुग्ध होकर गुणोका आनंद कर सकती था, उसका अनुभव तो नजदीक रहनेवाला ही कर सके है। मने तो इसके पढ़ने श्री द्विवेदीजीके नाम भी नहीं सुना था, जिन्होंने ही ता गान ही था। पर इस परिचय और प्रथम मिलनमें मनमें एक ऐसा

भाव पैदा हुआ कि वह एक प्रकारसे अमिट-सा है। मेरी लड़कीने, जो उस समय चौदह बरसकी थी, कहा कि "बाबूजी, गुग्गुलु हिंदीके लोगोंको कहाँ जानते होंगे, इसलिए इतनी प्रशंसा कर दी।" पर वास्तवमें हमलोगानों ज्ञान नहीं था उस समय श्री द्विवेदीजीके बारेमें।

हजारीप्रसादजीने विश्वभारता और गुग्गुलुकी जो सेवा की शायद उसका ही प्रभाव है कि वे इतने सफल साहित्यकार बन सके। विश्वभारतीमें हिंदी भवनकी स्थापना भी इन्हीं सब बातोंको लेकर हुई और द्विवेदीजीकी सेवा-द्वारा इस भवनकी सायकता प्रमाणित होनी लगी।

इसके बाद शान्तिनिकेतन जानेका अवसर अनेक बार आया। गुग्गुलुकी कृपाका एक अंश प्राप्त होता रहा। द्विवेदीजीके साथ रहने, उठने-बैठने आदि बातें करनेका सुयोग मिलता रहा। द्विवेदीजीके व्यक्तित्वकी अनेक बातें हैं जो उनकी सरलता और हृदयकी विशालताको प्रकट करती हैं। विश्वभारतीकी सेवा करते समय उनके भीतरका साहित्यकार बहुत ही उन्नत हुआ। गुग्गुलुकी महानता का उनके जीवनपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उस समय शान्तिनिकेतनमें बहुत उन्नत कलाकारोंका पारस्परिक सहयोग था। जैम, आचार्य शक्तिमाहन मन, आचार्य नवलाल दगु, आचार्य गुरुदयाल मल्लिक, आचार्य विद्युशेखर शास्त्री आदि बड़े-बड़े विद्वान्-साधक-सन्त चिंतक लोगोंके निकटतम सम्पर्कमें उनकी साहित्य-साधना उन्नत होती रही। सबसे बड़ा बात है साहित्यकारकी मानस साधना। साहित्यिक द्वारा समाजका मंगल ही उसका मन्त्रा सुजन है।

ऊपर जिन आचार्योंके नामोंका उल्लेख मैंने किया है उनको मन देना भी है। उनका जीवनकी सरलता, सादगी अथवा परिश्रम और निरभिमानता ही उनकी बड़ा थी। उनका व्यक्तित्व प्रभावित करता था। आचार्य द्विवेदीजीने इन सबका सत्संग प्राप्त किया, और गुग्गुलु रवीन्द्रनाथकी कृपा प्राप्त की। मैं क्या लिखूँ। मैं ऐसे लोगोंका जानता हूँ जिन्होंने इन व्यक्तियोंके साहित्यिक एवं ऐसी दृष्टि, जो सत्यकी साधना की जाती है, प्राप्त की।

आचार्य द्विवेदीजीके साहित्यकारका ही नहीं उनके भीतरके मानवता विकास भी इसी वातावरणमें हुआ। उनका व्यक्तित्व मुझ बहुत प्रभावितमान लगा। कई मौकोंपर इन तीससे ज्यादा वर्षोंके सम्बन्धमें अनेक प्रसंग आते रहे हैं। सब भरे मनमें उनसे प्रति प्रीति ही नहीं, एक श्रद्धा जगी है और उनके व्यक्तित्वमें माह लिया है। मैं समझता हूँ एसा कबल भरे साथ ही नहीं, उनका अनेक मित्र-साह योगा साथी और बड़ा मन्त्रा-गण्य-वर्गके साथ हुआ होगा। द्विवेदीजीके द्वारा द्विवेदीजीकी सेवा दीवकाउ तय हाती रह—यही प्रायना है।

आचार्य द्विवेदीके शब्दोमे जब अपनेको भूल गया ।

• •

दिवेकी राय

‘घय हो आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ।’ मने वास्तविक स्थिति का नाम होनेपर थडातिरक्म मुग्ध भावमे कुछ चौंकर कहा, पर वहाँ आचार्यजी वहाँ थे ? वे तो स्मृतिपर ‘गण्डि रूपम’ छाये हुए थे । अल्बत्ते एक बूना हँनिया लाठी और रस्ती तिये सामने आमके पडकी जडपर बटा था । उमने समया हमें ही कुछ कह रह ह ।

“हमार नाव त जगजीतन ह । बेवे खाजन बानी बबुआ जी ?’ बूढेने हमारी ओर आँखें टाँगकर कहा ।

मगर म क्या उत्तर दता ? उस बने समयाता—एक जोर ही ‘जगजीतन के जादूमें म मूल बना हूँ । गायद उमने भी पीछेकी आर हँसोवाली औरताकी तरह हम पागल ही समया ।

बात उन गिाका ह जब अभी बेचल साहित्यका नाम भर जाना था और साहित्यका विद्यार्थी होने जा रहा था । ग्राम पिपरा (बलिया) में स्वायाय प्रेमी एक अध्यापक थे श्री वामुदेवमिहजी । नयी-नयी पुस्तकोकी खोजमें प्राय छुट्टिमामें उनके यहाँ जाता । वहाँ खूब बठकी जमती । बर्द और लाग आते । मुख्य चर्चाका विषय अध्यात्म था जिससे मिलसिलेम बरमिद, गात्री, तुलसी और कबीर आदिपर चर्चा होती ।

एक दिन श्री वामुदेवमिहजीने कहा, “कबीरपर एक बहुत सुन्दर नयी पुस्तक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने लिखी ह जो ‘गान्धिनियेनमें प्राध्यापन हँ और बलिया गिलेके ही निवासी ह ।” उन्हाने फिर कहा, ‘पुस्तक म पर रहा हँ और कबीरको समझनवे लिए इनसे अच्छी कोई पुस्तक नहीं ह । इम पत्रकर ऐसा लगता ह कि इसवे पूव कबीरपर जो कुछ भी लिखा गया ह वह कुछ नहीं लिखा गया ह । लेखकी लेखनीम जादू ह । क्या जगन्नीस बनू ?’

अत्युत्प्रेषण लेखन’ श्री जगदीश नारायण रायजी, जो उन समय एकमात्र

चीज अपनी हो जाती है। 'कबीर' की महत्त्वपूर्ण पत्तियो और अंगोंका किन्तु मैंने रखा नहीं था। वास्तविकता यह थी कि व स्वयं ही था ही गये थे। आचम द्विवेदाकी गैलीका यह चमत्कार था। जो एक बार चित्तपर चढ़ा, फिनला नहीं। फिर वह एव भावुक अवस्था थी। एक गजबकी नगीवाली, उमगवाली आयु थी।

मने चतुर्वेदीजीसे सगव कहा 'अब आप कबीरके बारेमें जा कुछ पूछिए बताऊँ। चाहे जुलाहा जातिके इतिहासके बारेमें, योग पद्धतिके बारेमें, चाहे कबीरके व्यक्तित्वके बारेमें कि मध्यकालम ऐसे दुष्टप व्यक्तित्ववाला बार्दी पैदा नहीं हुआ, एकदम रू, उग्र और बेपरवाह चाहे कबीरके गमके बारेमें अथवा उनकी उत्पत्तिविषयके बारे में।'

रातमें जमकर मेरा प्रवचन हुआ। मेरे मुखसे भर भर लच्छेगार विचारों तेजस वाक्याका निकलते देखकर चतुर्वेदीजी हस्का-बकना हो गये। मन कहा, 'अब तो आप यह रस्य जा ही गय हाम कि किस सात-ब्रह्म में इस प्रकार धागप्रवाह बोलना है?'

'हा, कबीर' को देता ह" चतुर्वेदीजीने उत्तर दिया, 'मालम होता ह सारी पुस्तक कण्ठस्थ हो गयी ह।'

नहा घट वात नहीं ह, परन्तु अधिवाग स्थल मनपर छप गये हैं। गमय गलगात्र गद्यमें भी कविताकी तरह विचाराका सुर अनुभूतियाकी लयात्मकता और व्यजनाकी जनकार हाती ह। इसीलिए गद्य कविताकी कसौटी ह। सूखी शागवलीमें प्राण विरोना, अपन व्यक्तित्वको उसम घोठ दना और निर्जीव शब्दों का सजीव बना दना ऐसी गद्य-कला ह जो खीचती ह और खीचती ह तो चिपट जाती ह। अनायास अपनी हो जाती ह।

दूसर दिन सुप्रह हम लोग पिपरा चले। जायेका दिन था। गुलाबो वृष मदराय छतापर फगी थी। हवाम सुख ठणक थी। "कुत्र होता चते" — चतुर्वेदीजीन प्रस्ताव किया। मेरा प्रामोदान बज उठा—

'कहाँम शब्द बरू? अच्छा सुनिग कबीरका वाग्य कविता करना उनका लक्ष्य नहीं था पर उनकी कविताम ऊची चीजें प्राप्त ह।'

और म अत्र गीना ओर लगे खेनेके साक्षमें नही बल्कि 'कबीरके पत्रके बीचसे चल रहा था कभी सरपट कभी कूट फाँकर और कभी रुककर। जब सचमुच रचना तो पछ गेता, 'कहिए टीक ह?' मुझे स्वयं ऐसा लगने लगा कि बहुत बजाइ बोल रहा हूँ। एवदम मन्न होकर बोल रहा हूँ। सब-कुछ भूल जाता हूँ। बात-स्वभाव था, गायन यह गद्य ही उभग कि चतुर्वेदीजीके

लिए तो मैं आचाय द्विवेदी-जना ही हा गया। इस गवके परिणामस्वरूप मेरे बोलनेमें अभिनयात्मकता आ गयी। हाथ भाँज भाँजकर मैं ऐसे बालता जस सच मुच दो चार हजारके मन्त्रमें मच मेरे हाथ है। मेरा इस दुबलताको चतुर्वेदीजी जान गये थे। अब इस कुछ मतोरजनके रूपमें लेने लगे थे। यद्यपि यह बात मुझे भी मालूम हो गयी तथापि मैं 'क्वार पर अपने सिद्ध वक्तापनके विनापनके इस अवसरका हाथसे जाने नहीं देना चाहता था।

वाई था नहीं। रास्ता सुनसान था। आगे-आगे मैं और पाछे-पीछे चतुर्वेदी-जा। पिपरा गाव लगभग चार मील दूर है। जब आधा दूरी तय की जा चुकी तो मैं कबीरकी नापापर 'बाल' रहा था—

'मस्त्रुतक कूप जल्का छुाकर उहाने भापाके बहते नीरमें सरस्वतीकी स्नान कराया। उनकी भापामें बहुत सा बालियाका मिश्रण है, क्योंकि भापा उनका लय्य नहीं था। अनजानमें वे भावकी सृष्टि करते जाते थे ।'

और जब बालनेका सुर बँध गया तो मैं देश-कालमें उपर उठ गया। बम अब मैं था और आचाय द्विवेदीम उभार लिये गये कबीर थे। रास्तमें जब कोई गैर आत्मी मिलता तो हाथ मुँकी मुद्राआका कुछ समयित कर लेता पर बालना नहीं रफता, क्योंकि श्राता सत्ता मेरे पाछे-पीछे चुपचाप सुनता चला आ रहा था। कुछ दूर जागे चलकर ऐसा हुआ कि एक जगह रामक विचारों कुछ औरतों घाम काट रती थी। जब मैं कुछ इतर ही था तभीसे वे मेरी आर चौक-चारकर देखने लगीं। जब उनके पास आ गया तो वे हँसने लगी और आपसमें एक-दूसरकी आर दखकर कुछ साँय-पुम करने लगी। उनका इस प्रकार देखना हँसना और साँय पुम करना कुछ अजीब तरहका लगा। मैंन साचा— गैवारिन हूँ, क्या समनें ? उस समय मैं बेनी मुट्टियाकी हवामें भाजकर बाल रहा था।

'क्वार भापाके डिक्टेटर थे। भापा जब उनके सामने लाचार-भी नजर आना ह। उसमें हिम्मत नहीं कि इस मस्त फलतकी किसी प्ररमाइका पूरा करनमें इनकार कर द। उसमें मैं जा कुछ बहलवाना चाहते थे बहलवा लने है। यन गया तो सीधे-सीध नहीं ता दरेकर ।'

अन्तिम वासय बहन बहते मन हाथम हवामें हा एक जबरान्स्त दरग लिया और जब मेरी इस क्रियाम मामने आनस पत्का जम्पर बठे एन बूटकी आगाम उमा कौतुक और हागपर उमी हँमाका भान हुआ जा पीछे आगतामें दखा थी ता कुछ माया टनना। मन पीछे मुक्कर दगा।

'अरे ? चतुर्वेदी ? ?'

मेरे मुँहमें निबन्धा और मैंने जाना कि अकेले पागलोनी तरह हाथ मँजते
 यक-यक करते म चला आ रहा हूँ और पीछे बहुत दूर एक जगह रास्तेपर हा
 चतुर्वेदीजी हँसते-हँसते लोट-पोट हैं ।

बात यह हुई कि इस पकार अपने और आतामे भी बेखबर होकर मुझे
 बोल्ते चरते देखकर चतुर्वेदीजीको मजाक मूना और वे एक जगह रास्तेपर
 चुपचाप बैठकर सुरती मलने लगे । इधर मैं गपतुलह्वाम-सा अपना पाठ
 बोल्ता जसे इस काण्डम बेखबर पकवत चला आ रहा था । जब शटका लगा ता
 होश हुआ । अरे, मैं कसे इस प्रकार बेहाग भाषण करता आ रहा था ? अनायास
 हाथ नुड गये, मिर झुक गया और मैं बौक उठा—

‘धय हां जावाम हजारीप्रसाद द्विवेदी ।’

यह बात मेरी डायगम नाट है ।



मरे कचेका गोदम दबाये रहनेवाली बँदरिया मनुष्यका
 आदम नहीं बन सक्ती । परंतु मैं ऐसा भी नहीं लोच
 सक्ता कि हम नयी अनुसंधितसाने अनेम चुर होकर अपना
 मरबम खो द । कालिदासने कहा था कि मर पुराने अच्छे
 नहीं हाते सब नये खराब हा नहीं हात । मले लोग दानोकी
 जाँच कर लते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते द और
 मू लोम दूसराक नशारपर भटकत रहत हैं ।

— कल्पलता (पृ० ५)

जीवन-चित्र नखदर्पणमें

• •

हजारोप्रसाद द्विवेदी, (बचपनका नाम वैजनाथ द्विवेदी) थावण शुबल एकादशो मन् १९६४ (१९०७ ई०) को जम । आरत दुवेका छपरा, आझवलिया, बलिया, उत्तर प्रदग । पिना श्री अनमोल द्विवेदी और माता श्रीमती ज्ञातिष्मती । १९२७ ई० म श्रीमती भगवती देवीके साथ विवाह । सत पुत्र-पुत्रिया । सम्कृत महाविद्यालय काशीम शिष्या प्राप्त की । सन् १९१९ मे सस्कृत साहित्यम शास्त्री और १९३० म ज्योतिष विषय लेखर शास्त्राचार्यकी उपाधि पायी ।

८ नवम्बर १९३० को हिंदी गिअवके रूपम शान्तिनिष्ठतनमे कार्यारम्भ । वही अध्यापन '३० से '५० तक । अभिनवभारती ग्रथमागका सम्पादन, कठक्ता १९४०-४६ । बंगीय हिन्दी परिपद्म दो व्याख्यान सन् १९४० म तथा हिंदी त्रिद्यापीठ देवघर समावतन भाषण १९४० म ही । 'विश्वभाना' पत्रिकाका सम्पादन, (१९४१-४७) । अगिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके कराची अधिवेशन (१९४९) की साहित्य परिपद्मे अध्यक्ष । अखिल भारतीय ओरिएण्टल कॉफ्रम दर भगा अधिवेशन (१९४८) के हिन्दी विभागके सभापति । हिन्दी भवन विश्वभारतीके मन् १९४५-५० ई० । लखनऊ विश्वविद्यालयमे सम्मानाय डॉक्टर आव लिटरेचरकी उपाधि १९४२ ई०म प्राप्त । सन् १९५० म काशी हिन्दू विश्वविद्यालयम हिंदी प्रोफेसर और हिंदी विभागाध्यक्षके पदपर नियुक्ति । विश्वभारती विश्वविद्यालयकी एक्जीक्यूटिव वाडन्सिलके सदस्य (१९५०-५३) । साहित्यके ममपर तीन व्याख्यान लखनऊ विश्वविद्यालयम आयोजित १९५० ई० म । काशी नागरी प्रचारिणी सभाके अध्यक्ष (१९५२-५३) । त्रिहार राष्ट्रभाषा परिपद्, पटनाम हिंदी साहित्यके आदिकालपर पाँच व्याख्यान सन् १९५२ ई० म । प्रथमी बग साहित्य सम्मेलनके पटना अधिवेशन (१९५२) के सम्पूर्ण भारतीय साहित्य विभागके सभापति । साहित्य

मेरे मुँहमे निबला और मने जाना कि अकेले पागलाकी तरह हाथ भाँजते बक-बक करते मैं चला आ रहा हूँ और पीछे बहुत दूर एक जगह रास्तेपर ही चतुर्वेदीजी हँसते-हँसते लोट-पोट हैं ।

वान यह हुई कि इस प्रकार अपने और श्यामामे भी बैखवर होकर मुझे बाने चलने देखकर चतुर्वेदीजीकी मजाक सूझा और वे एक जगह रास्तेपर चुपचाप बैठकर सुरती मलने लगे । इधर मैं खफतुलहवाम-मा अपना पाट धोता जैसे इस काण्डस बैखवर पूबयत चला आ रहा था । जब झटका लगा ता होश हुआ । अरे मैं कमे इस प्रकार बेहोश भाषण करता आ रहा था ? अनायास हाथ जुड गय, निर चुन गया और मैं बोल उठा—

घय हो जावाय हजारीप्रसाद द्विवेदी !

यह बात मेरी डायरीम नाट ह ।



मेरे बच्चेका नाम दबाय रहनेवाला बदरिया मनुष्यका आदय नहीं बन सकती । परन्तु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नहीं अनुसन्धितमाके नशेमें चूर होकर अपना सर्वस खो द । कालिदासने कहा था कि सब पुराने अच्छे नाम होते सब नय खराब हा नहीं होते । भले लोग दोनोकी जाच कर लते हैं जो हितकर होना है उसे ग्रहण करते हैं और मूल नाम दूसराक एकारपर भटकते रहते हैं ।

— कल्पलता (पृ० ५)

जीवन-चित्र नखदर्पणमें

हजारों प्रभाव द्विवेदी, (बचपनका नाम वैजनाथ द्विवेदी) श्रावण शुक्ल
 एकादशी मन्व १९६४ (१९०७ ई०) को जन्म । भारत दुनेना उपरा,
 आजवल्या, बल्या, उत्तर प्रदेश । पिता श्री अनमोल द्विवेदी और
 माता श्रीमती ज्ञातिपती । १९२७ ई० में श्रीमती भगवती देवीके साथ
 विवाह । सात पुत्र-पुत्रिया । ससृष्ट महाविद्यालय काशीम शिक्षा प्राप्त
 को । सन् १९१९ में ससृष्ट साहित्यम शान्ती और १९३० म ज्ञातिप
 विषय लकर शास्त्राचार्यकी उपाधि पायी ।

८ नवम्बर १९२० को हिन्दी शिक्षाके रूपम शान्तिनिकेतनम कार्या-
 रम्भ । वही अध्यापन '३० में '५० तक । अभिनवभारती ग्रन्थमागारा
 सम्पादन, कलकत्ता १९५०-५६ । बंगीय हिन्दी परिपद्म दो व्याख्यान
 सन् १९४० म तथा हिन्दी विद्यापीठ देवघर समावर्तन भाषा १०६०
 म ही । 'विश्वभारती' पत्रिकाका सम्पादन, (१९५१-५३) । अगि
 भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके कराची अधिवेशन (१९५०) की
 साहित्य परिपद्मके अध्यक्ष । अगिल भारतीय ओगिण्टक का प्रस द
 भाग अधिवेशन (१९६६) के हिन्दी विभागके सभापति । हिन्दी भवन
 विश्वभारतीके सचालक १९६९-७० ई० । लखनऊ विश्वविद्यालयमें
 सम्मानाय डॉक्टर आव लिट्रचरकी उपाधि १९६० ई०म प्राप्त । सन्
 १९५० म काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दी प्रोफेसर और हिन्दी
 विभागाध्यक्षके पदपर नियुक्ति । विश्वभारती विश्वविद्यालयकी एकजी-
 क्यूटिन वाडन्सिन्के सदस्य (१९५०-५३) । साहित्यके मर्मपर तीन
 व्याख्यान लखनऊ विश्वविद्यालयम आयोजित १९५० ई० म । काशी
 नागरा प्रचारिणी सभाके अध्यक्ष (१९५२-५३) । मिहार राष्ट्रभाषा
 परिपद्म, पटनाम हिन्दी साहित्यके आदिकालपर पाँच व्याख्यान सन्
 १९५२ ई० म । प्रवासी उग साहित्य सम्मेलनके पटना अधिवेशन
 (१९५२) के सम्पूर्ण भारतीय साहित्य विभागके सभापति ।

अकादमी दिल्लीकी साधारण सभा और प्रबन्ध समिति तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद और अनेक विश्वविद्यालयीय एकेडेमी काउन्सिलोके सदस्य । नागरी प्रचारिणी सभा काशीके हस्तलेखोकी खोज (१९५२) तथा साहित्य अकादेमीसे प्रनामित नेशनल विद्ययोगिणी (१९५४) के निरीक्षक । रवीन्द्र भारती, वाराणसी (१९५३) तथा अखिल भारतीय-हिन्दी परिषद् (१९५५) के अध्यक्ष । राजभाषा आयोगके राष्ट्रपति मनोनीत सदस्य (१९५१) । अलीगढ़ विश्वविद्यालयमें वकीरपर व्याख्यान सन् १९५५ म । १९५७ म राष्ट्रपति-द्वारा 'पद्मभूषण' उपाधि से सम्मानित । १९६०-६७ पञ्जाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़में हिन्दी प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष । सम्प्रति वही टैगोर प्रोफेसरके रूपमें कार्यरत । सन् १९६२ म साहित्य अकादेमी-द्वारा टैगोर पुरस्कार ।

रचनाएँ

सूरसाहित्य [इन्दौर हिन्दी साहित्य समिति द्वारा स्वर्ण पदकसे सम्मानित १०४० ई०], हिन्दी साहित्यकी भूमिका, वकीर [१९४७ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा मंगलप्रसाद पुरस्कार] प्राचीन भारतका कला-विज्ञान [प्राचीन भारतका कलात्मक विज्ञान नामसे प्रकाशित], नाथ सम्प्रदाय (उत्तर प्रदेश सरकार-द्वारा पुरस्कृत) बाणभट्टकी आत्मकथा (काशी नागरी प्रचारिणी सभा-द्वारा द्वितीय स्वर्णपत्रसे सम्मानित) अमोघके फूल, विचार और चिन्तन, कल्पलता, हिन्दी साहित्यका जादुवाला, हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास (३० प्र० पुरस्कार) मध्यकालीन दर्श-साधना, साहित्यका माथी (गालियनहचर नामसे परिवर्धित प्रकाशित), साहित्यका मम, विचार प्रवाह सक्षिप्त पृथ्वीराज रामो, सप्तशरामर (मह सम्मान) कालिदासकी लालित्य याजना, भारतीय नाट्य परम्परा, मत्स्यजय रवीन्द्र चाम्बेन्द्रलाल, मधुदूत एक पुतली कहानी, नाथसिद्धाकी वानियाँ, दुटम, प्रबन्ध चिन्तामणि (हिन्दी अनुवाद) प्रबन्ध बोध और पुराने प्रबन्ध संग्रह (जय मन्मथ द्वारा अनुवाद, अप्रकाशित), रवीन्द्रका अनेक वगैरे रूतियाँके अनुवाद । लालित्य तत्त्व तथा पुनर्नवा (अप्रकाशित) ।



इतिहास-दर्शन

*

द्विवेणीयने स्पष्ट विवेकादी इका-परम्परामे भिन्न प्रतिज्ञा की है। वे साहित्यका विभिन्न प्रवृत्तियों और उसके मूल और वास्तविक स्वरूपका स्पष्ट परिचय देना ही अपना नया दायित्व करते हैं। वे आकलनवाजियों और अप्रसंगिक विरचनाओं तथा नाम गिनानेका प्रवृत्तिसे बचनेको भी काटिका करते हैं यद्यपि अद्यावधि नये-कार्य परिणाम समाहित करनेकी जानश्यकता मानते हैं। इस प्रकार द्विवेणीय जनकानैक युक्तो चर साहित्यविहासकारोंकी तुलनामें हिन्दोमें पहली बार—क्याचित् समस्त भारतीय भाषाओंमें सबसे पहले—आचार्य शुक्लने द्वारा प्रकृत विधेयवादी साहित्यविहाससे भिन्न साहित्यिक साहित्यविहास लिखनेके नये अधिकारी सिद्ध होते हैं। साहित्यिक प्रवृत्तियों और परम्पराओंकी उद्गम सीमासा उनको एक पहलम गृहीत प्रणाला रही है।

— नन्दनरितोचन रमा
[साहित्यका इतिहास] पृ ६४

इतिहास-लेखन

और आचार्य द्विवेदी

• •

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव

इतिहास-लेखन सिद्धान्त और स्वरूप

साहित्यका इतिहास-लेखन ज्ञान विज्ञानके अर्थ क्षेत्रमें लिखनेवाला इतिहासकारों की भाँति ही एक इतिहासकार होता है। अन्तर्गत्त ह तो केवल इतना कि साहित्यका इतिहास-लेखक साहित्यिक कृतियोंके माध्यमसे उपलब्ध मानव जीवनके इतिहासकी अपना मूलभूत लक्ष्य मानता है जब कि अर्थ क्षेत्रमें इतिहासकार अपनी विविध विषय परिधि—चित्रकला, मूर्तिकला, वाणिज्य, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र इत्यादि—में अभिन्न मानवजीवनके विकासका अपना आसार बनाने है। यही कारण है कि साहित्यका इतिहास-लेखक भी अर्थ इतिहासकारकी भाँति पहले इतिहासकार है और बादमें साहित्यका आलोचक भाषा विद अथवा पाठालोचक। ध्यान देनेकी बात है कि साहित्यका इतिहास, साहित्यका आलोचना-सिद्धांत नहीं, न वह पाठालोचन (Textual criticism) है और न ही वह भाषाशा इतिहास ही है। साहित्यका इतिहास-लेखक अपने लेखनेके समय उनकी सहायता लेता है और एक तरहसे देखें तो बिना उस मदके वह अपने दायित्वका सही अर्थोंमें निर्वाह करनेमें असमर्थ नरक है। अतएव कृतियाँ का सही मूल्यांकन न हो जाये, उसमें अभिन्न मानव जीवनका सही निदर्शन सामने न आ जाये और उसकी साहित्यिक विविधताओंपर समुचित प्रकाश न पड़ जाये, साहित्यका इतिहास लिखना ही सम्भव नहीं। इसी प्रकार रचनाओं के पाठोंकी प्रामाणिकता जतनव मिट न जाये अथवा कृतियोंमें प्राप्त नये गणनेके मध्य-घोका समुचित निदर्शन सामने न आ जाये प्रामाणिक और निर्विवाद इतिहास लिखना ही नहीं जा सकता। जिस भाषाने मान्यमने साहित्यिक कृतियों अपना अभिन्न पानी है, उस भाषाका स्वयं अपना इतिहास साहित्यके इतिहासके साथ जुटा होता है, अतः जतनव भाषा और उसके इतिहासका ज्ञान न मिल जाये साहित्यका इतिहास खन अरना ठास आसार

बना ही नहीं सकता ।

अतः साहित्यिक इतिहास-लेखनकी वा आवश्यक शर्तें-सी हैं । जबतक ये शर्तें पूरी नहीं हो जाती, इतिहासका सही रूप सामने नहीं आ सकता । पहली शर्त है कि इसके पूर्वके विज्ञान साहित्य विशेषका इतिहास लिखा जाये—उस साहित्यमें उपर्युक्त कृतियाँका विश्लेषण उससे पाठकों वाचनिक परीक्षण और उस भाषाका, जिसमें साहित्य लिखा गया है भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन सम्पन्न हो चुका हो । अगर यह नाम पहले ही सम्पन्न नहीं हो चुका है तो निश्चित ही इतिहासकार गलत स्थानपर गलत ढंगमें, गलत विषयपर बल दया और सब इस गलती के लिए इतिहासकारको दायी ठहराना या उसका इतिहासमें अविच्छिन्न धारा प्रवाहके अभावके लिए उसकी आलोचना करना सबथा अनुचित होगा । (आचार्य चुक्करे इतिहासकी समीक्षा करते समय आलोचना प्रायः इस तथ्यको भूल जाते हैं ।) दूसरी शर्त है कि स्वयं इतिहासकारका साहित्य-शास्त्र, पाठालोचन और भाषा-विज्ञानका समुचित ज्ञान होना चाहिए । अगर वह इनमें दीक्षित नहीं तो अपना नियम लम्बे बह न तो स्वतंत्र रह पायेगा और न कृतियाँको उचित सम्बन्धमें समझनेमें सफल ही हो पायेगा ।

स्पष्ट है साहित्यका इतिहासकार, जय इतिहासकारको भाँति एक विशिष्ट वाच-क्षेत्र (इतिहास) का सदस्य होनेके बावजूद साहित्य-शास्त्र पाठालोचन और भाषा-विज्ञानमें अपने-आपसे अलग रहकर अपने दायित्वका निवाह नहीं कर सकता । और यहीपर उस एक बहुत बड़े क्षेत्रसे अपने-आपके वाचनकी आवश्यकता पड़ती है । अपने वाच-क्षेत्रकी सीमाका निर्धारित करत समय बहुत सम्भव है कि वह साहित्य और सामान्य सभ्यता पाठालोचन और काव्य-विभाजा वैज्ञानिक आलोचक और सृजनात्मक साहित्यकार आदिकी विभाजक रेखाका अन्त तक पकड़नेमें सफल न हो पाये । यह ठीक है कि यह विभाजक रेखा स्वयंसे पूर्ण रूपसे पूर्ण निर्धारित नहीं रहती और वहाँ-वहाँ ताँक एक दूसरेको इस प्रकार काटती आगे बढ़ती है कि उनकी अलग-अलग पहचान तकम नहीं आती । फिर भी जय इतिहास-लेखक एक बार अपनी मनिसे पहचानकर वाच-क्षेत्रकी सीमाका निर्धारण कर लेता है यह विभाजन रेखा भी स्पष्ट स्पष्टतर होता चलती है । भय रहता है कि केवल इस बातसे कि वही साहित्य-निष्ठा पाठालोचन अथवा भाषा-विज्ञानका उसका पक्ष पालित्वका रूप न ले ले । मगर तो यह कि उसका यह पालित्व पक्ष सबल हाव-भाव-बहुद इतिहास-लेखनके समय मूल-प्रवृत्तियों के अन्तर्गत ही देखा रहे, उतना ही सफल इतिहासकी सृष्टि सम्भव है ।

मूल प्रश्न यह है कि इतिहासका अपना काय-धर्म क्या है? इतिहास-लेखन की काय सिद्धि कौन-सी है? क्या इतिहासकार तथ्योंका कालक्रमानुसार भाव-संकलन करता है अथवा उसका लक्ष्य इन तथ्योंके विवरणके साथ उसकी व्याख्या भी है? और अगर व्याख्या उसकी काय-सिद्धिकी सीमाके भीतर है तो उसका आधार क्या है? क्या यह आधार 'व्यक्तिपरक' है अथवा वह वस्तु-परक भी हो सकता है? क्या इतिहास-लेखन स्वयंमें एक काय-पद्धति (method) की माँग करता है अथवा भावपरक हानके कारण वह केवल कल्पना-रजित कथा-संकलन है? साहित्यिक इतिहासके काम-क्षेत्रको उचित सन्दर्भमें समझनेके लिए इन प्रश्नोंका पक्के उत्तर पाना आवश्यक है।

इसमें सन्देह नहीं कि सम्प्रति विचारधारास मनुष्य सदा प्रभावित होता रहा है। यही कारण है कि जब कभी भी मनुष्यने कालका परदा उठाकर विगत जीवनकी शीकावे लेनका प्रयास किया वह निष्पत्ता एक तटस्थताका निभा नहीं पाया, पिछला घटनाओंकी जब कभी आलाचना प्रत्यालाचनानें वह प्रयत्नरत हुआ, उस समय उसने अपने ही युगकी मानतुलाके उपयोगको उचित समझा। इसलिए ब्राद्वेजा मत है कि प्रत्येक इतिहास वस्तुतः नमःसामयिक इतिहास होता है और लमिंगके अनुसार इतिहासकार अपने युगके इतिहासको छाड़कर अन्य किसी युगका इतिहास लिखता है नहीं। कॉलिगउडका कथन है कि इतिहासका अध्ययन स्वयं इतिहासकार होता है अतः इतिहास, इतिहासकारके स्वयं दृष्टि-विशेष-द्वारा मनन की गयी विगत घटनाओंका अभिव्यक्तिक अतिरिक्त और कुछ नहीं है (Speculum Mentis, p 236)।

यह मान्य है कि इतिहास किसी आँखा-दली घटनाका बणन नहीं होता। इतिहासकारका तो सत्र मात्र तटस्थ भवनायोग्य वनिपय तसम्बन्धा लिखित वृत्तान्त एक छुटपुट आख्याका ही सहारा मिलता है। इन सूच्याय पणायाम 'कथा हुआ'का तो पान प्राप्त हो जाता है पर वह घटना 'क्या हुई', उसका उत्तर उस नहीं मिलता। अतः इतिहासकारका काय केवल वस्तुओंका दाननामाय ही नहीं है अपितु उसके लिए वस्तुओंका 'पार जाना भी आवश्यक है, जो कॉलिगउडके मतानुसार पूर्वकल्पित कल्पनाके अभावमें सम्भव नहीं (Idea of history p 211)। साहित्यिक इतिहासमें इस कल्पनाका यागदान और भी महत्त्वपूर्ण हो उठता है। इतिहास-लेखनका एक काय-प्रणाली (method) के रूपमें स्थापना करनके बाद, अविच्छिन्न याग-प्रवाह और वागमयताके अतिरिक्त जिम तत्पर विविध क० विम्वट और कर्णाय द्रुक्स अधिक बल देते हैं वह है इतिहासकारका दृष्टि-विशेष। साहित्यिक इतिहास उनके अनुसार विना

विषी दृष्टिकोण विशेषके लिखा हा नही जा सकता । नटम्य और बज्ञानिक दृष्टिकोणके आधारपर लिखा गया इतिहास, इतिहासके धमका सही अर्थमें निर्वाह ही नही कर पाता (Literary criticism—A short history Indian Ed p १११)

ध्यान देनेकी बात है कि घटनाआकृति पर जानेकी प्रक्रियामें कल्पना तत्त्वकी महत्ताकी तो स्वीकार किया गया पर उन कल्पनाके स्वरूपकी कोई निश्चित आधारभूमि टूटनेका इन इतिहासकारान् कोई प्रयत्न नही किया । परिणाम भी स्पष्ट है । प्रत्येक इतिहासकार घटनाआकृति मनाविहित दृष्टिये देखनेका प्रयास करने लगा । फल यह हुआ कि एक ही घटना विभिन्न एकांगी दृष्टिकोणसे देखनेके कारण एक उल्लसित मी बनकर रह गयी । वैज्ञानिक दृष्टिये अभावमें घटनाआकृति सम्यक् विवचन नही हो सका । सबसे पहले द्वैतात्मक प्रणालीके आधारपर ऐतिहासिक आलोचना पद्धतिने इन नास्तिकाना निराकरण करते हुए कल्पनाका वास्तविक आधार ढूँढकर इतिहासको उसकी वास्तविकतामें देखनेका प्रयास किया । इमने भी इतिहासको 'व्याख्या' (Interpretation) के रूपमें स्वीकार किया और व्याख्याके लिए कल्पना-तत्त्वको उसका आवश्यक अंग माना पर कल्पनाके आधारको आजकी भाषा विचारधारामें न ढूँढकर, तत्कालीन सामाजिक अमगतियाम राजनका उसने प्रयास किया । इस प्रकार उसने इतिहास-लेखनका एक 'मेथड' के रूपमें अपनाया और उस 'मेथड'को वान्तिकताके स्तरपर प्रतिपादित किया ।

डॉ० टाडलाल चटर्जीने अपन लेख— इतिहासकी व्याख्या कस हो मानन और टयाबीके दृष्टिकोण' (अमृत बाजार पत्रिका २० मई १९५६) में यह दिखानेका प्रयास किया है कि सर चार्ल्स फेम आदि इतिहास लेखकान ऐतिहासिक आलोचना-पद्धतिके पहले ही इस सिद्धांतका प्रतिपादन किया था कि इतिहासका उचित अध्ययन सामाजिक दृष्टिकोणसे ही होना सम्भव है क्योंकि इतिहास मूलरूपमें मानव-समाजक प्रवाहकी कथाक अतिरिक्त और कुछ नहीं है । पर तब ता यह कि मानव-समाजक प्रवाहकी गतिजा वह सोच कहीं है जो समाजकी कथाको निरन्तर प्रवर्धमान बनानेमें समर्थ है—इसका फेम आदि विद्वान् अनुसंधान नही कर सके । ऐतिहासिक आलोचना-पद्धतिने आज तकके इतिहास लेखनमें जानवाली न प्रमुख कमजाहिरियारा निराकरण किया । पूर्ववर्ती इतिहासकाराकी भांति मनुष्यकी सामान्य प्रवृत्तिया एव उद्देश्याना ही निम्नी घटनाका मूल कारण न समझनके कारण, उसने इन प्रवृत्तिया एव उद्देश्याके पीछे काम करनेवाले मूलधोतकी व्याख्याका अपना लक्ष्य बनाया । साथ ही,

इतिहासके निर्माणका ध्येय कुछेक व्यक्तियोंका उसने नहीं दिया वरन उसने सामाजिक व्यवस्था एवं तत्कालीन असंगतियोंका परिवर्तनके मूल कारणके रूपमें स्वीकार किया ।

द्विद्वैतत्व भौतिकवाद यह बतलाता है कि विकासके प्रवाहमें एक समय ऐसा आता है जब वस्तु, भाव आदि विभिन्न सत्ताओंमें साम्यावस्था रहती है । यह बाद (थासिस) की अवस्था है । कालांतरमें इसके गभसे स्वयमेव आंतरिक असंगतियाँ उत्पन्न हो उठती हैं जो अपनी पूर्वस्थितिके विरोधमें फलती-फूलती जाती हैं । असंगतियोंके इस विकासकी चरम-परिणतिके प्रतिवाद (ऐण्टीथीसिस) की सजासे बोधित किया जाता है । जिस प्रकार अपने उत्ससे निकला सरिता पहले एक पतली रेखाके समान रहती है, पर जागे चलकर नदीके विस्तृत पाटका निर्माण कर लेती है उसी प्रकार ये असंगतियाँ भी समयके प्रवाहमें विकसित एवं विस्तृत होती रहती हैं । मात्रामें निरंतर वृद्धि होती रहनेके कारण एक स्थिति ऐसी भी आता है जब वस्तुमें अचानक (By leaps, catastrophe revolution) गुणात्मक परिवर्तन होने लगता है उसी प्रकार जैसे जलके तापक्रमके बढ़ाने या घटानेमें वह वाष्प अथवा हिमसण्डक रूपमें अचानक परिवर्तित हो उठता है । बाद प्रतिवादके संघर्षसे जाविभूत इस नूतन साम्यावस्था को ही समन्वयवाद (सिथीसिस) कहते हैं । इस संघर्षमें निर्मित साम्यावस्थाके गभसे भी कालांतरमें नवीन असंगतियाँ उत्पन्न होने लगती हैं और इस क्रमकी निरंतर आवृत्ति होती है ।

इस विकासकी रेखाका स्वरूप बत्ताकार परिक्रमाके रूपमें ही वर घुमावदार सीढ़ियाँ (spiral) की भाँति होता है । जब कोई वस्तु अपने विकास क्रम में पुनः पूर्वस्थितिपर पहुँचती है तो सम प्रतीत होनेवाला इन दो अवस्थाओंकी गत्यात्मक शक्ति (frequency) में अन्तर होता है । बादकी आवृत्ति पूर्ववृत्तिकी तुलनामें अधिक गतिमान एवं ऊँचगामी होती है तथा विकासगत स्तरमें एक सीढ़ी ऊपर होती है । सृष्टि एवं नश्यताके विकासमें भी इस प्रक्रियाका अच्छा तरहसे देखा जा सकता है ।

यह बात ध्यान देनेका है कि उत्तराधिकारके रूपमें प्राप्त सामाजिक व्यवस्था अपने पूर्वकी स्थितिमें भिन्न हाते हुए भी उसकी ऋणी रहती है । अपने पूर्वकी व्यवस्थाको अपने बहुतेर रूपमें अतन्त्र कर ही वह विनाशका जगली साड़ीपर अपना पग रखती है । पूर्वकी व्यवस्थाको निलाजलि दकर नहीं अपना उस अपने नवान रूपमें समाहित कर ही आनेवाली व्यवस्था अपनेका मर्मद्वय बनाती है । इसलिए इतिहासमें एक सुसम्बद्धता दिखलाई पड़ता है साहित्य

संस्कृति, सम्पत्ति एवं अत्याय विचाराने विनामम एवसूत्रता मिलती है। साहित्यिक इतिहासक अध्ययनमें एवसूत्रताका निर्वाह एव निश्चय ही रूपमें करना समीचीन होगा। कालका प्रत्येक वर्तमान विद्वान् अपने ऊपर भूत और भविष्य दोनों के आतंरिक दबाव महसूस करता है और आलाचकके लिए जितना आवश्यक वर्तमान विद्वान् को पकड़ना है उतना ही इतिहासकारके लिए भूत और भविष्यके इस दबावका महसूस करना है। इसीलिए ट्रेवल्सनने अपनी पुस्तक 'इंग्लैण्डका सामाजिक इतिहास की भूमिकामें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि विभिन्न युगकी मजबूती तमबीर पानके लिए आवश्यक है कि पुराने और नये-दोनों ही प्रकारके तत्त्वका जपन मस्तिष्कके सामने रखा जाय। अथवा हाता यह है कि इतिहासकार नये तत्त्वका तो इतिहास-लेखनके समय अपने सामने रखता है पर चले आते पुराने तत्त्व एव उमके दबावका भुला करता है (see, Ed, 1916 p 11)।

समाजका इतिहास चाहे उसका रूप राजनितिक आर्थिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक हो, साहित्यिक इतिहास लेखनके लिए साधन रूपमें ही अपनाया जा सकता है। जगत्पर अधिक बल देना अथवा साहित्यिक इतिहासके समानांतर गमन अपनी विवेचना प्रस्तुत करना वस्तुतः साहित्यिक इतिहासके लेखनकी स्वस्थ दृष्टिमें अलग हटना है। यह पहलू संकेत दिया जा चुका है कि साहित्यका इतिहास ऐसा न होकर उस मनुष्यका इतिहास प्रस्तुत करता है जो साहित्यिक कृतियोंमें अपना अभिव्यक्ति पा चुका रहता है। सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक अथवा सांस्कृतिक इतिहासका ज्ञान वस्तुतः साहित्यिक अभिव्यक्ति ही मनुष्यका उसका सारा रूप समझनेके लिए आवश्यक है। साहित्यका इतिहास लेखन भी मनुष्यका ही इतिहास प्रस्तुत करता है पर वह उस मनुष्यका अपने लेखनका केन्द्र बनाता है जो साहित्यिक द्वारा समाजके सामने अपना रूप प्रकट करता है और आर इतिहासकार साहित्यिक विषयकी ओर मुड़ता है तो मात्र इसलिए कि वह उस मनुष्यका उसकी पूजातम समझ सके जिसके जटिल एवं सदिष्ट रूप का मात्र साहित्यिक रचनाओं द्वारा समझना प्राप्त उस असम्भव-ता प्रतीत होता है।

प्राय इतिहास-लेखन यह नूल जाता है कि इतिहास स्वयं एक प्रक्रिया है, मात्र तत्प्राप्त कारण-क्रमानुसार समाजका नहीं। इतिहासकी प्रक्रिया स्वयं स्वयंकार बनना अथवा है कि तत्प्राप्त 'घटना' रूपमें मानना जो कभी घटित हुआ था कि जो कभी था। अतः इतिहासका गमन वस्तुतः अथवा तत्प्राप्त कारण-क्रम अथवा क्रमानुसार सूचा अक्रम उतना नहीं रहता जितना मानव

समाजकी उस विनामधारामे होता है जिसे सम्बद्ध होकर तथ्य अथवा वस्तु, अपने में एक 'घटना' (Event) बन जाती है। अतः प्रत्येक साहित्यिक वृत्ति साहित्य के इतिहास-लेखकके सामने एक जीवन्त संघटना (Living Structure) के रूपमें आती है जिसका उमक रचयिताने एक निश्चित समय और एक निश्चित स्थानपर अपने अनुभवके आधारपर मूलन किया और जिसे वह एक वस्तु-रूप को निर्धारित करनेमें वह वातावरण निर्णायक-शक्तिके रूपमें कार्य करता रहा है जिसमें रचयिताने सास ली थी। और जमा राइट इ० स्पिलरने मकत किया है कि प्रत्येक साहित्यिक वृत्ति, एक जीवित संघटना इसलिए है कि उनमें वृत्तिकारके व्यक्तित्व और उसके युगके वातावरणका द्विधामक मांग ता है ही, पर इस व्यक्तित्व एक वातावरणके वायजू स्वयं वृत्तियां भा अपना प्रकृत्य एक वातावरण होता है। साहित्यिक इतिहास-लेखककी मूल-शक्ति वृत्तिय व्यक्तित्व एक वातावरणपर केन्द्रित रहती है, पर इसकी समग्रनेक लिए उस ताने-बानेकी समग्रता आवश्यक होता है जिससे वह निर्मित होता है और निश्चय ही यह ताना-बाना वृत्तिकारके व्यक्तित्व और उमके युगके वातावरण होता है।

स्पष्ट है इतिहास, अथवा स्वयं एक प्रक्रिया है, जो इतिहासकार तथ्याकी पयातथ्य रूपों में देखकर उस एक घटना (Event) के रूपमें स्वाकार करता है एवं यह भी निश्चित है कि इतिहास-लेखकके समय इतिहासकार इन घटनायाका एक उचित मन्त्र (perspective) बनने लिए भी बाध्य रहता है। इतिहासकार द्वारा दिय जानेवाले मन्त्र (perspective) और इतिहासकी वस्तु-सामग्र्योके रूपमें प्राप्त घटनाया (Events) के बीचके सम्बन्धपर पहले सचेत किया जा चुका है। यहाँ बवल यह जान देना पर्याप्त है कि सन्त्र बनने लिए इतिहासकारका अपनी कल्पनाकी मर्यादित करण पता है क्योंकि उसके अन्तर्गत, व्यक्तित्वका कल्पना-तत्त्वका, घटनायाके सन्त्रम वस्तुवादी (Objective) बलानिक विरूपण सम्भव है।

यथापर इस आर भी सक्त है कि उचित होगा कि साहित्यिक इतिहासकार का पता है कि आपसमें सम्बद्ध होकर भी अपना काम प्रणालीमें एक-दूसरेसे मवधा अलग रहत है। साहित्यिक इतिहासकार जत्र इतिहासके शोधकताके रूपमें कार्य करता है उसका लक्ष्य 'तथ्यो'का मन्त्र और उनका परीक्षण-मात्र होता है। जबतक उसका कार्य-क्षेत्र एक शोधकताकी इतिहास इतिहासकी

१ Literary History in the Arts and Methods of scholarship in modern languages & literatures Ed by James—Thorpe New York—1963 p 43 55

सामग्रीके अनुसंधान तक सीमित रहता है उसकी काय प्रणाली 'वैज्ञानिक' रहती है और वह एक निश्चित 'मेथड' को अपनाता दिखाई पड़ता है। उसका दूसरा पक्ष है 'घटना' के रूपमें तथ्योंकी व्याख्या करता जो घटनाआवा उचित सद्म प्रदा करता। इतिहास लेखकको इस रूपमें वह साहित्यकारका धर्म धारण करना है और इस अर्थमें साहित्यका इतिहास-लेखक साहित्यकारकी कौशल आ पहुँचता है।

इतिहास-लेखकी सिद्धांत चर्चाक सद्ममें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीक इतिहास विषयक दृष्टिकोण एवं हिन्दी साहित्यके इतिहास-लेखनकी परम्परामें उनमें अपने योगदानका अभीतक सही जाकलन नहीं हो पाया है। उनके इस ऐतिहासिक योगदानको ठीकसे समझनेके लिए यह जरूरी है कि हम संक्षेपमें उस परम्परापर विचार कर लें जो उनकी हिन्दी साहित्यकी भूमिका के पूर्व हिन्दी साहित्यके इतिहास लेखनेके रूपमें खनेको मिलती है।

द्विवेदी-पूर्व हिन्दी साहित्यका इतिहास

हिन्दी साहित्यके इतिहासके नामपर उपलब्ध प्रचोवा रचना-पद्धतिये क्रमिक विस्तारके अनुशीलनमें स्पष्ट हो जाता है कि १९८० तक आते-आते हिन्दी साहित्य का इतिहास उस पद्यभूमिका निर्माण कर चुका था जिसके आधारपर साहित्य का इतिहासपरक दृष्टिआण अपने स्वल्पका स्थिर करनेमें सफल हो सका।

कहनेके लिए ना रामचन्द्र गुप्तके 'हिन्दी साहित्यका इतिहास'क पूर्व भी इतिहास-ग्रन्थ* लिखे गये थे, पर सच्चे अर्थमें वह इतिहासकी सजा नहीं दी जा सकती। काँच-क्रमानुसार कवियकि नामाना एक स्थानपर रग देने अथवा

- *१ गानो द तामो इत्यार द ला लिनदा चू एदुर ऐ हिन्दुस्तानी (१८३६)।
- २ शिवमिह संगर शिवसिंह सगज (१८८३)।
- ३ डॉ० धियसा मोहन वर्माकृष्णर लिटरेचर ऑफ नोर्द हिन्दुस्तानी (१८८६)।
- ४ मिश्रकृष्ण मिश्रकृष्ण विनोद (१९१३)।
- ५ मिश्रकृष्ण नराल (१९१०)।
- ६ पदविद्या दीपक ए एकेच ऑफ हिन्दी लिटरेचर (१९१७)।
- ७ एच० ई० वे० ए दिहाटी ऑफ हिन्दी लिटरेचर (१९२०)।
- ८ एदुननाल प्रशासक कम्पनी हिन्दी साहित्य विमला (१९२३)।
- ९ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्यका इतिहास (१९२६)।
- १० बालू शशाङ्कदर दाम माश और साहित्य (१९३०)।
- ११ ग्यवाण्ड शास्त्री ए दिहाटी ऑफ हिन्दी लिटरेचर (१९३०)।

उनकी रचनाओं पर चलने लगसे टिप्पणियाँ लिए दने मात्रमे इतिहासके धर्मका निर्वाह नहीं हो जाता। स्वयं गुलजीने 'हिंदी साहित्यका इतिहास' के प्रथम संस्करणके बक्तयमें लिखा है— "भिन्न भिन्न गाथापात्रों हजारों कवियोंकी केवल काव्यरममें गुथी उपयुक्त वृत्तमालाएँ साहित्यके इतिहासके अध्ययनमें कहाँतक सहायता पहुँचा सकती थी?" पर इस तथ्यकी भी अवहेलना नहीं की जा सकती कि इन्हीं वृत्तमालाओंके कथको आधार बनावर आगे इतिहास ग्रन्थ लिखे गए। कवियोंकी जीवनी एवं उनकी कृतियोंके इस परिचयक अभावमें इतिहास लिखनकी प्रयुक्ति दबी ही रह जाती, रममें सँह नहीं। इतिहास ग्रन्थके निर्माणमें कवियों एवं उनकी कृतियोंके फुटकल-संग्रहोंका भी विधिष्ठ महत्त्व है।

कवियों एवं उनकी कृतियोंका फुटकल संग्रह

नाभादास वृत्त भक्तमाल और गानुनाथ रचित चौरामी वैष्णवकी वार्ता' चरित-संग्रहों हिन्दी साहित्यके सब प्रथम ग्रन्थ हैं जिनमें कवियोंकी जीवनी एवं उनकी रचनाओंका फुटकल संग्रह मिलता है। इनमें साधु-सातार चरित्रकी अमाधारण सामर्थ्य गतिका परिचय दते हुए उनकी रचनाओंकी प्रशंसा की गयी है। नाभादास वृत्त 'भक्तमाल' की ही गली एवं पद्धतिके जन्मकरणपर रघुराजसिंहनी देवन रामरसिकावला (१८५७) नामक ग्रन्थकी रचना का। चरित एवं कृतियोंका प्रामात्मक विवरण, चार मुख्य काल— मध्ययुग श्रेता द्वापर और कल्पियुग क अनुमार विभाजित है। पहली बार कवियोंका वर्गीकरण काल विभाजनक आधारपर यहाँ किया गया मिलता है। यद्यपि काल विभाजनकी यह पद्धति-वैज्ञानिक-मदनिके अनुरूप नहीं है।

इसके अनिश्चित युगलगाय रचित 'वचेल वगागमविष्णु (१८६३) हरिदत्त लिखित उत्तमद भक्तमाल' (१८७७) राधाचरण गायामी वृत्त नव भक्तमाल' (१८८६) भक्त-कवियोंके चरित एवं उनकी कृतियोंपर प्रकाश

- १२ रमादाकर शुक्ल हिन्दी साहित्यका इतिहास (१९३१)।
- १३ कल्याणदास शुक्ल आधुनिक हिन्दी साहित्यका इतिहास (१९३४)।
- १४ रामनाथ मदान मॉडर्न हिन्दी लिटरेचर (१९३७)।
- १५ रामदत्तमार वमा हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास (१९३९)।
- १६ इन्दारीसाद दिवेदी हिन्दी साहित्यकी भूमिका (१९४०)।
- १७ लक्ष्मीसागर वाण्येय आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९४१)।
- १८ मोक्षचन्द्राल आधुनिक हिन्दी साहित्यका इतिहास (१९४२)।
- १९ इन्दारीसारा दिवेदी हिन्दी साहित्य (१९४२)।

हालत है। 'भक्तमार्त', 'चौरामी वैष्णवकी धार्ता' आदि पूव ग्रन्थाकी वर्णित अधिकांश घटनाएँ साधु-संतोंकी पारलौकिक एव अदभुत दिव्य शक्तिके ही परिचायक हैं। पर भारतेन्दु एव उनके बावक अथ लेखकाम अपाधिक एव लाकोत्तर चरित्र लिखनकी प्रवृत्ति कम पायी जाती है।

फ्रेंचम लिखा गया गार्सा-द-तासीका 'इस्वाग द एग लिटराच्यूर ऐदुई ऐ हिन्दुस्तानी (१८३९) इतिहास-सम्बन्धी हिन्दी साहित्यकी प्रथम रचना मानी जाती है। प्रस्तुत ग्रन्थमें हिन्दी एव उर्दूके सत्तर कवियोंकी जीवनी उनके द्वारा रचित ग्रन्थोंके परिचयके साथ संवलिन मिलती है। ध्यान देनेकी बात है कि कविमाना वणन कालक्रमक अनुसार नहीं अपितु अंगरेजोंके वर्णानुक्रमका सहारा लेकर किया गया है।

गार्सा-द-तासीके इतिहासग्रन्थ-संग्रहमें अंग ७० कवियोंका संग्रह है तो गिव मिं सेंगर रचित शिवसिंह सरोज' (१८८३) में कवियोंकी संख्या एव महसूके ऊपर पहुच गयी है। कवियोंके जीवन चरित, उनका कविता-नाम तथा कृतियोंके नामके साथ इसमें उद्धृत पद्याके उद्धरण भी प्राप्य है। कृतियोंका साहित्यिक विवरणका दृष्टिमें प्रस्तुत ग्रन्थ काफी महत्वपूर्ण है। सच तो यह है इसी ग्रन्थ का जपान जापान बनकर सन् १९८६ में प्रियसनन 'माडन कनक्वियर लिट रचर ऑव हिन्दुस्तान लिखा। मिथ्र-पुत्रान शब्दम इनके पद्ये हिन्दी इतिहासना नती पता गया। (मिथ्र-पुत्रान विनाद ५० १६७) तथा "डॉ० प्रियसनने अपने माडन कनक्वियर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तानम इ हीका अनुवा मा कर दिया है अथवा इनके आधारपर अधिकांश लिखा।" (मिथ्र-पुत्रान विनाद ५० १६७)।

ऐतिहासिक विकासका पुट

इतिहास-लेखने के काम तक साहित्यिक कृतियोंकी आलोचना सुमम्बद्ध एव सुनिश्चित रूपपर नहीं मिलती। इस कायका शुभारम्भ मिथ्र-पुत्रानों 'मिथ्र-पुत्रान विनाद' (१९१३)के माध्यममें किया। साहित्यिक महत्ता एव कान्यकी उद्धृष्टनाएं आगरपर इस कृतिमें कवियोंकी भिन्न श्रेणियाँ बनायी गयी। प्रस्तुत कृतिमें साहित्यिको गुठ साहित्यके रूपमें स्वीकार कर इतिहास लिखनेका प्रयास किया जाता है। साहित्यके मूल-मानकों न तो देनेका यहाँ प्रयास है और न उसे समाजके परिप्रेक्ष्यमें देखनेकी ही कोशिश की गयी है। हिन्दी साहित्यका काल विभाजन भी गुठ साहित्यिक दृष्टिमें ही किया गया है।

इस रचनाम अंग ३८०० साहित्यकारोंने परिचयके साथ उनकी कृतियोंका

साहित्यिक विवचन है। कुछ निश्चित साहित्यिक विशेषताके आधारपर हिन्दी-साहित्य का आठ कालाम वर्गीकृत किया गया है पर इतिहास-लेखनके लिए जा शली अपेक्षित थी वह इस कृतिम उपलब्ध नहीं। इसके रचयिता स्वयं इसे इतिहास-ग्रन्थके रूपम स्वीकार नहीं करते। मिथवंधुआके अपने शब्दोम 'पहले हम इस ग्रन्थका नाम 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' रखनेवाले थे परन्तु इतिहासकी गम्भीरता-पर विचार करनम त्त हुआ कि हमम साहित्य इतिहास लिखनेकी क्षमता नहीं ह।' (मिथवंधु विना, पृ० ८)

लेकिन इतिहास न होते हुए भी इसम इतिहासका पुट अवश्य है। इस विषयपर स्वयं मिथवंधुआके वचन उद्धरणोय है— परन्तु इसमें इतिहासका क्रम रखने एव इतिहास सम्बन्धी सामग्री सन्निविष्ट करनके कारण हमन इसका उपनाम हिन्दी साहित्यका इतिहास तथा कवि कोतन रखा ह।' (मिथवंधु विनोद, पृ० ६) रचयिताका प्रधान लक्ष्य इतिहास-लेखन नहीं था। प्रमुख साहित्यकार एव उनकी कृतियोका आलोचनात्मक परीक्षण एव अनात कवियोका प्रमत्त प्रकाशम श्कर उनका सन्निप्त परिचय देना ही उनका साय था। साधारण कविता एव श्रयोक् नाम छाडकर इतिहासका शुद्ध स्वरूप स्थिर रखना हम अनावश्यक गमज्ञ पण (वही, प० ५) साहित्यिक विकासका धाराम कवियो के मागका आकलन न कर तथा इतिहासके शुद्ध स्वरूपका स्वीकार न करते हुए भी ये इतिहास-लेखनकी पद्धतिके अनुसरणकी बार मदा कदा प्रवृत्त अवश्य हुए हैं।

जा कुछ भी हो इस कृतिम अपना विनीत महत्त्व ह यथोक्ति इतिहासका इतिवृत्तात्मक लेखन सबसे पहले इसी श्रममें दखनेका मिलना ह। जाकाय हजारीप्रसाद द्विवेदीक अनुसार आये चलकर जा कुछ भी इस दिशाम काय हुआ उसने प्रथम मागदत्त और पुरस्वता मिथवंधु ही थ (हिन्दी-साहित्य पृ० ८३९)। मिथवंधु विना' का ही पूर्व नवरत्न' (१९१०) माना जा सकता ह जिसम नौ कविताका विस्तृत आलाचना प्रस्तुत करनका मिथवंधुआका स्तुत्य प्रथम द्रष्टव्य ह।

एकविन प्रोत्सवे 'ए स्वर आब हिन्दी लिटरचर' (१९१७) एव एक० इ० क० के ए हिन्दी आब हिन्दी लिटरचर (१९२३) म साहित्यकाराकी जीवनी एव इतिहासकी अपना साहित्यिक प्रवर्तियापर अधिक ध्यान दिया गया ह। पुढमाल पद्मालाल वाशीकी लेखना द्वारा प्रमूत हिन्दी साहित्य विमल (१९२३) निष्प-सग्रहक रूपम ह पर इस कृतिमें साहित्यिक प्रवृत्तियाके विकासका जा निर्देान हम प्राप्त हाना ह क् अपन पक्की रचनाश्रुति अधिक

वैज्ञानिक एव सन्तुलित है। एक-सौ छियानवे पष्ठकी इस कृतिमें साहित्यिक धाराओंके विवासका प्रदशन सफलतापूर्वक किया गया मिलता है।

पर हिंदी साहित्यकी विभिन्न प्रवृत्तियोंके साथ सामाजिक परिस्थितियोंके विवेचनकी प्रवृत्ति प्रियसनकी रचना 'मॉडर्न वनाक्यूलर लिटरेचर ऑव नॉंदन हिंदुस्तान' (१८८९) में सबप्रथम मिलती है। साहित्य एव समाज, दोनोंकी अपनी दृष्टिमें रखकर 'शिर्वांसिंह सरोज' की सामग्रीके आधारपर हिंदी साहित्य के इतिहासको लिखनेका प्रियसनका प्रयास स्तुत्य है। एक कालकी निश्चित साहित्यिक विशेषताओं एव सामाजिक परिस्थितियोंका ध्यानमें रखकर हिंदी साहित्यका वैज्ञानिक स्तरपर काल विभाजनका सबप्रथम प्रयत्न प्रियसनने ही किया है।

इतिहास

इतिहासके रूपमें अबतक जितनी रचनाएँ मिलती हैं उनमें साहित्य एव समाजके आंतरिक सम्बन्धकी विकास-गाथाको ढूँढनेका प्रयास नहींके बराबर देखनेको मिलता है। साहित्यके मूलस्त्रात क्या है और हिंदी साहित्यके विकासमें उनका योगदान क्या रहा है—इसका विवेचन यदा-कदा भूले भटक ही किया गया है। साहित्यको अपनम पूण माननेकी प्रवृत्तिने अबतक साहित्यको समाज सापक्ष्य रूपमें गृहण करनेके लिए प्रेरित ही नहीं किया। अतः साहित्यके इतिहासका जो कुछ सामाजिक प्रवाहके परिच्छेदमें दर्शनका प्रयास हुआ उसमें समाज और साहित्यका काय-कारण सम्बन्ध बहुत ही कम देखनेको मिलता है।

सच तो यह कि इतिहासके रूपमें हिंदी साहित्यकी प्रवृत्तियोंका विश्लेषण गुल्ज़ारीके पूर्व हुआ ही नहीं था। लगता है उस समय तक 'साहित्यका इतिहास' का अर्थ ही स्पष्ट नहीं था। गुल्ज़ारीकी सूक्ष्म एव मार्मिक दृष्टिसे यह बात छिपी नहीं रही। अतः इतिहास लिखनेके पूर्व साहित्यका इतिहास जाना क्या है, उसी तथ्यपर उन्होंने प्रकाश डाला—'जब कि प्रत्येक दशका साहित्य वहाँकी जनता की चित्तवृत्तिना सचित प्रतिबिम्ब जाना है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्तिने परिवर्तनके साथ-साथ साहित्यके स्वरूपमें भी परिवर्तन होता चलता है। आदिसे अतः तब इही चित्तवृत्तियोंकी परम्पराको परखते हुए साहित्य परम्पराके साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्यका इतिहास कहना है।' (हिन्दा साहित्यका इतिहास, पृ० १)

समाजके अन्तर्गतमें प्रवाहित होनेवाली विकासधाराकी पृष्ठभूमिपर ही साहित्यका विकासका मूल रहस्य समझा जा सकता है। इतिहासके क्षेत्रमें साहित्य

एक समाजका सम्बन्ध सुविबिधित ढंगसे सर्वप्रथम 'गुणजोके' हिन्दी साहित्यका इतिहासमें ही मिलता है।

'गुणजोके' इतिहासक अनुकरणपर अनेक इतिहास लिखे गये। डॉ० राम-विद्यास रामकि शर्मा 'गुणजोके का सगित और सुबोप इतिहासको बाड आ गयी। कुछ वत्काय इतिहास भी लिखे गये। इनमें क्यातर चारोंका मत है, 'गुणजोके निधिम माल लेकर टके मीचे करनेका व्यापार है बहुत कम लागत नप सिरम अल्पन करके हिन्दी साहित्यके इतिहासमें कुछ नया जोडने भी कागिग का है।' (आचार्य रामचन्द्र 'गुण और हिन्दी आगवना पु० ३०)। यह कहना तो सबया असय हागा कि इतिहासमें कुछ नवीन सामग्रा जाननसा प्रयास हा नही हुआ। इसमें सन्देह नही कि 'गुणजोके' इस महत्त्वपूर्ण रचनाक पदवान पुगने साहित्यकाराका नया-पुरानी अन्त कृतियाँ प्रकाशमें आयी प्रामाणिक समझ जानवाले अनेक ग्रथ जाली सिद्ध हुए और साहित्यक इतिहासक योममें कुछ नये अल्पण भी हुए पर इतिहास-रत्नक-दिकोग और गलगम काई नूतन उत्क्राति हुई हा (जसा डॉ० रामकुमार वमा अपन हिन्दी साहित्यका आगवनात्मक इतिहास क निबदनमें संकेत दते हैं) — एयी बल मामने नहा आता। साहित्यके इतिहासका जा मन्दभ (perspective) गुणजोके निया है वह अपुरा एव युटिपूण हाने हुए भी मौलिक था, और बादक इतिहास-लेखकाने उनक कथनोंकी आकृति एव पुनरावृत्ति ही की, कुछ विस्तार देकर उनके सम्भव दोहराया ही। सन्दभकी निगम नया कुछ मामने नही आया।

'गुणजोके' इतिहासके पदवान् जा इतिहास-ग्रथ साथ अतिक हमारा ध्यान आकर्षित करता है यह है या० श्यामसुन्दर दास कृत 'हिन्दी-साहित्य'। इस कृतिमें मिथव-धुआकी भाति श्रेष्ठ समझे जानेवाले कविया एव उनका इतिहासकी विग विवचना, अल्प पात कविपाकी साहित्यिक विशेषताआकी सगित आगवना तथा जज्ञात कविपाको परिचयक साथ प्रकाशमें लानका प्रयास नही है, न 'गुणजोके' इतिहासक अनुकरणपर प्रत्यक साहित्यकारपर कुछ-न-कुछ लिखनेका प्रवृत्ति हो पाया जाती है। पुन्तकक निबदनमें श्यामसुन्दर दासन अपन दृष्टिवाणपर प्रकाश दालत हुए लिखा— 'जिस कालमें जसा राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक परिस्थिति थी, उसक वणनक साथ उस कालके मुख्य प्रयत्न कविपाका वगन भी रहे।' (हिन्दी-साहित्य निबदन) अयात कविपाका अपना विभिन्न कालका साहित्यिक प्रवृत्तियाँ स्पष्टाकरणक निग राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ चित्रा ही विग

वैज्ञानिक एवं सन्तुलित है। एक-सौ छिपानवे पृष्ठकी इस कृतिमें साहित्यिक धाराओंके विकासका प्रदर्शन सफ़रतापूर्वक किया गया मिलता है।

पर हिन्दी साहित्यकी विभिन्न प्रवृत्तियोंके साथ सामाजिक परिस्थितियोंके विवेचनकी प्रवृत्ति प्रियसनकी रचना 'मॉडन वर्निक्यूलर लिटरेचर ऑव नादन हिन्दुस्तान' (१८८९) में सर्वप्रथम मिलती है। साहित्य एवं समाज, दोनोंको अपनी दृष्टिमें रगकर 'शिवसिंह सरोज' की सामग्रीके आधारपर हिन्दी साहित्य के इतिहासकी लिखनेका प्रियसनका प्रयास स्तुत्य है। एक कालकी निश्चित साहित्यिक विशेषताओं एवं सामाजिक परिस्थितियोंको ध्यानमें रखकर हिन्दी साहित्यका वैज्ञानिक स्तरपर बाल विभाजनका सर्वप्रथम प्रयत्न प्रियसनने ही किया है।

इतिहास

इतिहासके रूपमें अबतक जितनी रचनाएँ मिलती हैं उनमें साहित्य एवं समाजके आन्तरिक सम्बन्धोंका विकास-गाथाका देनेका प्रयास नहींके बराबर देखनेको मिलता है। साहित्यके मूलस्रोत क्या हैं और हिन्दी साहित्यके विकासमें उनका योगदान क्या रहा है—इसका विवेचन यदा-कदा भूले भटकते ही किया गया है। साहित्यका अपनमें पूर्ण माननेकी प्रवृत्तिने अबतक साहित्यकी समाज सापक्ष्य रूपमें ग्रहण करनेके लिए प्रेरित ही नहीं किया। अतः साहित्यके इतिहासका जो कुछ सामाजिक प्रवाहके परिदृश्यमें दर्शनका प्रयास हुआ उसमें समाज और साहित्यका काय-कारण सम्बन्ध बहुत ही कम देनेका मिलता है।

सच तो यह कि इतिहासके रूपमें हिन्दी साहित्यकी प्रवृत्तियोंका विश्लेषण सुकलजीके पूर्व हुआ ही नहीं था। लगता है उस समय तक 'साहित्यका इतिहास' का अर्थ ही स्पष्ट नहीं था। सुकलजीकी सूत्रम एवं मासिक दृष्टिमें यह बात छिपी नहीं रही। अतः इतिहास लिखनेके पूर्व साहित्यका इतिहास हाता क्या है उसी तथ्यपर उन्हां प्रकाश डाला— जब कि प्रत्येक दशका साहित्य वहाँकी जनता की चिन्तनशक्ति का सचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चिन्तनशक्तिने परिवर्तनके साथ-साथ साहित्यके स्वरूपमें भी परिवर्तन होता चलता है। अतः अतः अब तक इन्हीं चिन्तनशक्तियोंकी परम्पराको परगते हुए साहित्य परम्पराके साथ उनका सामंजस्य दिग्गता ही 'साहित्यका इतिहास' कहना है। (हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृ० १)

समाज अतस्तलमें प्रवाहित होनेवाली विकासधाराका पृष्ठभूमिपर ही साहित्यिक विभासका मूल रहस्य समझा जा सकता है। इतिहासके क्षेत्रमें साहित्य

एव समाजका सम्बन्ध सुविवक्षित ढंगम सबप्रथम गुब्बजाक हिन्दी साहित्यका इतिहास में ही मिलता है ।

शुक्लजीके इतिहासके अनुकरणपर अनेक इतिहास लिखे गये । डॉ० राम विलास शर्माके शब्दोंमें "शुक्लजीके बाद मणित और सुबोध इतिहासकी वाद या गयी । कुछ बहूत्काम इतिहास भी लिखे गये । इनमें श्यामतर चारीका माल है, गुब्बजीकी निधिम माल लेकर टके सोंचे करनेका व्यापार है, बहुत कम लोगोंने नये सिरम अच्यपन करके हिन्दी साहित्यके इतिहासमें कुछ नया आरने भी वागिंग का है ।" (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आर हिन्दी आलाचना पृ० ३०) । यह कहना तो सबथा असत्य हागा कि इतिहासमें कुछ नवीन सामग्री आरनेका प्रयास ही नहीं हुआ । इसमें सुन्दर नहीं कि गुब्बजीकी इस महत्त्वपूर्ण रचनाक पदचान पुराने साहित्यकारोंकी नया-पुरानी अन्तर कृतिथी प्रकाशमें आयी प्रामाणिक ममने जानेवाले अनेक ग्रन्थ आली सिद्ध हुए और साहित्यक इतिहासक क्षेत्रमें कुछ नये अन्वेषण भी हुए पर इतिहास-लेखनक दृष्टिकार और शैलीमें कई नूतन उत्क्रांति हुई हो (जमा डॉ० रामकृमार वर्मा अपने हिन्दी साहित्यका आलाचनामक इतिहासक निबन्धनमें सन्त दन है)— ऐसी बात सामने नहीं आती । साहित्यके इतिहासका जा सन्दर्भ (perspective) गुब्बजान दिया है वह अरुण एव श्रुतिपूण होते हुए भी मौखिक था, और बाबू इतिहास-लेखनके उनके कथनाकी आवृत्ति एव पुनरावृत्ति हा थी, कुछ विस्तार लेकर उनके सन्दर्भका दोहराया ही । सन्दर्भका विनाय नया कुछ मायन नहीं आया ।

गुब्बजाके इतिहासक पदचान जा इतिहास-ग्रन्थ सबने अत्रिक हमारा ध्यान आरक्षित करता है व् ह बा० श्याममुन्दर दास कृत 'हिन्दी-साहित्य । इस कृतिमें मिश्रक-सुप्रार्की भाति श्रेष्ठ समने जानेका कवियों एव उनकी कृतिमारी विगत विरचना आर नात कविताकी साहित्यिक विपताजाका सगित आगचना तथा अनात कविताका परिचयने साथ प्रकाशमें लानका प्रयास नही है, न गुब्बजाके इतिहासक अनुकरणपर प्रत्येक साहित्यकारपर कुछ-न कुछ लिखनेका प्रवृत्ति ही पायी जाती है । पुन्बके निवेशनम श्याममुन्दर दामन अपने दृष्टिकोणपर प्रकाश डालत हुए लिखा—'दिस वागमें असा राजनातिक धार्मिक सामाजिक परिस्थिति था, उमर कपनन साथ उस काक मुख्य प्रवृत्त कविताका वगन भी रहे ।' (हिन्दी-साहित्य निबन्धन) अथवा कविताकी अगता विभिन्न कालकी साहित्यिक प्रवृत्तिथी स्पष्टकरणक लिए राजनातिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितिथीका चित्रण हा विन्ने

रूपमें हो। साहित्यिक विचारधाराका जनताकी चित्तवृत्तिके साथ सामंजस्य दिखलाते हुए, समसामयिक सामाजिक स्थितिका साहित्यपर पड़े प्रभाव एवं साहित्यिक धाराके प्रभावको तीव्र एवं कुण्ठित करनेमें साहित्यकारके योगके आकलन आदिपर गुलजीकी अपना श्याममुन्दर दासकी दृष्टि अधिक रही है। पर जसा हमारा विद्वान अका० बरत्रिवाबका कथन है, इतिहास-लेखनमें वस्तु एवं रूप (आइडिया एवं फॉर्म) के आंतरिक सम्बन्धपर अपनी दृष्टि रखनेके उपरांत भी श्याममुन्दर दास, साहित्यकी विकासधाराके मूलस्रोतका ठाकसे पकड़ नहीं पाये हैं, साहित्यके विकासको वास्तुकला, चित्रकला, मंगीत आदि अन्य कला विधाआने विकासक सन्दर्भमें देखनेके बावजूद भी (और यह इतिहास लेखनमें सबसे पहला प्रयत्न था) उसमें अन्विति स्थापित करनेमें वे असमर्थ रहे हैं। (इण्डियन फाइलॉजी (रसीम) मास्को, १९५९, पृ० २७६-७८) बाबू साहयने भीतकता तो इनमें भी दिखलाया थी कि हिन्दी साहित्यके विकासके साथ उन्होंने हिन्दी भाषाका भी इतिहास दिया पर साहित्यकी नयी चतनाक साथ भाषाका रूप किस प्रकार बदलता है और बदली हुई भाषा-संबन्धनाक आधारपर साहित्यक विकसित मान मूल्याको किस प्रकार समझा-परखा जाये, यह उन्हें स्पष्ट नहीं था।

जहाँतक गुलजीक इतिहासका प्रश्न है उसमें श्याममुन्दर दासकी भाँति इन नयी पर अतुरी दृष्टियाको अपनातेका प्रयास नहीं है। शुकजीके इतिहासकी सबसे बड़ी विशेषता है—उसका मुगलित रूप, इतिहासकारक रूपमें घटनाआको उचित दृष्टिकोण (perspective) देनेकी काशिश। हिन्दी-साहित्यकी विकास-धाराको उचित सन्दर्भमें बाँधकर भी उसके परिप्रेक्ष्यमें वृत्तियाकी आलोचना प्रस्तुत करनेकी दिशामें गुलजी अपने पूर्ववर्ती सभी इतिहास-लेखकास आगे निकल गये हैं। पर जहाँ गुलजीकी अपनी उपलब्धियाँ हैं वे ही उनकी सीमाएँ भी बन जाता है।

गुलजीन साहित्यका उस देशकी जनताकी चित्तवृत्तिका सवित प्रतिबिम्बता माना पर उनका इतिहास-लेखनमें जनताका अथ गिभित जनसमूह तक ही सीमित रहे गया है। अपने इतिहासके प्रथम संस्करणके बचक्य में गुलजीने अत्यन्त स्पष्ट स्वरमें कहा है परिस्थितियोंके अनुसार गिभित जनसमूहकी बदलती हुई प्रवृत्तियाँ लक्ष्य करके उहाँने हिन्दी-साहित्यका इतिहास लिखा है। एतद् मानगने सत्य शक्ति का टीका आकलन न करनेका कारण ही गुलजी पूर्व-संस्करणका सहा मूल्यांकन प्रस्तुत करनेमें अग्राय सिद्ध हुए हैं उनको हमसे सीमा थी—उनका व्यक्तिगत दृष्टिकोण। इतिहासका उद्योगे मन्दर्भ

ता त्रिया पर वह मूलतः भावरात्री था। तीसरी सीमा, साहित्यिके इतिहास और साहित्यकी समीक्षाके अन्तरकी टीकसे न सम्पन्ना था। स्वाट जेम्सने इन तानके बीच त्रिसु मूलभूत भेदकी आर मवेत त्रिया है (द मॉनिंग ऑव लिटरचर, पृ० २४), लगता ह उसम परिवर्तन हानेके बावजूद अपने इतिहास-लेखनमें उसना उचित रूपमें निवाह नही कर सके है। इसमें सन्देह नहीं कि उनके इतिहास लेखकी अपना साहित्यिक समीक्षाने तत्त्व वहाँ अधिक है। चौथी सीमा ह साहित्यिक मूल स्रोतना उचित सम्भवे दखकर, फिर साहित्यिके साथ उसके टीक सम्बन्धी जांच-पराखकी लपना। कर्नेका अर्थ यह कि उनके इतिहासमें साहित्य एव समाजका विवाद बचन तो मिश्रता ह पर साहित्य एव समाजके बायकारणका पूणताक साथ आरलन नही मिश्रता और यही कारण ह कि सामाजिक परिस्थितियाँ और साहित्यिक इतिहास एक साथ रखे जानक बात भी उनके इतिहासमें उतर बीच एव गहरी खाना अनुभव हाता ह। उनके इतिहास-लेखनकी पाँचवी प्रमुख सामा ह इतिहासका अविश्व और अविच्छिन्न धाराप्रवाह रूपमें न लेखना। गुक्की यह भूत जाने ह कि साहित्यका इतिहास-लेखन भी मनुष्यका हा इतिहास प्रस्तुत करता है और हर व्यक्तिना वतमान एक ऐसा स्थिति-विशेष हाता ह जहाँ भूत और भविष्यना अपना दबाव महसूस किया जा सकता है। उन दबावना उचित सम्भवे प्रकृत कर सब इमीलिए युग का प्रमुख प्रवृत्तियाने प्रतिनिधि कवियाकी चर्चा करना बाद उन्हें हर खण्डके बाद एक पुस्तक खाना भी मान्यता आवश्यकता पनी।

इतिहास-लेखन और आचार्य द्विवेदी

एसा लगता ह कि गुक्कीक इतिहास-लेखनकी इन सीमाआकी आचार्य हजारोप्रसाद द्विवेदीने भलीभाति अनुभव कर लिया था और उनस मुक्त हाकर ही उन्हाने 'हिन्दी साहित्यकी भूमिका (१९४०)'की रचना की। प्यान दलेकी बात ह कि हिन्दी साहित्यिके इतिहासकी यह भूमिका ह स्वयम पूण इतिहास नही अउ इतिहास-लेखनका एक आदा रूपमें मापने रखनकी भोगिग यही अधिक ह उसकी सामग्री जुटानेका काम। उन्होंने इसमें हिन्दी-साहित्यकी विकास गाथाको भारतीय चिन्तन धाराक परिश्रेयमें उचित महत्त्व (perpective) उनकी कागिग का ह और गुक्कीकी गिनित अथवा अद गिनित जनताके स्थानपर 'लोकमानव' का प्रतिष्ठित कर्नेका प्रयाग। उपाय वतमानका विकास धाराका एक सहज बिन्दु माना ह और किसी युगकी

प्रवृत्तियाँ आकलाव लिए उम तनावको भी अनुभव करनेकी कोशिश की है जो उसके मूल और भविष्यसे सम्बद्ध होनेके कारण उदभूत होता है। वे भली भाँति समझ गये थे कि साहित्यका इतिहास लेखक भी बीर साहित्यका नहीं वरन उस मनुष्यका इतिहास प्रस्तुत करना है जो साहित्यमें अपनी अभिव्यक्ति पाता है। साथ ही उनका आलोचक रूप, सजग और सचेत रहकर भी इतिहास-लेखनके समय दबा रहता है अतः व्यक्ति अथवा कृति विधापरी महत्ता 'भूमिका में सामने उभरकर नहीं आती जितना साहित्यके विकासकी सहज धारानी अविच्छिन्न गति।

इतिहासको अविरत एक अविच्छिन्न धारा प्रवाहके रूपमें लेखनकी दृष्टि मजबूत पहले 'भूमिका में ही देखनेका मिलती है। ऐतिहासिक समीक्षाकी जिम जल-तटिका उपयोग इसमें किया गया है वह इसके पूर्ववर्ती इतिहास-वृत्तियोंमें देखनेको नहीं मिलती। अदत्तक इतिहासको इतिहासकारकी दृष्टिमें न देखकर मूलतः मूलवादी आलोचककी दृष्टिमें ही देखनेका प्रयास हुआ था। पर इतिहास और आलोचनाका क्षेत्र स्पष्ट रूपमें भिन्न है इनके गुण धर्म, शिल्प-बौद्धिक, प्रत्येक विधानमें अन्तर होता है। द्वितीयजीने आलोचककी दृष्टिमें नहीं अपितु इतिहासकारकी दृष्टिमें हिन्दी साहित्यके इतिहासका आकलन किया है। क्योंकि उनको पुस्तक लिखी साहित्यकी भूमिकाओं में एक ही युगकी अनेक विचारधाराओंका परिवर्तन विभिन्न असंगतियों एवं अन्तर्विरागी प्रवृत्तियोंका विस्तारण, लोकवादी और समाज विरोधी भावनाओंका विनाश पथव्यंजन उपलब्ध है।

कृत्तिका मानकर जिम परिधिनी आलोचना आजके गणमाय आलोचकाका माय है उमके तीन मुख्य आधार-स्तम्भानी और प्रसिद्ध इतिहासकार 'टैन'ने मकेत किया है। उमके अनुसार जाति (Race) परिवृत्त (Surrounding) और युग (Milieu) की विवेचनाके माध्यमसे ही किसी कृति या साहित्यक इतिहासपर पण प्रकाश डालना सम्भव है। (हिन्दी और लिटरेचर) विमी भी जातिके इतिहासके अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अपने विकासक विभिन्न मापापार विभिन्न प्रवृत्तियाँ-द्वारा परिचालित हुआ है। साहित्यकारके लिए इस प्रवृत्तिना अतिव्रमण कर सचना एक प्रकारसे अमम्भव है। साहित्यकारके विचार एवं भावनाकी कलात्मक अभिव्यक्तिके रूपमें माय साहित्यका अध्ययन भी युगमें ध्यात इन्हीं प्रवृत्तियोंकी पणभूमिमें करना श्रेयस्कर होगा। क्याकि जिस समाजमें वह रम-नचय करता है वह तो इन प्रवृत्तिका दापटमें बैठा हला ही है स्वयं साहित्यकार, अपना तमाम कल्पना-शक्तिके मावजू उमसे मुक्त नहीं हो पाता।

यद् तो नहीं कहा जा सकता कि द्विवर्णीयोंकी इतिहास-सम्बन्धी मायताएँ 'टन-द्वारा निर्दिष्ट जाति परिवर्तन और युगसम्बन्धी नियमावली अनुकूलि हैं अथवा द्विवर्णीयों टन के विचाराने प्रभावित हैं परन्तु विद्वानों-द्वारा व्यवहृत ऐतिहासिक विवेचनाकी समताने आधारपर उनमें एकरूपता अवश्य दृश्य जा सकती है। द्विवर्णीयोंकी आलोचना-परन्तु यह वृत्ति उनका पन्थक कवीरगम विरोध रूपम उभरी है। जातिगत विनिष्पत्ताका विस्फरण करते हुए उन्होंने कवीरकी वगानुगत मायताआकी ओर सवेत किया है (कवीर प० १४) महजयान वजयान नायपय साधु-सन्त आदि अनेक व्यक्तियोंके सम्भवतः निमित्त परिवर्तन का उनके साहित्यपर क्या प्रभाव पया है, इसकी भी विष्णु विवेचना उहाँने प्रस्तुत की है (वही प० १५२) साथ ही युगकी लोकमगलकारण एवं समाज विरोध प्रवृत्तियोंका पृष्ठभूमिमें कवीर साहित्यका भी परमनग उहाँने प्रयास किया है। (वही, प० १८४)

गुल्शनी इतिहासका समीक्षा करते हुए अका० वाराहिकावन भूमिका में प० (सन् १९३९) में यह जार देकर कहा था कि 'गुल्शनीक इतिहासका सबसे कमजोर अंश है उनका पूर्व मध्यकाल'। उनसे अनुमान 'गुल्शनी कवीर नामक आदि सन्-व्यक्तियोंके साथ उचित 'याय नहीं कर सके है। वे यह बताते हैं कि क्यों नियुक्त भनाका आन्तर्लन निम्न-वर्गक लोगों-द्वारा उदाया ग और क्या व्यापक रूपम यह उन्हीं तक सीमित रह गया क्या शिक्षित वर्ग व्यक्तियोंका मन्थाम उन्हे नहीं मिला और बाल्यमें चक्कर म आन्तर्लनने क्यों सम्प्रदाय (sect) का रूप ग्रहण कर लिया। (द्विवर्णी-साहित्यमें 'न प्रवृत्तोंका समचित ममाधान मिल जाता है और यह निश्चित है उनसे ऐतिहासिक दृष्टि को सम्प्रदायका हा परिणाम है जिससे साहित्यिक धाराका भारतकी मूल चिन्तन-धाराम जाकर स्वतन्त्रता सब प्रथम मरुत प्रयास इतिहास-लेखनक क्षयम रया।

विष्णुजान भारतकी मूल चिन्तन-धाराम समन्वयम मल नहीं की और न उहाँने साहित्यक इतिहासका निम्नग रूपक आधारपर ही लिखनकी श्रुत पद्धति अपनायी। ममान और साहित्यक वृत्तिम सम्बन्धोंकी पव प्रचलित रीतिरों छानकर उहाँन साहित्यका धाराका सांस्कृतिक विरासतम मन्थममें स्वतन्त्रता कािण का। साहित्यके मूल-आतक रूपमें जिस भारतीय चिन्तन-पद्धतिपर उहाँन बल दिया वह उनकी दृष्टिमें क्या एक या न उद्भूत विष्णुके मन्थिक-का बरामान नहीं है और न भारतीय दानका मनु यागवक्य नार सािष्ठ जामूतवाहन विष्णुवर आदि स्मृतिनाग एवं निवृत्तकारोंके अपन वैयक्तिक

इतिहास-दान

मानदण्डसे ही नापा जा सकता है। सच तो यह है कि युगकी परिस्थितियाँ एवं मानवकी समामयिक आवश्यकताओंने समय-समयपर स्वयं तत्कालीन समाजमें प्रचलित अमान्यिक, नीति नियम, आचार-व्यवहार आदिमें परिवर्तनकी ओर समस्त समाजको समयानुकूल बनानेका आग्रह किया। प्रसिद्ध विद्वान् वाशीप्रसाद जायसवालके अनुसार विभिन्न धर्मशास्त्र, ब्राह्मणोंके मस्तिष्ककी उपज रही हैं अपितु वे अपने समयके गमसे उद्भूत हुए हैं (Manu and Vajrasūkyas) स्मृतिकार एवं निबन्धकारोंकी कृतियोंकी इस बाणकी पूर्तिके साधनके रूपमें ही समझना चाहिए। द्विवेदीजीके अपन शब्दामें “मता, आचार्यों, मन्त्रदायों और दार्शनिक चिन्ताओंके मानदण्डमें लोकचिन्ताओंकी ही मापना चाहता, बल्कि लोकचिन्ताकी सापेक्षमें उन्हें देखनेकी सिफारिश कर रहा है। (हिन्दी-साहित्य की भूमिका, पृ० ८)

इतिहासकारने अगर लोकचिन्ताकी इस स्वाभाविक विकासधाराका समुचित परिचय प्राप्त नहीं किया अथवा उसके परिप्रेक्ष्यमें साहित्यकी विकास रेखाका आकलन नहीं किया तो निश्चय ही उसकी कृतियों काय-कारणकी परम्पराका उचित निर्वाह नहीं मिल सकता। द्विवेदीजीकी सूक्ष्म दृष्टिने भारतीय लोकचिन्ताके स्वाभाविक प्रवाहको अच्युत तरह परखा। यह उम्मीका परिणाम है कि प्रो० हेबेलके इस मत—“मुसलमानी सत्ताके प्रतिष्ठित होने ही हिन्दू राज-काज में अलग कर लिये गये।” सन्धि दुनियाकी झलटसे छुट्टी मिलते ही उनके धमकी ओर जो उनके लिए एकमात्र आश्रय स्थल रह गया था, स्वाभाविक आपण पैदा हुआ—का तीव्र विरोध किया। उनके अनुसार, भक्ति-कान्य अपने स्वाभाविक विकासका परिणाम था। यदि अगली शताब्दियोंमें भारतीय इतिहासका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटना, अर्थात् इस्लामका प्रमुख विस्तार न भी घटी होती तो भी वह इसी रास्ते जाता। उसके भीतरकी शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विषयकी ओर टाट लिये जाना। (हिन्दी साहित्यकी भूमिका, पृ० १५)

राज चिन्ताकी मजबूत पकटने ही द्विवेदीजीको इतिहासको एक अविच्छिन्न धारा प्रवाहके रूपमें देखनेका शक्ति प्रदान की है और इस महत्त प्रवहमान धाराने उनकी मानवावादी शक्ति ठाम आधार प्रदान किया है जिसके आधारपर साहित्यिक कृतियोंमें अविच्छिन्न मानव एवं उसकी चेतनाके विकासका सही सदर्भमें दायने स्थलानमें वह मन्त्र मिट्ट हुआ है। द्विवेदीजीके अनुसार ‘सृष्टि परम्परामें मनुष्यका विकास एक अन्तर्भूत घटना है। वह इस सृष्टि प्रक्रियाकी मदद एतन्म मात्रमें सुकुमार और मयसे गतिशाली और इगण्डि सबको आनन्द स्पद और मदस महत्त्वपूर्ण है। इसी विचार-पद्धतिको ऐतिहासिक दृष्टि

नाम दिया गया है।" (विचार और चिन्तक, पृ० ३९) लेकिन द्विवेदीजीको ऐतिहासिक-दृष्टि एवं विकासवादकी भावना डार्विनके विकासवाद (Theory of Evolution) के सिद्धान्तसे भिन्न है। जहाँ डार्विन, 'आत्मरक्षाके सिद्धांत' और 'योग्यताके विकास'के 'यायका सहाय' लेकर मानवके व्यक्ति रूपके विकासका सिद्धान्त मानने रखता है वहीं द्विवेदीजीकी दृष्टि सदा मानवके समष्टि रूपको ही अनुपाती रहा है।

"मनुष्यका सण्ड विच्छिन्न सम्मता त्वरनाक है। सारा मनुष्य समाज एक है।" अपनी ऐतिहासिक समीक्षाके आधारपर निम्नलिखित निष्कर्ष निकालने हुए वे कहते हैं— 'अगली मानवीय सस्कृति, मनुष्यकी समता और सामूहिक भक्तिका अभिव्यक्ति पर खड़ी होगी। इतिहासके अनुभव इसीकी सिद्धि साधन बनकर कथाणकर और जीवनप्रदायी सकते हैं। इस प्रकार हमारी चिन्तित उन्मुक्ततापर एक नया अंकुरण बरस रहा है—व्यक्ति मानवके स्थानपर समष्टि मानवका प्राधान्य (विचार और चिन्तक, पृ० ३३) 'इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य और उसकी मनुष्यता ही एकमात्र शाश्वत सत्य है। मनुष्य निरपेक्ष सम्मता अथवा सम्मति तथा कल्पना मात्र है। देश और जातिकी विशुद्ध सस्कृति केवल बातचीत है। युद्ध है केवल मनुष्यकी दुर्दम जिजीविषा। यह गंगाकी अबाधित-अनाहत धाराके समान सब कुछ हज़म करके वाद भी पवित्र है।" (अनाकक फूल, पृ० ८)

साहित्यके इतिहास-लेखनमें सिद्धान्त रूपमें गुजरजीने सकेन्द्रित किया कि साहित्यका इतिहास काल-स्रोतमें यह आने हुए जीवन समाजकी विकास गायक अतिरिक्त और कुछ नहीं है पर उसे व्यावहारिक रूप सबप्रथम द्विवेदीजीने ही दिया। ग्रन्थकार और ग्रन्थ उस प्रागपारवा और इगारा ही करते हैं वे ही मुख्य नहीं हैं। मुख्य है वह प्राणधारा जो नाना परिस्थितियोंमें गुजरती हुई आज हमारे भीतर अपने-आपके पकाए कर रही है। साहित्यके इतिहासमें हम अपने-आपको ही पानेका सूत्र पाने हैं। इसमें सन्देह नहीं कि द्विवेदीजीने न केवल साहित्यके इतिहास-लेखनके क्षेत्रमें नयी प्रणालीका अपनाया है बल्कि हिन्दी-साहित्यके इतिहासका नया और उचित सन्देह भी दिया है।

■

अपभ्रंशके अध्ययनमे द्विवेदीजीका योग

• •
वीरेन्द्र श्रीवास्तव

राजशेखरने अपनी काव्यमीमांसा' मे एउ वाङ्मय-पुस्तकी कल्पना की थी जिसका संस्कृत भुग ह प्राकृत बाहु ह, अपभ्रंश जघन ह और पैशाच पा ह। आधुनिक हिंदी वाङ्मयमें उस पुस्तकी यदि साकार देखना हो ता वे ह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी। कवच थोडा-या ही परिवर्तन अपभ्रंश ह कि पैशाचीकी जगह हिंदीकी रग दिया जाय। द्विवेदीजी साम्राज्याय ह। उनकी जिह्वापर सदा विराजनेवाली गीर्वाण सरस्वती और उनकी कृतिपाम व्यास दववाणी गरिमा उनने संस्कृत भाषाने गम्भीर अध्ययनकी साथी ह। प्राकृत भाषाभाषा अनुशीलन उनकी कमण्यता और जागृकताका परिचायक ह। व अपभ्रंशके सहारे सडे हाकर हिंदीमे अग्रगण्य गति रगते हैं। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का आत्मनात कर वे हिंदीपर पूण आधिपत्य पानेमें ममथ हैं। राजशेखरके आधारपर ही द्विवेदीजीने राजमण्यम कविसभाका वणन करते हुए अपनी 'हिंदी साहित्यकी भूमिका मे लिखा ह— 'वेदिकपर राजाका आसन होगा। उसके उत्तरकी ओर संस्कृत भाषाने कवि बढेंगे। यदि एक ही आदमी कई भाषाआम कविता करना हो ता जिन भाषामें वह अधिक प्रवीण हो उसी भाषा का कवि उमे माना जायेगा। जा कई भाषाआमें बराबर प्रवीण ह वह उठ-उठकर जहाँ चाहें बठ सक्त ह। पूवकी ओर प्राकृत भाषाके कवि रहेंगे। पश्चिमकी ओर अपभ्रंश भाषाके कवि। दक्षिणकी ओर पैशाची भाषाके कवि।' आचार्यका जय ब्राह्मणों पण्डितकी गति सभी भाषाआमें एक सा ह अत उहें अधिचार ह कि वे जहाँ चाहें बठ सक्त हैं और पूजाके पात्र ह।

भारतके पूर्वमेय गान्धिनिकेतनमें १९३० मे १९५० तक २० वय रहकर उहाने जहाँ संस्कृत और हिंदीका अध्ययन किया वहीं प्राकृत और अपभ्रंशका गम्भीर अध्ययन भी। आचार्य विद्युनेश्वर भट्टाचार्य तिरुतम लामी गयी पाथिया में स्वयं पठ रहुते थे और द्विवेदीजीका भी उसके अग्रगण्यका ध्यान देते थे।

आचार्य त्रिनिदाद ननके नानिध्यने उन्हें सिद्ध आर सत साहित्यकी परम्परा-
 क अन्वेषण तथा अपभ्रंश साहित्यकी समान्याम प्रवृत्त किया। गुरुदेव रवीद्र-
 नाथ ठाकुरका वरदस्त उन्हें सतत सारस्वत मागमें निविध्न प्रगति दता रहा।
 उनने सम्भवमें प्राच्य मागय अपभ्रंश प्रसून बगलामे भी व निष्णात हा गये।
 अनेक शाघार्थी उनक विविध भाषा-भाण्डिक्यका लाभ उठात रह। डॉ० रामसिंह
 तामरने, जा आनकाल विश्वभारती गान्तिनिवननमें हिन्दी विभागके अध्यक्ष
 ह, अपने प्रपच 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य' में आचार्यजीका स्वरण इस
 प्रकार किया है— आचार्य डॉ० हजारीप्रसादजी द्विवेदीकी छायाम रहकर
 लखनन तान वष गान्तिनिवननम अध्ययनको चालू रमा। आचार्य द्विवेदीजीने
 लेखककी अनेक प्रकारन सहायता की ह।'

पूवनेमें अधीतमध्यापितमजिन यग' का तथा उसके साहित्यका रमा
 स्वानन लरर द्विवेदीजी फिर अपना गिणामूमि वागणगीकी ओर मने जहाँ
 उहान निष्कारण पदङ्ग बदका अध्ययन किया था, विनोदन ज्यातिपका।
 मध्यन्शका इस विख्यात नगरीक कागी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागका
 अध्यक्ष रहकर उहान हिन्दीके सर्वांगीय अध्ययनकी ओर अपन छायाम रुचि
 जगामी, दामानर पण्डितन भा कागाव राजकुमारका ११ वीं १२ वीं गनालीकी
 लोकभाषा पाननेके लिए उक्तिशक्ति प्रवर्णन का रचना सम्बृतम का थी।
 द्विवेदीजीन भी अपन माग्य गिणाम अपभ्रंश भाषाका सम्यक् अजयन करनेकी
 प्रेरणा थी। डॉ० गिरप्रसाद सिङ्गन कार्तिलता और अवदृष्ट भाषा अपने
 गुरुवर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका प्रणतिपूर्वक' नोट की ह। उन्होने लिखा
 ह— 'आचार्य द्विवेदीजीने इस निवोधके लिए विषय तय किया निर्देश दिया
 और पढ़ा-बताया, पाठके एक-एक शब्दका उहाने दमा मुना, औरतम दद रहनेपर
 भी उहान त्रिम उभाहने यह सब-कुछ किया वह उनके स्मृ-वामन्धका
 परिचायक ह, इसे कृतज्ञता प्रकट करके अंकनका घटा म नही कर सकता।' डॉ०
 नामवर सिङ्गने 'हिन्दीक विकाममें अपभ्रंशका योग' पुस्तक अपने गुरुवर आचार्य
 हजारीप्रसाद द्विवेदीका समर्पित की ह। अपभ्रंशपर इस लरके लयकका प्रवर्णन
 'अपभ्रंश भाषाका अध्ययन १९६५ म प्रकाशित हुआ। लयकन आचार्यजीका
 स्मरण किया ह— 'कागी हिन्दू विश्वविद्यालयम रहने हुए डॉ० हजारीप्रसाद
 द्विवेदीन मुम बहुत पढ़के अपभ्रंशका अध्ययन करनेक लिए परामर्श दिया
 था और पाठ्य-सामग्रीका रूपरमा नाट करावी थी। उनकी कृनियसे भी मन
 निस्सन्देह सहायता ला ह। एतदध मे उनका अनुगृहीत हूँ।' हिन्दामें अपभ्रंश
 भाषाका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन करनेक लिए य तीन ग्रंथ उपलब्ध ह और

तीनोंमें आचायकीका छाया है।

द्विवेदीजी कारणवश काशी हिन्दू विश्वविद्यालयको छाडकर पञ्जाब विश्वविद्यालयके हिंदी विभागाध्यक्ष बनकर चण्डीगढ चले गये। वे इस प्रकार प्राच्य दश और मध्यप्रदेश (जिसमें उदीच्य सस्कृतिका भी प्रभुत्व आ गया था) की साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ न केवल परिचित होकर अपितु उनके सचालनमें भी हाथ बँटाकर पश्चिम दशम आ विराजे। शौरसेनी अपभ्रंश से सम्बद्ध पश्चिमी हिंदी जिसपर पनाबीका भी प्रभाव है आपके स्थानु रचनाओंके उद्धारका उपक्रम किया। जब 'टगर प्राफेसर पदपर आमीन हाकर वे कला और सम्स्कृतिक परिवेशमें भाषाआका और व्यापक अध्यापन कर रहे हैं। वे पहले साहित्यिक परिदृश्यमें अहिंदीभाषियानों हिंदी सिखाते रहे और उनकी कठि नताओंका समझकर उनका समाधान करते रहे। अब कभी कभी एतत्थ दक्षिण की यात्रा कर आते हैं और अहिंदीभाषियाम हिंदीके प्रति प्रेम और निष्ठा जगा आते हैं। इस तरह पूव उत्तर पश्चिम, दक्षिण जहा भी व रह है या यात्रा करते रहे हैं। सस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश और हिंदी भाषाआका परम्पराके प्रमुख व्याख्याता रहे हैं।

द्विवेदीजीने स्वयं अपभ्रंश भाषाके सम्बन्धमें अपने विचार 'हिंदी साहित्य की भूमिका में विशेषतः उसके द्वितीय अध्यायमें, तथा हिन्दा साहित्यका आदिकाल में विंगद रूपमें अभिव्यक्त किया है। उन्होंने हिन्दा साहित्यका 'प्रस्तावना' धार 'आदिकाल में अपभ्रंश भाषा और साहित्यका सारगर्भित परिचय दिया है। पहली पुस्तक साहित्यिकेन और गेप दाना कागा विरग विद्यालय-कालीनी दन है। अपभ्रंशके लोककाय सदा रामक के पाठ-संगानन सम्बन्धमें नागरी प्रचारिणी पत्रिकामें उनकी एक लतमाला लिखी थी। 'साकी भूमिकाके रूपमें समाविष्ट करर उन्होंने अपन प्रिय छात्र आयुमान धा विरगनाथ त्रिपाठी (लखनूर के ० एम० वांज लिला)के साथ सत्तम रामक का तम मिस सम्पादन किया है। भूमिकाके पाठ-संगानन करत हुए रामकका विंगद गदानगी और दिग्दृष्ट गदानगीपर अच्छा प्रताप डाला गया है। त्रिपाठीजी अपनी भूमिकामें रामकका अपभ्रंश भाषाआ भी सतिज विवरन किया है। यह प्रथम उनकी चण्डीगढ़-यात्राका स्मारक है यद्यपि उसकी भूमिका कागाम हा दन चुका थी।

अपभ्रंश भाषाके सम्बन्धमें उनके विचार आर मायताआका सतिज विवरण दे दना जरूरी है।

साहित्यिकेनस सिनालिय

हिन्दी साहित्यके आधिकारिक विवचन और भीमा निर्धारण करते हुए यह प्रश्न उत्पन्न है कि अपभ्रंशका हिन्दीमें परिगणित किया जाये या उससे पृथक् और यदि उसकी पृथक् सन्ना स्वीकृत की जाय तो उसकी और हिन्दीको सन्नाधिकारका क्या नाम दिया जाये। हिन्दी साहित्यके इतिहासकार अपभ्रंशको आदिनालय माथ जोरते आये ह। आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी सम्मतिमें 'सिद्धा-की उद्घटन रचनाभाषी भाषा देवभाषा मिश्रित अपभ्रंश अर्थात् पुरानी हिन्दीकी वाच्यभाषा है। उन्होंने लिखा—“गिद्धामें मरह मयम पुराने अर्थात् वि० स० ६९०२ हैं। अब हिन्दी काव्यभाषाक पुराने रूपका पत्ता हमें विष्णुकी सातवीं गतातीने अन्तिम चरणमें लगना है। पुरानी हिन्दीका प्रमाण १० बरबर रामा ग्रेसीन चलासा था। उन्होंने साहित्यिक परिनिष्ठित अपभ्रंशको यही सन्ना दी थी। निम्न साहित्यके ममय विज्ञान राहुल माहृत्यायनने तो अपनी 'हिन्दी काव्यशास्त्र'में उन्नी गतातीके मरुत्पात लेकर १३वीं गतातीके राजाक्षर सूची तककी अपभ्रंश बर्णनाआरा पुरानी हिन्दीमें सम्मिलित किया। आचार्य डिबेनी मम मत्तम महमत नहीं। उन्होंने हिन्दी साहित्य म प्रतिपादित किया कि यह विचार भाषाशास्त्रीय और बर्णनिक नहीं ह। भाषाशास्त्रके अर्थमें, जिस हम हिन्दी (खन्नी वाली ब्रजभाषा अबकी आदि) कहते ह वह इस साहित्यिक अपभ्रंशम साथ विष्णित नहीं हुई ह। व्यवहारमें पञ्जाबने लेकर निहार तक बोला जानेवाले सभी अपभाषाआ हिन्दी कहते ह। इसका कारण म विस्तार मूमागरे निवासियानी साहित्यिक भाषाकी केन्द्राभिमुखी प्रवृत्ति ह। गुजराती इस व्यावहारिक अर्थपर जार देने हैं। जगतक नामका प्रश्न ह, गुजरातीका मुगलक परिष्कारकी माथ नहीं हुआ ह। अपभ्रंशको अब कोई पुरानी हिन्दी नहीं कहता। परन्तु जहाँतक परम्पराका प्रश्न ह निम्नह हिन्दीका परवर्ती साहित्य अपभ्रंश-साहित्यक क्रमक विकसित हुआ ह।’

वस्तुतः स्थिति यह ह कि उपपुस्तक रूपकों और द्विवचनमें कई साहित्यिक अन्तर नहीं। गुजराती भी केन्द्राभिमुक्त प्रवृत्ति अर्थात् गौरमती अपभ्रंशकी प्रमत्तता आकारपर ह। पुरानी हिन्दी नाम रखने ह। उन्ने पुरानी हिन्दी कथि या द्विवचनीजीका भाषाम 'पुनवर्ती अपभ्रंश'। गुजरातीने लिखा था— अपभ्रंश कदा गमान्य होता ह और पुरानी हिन्दी कदा आरम्भ होती ह, इसका निश्चय करना कथि है किन्तु गलत और बडे महत्त्वका ह। इन दो भाषाओंके समय और दूबे विषयम बार् स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती। कुछ उदाहरण ऐसे ह जिनमें अपभ्रंश भी बड म्मन ह पुराना हिन्दी भी। यद्यपि दो भाषाओं क बीच गणितशास्त्रीय विभाजक रेखा खींचना कठिन है तथापि आचार्य

द्विवेदीने यह प्रयत्न अवश्य किया कि अपभ्रंस और हिंदीमें स्पष्ट रेखा खींच दी जाये। उन्होंने हेमचन्द्र-द्वारा निर्धारित 'परिनिष्ठित' और 'ग्राम्य' अपभ्रंशों में भेद स्वीकार किया और लिया—'एस (ग्राम्य)में 'रामक' 'डोमिन' आदिकी धेणीके लोकप्रचलित गेय और अभिनेय वाच्य लिखे जाने थे। यह भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंशमें आगे बढ़ी हुई (गण्डवाम्) प्रतापी जाती है। इसमें दौढ़ाके पद और, दोहे, प्राकृत पैगण्डे उदाहृत अविभागा पत्र, सदाश रामक आदि रचनाएँ लिखी गयी हैं। वस्तुतः यही भाषा आगे चलकर आधुनिक दक्षी भाषाओंके रूपमें विकसित हुई है।' एमी आगे बढ़ी हुई के लिए 'अप्रमरीभूत अपभ्रंश भाषा का व्यवहार द्विवेदीजीने 'कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा की भूमिकाम किया है। अप्रमरीभूत अपभ्रंश भाषा'को वे 'सदेगरामक, वणरत्नाकर', 'कीर्तिलता' और 'प्राकृतपैगण्ड' की वशीधररचित टीकामें प्रयुक्त 'अवहट्ट'का पर्यायवाची शब्द मानते हैं। कीर्तिलताके विषयमें उन्होंने लिखा है— 'हमें (अवहट्ट) या अप्रमरीभूत अपभ्रंश भाषाका नमूना प्राप्त होता है।' 'हिन्दी साहित्य के लेखनकालमें (सन् १९५२) वे अप्रमरीभूत अपभ्रंश का 'अवहट्ट' कहनेमें कुछ सकोच अस्य करते रहते हैं। १४वीं शताब्दीके संस्कृतक दा पण्डिता अर्थात् विद्यापति और ज्यानिरोस्वरने इस भाषाको 'अवहट्ट' कहा है। एमीलिए कुछ विद्वानोंने परिनिष्ठित अपभ्रंश आगे बढ़ी हुई भाषाको अपभ्रंश न कहकर अवहट्ट कहना शुरू किया है। परन्तु भाषाशास्त्रियोंने यह शब्द अभीतक स्वीकृत नहीं किया है।' परिनिष्ठित अपभ्रंश और अप्रमरीभूत अपभ्रंश कहिए या केवल अपभ्रंश और अवहट्ट कहिए—वस्तुतः त्वम को अंतर नहीं पड़ता, परन्तु एक बात अत्यधिक उल्लेखनीय निम्न आती है कि हिन्दीकी अव्यक्ति पूर्ववर्ती संधिभाषा अवहट्ट (अप्रमरीभूत अपभ्रंश) है जिसके साहित्यका विकास हिन्दी साहित्यके आदिकालमें किया जाता चाहिए। द्विवेदीजीने एसा किया भी है। उन्होंने १०वीं शताब्दीमें पूर परिनिष्ठित अपभ्रंशकी स्थापना की है और १०वाम १४वीं शताब्दीके अप्रमरीभूत अपभ्रंश आदिकालका अग मान लिया है। वे लिखते हैं— 'दशवीस चौहट्टी गतांगी तत्रके समयमें लोकभाषामें उन्नित जो साहित्य उपरब्ध हुआ है उसमें परिनिष्ठित अपभ्रंशमें कुछ आगे बढ़ी हुई भाषाका रूप दिखाई देता है। इसलिए दशवीस चौहट्टी गतांगीने उपर्युक्त लोकभाषा साहित्यको अपभ्रंश या डी भिन्न भाषाका साहित्य कहा जा सकता है।'

'हिन्दी साहित्य के उपर्युक्त कथनों 'हिन्दी साहित्यके आदिकालमें निम्न शब्दोंमें उन्नित किया गया है—' इस प्रकार दशवीस चौहट्टी गतांगीका काठ

जिसे हिल्मीका आत्काल कहते हैं, भाषाकी ढष्टिम अपभ्रंशवा ही वडाव ह । इसी अपभ्रंशके बनावको कुछ लोग उत्तरकालीन अपभ्रंश कहते हैं और कुछ लोग पुराना हिन्दी । अग्रसगीभूत या उत्तरवागीन अपभ्रंशका आधार तो 'ग्राम्य अपभ्रंश या लोकभाषा' है परन्तु उसकी एक बड़ी विशेषता है सम्प्रत तमम गुरुके प्रयोगकी प्रवृत्ति जो हिन्दीमें भी गहरी हुई है । इन तथ्यकी ओर द्विवेदाजीने अपने प्राय सभी ग्रयामें ध्यान सीधा ह । दामादके उक्ति-ध्वनि प्रकरण में ज्यातिरोद्वरके वर्णनाकर में और विद्यापतिकी कीर्तिलता तथा कीर्त्तिपताका क गद्य भागमें समृत्त तमम शब्दोंका प्रचुर प्रयोग ह । १२वीं गतालीके गज विजयमिहके लमोह जिनेमें प्राप्त हिन्दी गिलाशेका पद्य २२ पर उद्धरण रहे हुए शिवलीने हिन्दी साहित्यका आत्काल में लिखा है—

“यत् स्पष्ट रूपय बताता ह कि पद्यकी भाषा अपभ्रंश ही थी विल्लु बाल-बालकी भाषामें समृत्त-तमम गुरु आने लगे थे और उनका प्रभाव पद्यकी भाषापर भी पुरु था ।

- इसी प्रकार उपरख विवेचनय शिवलीजीकी निम्न मायताएँ प्राप्त होती हैं
- १ अपभ्रंश भाषाक दा भेद ह—(अ) परिनिष्ठित और (आ) ग्राम्य ।
 - २ ग्राम्य अपभ्रंशका आधारपर 'अग्रसगीभूत अपभ्रंश या अवहट्टका विकास हुआ ह । वह लोकभाषायित ह ।
 - ३ अग्रसगीभूत अपभ्रंशका काल १०वीं गतालीने १४वीं गतालीने ह ।
 - ४ अग्रसगीभूत अपभ्रंश भाषा हिन्दी बाल्यके माय आदिवाकमें विषय्य हो सकता ह ।
 - ५ अग्रसगीभूत अपभ्रंश में समृत्त-तमम गुरुके प्रयोगकी प्रवृत्ति ह ।

अवहट्टका समग्र भाषावर्णानि अध्वयन द्विवेदाजीने उपस्थित नहीं किया ह । यत् काय उनके निष्पन्नमें उनर सिध्दान्त किया ह जया पदके कहा जा चुका ह ।

परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा क ह निम्नका विवचन हेमचन्द्र त्रिविक्रम लक्ष्मीयर् आदि ब्याकरणान किया ह और तिममें स्वयम्भू पुष्पलन्त आत्की रचनाएँ ह । अपभ्रंश भाषाक गन्धर्वमें शिवलीजाक निरूपण जा गामाय सम्मन ह हिन्दी साहित्यकी भूमिका में निम्न रूपमें लिखे गये ह

१ अपभ्रंश भाषा सन ईसवीक प्रथम गतरमें आभारी भाषाके नामर लख्य की गया थी और भारतवषक पश्चिमात्तर सामानमें बाला जाती था ।

इतिहाम-दान
११

आभीरोंका विशेष प्रकारका स्वर-वैचित्र्य और उच्चारण प्रावण्य इसका प्रधान लक्षण था। यद्यपि यह आभीरी नामने पुकारी गयी, पर धी आभभाषा ही।

२ मन ईसवीकी छठी शताब्दीमें साहित्य सृष्ट हो चुका था, जिसे भामह और दण्डी-जैसे आलोचकोंने उल्लेख योग्य ममथा। अब भी यह आभीराम विशेष रूपस मम्बद्ध मानी जाती थी। अनुमान ह कि आभीराने हाथमें राय सत्ता आनेके साथ इसमें काव्य लिखे जाने लगे।

३ ९वीं शताब्दीमें यह जन-साधारणकी भाषा समझी जाने लगी और इसका विशेष सम्बन्ध केवल आभीर आत्मि ही ह यह धारणा जाती रही। अबतक यह सौराष्ट्रसे मगधतक फल चुकी थी। तत्तत स्थानोंके अपभ्रंशोंमें निश्चय ही ने रहे होंगे पर कायके लिए आभीरों-द्वारा प्रोत्साहित भाषा ही साधारण भाषा मान ली गयी थी।

११वीं शताब्दीमें आलोचकों और व्याकरणोंने लक्ष्य किया था कि अपभ्रंश कोई एक भाषा नहीं हैं सन्नि स्थान भेदमें अनेक प्रकारकी हैं। अर्थात् यहाँ तक आकर अपभ्रंशका व्यवहार लावभाषाके अर्थमें होने लगा था।

लोकभाषा ही 'अप्रसरीभूत अपभ्रंश'का रूप लेती ह यह हम दख चुके ह। द्विवेदीजीने हिंदीकी मूलभूत अपभ्रंश भाषाका स्वरूप और उनका हिन्दीस लगाव स्पष्ट करके ही हिन्दी साहित्यके इतिहासकी नींव रखी है।

अनमें 'समृत्तपाठुतापभ्रंश भाषान्तय प्रतिगुढ प्रयत्नलोचन निपुणात करण आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदीकी पट्टिपूति सुन्द ही और वे न केवल 'गतायुर्के पुष्प'की सामाय उत्तिको पूरा करें अपितु 'भूयश्च शरत् शतात' तय चिरायु होकर नीनों भाषाअभि पट्ट हिन्दी भाषाकी सेवा करते रहे यही कामना ह।

अपभ्रंश और हिन्दीके सम्बन्धपर द्विपदीजीके भाषाशास्त्रीय विचार

••

कैलाशचन्द्र भाटिया

'अपभ्रंश' और हिन्दीना अटूट सम्बन्ध है। मध्यकालीन आयमापाक विकास क ततीय सोपान 'अपभ्रंश' से ही आधुनिक भारतीय आयभाषाएँ विकसित हुई हैं। हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशना महत्त्वपूर्ण योगदान है। अपभ्रंशका साक्ष्य है—विकृत भ्रष्ट अशुद्ध वह जा अपने निश्चित रूप या स्थानसे गिर गया हो। किसी आदस भाषाकी परिनिष्ठित शब्दावलीस इतर रूप ही 'अपभ्रंश' कहलात है। महाभाष्यकार पतञ्जलिनै 'अपभ्रंश शब्दा प्रयोग असाधु' शब्दोंक लिए किया है किसी भाषा विशेषक लिए नहीं। भागह दण्डी आदि आलकारिकोंन भाषात्रयाम हमशा अपभ्रंशका सम्मिलित किया है। काव्यालंकार में [१।१६] में प्राकृत सम्बन्धत चतस्र अपभ्रंश इति त्रिषा' लिखकर भागहने सब प्रथम प्राकृतके साथ-साथ अपभ्रंशको मायता प्रदान की है। श्राचन्द्रधर शर्मा गुलेरीन ता अपभ्रंशको ही पुरानी हिन्दी नाम लिया है।

आचार्य हजारप्रसाद द्विवेदीके चिन्तनका क्षेत्र मुख्यतः हिन्दी साहित्यका आलंकार रहा है अतएव अपभ्रंश और हिन्दीके पारस्परिक सम्बन्धपर आपके विचार अनन्य साहित्यिक दृष्टियों भाषणो तथा निबन्धोंमें विस्तार पड हैं।

'प्राकृत और अपभ्रंश' की समस्या उठन ही आपन बड स्पष्ट शब्दाम घोषित किया यह बात स्मरण रखन योग्य है कि यद्यपि प्राकृतमें कृत्रिम रूपसे बनाये गये अपभ्रंश भाषामें काव्य लिख गये परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्राकृत नामकी कोई भाषा पहल बोली जाती थी और अपभ्रंश नामका भाषा बादमें बोली जाने लगी। अमलम अपभ्रंश लाक्षण प्रचलित भाषाका नाम है जो नाना काल और नाना स्थानमें नाना रूपाम बोली जाती थी और बोली जाता है। गुरु-गुरुम इसका आभीराकी भाषा जरूर माना जाता था, पर बादमें चलकर यह लाक्षण भाषा ही नामांतर हो गया। वरदचिन्त प्राकृत प्रकाश में उस युगकी भाषाके साहित्यिक रूपका वर्णन है। लाक्षण प्रचलित भाषा कुछ इतिहास-दरान

और ही थी। भाषाशास्त्रियान लक्ष्य किया है कि अपभ्रंश नामक उत्तरकालीन काव्य भाषामें ऐसे बहुत-से प्रयोग पाये जाते हैं जो वास्तवमें वरुचिके महाराष्ट्री शौरसेनीके प्रयोगोंकी अपेक्षा प्राचीनतर हैं। उदाहरणार्थ, 'कहा' या व्रजभाषा या 'कह्या' प्रयोग उत्तरकालीन अपभ्रंश 'कहिउ' से निकला है। इसके अपभ्रंश और प्राकृत भेदोंकी तुलना की जा सकती है—अपभ्रंश 'कधिपो' या 'कधिदा' भागधी 'कधिदे' या 'कहिद' महाराष्ट्र 'कहिओ' और उत्तरकालीन अपभ्रंश 'कहिउ'। स्पष्ट ही पुराने अपभ्रंश रूप 'कधिदो' और 'कहिदो' महाराष्ट्री रूपों से पुराने हैं।^१

द्विती भाषाव क्रमिक विकासकी दृष्टिसे अपभ्रंश तथा सधिकालीन युगकी अनेक साहित्यिक कृतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं जिनमें जन साहित्य, 'प्राकृतपंगलम्', सप्तश रासक तथा 'बौद्ध गान औ दाहा' ली जा सकती हैं। 'बौद्ध गान औ दाहा' शीपकसे जा अपभ्रंश साहित्य महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्रीने प्रकाशित कराया उसका प्राचीन बगला कहा गया। इसपर टिप्पणी करते हुए आचार्यजीने लिखा है—'इसके दोहोंकी भाषामें परिनिष्ठित या स्टण्डड अपभ्रंशक रूप ही मिलते हैं, पर पदोंम पूर्वी प्रयोगके भाषाव चिह्न भी मिल जाते हैं।'^२

इस कालके ही एक ग्रन्थ 'सप्तश रासक' का तो बादम आचार्यजीने सुम ध्यादित संस्करण तयार किया जिसमें 'पाठ-भेदकी समस्याओं का निराकरण द्विवेदीजीने अपने 'अपभ्रंश नाम के आधारपर ही किया है। उदाहरणके लिए २।२४ में 'पहु णिहद' लिया जा सकता है जिसमें 'पहु का प्रभु के स्थानपर 'पय' अथ द्विवेदीजीको उचित प्रतीत हुआ

मुझे लगता है कि यहाँ पहु = प्रभु नहीं, पहु-यव हाना चाहिए। 'निअ'का अर्थ जोहना, दणना प्राकृतम मिलता है। हप० ४-१८१। हेमचन्द्रने अपभ्रंशक एक दाहमें मग्गु निअत्त । = माग दणतो हुई वाट जोहती हुई। प्रयोग लिखाया है—

पहिया दिट्ठी गारनी दिट्ठी मग्गु निअत्त ।

अमूसामेहि पचुआ, तितुत्राण करत्त ॥

(पधिरु, गारो णित्ठी ' , ' णित्ठी माग जोहती हुई और वजुराजा आपूने भिगोकर उच्छवासोमे सुखाता हुई ।) निअ का अकार ही महाप्राणमें बल्लकर ह हो गया है। अपभ्रंशमें ऐसा प्राय हा जाता है। मग्गु नियत्त, 'पहु

१ दि १। साहित्यकी भूमिका, सन् १९४० ई०, पृ० २७ २०।

निहद' एक हा मुहावरक दो रूप ह । इसीलिए यहाँ अय करना चाहिए 'पय निहारी हूँ खनी थी, बाट जाह रही थी इत्यादि ?"'

'अपभ्रंश' नामक प्रसिद्ध भाषा क्या सचमुच लोक भाषा थी ? इस प्रश्नका उत्तर भी इस प्रकारसे दिया गया है 'अपभ्रंशका सबसे पुराना उल्लेख भी कबल कालिदासक विक्रमोवशाप में ही नहीं मिलता, उससे भी बहुत पुराने कालमें मिलता है । भारताय नाटय-शास्त्रमें यद्यपि अपभ्रंश नामक भाषाका उल्लेख नहीं है पर लोक भाषाक नमून है । भरत मुनिने लक्ष्य किया था कि इन लागाका आधिक्य जिन प्रत्याम था—अथान सिन्धु, सीबीर और हिमा लयके अग क्रिपयम उकार-बहुला भाषा जनसाधारणम प्रचलित हो चला थी । भाषाशास्त्रियाम-म कइ लागाका अनुमान है कि यह उकारबहुला भाषा अपभ्रंश-मे मिलती-जुलती हागा ।

बाग चलकर शास्त्रकाराका यह स्पष्ट निर्देश भी पाया जाता है कि काव्यमें आभार आदिकी भाषाको अपभ्रंश कहत है । दण्डी (कायादश १-३६) । यह स्मरण रखनेकी बात है कि यह कवच बालीका विवरण नहीं है पर काव्य भाषाका व्योरा है । दण्डीने यह भा कटा है कि सस्त्रुत्व कायामें सग होते है प्राकृतमें सन्धि और अपभ्रंशमें आसार आदि । इनसे इनना तो पर्याप्त स्पष्ट है कि दण्डीके युगमें अपभ्रंश भाषामें काव्य हाने लग थ । इन काव्याके रचयिता क-बड़ निगान और दागनिक गण ही नहीं थे बल्कि साधारण जनता भी थी जिसे दण्डीने आभीर प्रभृति कहा है । जान पड़ता है, आभीराकी भाषा ही उस युगक पणितानी दष्टिम अपभ्रंशका उत्तम नमूना थी । परवर्ती कालके सभी पणित नाटकक आभार पात्राक मुखस अपभ्रंश केवल आभारा या अहाराकी ही भाषा पर यह समझना ठाक नहीं है कि अपभ्रंश केवल आभारा या अहाराकी ही भाषा था । भरत मुनिन गुरु-शुल्में इस नवागत जानिक लागाके मुँहस जिस प्रकारको भाषाको उच्चरित हात सुना उस अपभ्रंश-अना काई नाम न दकर एक जाति विसयका भाषा यदलाया था पर गीघ्र हा य अहीर भारतक पद्विनी और मध्य नागम प्रचान हा उठ । इस प्रकार जा भाषा भरतक युगम कवल एक जातिकी भाषा था वह धार धार सार दसरी भाषा हा उठी । दसभाषाकी यह विगोपता जा आभाराके समगन प्राप्त हुई था वही प्रधान हो गया और भाषाका साधारण रूप तन्काल प्रचलित प्राकृत ही रही । अपभ्रंशमें उस प्राकृतका एक साम प्रारका स्वर बधिप्रय और उच्चारण प्राणय्य प्रचान हो उठा । 'च'का मूल

१ सन्देश रासक माच ११६०, पृ० ११ १२ ।
इतिहास-द्वयान

काय बहुत-कुछ अपभ्रंशकी प्रकृतिका था और आज वह जिस रूपम मिलता है वह उसका अत्यंत विकृत रूप है। असलमें अपभ्रंश भाषामें काय रचना चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी तक होती रही, यद्यपि इसके बहुत पहले ही उसने नयी भाषाको स्थान दे दिया था।^१

आचार्य द्विवेदीने बड़े स्पष्ट शब्दोंमें निष्कर्ष रूपमें लिखा है कि "हिन्दीमें दो प्रकारकी भिन्न भिन्न जातियांकी दो चीजें अपभ्रंशसे विकसित हुई हैं

१ पश्चिमी अपभ्रंशमें राजमनुष्य, ऐहिकतामूलक शृंगारी काव्य, नीति विषयक फुटकल रचनाएँ और लोकप्रचलित कथानक।

२ पूर्वी अपभ्रंशमें निगुनिया सतोंकी शास्त्रनिरूपण उग्र विचारधारा, पाठ फटकार, अव्यङ्ग्यता, सहज गूथकी साधना, याग-पद्धति और भक्तिमूलक रचनाएँ^२।"

इस सम्बन्धमें द्विवेदीजीकी दूसरी महत्वपूर्ण कृति है 'हिन्दी साहित्यका आदिकाल'। यह पुस्तक वस्तुतः द्विवेदीजीने पाँच शोधपरक व्याख्यानाका संग्रह है। प्रथम व्याख्यानमें ही आदिकालीन भाषाकी समस्याको आपने उठाया है। हिन्दीके उत्तरकालीन कवियोंकी भाषामें तत्सम शब्दकी समस्या भी आपने उठायी है

'विधुवनीमें बनी' परम्परा प्राप्त शब्द है और 'चन्द्रवदनि'में वदनि नये घुमावकी सूचना देता है। 'ल्येयन कायन'में 'ल्येयन पुरानी स्मृतिका चिह्न है और 'माचविमोचन छोचन'में 'लोचन नये प्रभावका द्योतक है। 'मन-सर म 'मन' पुरानी विरासत है और 'मदनमाहन'में 'मदन नया अतिथि है। स्पष्ट ही दमवीसे तेरहवीं शताब्दी तककी बोलचालकी भाषामें सस्कृत-तत्सम शब्दका प्रयोग बढ़ने लगा था। इन कुछ शताब्दियोंमें अपभ्रंशमें मिलती-जुलती भाषा पद्यका वाहन बनी रही और गद्यकी भाषा तत्सम बहुल होती गयी। कर्तिलतामें इनकी स्पष्ट सूचना मिलता है। धीरे धीरे तत्सम गद्या और उनका नये उद्भव रूपाके कारण भाषा बदली-सी जान पड़ने लगी और चादहवीं शताब्दीके बाद यह बदल ही गयी। इसके पूर्व अपभ्रंश और दस्य मिश्रित अपभ्रंशकी प्रधानता बनी रही। इस प्रकार दसवीसे चौदहवीं शताब्दीका काल, जिसे हिन्दीका आदिकाल कहते हैं भाषाकी दृष्टिसे अपभ्रंशका ही बढ़ाव है। इसी अपभ्रंश

१ हिन्दी साहित्यकी भूमिका, सं० फरवरी १९४८ ई० पृ० २२-२३-२४-५ और २७।

२ वही, पृ० ३६।

बढ़ावों कुछ लोग उत्तरकालीन अपभ्रंश कहते हैं और कुछ लोग पुरानी हिन्दी।”

इस पुरानी हिन्दीके कुछ पुराने नमूने शिगलेखोम मिल जाते हैं। बारहवीं शताब्दी तक निश्चित रूपसे अपभ्रंश भाषा ही पुरानी हिन्दीके रूपमें चलती था, यद्यपि उसमें नये तत्सम शब्दोंका आगमन शुरु हो गया था। गद्य और बोलचालकी भाषामें तत्सम शब्द मूल रूपमें रखे जाते थे, पर पद्य लिखते समय उन्हें तदभव बनानेका प्रयत्न किया जाता था। यद्यपि गद्यकी और बोलचालकी भाषामें तत्सम शब्दोंका प्रचार बढन लगा था पर पद्यमें अपभ्रंशका ही प्रभाव था। इसलिए इस कालको अपभ्रंश-कालका बढ़ाव कहना उचित ही है।

द्वितीय व्याख्यानमें अपभ्रंशके तत्कालीन सा उपरुपाकी द्विवेणीजीने चर्चा की है—

एक तो शिष्ट जनकी अपभ्रंश भाषा जिसका व्याकरण स्वयं हेमचन्द्राचार्यने लिखा था आर जो प्रधानरूपमें जन फण्डितोंके हाथों संवरती रही। यह बहुत कुछ प्राकृत और सत्सुतकी भाँति ही शिष्टभाषा बन गयी थी।

दूसरा ग्राम्य अपभ्रंश भाषा जा सम्भवतः चलती खान थी। भाषाशास्त्र की दृष्टिमें यह अधिक अग्रसर हुई भाषा है। सादेनागसक इसी प्रकारके अपभ्रंश-म बारहवीं-त्रहवीं शताब्दीमें—अर्थात् लगभग उसी समय जब पृथ्वीराज रासो लिखा जा रहा था—रचित हुआ था। इसकी भाषा बोलचालके अधिक नजदीक थी।

दूसी व्याख्यानमें आगे विस्तृत रूपसे अपभ्रंश तथा हिन्दीके पारस्परिक सम्बन्धकी बात बढायी गयी है।

फिर पंचम व्याख्यानमें अपभ्रंशके छन्दोंका चर्चा की गयी है 'आजका प्रिय छन्द 'दाहा' हिन्दीको अपभ्रंशसे ही विरासतमें मिला है। जब-जब कोई जाति नवीन जातियोंके सम्पर्कमें आती है तब तब उसमें नया प्रवृत्तियाँ आती हैं नयी शब्द-भंग्गपराका प्रचलन होता है नये काव्य-रूपोंकी उदभवना होती है और नये छन्दोंमें जनचित्त मुग्वर हो उठता है। नया छन्द नये मनोभावकी सूचना देता है। श्लोकका उदय नयी साहित्यिक भावकी सूचना है। वह बताता है कि सर्वेत्तन नील बहिचित्तम नये युगके उप कालकी किरण नवीन जागरणका सन्देश दे चुकी है। इसा प्रकार गायिका अन्य दूसरी सूचना है दाहाका तीसरी।”

१ हिन्दी साहित्यका इतिहास, तृतीय सं० १९११ पृ० २०-२१-२४।
२ वही पृ० ४२।
३ हिन्दी साहित्यका इतिहास पृ० ६७।

"जैसे श्लोक लौकिक संस्कृतवा, गाया, प्राकृतवा प्रतीक हो गया है उसी प्रकार दोहा अपभ्रंशवा। सब बात तो यह है कि जहाँ दोहा है वहाँ संस्कृत नहीं, प्राकृत नहीं, अपभ्रंश है। दोहा अपभ्रंश भाषाकी प्रकृतिके अनुसार ह्रस्वात छंदके रूपमें है। यह छंद नवी दमयी शताब्दीमें बहुत लोकप्रिय हो गया था। इस छंदमयी बात यह है कि इसमें तुक मिलाये जाते हैं। संस्कृत, प्राकृतमें तुक मिलानेकी प्रथा नहीं थी। दोहा, वह पहला छंद है जिसमें तुक मिलानेका प्रयत्न हुआ और आगे चलकर कभी ऐसी अपभ्रंश कविता नहीं लिखी गयी जिसमें तुक मिलायेगी प्रथा न हो। इस प्रकार अपभ्रंश भाषा केवल नवीन छंद लेकर ही नहीं आयी बल्कि नवीन साहित्यिक कारीगरी लेकर आविर्भूत हुई।"

एक बात यहाँ और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हिन्दी साहित्यपर जाँच कागज़ों जो आचार्यजीने पृष्ठ १८ पर किया था कि 'नहीं जान यह है कि चौदहवीं शताब्दी तक देशी भाषाके साहित्यपर अपभ्रंश भाषाके उस रूपका प्राधाय बना रहा है जिसमें तदभव शब्दोंका ही एवमात्र राज्य था। उस बीच धीरे धीरे तत्सम-बहुल रूप प्रकट होने लगा था। नवीं दमयी शताब्दीने ही बोलचालकी भाषामें तत्सम शब्दोंके प्रयोगका प्रमाण मिलने लगता है और १६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें तो तत्सम शब्दोंके निश्चित रूपमें अधिक मानामें व्यवहृत होने लगे। नियाएँ और विभक्तियाँ तो ईषन् विचमिन या परिवर्तित रूपमें बनी रहीं पर तत्सम शब्दोंका प्रचार बढ़ जानेसे भाषा भी बदली-सी प्रकृतकी प्रकृति। भक्ति के नवीन आंदोलनने अनेक लौकिक जन-आंदोलनके रूपमें व्यापक प्रतिक्रिया दी। स्पष्टकर पकड़ा दिया और भागवत पुराणका प्रभाव बहुत व्यापक प्रतिक्रिया दी। स्पष्टकर मनकी दृष्टि प्रतिष्ठाने भी बोलचालकी भाषामें और साहित्यिक-तत्सम शब्दोंका प्रयोग गन्तव्य प्रयोगका सहारा नियाया। तत्सम शब्दोंका प्रयोग मिलती-जुलती भाषा एवाक्य नवान रूपमें प्रकट हुई मद्यपि वह संस्कृती प्रकृती गयी। दमवीसे चौदहवीं शताब्दीके बादवा साहित्य अपभ्रंश प्रधान भाषा, प्रकृतभाषा और उगवा पुष्ट करने हुए डॉ० निवप्रसाद सिंहके शोध प्रबंध सूर्य प्रसादजीने तत्सम साहित्यकी भूमिकामें लिखा है मुझे प्रसन्नता है कि साहित्यिक-तत्सम शब्दोंका प्रयोग और भी पुष्ट और समर्थन हुआ है।"

१ बही पृ० १००।

२ डॉ० शिवप्रसाद मिश्र 'परपूर मन्भाषा और उसका साहित्य', १९४८ ई०, भूमिका।

साहित्यिक-तत्सम शब्दोंका प्रयोग और भी पुष्ट और समर्थन हुआ है।

द्वितीयजीन अपने शोधपरक प्रया, भाषणामि इतर व्याख्यान निबन्धा
में अपभ्रंश और हिन्दीके सम्बन्धपर यत्न-तत्र प्रकाश डाला है। इस दृष्टिसे
ज्वलन्त समस्या 'य' तथा व श्रुतिपर अपभ्रंशक परिवेगम विचार अर्थात्-
वाक शोधकसे लिखित व्याख्यानमें प्रकट किया है

'हिन्दी' य श्रुतिके प्रयोगके लिए दो प्रकारक विचार है। इन विचारामि
चालित हाकर ही दो प्रकारकी लेखन शली प्रतिष्ठित हुई। एक पण उच्चायमें
य' की श्रुति मात्रा स्पष्ट और अधिक मात्राम ह इसलिए उसमें य का लिखा
जाना आवश्यक है किन्तु गए' या गई'में यह श्रुति अस्पष्ट और अल्प मात्राम
ह या नहीक बराबर है। इसलिए इन पणों में य' का लिखा जाना उचित
नही है। दूसरा पण कहता है कि गया में-न ता हम य' श्रुतिको हटा नहीं सकत
और बहुवचन या स्त्रीलिंग रूप अकारका व्यवहार ही निर्धारित हुआ है।

वस्तुतः दोना ही पणामें कुछ सचाई है। अपभ्रंश कविताम है य श्रुति
क लिखनेकी गिथिलता गियाई देन लगती है। दो स्वर वर्णोंका एक-साय रटना
अपभ्रंशमें निषिद्ध नहीं है। एना अपभ्रंशका दोहा शायद ही मिटे जिसमें
कही-न-कही का स्वर वर्ण एक साथ न मिल जाने हो। हिन्दीमें भी चाहे वह
पुरानी हो या नयी दो स्वर वर्णोंका एक-साय अवस्थान निषिद्ध नहीं है केवल
पणके मध्यम जब दो स्वर साथ साथ आते है तत्र ता य श्रुति या व श्रुतिका
कुछ स्पष्ट रूप गियाई देता है। मन्म जो 'मअन रूप बनता है उसमें य'
श्रुति आ जाती है और उमका स्पष्ट उल्लेख भी कर दिया जाता है। इस प्रकार

पण मयन और आग चलकर और भी घिसकर मन बन जाता है। किन्तु
उपज्ञ और बिनसट में य श्रुतिका कोई चिह्न नहीं दियाई देना। वस्तुतः
इस विषयमें अपभ्रंश और हिन्दी दाना ही सस्वृतकी परम्पणामे अलग हो गयी

है। अपभ्रंशक पुरान लेखकोंने य श्रुतिक नियमापर अधिक ध्यान नहीं दिया।
कही लाक्षण' और कही शोधन पाठ मित्र जाया करता है। क प्रत्ययान्त रूप
अपभ्रंशमें अनारान्त हो जाता है। कही इनक लिखनमें य श्रुति का प्रयोग मिल
जाता है और कही नहीं मिलता। कहनका मतलब यह है कि य' श्रुति अपभ्रंश
कवितामें ही अस्पष्ट हो उठी थी। अपनी श्रुतिके अनुसार लेखक लोग कहीं य
वग दत य कहीं छाड देत य। जन लखक प्राय य श्रुतिक पणपाता है।
वस्तुतः अपभ्रंशकी प्रवृत्ति य श्रुतिको निमित्त रूप तेनक कहत पणमें नहीं है।

उपपुन उद्धारणो एव विवचनसि स्पष्ट हो जाता है कि इस गिणामें आचार्य
हजारीप्रसादजीका योगदान उल्लेखनीय है।

१ कुञ्ज, १९६६ ई० पृ० ११-६०।

इतिहाम-ज्ञान
१९

हिन्दी साहित्यका आदिकाल

विश्वनाथ त्रिपाठी

हिन्दी साहित्यक प्रथम वैज्ञानिक इतिहासकार आनाय रामचन्द्र शुक्लने हिन्दी साहित्यका इतिहास की प्रारम्भिक पन्थियोंमें ही साहित्यके इतिहासके सम्बन्धमें अपनी धारणा स्पष्ट कर ली है—'जबकि प्रत्येक देशका साहित्य वहाँकी जनताकी चित्त-श्रुतिवा सचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनताकी चित्त-श्रुतिके परिवर्तनके साथ साथ साहित्यके स्वरूपमें भी परिवर्तन जाना चला जाता है। आदिस अत तक नहीं चित्त-श्रुतिश्रुतिकी परम्पराको परवर्तते हुए साहित्य परम्पराके साथ उनका सामञ्जस्य दिखाना ही साहित्यका इतिहास कहलाता है। जनताकी चित्त-श्रुति बहुत-बहुत राजनीतिक सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितिके अनुसार होती है। अतः कारण स्वरूप इन परिस्थितियोंका किञ्चित् दिग्दर्शन भी आवश्यक होता है।' शुक्लजीके इस कथामें दो-दूक स्पष्टता ही नहीं बल्कि इतिहास सम्बन्धी दृष्टिकोणकी वैज्ञानिकता और आयु-निश्चिता भी है। साहित्येतिहास सम्बन्धी यह धारणा आज भी उपयुक्त और वैज्ञानिक कही जायेगी।

एक दिन इतिहासके प्रथम संस्करणक वक्तव्यमें भी शुक्लजीने इतिहास सम्बन्धी धारणा व्यक्त की है। वे कहते हैं, 'निश्चित जनताकी जिन जिन प्रवृत्तियोंके अनुसार हमारे साहित्यके स्वरूपमें जो जो परिवर्तन जान आये हैं जिन जिन प्रभावोंकी प्रेरणामें साहित्यकारोंकी भिन्न-भिन्न शक्तियाँ पटती रहीं हैं, उन सबके सम्बन्धमें निरूपण तथा उनकी दृष्टिमें किये हुए सुगमता का विभागके बिना साहित्यके इतिहासका सच्चा अध्ययन नहीं किया जा सकता।' (प्रथम संस्करणक वक्तव्य)।

इसके थोड़ा ही आगे वे निश्चित जनताकी प्रवृत्तियाँपर फिर बल देते हुए कहते हैं—'पाँच या छः वर्ष हुए छात्रोंके उपयोगके लिए मन-बुद्ध-संगीत-नोट-तयार किये थे जिनमें परिस्थितिके अनुसार निश्चित जनताकी चित्त-श्रुति प्रवृत्तियोंको स्पष्ट करके हिन्दी साहित्यके इतिहासका साहित्यविभाग और रचनागी

मित शाखाओंके निष्पणका एक सच्चा ढाँचा खडा किया गया था।”
(प्रथम संस्करणका वक्तव्य)

ध्यान देनेका बात है कि 'गुल्जरीक' प्रथम और दूसरे तथा तीसरे उद्धरण में याहा अंतर है। प्रथम उद्धरणमें व साहित्यका जनताकी चित्त-वृत्तिका सचित प्रतिबिम्ब मानने हैं आर उनमें परिवर्तनका कारण 'जनताकी चित्तवृत्तिका' परिवर्तन बताने है जब कि जिम पद्धतिस उन्होंने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' लिया था उस प्रकट करते हुए व सिमित जन समूहकी बदलती हुई प्रकृतिया-की बान करत हैं। उनने इन वाक्यामें अन्तविराध नहीं है लेकिन आपद्में अन्तर साफ दिखलाई पडता है।

जनता और सिमित जनता में अन्तर है। 'गुल्जरीक' अपने ही वक्तव्यामें प्रकट है कि साहित्य यद्यपि जनताकी चित्त-वृत्तिका सचित इतिहास होता है किन्तु उहोण जा नोट तयार किये थे व सिमित जनताकी प्रवृत्तियापर आधा रित थे। आग हम देखेंगे कि 'गुल्जरीक'के इस टिप्पणाने उनके इतिहासकी विरापकर आदिकाल और भक्तिकालका कम प्रभावित नहीं किया है।

'गुल्जरीक' अपने इतिहासमें जहाँ-जहाँ अशिशित या अघसिमित शब्दाका प्रयोग किया है उन्हें यदि ढूँढा जाय तो यह तथ्य आश्चर्यजनक रूपमें प्रकट होता है कि इनका प्रयोग उहोण वाग्गायाकाल और भक्तिकालपर लिखत समय नाय सिद्धो और पानाश्रयो धाराके निगुण कवियाके ही सन्भमें किया है। कुछ उदाहरण देना अप्रासंगिक न हागा—

वचनयाना सिद्धान निम्न श्रेणीकी प्राय अशिशित जनताक बीच किम प्रकारक भावाके लिए जगह निकाली यह दिवाया जा चुका है (पृ० २०)।
सामाय अशिशित या अघसिमित जनतापर इनकी बानियाका प्रभाव हमके अतिरिक्त और क्या हो सकता था' इत्यादि (पृ० ६१)।

“संस्कृत बुद्धि संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणाका वह विनास इस गाना (पानाश्रयो) में नहीं पाया गाना जा सिमित ममाजका अपना आर आकषित करता पर अशिशित जनता और निम्न श्रेणाकी जनतापर इन सन्त महात्माभागा का भारी उपकार है” (पृ० ७१)।

'भक्ति या विनयक शीघ्र-सा' भाव सानी भागमें बहू गय है (गुरु नानक के द्वारा), क्योंकि समान अशिशितापर प्रभाव डालनक लिए टट्टे मठे रूपकामें नहीं” (पृ० ८८)।

'गुल्जरीक' एक आर निगुण सम्प्रदायकी पानाश्रयो धाराका सम्बन्ध अघ सिमितता और अशिशिताके जाडने है ता सगुण भक्ति बालालनके प्रवर्तनक इतिहास-दसान

सम्बन्धमें उनकी ये पक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं—

“ऊपर जिस अवस्थाका दिग्दर्शन हुआ है, वह सामान्य जन-समुदायकी थी। शास्त्रज्ञ विद्वानोंपर सिद्धो और जोगियोंकी बानियोंका कोई असर न था वे उधर पड़े अपना काय करते जा रहे थे। पण्डितोंके शास्त्राय भी होते थे, दाशनिक खण्डन मण्डनके ग्रन्थ भी लिखे जाते थे। विशेष चर्चा वदातकी थी। ब्रह्मसूत्रापर, उपनिषदोंपर, गीतापर, भाष्याकी परम्परा विद्वान्मण्डलाक भीतर चली चल रही थी जिसमें परम्परागत भक्ति मार्गके सिद्धांत पक्षका कई रूपोंमें नूतन विकास हुआ,” (पृ० ६२)।

स्पष्ट है कि आचार्यने नाथ सिद्धोंकी और ज्ञानाश्रयोंकी कवियोंकी रचनाओंका सम्बन्ध अधिशिक्षित अधशिक्षित और सामान्य जन-समुदायसे जोड़ा है जब कि भक्तिमार्गके नूतन विकासका सम्बन्ध विद्वान्मण्डलीसे जोड़ा है।

शुक्लजीके इतने वक्तव्योंका उद्धृत करनेका तात्पर्य यह है कि भक्तिवाला उद्भव सम्बन्धी उनकी धारणाके पीछे उनका जो दृष्टिकोण था उसे समझा जा सके।

भक्तिवालोंके पूर्व जो धार्मिक साहित्य था, वह साम्प्रदायिक और अशिक्षितोंको प्रभावित करनेके लिए रचा गया था और भक्तिमार्गका नूतन विकास ब्रह्मसूत्रों उपनिषदों और गीताके भाष्योंसे हुआ था फिर भक्तिवालों आदिकाल का स्वाभाविक विकास क्या हो सकता था—नहीं हो सकता था।

आदिकालमें जो सच्चा और शुद्ध साहित्य था वह तो धारणापरक था। फिर वीरताका विकास भक्ति में कैसे हुआ। शुक्लजीको इसका कारण ढूँढना दिक्कत नहीं पड़ी। वीरगाथा-कालक वीरता पराजित हो गयी और जनता उनकी पराजयसे निराश हो गयी। फिर निराशासे भक्तिकी यात्रा शुरू नहीं हुई। देशमें मुसलमानोंका राज्य प्रतिष्ठित हो जानपर हिन्दू जनताके हृदयमें गौरव, गर्व और उत्साहके लिए वह अवकाश न रह गया। उसका सामने ही उनके देवमन्दिर गिराये जाते थे देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषोंका अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। इतने भारी राजनीतिक उलट-फेरके पीछे हिन्दू जन-समुदायपर बहुत दिना तक उदासी-सी छाई रही। अपने पौरोहित्यसे हताश जातिके लिए भगवानकी शक्ति और कृपाकी आरंभ ले जानके अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?” (पूर्व मध्यकाल सामान्य परिचय)

भक्तिका सम्बन्ध राजनीतिक पराजयसे जाकर देनेसे नाथ सिद्धोंका साहित्य भक्तिके विकासकी दृष्टिसे सम्पूर्णहीन हो गया। विचित्र बात है कि जो भक्त

कवि मुसलमानों-द्वारा पराजित हानके कारण निरास होकर भगवानकी शरणम
 गये थे उन्हान मूल-स भी कभी इस्लाम या मुसलमानाका विराष या उनकी
 निन्दा नही की ह। व इस विषयमें अत्यन्त उदार ह। और फिर सूफी कविता
 भा ता भक्तिके अतगत मानो गयी है। सूफा कवि मुसलमान थे उनके हृदयम
 मुसलमानाकी विजयस क्याकर निराशा छा गयी ? फिर सारी बातें एक तरफ
 रन दी जायें तब भी यह विश्वास करना बटिन है कि निराशा और पराजय
 वट उदारता सहृदयता और अनत स्वाभिमान द सक्ता है जा भक्ति आन्दा
 लनका मूल स्वर ह और जिसव अभावमें भक्ति साहित्य-जसे साहित्यका रचना
 असम्भव था।

आज भक्तिवाल्क उदभंगपर यह बहस खत्म-सी हो चुवा ह और अब
 गुर्जोके एतद्विषयक विचाराका सीमाश्रोक लगभग स्वीकार कर लिया गया
 ह और यह 'हिन्दी साहित्यकी भूमिका के प्रकाशनम सम्भव हुआ ह।
 भूमिका आज प्रकाशित होनवाली भारी भरकम पुस्तकाकी तुलनामें काफी
 छोटी और पतली पुस्तक ह। पुस्तकके प्रारम्भमें एक पष्ठ प्रकाशककी ओरस
 ह और एक ही पष्ठ लेखकका प्राक्खयन या उपात्पात नही, निवेदन है। लकिन
 पुस्तकके प्रारम्भक ही एक-टा छाटे-छाट पैराग्राफमें जो दृढता और स्पष्टता
 निम्नलाई पत्ती ह वट आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदीकी भी अय वृत्तियाम
 दुलभ ह

आजम लगभग हजार बप पहल हिन्दा साहित्य बनना शुरू हुआ था। इन
 हजार वर्षोंम हिन्दी भाषी जन-ममुदाय क्या साच-समझ रहा था इस बातका
 जानकारीका एकमात्र साधन हिन्दी साहित्य ही ह। एक यह कि हिन्दी
 साहित्य एक हतन्प पराजित जातिकी सम्पत्ति ह, इसलिख उसका महत्व उस
 जातिके राजनीतिक उत्थान-पतनक साथ अङ्गार्ङ्ग भावम सम्यद्ध ह और दूसरा
 यह कि एसा न भी हा ता भा वह एक निरन्तर पतनशील जातिकी चिन्ताआका
 मूत्त प्रतीक ह जा अपन आपमें कोई विरोष महत्व नही रखता। म इन दोना
 बातका प्रतिवात् करता हँ म इसलामके महत्वका मूल नही रहा हँ लकिन
 जार दकर बटना चाहता हँ कि अगर इसलाम नही आया होता ता भा इस
 साहित्यका वारह आना क्या ही होना जसा आज ह। (भूमिका पृ० २)।
 इस उदररणम कुछ बातें रचाकित का जा सकती ह—

- १ जनसमुदाय जो साच-समझ रहा था हिन्दी साहित्य उसकी जानकारी-
 का साधन ह।
- २ हिन्दी साहित्य हतन्प पराजित जातिकी सम्पत्ति नही है और अग-

इतिहास-दर्शन

इसलाम रही जाया होता ता भी हमारा साहित्य कराब-कराब वंसा हा रहत जैसा ह ।

बातें कहनेके लिए तीन ह, लेकिन जरा-सी ही गहराईसे साधनेपर पता चल जाता है कि ये तीनों वक्तव्य परस्पर पूरक हैं और एक ही सूत्रकी तकपूण परिणति हैं । सूत्र ह, साहित्य जन समुदायके विचाराका सोचने समझनेका साधन ह, यानी साहित्य जन-समुदायकी अभिव्यक्ति है । आश्चर्यजनक समानता ह 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' और 'हिन्दी साहित्यकी भूमिका' की प्रारम्भिक पक्तियामे । शुक्लजी और द्विवेदीजी—दोनों शुरुमें ही 'जनता' या 'जन-समुदाय' की बात करते ह—लेकिन इतिहास-लेखनकी पद्धतिमें अंतर ह । इतने सारे उद्धरण जा उपर दिय गये हैं उनसे स्पष्ट है कि शुक्लजी साहित्यका शिक्षताकी अभिव्यक्ति मानते हैं व साहित्यका अधिकारी भी शिक्षिताकी ही मानते ह—हमने दया ह कि जा साहित्य अधशिक्षिता अशिक्षिता और सामान्य जन समुदाय को प्रभावित करनेके लिए लिखा गया था वह उन्हें पसन्द नहीं ह ।

उद्देश्य यही शुक्लजी और द्विवेदीजीके वक्तव्याका उत्पत्त करनेका किसानका उन्नोस वास बताना नहीं ह बल्कि उनकी साहित्यतिहास सम्बन्धी धारणाओं और उनके इतिहास-लेखनकी आधार भूमि समझनेका प्रयास करना है । मुझे नहीं मालूम कि अभीतक हिन्दी साहित्यके किस आलोचक और इतिहासकारने शुक्लजीके द्विवेदीजीके अधिक थढ़ापूवक स्मरण किया ह ।

हिन्दी साहित्यका मधुमध ही क्रमबद्ध इतिहास १० रामचन्द्र शुक्लन 'हिन्दी सागरकी भूमिका' के रूप म सन् १९२९ ई० में प्रस्तुत किया । शुक्ल जीने प्रथम बार हिन्दी साहित्यके इतिहासको कविवर सप्रहकी पिटातीस बाहर निकाला । पहली बार उसम दवासाञ्छवासका स्पन्दन गुनाई पया । पहली बार यह जीवन्त मानव विचारके गतिशील प्रवाहके रूपमें दिखाई पया," (आशिकाठ पृ० २) तथा "भारतीय वाग्यालाचन शास्त्रका इतना गम्भीर और स्वतंत्र विचारक हिन्दीम ता दूसरा हुआ हा नहीं अर्थात् भारतीय भाषाओंमें भी हुआ ह या ही टोक नहीं कह सकते—भाषद नहीं हुआ, (प० १४६,) । कर्ना न होगा कि शुक्लजीके बारमें द्विवेदीजीके ये वाक्य एक तरफ और उनपर लिखी गयीं और चीजें एक तरफ । जहाँनक मूर्ति बनाकर पूजनेका सवाक ह यह काम या तो साहित्यका पण्डे ही कर सकने ह या साहित्यिक दूकानदार ही । महान साहित्यकारको थढ़ा और महानुभूति बनका नहीं, समझनेकी जरूरत जाना ह अरु ।

हिन्दी साहित्यका भूमिका' भक्तिवाक्य उदयकी परिस्थितियाँ और उगवा

उचित सम्प्रतिष्ठित करती है। भक्तिकालीन साहित्यमें जिम उदार लोक दृष्टि के दान होते हैं उसके विकासकी कहानी प्रस्तुत करती है यह। और इस उदारता और विश्वबुद्धका सम्प्रतिष्ठित राजनतिक पराजय और निराशाने न जोत्कर भक्तिवादिता और जडगांधीयताक विरुद्ध उन विविध धार्मिक आदो लतमे जोडती है जिनका सम्बन्ध इस देशके जन-समुदायमे था। भक्तिकालीन साहित्य यन् लोकवाणे और उदार होता उभका कारण यह है कि वह हिन्दी भाषाके मायाय जन-समुदायकी भावनाओंकी अभिव्यक्ति करता है। 'भूमिका के पहले अध्यायका शीर्षक है 'भारतीय चिन्ताका स्वाभाविक विकास'। 'प्रतिवाद' स्वाभाविक विकास' में विद्यमान है। 'साहित्यनिहास सम्बन्धी अपनी काइ धारणा गुम्ब ही प्रकट किये बगैर आवाय द्विवेदीने 'इतिहास लेखनकी वह पद्धति अपनायी है जिमे गुम्बजीने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' के प्रारम्भमें परिभाषित किया है। द्विवेदीजीको एन पत्रिकाके दृष्टि—

“इस प्रकार महायान सम्प्रदाय या या कहिए कि भारतीय बौद्ध सम्प्रदाय सन् ईसवीके आरम्भमे ही लोकमतकी प्रधानता स्वीकार करता गया एन ईसवीके हजार बष बाद तक यह अवस्था सभी सम्प्रदायों, शास्त्रों और मतोंकी हुई। मुसलमानी समयमे उनका कोई सम्पर्क नहीं है। हजार बष पहलेय व शानिया और पश्चिमाके ऊँचे आमनस नीचे उतरकर अपनी अमली प्रतिष्ठा-भूमि लावतकी आर आन लग। उसीकी स्वाभाविक परिणति इस रूपमें हुई। उसी स्वाभाविक परिणतिका मूल प्रतीक हिन्दी साहित्य है। मैं इसी गल्पे सावनेका प्रस्ताव करता हूँ। मतों, भाषाओं सम्प्रदायों और दार्शनिक चिन्ताओंक मानदण्डम गल्पे चिन्ताका नहीं मापना चाहता बल्कि लाभ चिन्ताका अपक्षा में उन्हें देखनेकी सिफारिश कर रहा हूँ।” (भूमिका पृ० ८)

याना य भक्ति-साहित्यके विकासका लावचिन्ताकी स्वाभाविक परिणति माननेकी सिफारिश कर रहे हैं। लेकिन आचार्य द्विवेदीका यह यत्नय केवल भक्ति-साहित्यक विषयमें नहीं है। वस्तुतः यह उनका साहित्यनिहास सम्बन्धी दृष्टिकोण है। भक्ति-साहित्यपर यहाँ इतना बहस बरत उक्त एतद्विषयक दृष्टिकोणका पञ्चाननक शिष्ट बरी गया है। साहित्यका इतिहास नी मूलतः मानव इतिहास है। राजनतिक इतिहास, धार्मिक इतिहास धार्मिक इतिहास—सभी प्रकारके इतिहास अपन-अपने ढंगमें मनुष्यकी विकास-यात्राका अध्ययन करते हैं। इन सभी अध्ययनोंका बन्ध मनुष्य है। साहित्यका बन्ध भी मनुष्य ही है। इसलिए जब हम साहित्यके इतिहासकी यात्रा करते हैं तो वस्तुतः हमारा उद्देश्य साहित्यके माध्यमसे अभिन्नत किमी विविध साहित्यक मनुष्य

के ही इतिहाससे होता है। और मनुष्यका अथ सामूहिक मनुष्यसे होता है।
 निमित्त और अतिशयितका अन्तर् करना इस क्षेत्रमें बहुत स्तरनाक है। एक
 तो वे हमेशा एक दूसरेका प्रभावित करने रहते हैं और इन वगैरे बीच कोई
 अभेद दोवार नहीं होती, दूसरे प्रत्येक वगैरे स्थिति—उमकी भाव स्थिति भी
 उसके चारों ओरके समार और परिवेशमें निर्मित और निश्चित होती है। इस
 लिए सामाय जन-ममुदाय और गिष्ट या विशिष्ट जन समुदायका यह अंतर
 करना साहित्यके अध्ययनके लिए बहुत समीचीन नहीं है।

भक्ति साहित्यको पूर्ववर्ती साहित्यका स्वामाविक विनाम सिद्ध करनेके लिए
 भक्ति-काल पूर्व हिन्दी साहित्य मानो आदिकालका अध्ययन आवश्यक था। द्विवेदी
 जीने आदिकालका जो विगद और गम्भीर अध्ययन किया है उसकी गुरुआत
 'भूमिका' में ही हो गयी थी। पता नहीं लोगोंके ध्यानमें यह बात आयी है कि
 नहीं कि वस्तुतः हिन्दी साहित्यका आदिकाल और हिन्दी साहित्यकी भूमिका
 दोनों मिलकर एक पूरा ग्रन्थ बनते हैं। और 'भूमिका वा प्रथम अध्याय 'भारतीय
 चिन्ताका स्वामाविक विकास उम पूरा ग्रन्थकी 'सिनाप्सिस' है।

भक्तिकालीन साहित्य यदि निरागा और पराजयका साहित्य नहीं है तो
 हमें इसके पूर्वकी उन प्रवृत्तियोंकी खोज और परीक्षा करना ही होगी, जिनकी
 स्वामाविक परिणति भक्ति साहित्य या पूर्ववर्ती साहित्यमें हुई है। इसके लिए हम
 आदिकालपर विचार करना पड़ेगा—आचार्य द्विवेदी इस भूमिकापर आदि
 कालीन साहित्यपर विचार प्रारम्भ करते हैं। उन्हें आदिकालीन साहित्यकी
 प्रवृत्तियोंमें उन सूत्रोंकी खोज करनी है जिनका विकास लोकवाणी भक्ति साहित्य
 हुआ।

और इसके लिए उन्हें हिन्दी साहित्यका जन्मने भी पहलेकी दम गतादिया
 यात्रा करनी पनी है। इस लक्ष्ये यात्रापर चल निकलनेसे पीछे एक मनोवृत्ति
 है। वह यह कि जो उपशित और साधारण या महत्त्वहीन समझा जा रहा है उसे
 धन्युन महत्त्वहीन और उपयोगीय न समझनेकी मनोवृत्ति है। ऊपर स्थित मनुष्य
 को ही नहीं बल्कि समूचे या सामूहिक मनुष्यका जाननेकी मनावृत्ति है। इसीलिए
 कभी क कहते हैं कि "लोक प्रवृत्ति बाताकी बोरी शय्य करके उगा देती
 सामर्थ्य नहीं रखित कर पाया है," कभी करते हैं कि "इस अधकार-मुला
 प्रवृत्ति करने योग्य जो भी चिन्तारो मित्र जाये उसे सावधानीमै जित्ना रचना
 कर्तव्य है कर्तव्य घट बहुत बड़े जागरणी सम्भावना लेकर आयी जाती है
 उसने पटमें कर्तव्य उम युगके रचित हुएकी धरकनना ही नहा, केवल गुणिगिष्ठ
 चिन्तके मयन और मुचिन्तित वास्तविकता ही नहीं, बल्कि उम युगके सम्पूर्ण
 वास्तविकताके निवारण

मनुष्यको उन्मासित करनकी क्षमता छिपी होती है।" (आत्काल प० २७)
 आत्काल कि सम्पूर्ण मनुष्यको समयनकी वाणिग करनेवाग व्यक्ति ममात्र
 क निमी बगका उपमा नहीं करगा। इमात्काल द्विविज्ञान नाथ सिद्धाकी जानियों
 और गुकलजी-शाग अविवेच्य, धापित कर न्ये गये सात्त्विकी उपेगा नहीं की
 है। मैं यह नयी कह रहा हूँ कि द्विविज्ञान उपमितवा मत्ता नी है उहोंने
 उस मत्ताकी ग्राज की है। उस सात्त्विकी एग ऐसा पग अवश्य नित्रमान ह जो
 अपन युगक एक बहुत बड़ मानव-समुदायका आगा-आकाभाजाका प्रतिनिधित्व
 करता है। नाथ और सिद्ध कवि चाह जितनी सम्मय या साम्प्रदायिक बातें
 करत हा तकिन जब व जात-भातिका विराध करत ह ऊंच-नीचक भेत्की
 अस्वीकार करत ह और समाजना नीची समधी जानेवाली जातियाका अप्रह
 पूवक अपनी मत्तानुमति देते हैं तब व स्पष्ट रूपन इम ससारकी बातें करत ह
 और मनुष्यनाका एक सामाय भाग निकालत हैं। धम या सम्प्रदायका नाम दख
 कर ही चौक पडना और उन्हें साहित्यकी कोटिम बहिष्कृत कर ना सहृदयता
 नहा ह। मनुष्यजाना प्रान गिना और अगिताक प्रानम वहीँ अविक मत्त्वपूण
 है। सरत्ता ब्राह्मण वगमें उत्पन्न हुए थे। उन्हान सास्त्रोका सम्यक अध्ययन
 भी किया था। व अपन समयन प्रसिद्ध गिनापीठ नाल्तामें अध्यापन भी कर
 चुके थ। इतना शानपर भी यदि उन्होन अपन समयन आग बत्कर गत्वार
 कयाको सहचरी बनाया धोर अपनी रचनाजामें भी जातिप्रथम्य वृत्तन किया ता
 उपगितकि प्रति तीर मत्तानुमतिक कारण और मानव-मात्रन गिग अपन हृदयकी
 अपार कर्णाक कारण। मत्तयानकी ह्यु कर्णा ने यदि ह्यना मून और
 सात्त्विक रूप धारण किया तो न उस गमात्क गिग अगिनकर समयना
 जाति-वपक भयग जखरीभूत हस हगमें वा काई भी मत्तामाधन आया है
 उस यत् प्रया मत्का है। एम वत्त-म प्राचीन प्रथ २ दिनमें पानि भेत्वा उडा
 दनपर उार निया गया ह। सुच्चा वात यह ह कि समाजक मनी मवपगाल
 और विमगति विरागा ध्यक्तियाकी नष्ट कवि भी यथायकी भूमिपर ख होकर
 समकालीन ध्यवस्थाकी श्रुटियापर आधार करता ह। नाथ सिद्धाकी बकिताओंमें
 यदि यह प्रथा किया गया ह ता उस अगिनीपर राव जमानकी वाणिग न
 ममपकर सक्तागा दुक्त कर्णागिन और सनपगाग चिननी मात्सपूण
 अमिध्वनि मानना अद्विक समाचन हागा। जात-भातकी प्रथपर प्रथर और
 वागिप्रम ध्यवस्थाकी उपगाका परम्परा—यत् विकास है नकिन्नालान सात्त्विकी
 लोकाग और उन्हा बनाता है। जबत निपा मत्त कसा और गनिता तथा

बदर-भाटुआको भगवान्का जो स्नेह साहचर्य मित्र है उममें कही-न-कही इन नाम मित्रोका भी यागदान ह । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी साफ कहते ह—
 “बौद्ध धर्म क्रमशः लोकधर्मका रूप ग्रहण कर रहा था और उनका निश्चित चिह्न हम हिन्दी साहित्यमें पाते हैं । इतने मित्रालोकधर्मका थोड़ा पता भी यदि यह हिन्दी साहित्य दे सकता उसकी बहुत बड़ी मायकता है । (पृ० १०)

वस्तुतः साहित्यका मूल सात साहित्य नहीं, जीवन होता ह । जीवन कोई गोल मोल या समग्र और पकड़में न आनेवाली चीज नहीं ह । यद्यपि वह इतना विविध रूपी और कभी-कभी इतना परस्पर विरोधी अवश्य ह कि अपने अपने विचारकके मरमें गन्तकर्मही पैदा कर दे जीवितका मनलक्ष्य जीवनके सभी पक्ष । इनमें-से कोई भी पक्ष साहित्य सज्जनकी प्रेरणा दे सकता ह । सच्ची बात यह है कि जमे फलम फल नहीं लगना वम साहित्यने साहित्य नहीं पना होता । धर्म यदि भारतीय जीवनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व रहा ह ता शुद्ध साहित्य की प्रेरणा क्या नहीं दे सकता ! आचार्य शुक्लको ता वारमें प्रकाशित होनेवाली जैन कवियोंकी रचनाएँ देखनेका नहीं मिली थी । लेकिन बादमें लोग मुक्ताजीकी दुःख दे देकर धर्मको साहित्यका विरोधी कहने लगे । धर्म प्रेरित रचनाओको असाहित्यिक माननेवाले यह भूल ही गये कि सुगन्धस और तुलसीदासकी रचनाएँ भी धर्म प्रेरित ह । हिन्दी साहित्यका आदिकाल म द्विवेदीजाने गायक ऐसे ही लोगका सम्बाधित करने हुए लिखा ह—‘धार्मिक साहित्य होने मात्रसे कोई रचना साहित्यिक कोटिमें अलग नहीं जा सकती । यदि ऐसा समझा जाने लगे ता तुलसीदासका ‘रामचरितमानस’ भी साहित्य क्षेत्रमें अविवक्ष्य हो जायगा और जायगीका पभावत भी साहित्य सीमाके भीतर नहीं घुस सकेगा ।

द्विवेदीजाने जैनियोंकी धर्मप्रेरित और लौकिक कथाआपस आधारित रचनाआका सम्बन्ध सूफो रचनाआमें जोता ह । लोक प्रचलित कहानियोंका आधार बनाकर उम अपनी इच्छानुसार किसी रगमें रग देनेकी परम्परा उग काय तो मिलती ही ह, उगका विकास आगे भा गियागई पडना ह । धनपाल रचित भविष्यत्त कथा’ का कथानक दगा जाय तो पता चगा कि वह थाचापान्त लौकिक ह । वह कथा विलुप्त ही यमो जसी कि ‘सिंहासन बत्तीसी’ या कोई दूसरी लोकप्रचलित परम्परित कथा या मिरगावत-वन्नावत या विभावलीकी कथा । विशेषता कथा यह है कि भविष्यत्त विपत्तिमें श्रुतकारा पाना ह पितकी पूजा करनेके कारण । उसका मुफ्तताका कारण यह भी ह कि उमकी माँ श्रुतपत्रमीका वन रगती ह । एसी कथाआम कथातत्व और उतरी गान्धियिता पूषत मुग्धित रहती ह । यही धान हम सूफो कथाओंमें भा पाने

है। ये कवि भी लोक प्रचलित परम्परागत भारतीय कथाओंको आधार बना कर काव्य रचते हैं। चदावत 'मिरगावत' परमावत इत्यादिकी कहानियाँ तत्कालीन जनतामें प्रचलित थी। उनमेंसे कइयाँक लोक प्रचलित रूप तो आज भी मिलते हैं। चाण और लोरिकरी जिस प्रेम-कथाना आधार बनाकर मौलाना दाऊदन १४वीं शतीमें बनायन या चदावत की रचना की। उसके कई रूप आज भी जनतामें प्रचलित ह। सूफियान किया कबल यह ह कि ऐसी कथाओंको सूफी अभिप्रायान युक्त कर दिया ह। सो जनिया-द्वारा रचित कथाआ और सूफियाकी प्रेम कथाओंमें समानता स्पष्ट ह वे एक ही कोटि-की रचनाएँ ह।

जनियोकी धम प्ररित रचनाओं और सूफी काव्योंमें ही समानता नही है। परिकर्ती बणव रचनाआम भी कुछ जन रचनाआका विकास दखा जा सकता ह। कुछ जन रचनाएँ कुछ तियियापर बन या उपवास रचनका उपस दनक लेए ना लोक प्रचलित कानियापर आधारित ह। भविष्यदतकी माँ श्रुत चमोका उपवास रचना था—दसना उल्लव अभी हुआ ह। पुष्पतकी सिद्ध रचना 'गायकुमा चरित' या नागनुमार चरित नागकुमारके चरितके अच्यमस श्रुतपचमी व्रत रचनका माहात्म्य बताती ह। नागकुमारन श्रादियाँ बड की लखिन चाहना बड ल मोमतीका समय अत्रिक था। इसका कारण पूछा ता मुनि पिहितार्थवन उसे बताया कि पूवजन्ममें रानान श्रुतपचमा का व्रत रचा था, उसीका यह फल ह। अन्याम हा ईश्वरनासकी लिखी हुद एकादमी कथा' इसी प्रकारकी रचना ह जिमम एकादमी व्रतके माहात्म्य कथार पात्रा को सचता मिलती है। नानव साधारण है उन कवक हलकानता माड कर धामिन बना लिया जाता ह। या जा कथाएँ गुद लौकिक ह उन्हें भी मुनने और पढ़नसे पुण्य तो होता ही ह। सन्देशरामक अपभ्रंस कवि अठ्ठरहमान द्वारा रचिन गुद लौकिक काय ह नकिन कविने उन पढ़न सुननवागाना सफलतारी कामना तो प्रकट ही कर दी ह 'तम पढ़न मुगत यह जयउ अणाद अणतु'।

सूफी काव्यके—विशेषत 'पद्मावत' क सम्बन्धम कथानकी ऐतिहासिकता और अततिहासिकताका प्रश्न अत्रसर उठाया जाता रहा ह। आचार्य मुक्कने पद्मावतके कथानकपर इस दृष्टिम गम्भीरतापूर्वक विचार किया था। व इस निरूपणपर पहुँच ये कि पद्मावत क कथानकम अलाउद्दानका वित्तोरपर चर्चाई करने तथा उमग सम्यद्ध अग ऐतिहासिक है और नैप अश कविता कल्पनाकी उपज ह। शियाजान तथ्य और कल्पनाक इस मिश्रणकी निम्नी एक इतिहास-वदान

कवि या रचनाकी विशेषता न मानकर प्राचीन भारतीय-साहित्यकी एक मुख्य प्रवृत्ति माना है। और इसी प्रसंगमें उन्होंने मध्यकालीन साहित्यमें प्रयुक्त कथा नर रुद्रियाके अध्ययनपर भी बल दिया है। भारतीय साहित्यमें एक-दो नहीं अनेक काव्य और अनेक कथा-कहानियाँ मिलेंगी जिनमें ऐतिहासिक व्यक्तिको निज-परी व्यक्तित्व बना दिया जाता है। मैं नहीं जानता कि अथ दसोंके साहित्याम भी यह प्रवृत्ति इतना मात्रामें मिलती है कि नहीं लेकिन भारतीय साहित्यका तो यह एक प्रमुख विशेषता प्रतीत होती है। विक्रमादित्य कालिदास, चक्रवर्ती, गोरोचनाथ मत्स्य-द्रनाथ कबीर इन सबके साथ कितनी कथा-नियाँ गड़कर चम्पा कर दी गयी हैं। इन सबके साथ जो कहानियाँ गयी गयी हैं उनकी प्रिण्टि कोटियाँ हैं। दूरकी बात जान दें हमारे समयके ही जीवित महान व्यक्तियाँ—के साथ कितनी कथाएँ गड़कर जोड़ दी गयी हैं। नेहरूजीके विषयमें यह किंवदन्ती कि उनके बगड़ परिसर घुन्ते थे वे अष्टम एडवर्डके साथ पत्त थे, कितनी विचारमके साथ बही और मुनी जाती है। मनोरंजक बात तो यह है कि स्वयं नेहरूजीन इन किंवदन्तियाँ खण्डन किया है लेकिन भारत-साय मानते हैं कि यह अपना चिराचरित विनोपताका छाड़नेकी तयार नहीं है। सा तयके साथ कल्पनाका यह मिश्रण भारतीय साहित्यकी प्रवृत्ति तो है ही। वस्तुतः भारतीय जन-मनुदायकी प्रवृत्ति है जो साहित्यमें प्रतिफलित और अभिव्यक्त हुई। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। आश्चर्य तो तब होता जब यह साहित्यमें न लिखलाई पत्ती। आचार्य चित्तने चूकि साहित्यमें अतः सामूहिक मानव-जीवनके सन्दर्भमें, साहित्यिक प्रवृत्तियाँ देता है इसका उनकी दृष्टि स आ गयी है। वे 'पुष्पाराज रामा और पचावन में प्रयुक्त कथानक रुद्रियाकी चचा करते हुए लिखने हैं

पुष्पाराज रामा और पचावन' भी ऐतिहासिक व्यक्तियोंके नाममें सम्बद्ध काव्य है। परन्तु अथाम ऐतिहासिक का-याँ भी मूलतः इनमें भी ऐतिहासिक और निज-परी कथाओंका मिश्रण रहा होगा। ऐतिहासिक चरित का लेखन सम्भावनाआपर अधि बल देता है। सम्भावनाआपर बल देनेका परिणाम यह हुआ है कि हमारे देशके साहित्यमें कथानक-गति और घुमाव देनेके लिए कुछ ऐसे अनिर्णय बहुत दीर्घकालमें व्यवहृत होते जाय हैं, जो बहुत थोड़ी दूर तक बचाय हात हैं और जा आगे चलकर कथाके रुद्रिम बन्त गये हैं। चित्तोरक राजाग सिंहके राजपुत्रीका विवाह हुआ था या नहीं इस ऐतिहासिक तथ्यमें कुछ शंका-दना नहीं है हुआ है तो बहुत अच्छी बात है न हुआ हो तो शकरी सम्भावना तो है ही। राजाके राजपुत्रीका विवाह

नहीं होगा तो किस होगा ? शुक नामक पत्नी याडा-बहुत मानव-शाणाका अनुकरण कर लता है और भी ता कर सकता था। जितनी शक्ति उन प्राप्त है उसमें अधिकता सम्भावना तो ही है। ऋषिक वरदानमें वह शक्ति बढ़ सकता है, ऋषिक पापने पतित गन्ध यदि मुजा हा गया हा तो पुनः मन्त्र संस्कार उसको बना ममन बना सकते हैं। जब य सम्भावना है ता क्या न उस सकल शास्त्र विचक्षण मिद्ध कर दिया जाये। इस प्रकार सम्भावना-पत्रपर चार दनके कारण बहुत-सा कथानक रूटियाँ इस दामें चल पड़ी हैं।

(आदिवाल् प० ८०)
 इस लम्बे उद्धरणका पत्र समय सहृदय पाठक इसका शलास अवश्य प्रभावित होगा। शैलीमें भारतीय जावनका सज्जता है आर तक विलकुल उसी ढंगम दिय गय है जिस ढंगम भारतका सामाय आत्मी साधता है। आचार्य जगदीप्रसाद द्विवेदीकी बहन बची शक्ति है, सार पाण्डित्य और शास्त्रज्ञानका क्षण भरम दवानर मट्ट और सामाय आत्मीकी तरह वस्तुआने दख आर साच पानरी शक्ति। उन विद्वानों और बुद्धिजावियाकी शक्ति बहुत क्षीण हो जाती है जो सामाय व्यक्तिकी तरह सोच नहीं पान। विरम्बना यह है कि शास्त्र आधारित होन है सामाय जावनके पयवक्षणपर और उटाको पत्रकर शास्त्रन विद्वान सामाय जावनका दख पानकी शक्ति खा त्त है। शास्त्र चाहे जितन सुयवस्थित क्या न हा जावनम पीठ हा रह्य—जा कुछ हमार इ गिण हा रग है वह विद्वान और शास्त्रमें आगका है। त्तिन कई शास्त्रन हैं ता इम निय सज्जन निर्माजिन ढात रहनवाल जावनका कितावाक पछमि समझना चाहत हैं। उस विज्ञानका यागदान सचमुच ही महत्त्वपूर्ण हाता है जा शास्त्रन होत हूण भी शास्त्रा और किताबो दुनियाकी इम सीमाका पहचानते हैं। त्विगीजी म्म सीमाका न बवल पहचानत हैं वल्लि उस लीप भा लत है। करारणासन जय पाया पत्र पत्रकर मरनेवाल पण्डितारा ढाई आवर पत्रनवी सलाह दी ता बन्नुत उद्दान प्रत्यय जावनमें जा घट रहा है उमाका दन्तनका सत्याह गी था। सिद्धाका सत्त्व माग भा जइयास्यायताक प्रति विद्राह था।

सामाय जावनक पयवक्षणक आधारपर किता निष्कर्ष तक पहुँचनकी पद्धति कथानिक और आधुनिक है। वतमानक आधारपर अनातरा पुननिर्माण करना कत्र माहिपनिद्रात हा नहीं पानका शास्त्राका भी स्वाष्टत पद्धति हा चला है। भानिक विज्ञान ता पयवक्षणपर आधारित हा है। नूतत्व शास्त्र और भाषाविज्ञानम भी उपलब्ध सामग्राका मूलाधार बनानर पूर्वस्थिति तक पहुँचा जाता है। इम पद्धतिका सवात्तम उदाहरण भाषाविज्ञानमें तुलनात्मक पद्धति इतिहास-दशन

(कॅम्परेटिव मेयड) और आंतरिक पुनर्निर्माण (इण्टरनल रिक्न्स्ट्रक्शन) ह जहाँ उपलब्ध सामग्रीका इकट्ठा करके फिर उहीके आधारपर पूर्वस्थिति तक पहुँच जाता है । यात्रा निश्चितमे अनिश्चितकी ओर सम्भव ह । अनिश्चितमे यात्रा शुरू करनी कसे सम्भव ह जब वहाँ हम पहुँचे ही नहीं ह । इसीलिए वह पद्धति जिममें हरक चीजका ब्याख्या हम बेगमे शुरू करते ह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण ह । घतमानस बलना गुट करें ता हम शायद बेदानक पहुँच भी जायें लकिन दुर्भाग्य ही बेदाने करेगे तो वहाँ न पहुँच सकेंगे । अपने भाव जीवनका पयबक्षण और गाम्भीर्यता और पाणिन्यता जड न हाने दना इस वैज्ञानिक पद्धतिके प्रयोग कर पानेकी पहली गत ह । आचार्य द्विवेदीकी सहजता और लक्ष-चेतना तथा सामान्य मनुष्य बन रहनेकी शक्तिने उन्हें वैज्ञानिक इतिहासकार बनाया ह । इस तथ्यका जान लनेपर ही उनकी शकवादिता सहजता और सामान्य बन रहनेकी प्रवृत्तिका साधरता समझम आती ह । मा कथानक ऋद्धियाकी दृष्टि आदिकालीन साहित्यका देखनेका आग्रह उस कालके मनुष्यकी दृष्टिमे देखनेका आग्रह ह । और उस काल मनुष्यकी दृष्टि उन्हें अपने कालक मनुष्यमे मिला ह ।



साहित्यका इतिहास पुरतकों उनके स्तरकों और कवियोंके उद्भव और विकासकी कहानी नहीं है । वह बरतुन अनाई - कास प्रवाहमें निरंतर प्रवहमान जीवित मानव-समाजकी ही विकास-कथा है । प्रथ और प्रथमतर सम्प्रदाय और उनके आचार उस परम आदेशाली प्राणधारकी और सिफ इशारा भर करे हैं ।

—हमारे पुराने साहित्यके इतिहासकी सामग्री

भक्तिकाव्य गवाक्ष और दृष्टि

• •

शिष्यप्रसाद सिंह

हिन्दीका भक्तिकाव्य अपना रम्य ऐतन्मयी भास्वरना और बहुविध जीवनकी अनुभव-सम्पन्न कारण सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मयमें एक विगिष्ट स्थान रगता है। इसीका लक्ष्य करक रविदासने कहा था कि 'हिन्दीका मातृ-कवियान जिम रम्य ऐतन्मयी विकास किया उनमें अग्रभाय विगिष्टता है। वह विगिष्टता यह है कि एक मातृ कविवी रचनामें उच्चनाटिकी साधना और अप्रतिम कविवका एकत्र मिलित सयाग लिखा पढ़ता है जो अत्यंत दुर्लभ है।' (मुद्र-ग्रन्थावलीका प्राकरचन) किन्तु यह विगिष्ट रस ऐतन्मयी मातृ-कविय बहूत दिनों तक अस्मावृत ही पड़ा रहा। कुछ ता रम कारण कि अमन भक्तिकाव्यके अध्ययनका समुचित परिश्रेय नहीं दिया और कुछ रम कारण कि हगारा प्रयत्न बहूत-कुछ बीच निवृत्त ही तल मानकर उत्तम गन्तुष रानरी बहाना करता रहा। भक्तिकाव्य अतीतके पुगल्यकी तरफ दुर्बोध होता गया। उम समयनक लिए हमने दाना-की भीर इकट्ठी कर ली। तरफ-तरफ साम्प्रदायिक गाम्ना और दानाकी कतारें धारण हमन दुर्यया हा डेक लिया। प्रमात् तो क गच्छा में

सब पत्त ह सान्ने खाना, छवि दखूंगा जीवन धन का।

आवरण स्वय बनते जात, ह भीड लग रणे दान की ॥'

भाचाय द्विविधे सामन इस भक्तिकाव्यको समयन और समझानेकी जो समस्या था उसकी दा प्रपत्तियो थीं। पहली तो यह कि भक्तिकाव्यका पठने और समयनक लिए अध्ययतकी अनिगत तयाग माधन माधना अथवा गति और दूमरा एक एसे पारदर्शी गवाक्षका निर्माण तथा स्थापना यह परिश्रेय जो भक्तिकाव्यके अस्पष्ट धूमि, मटम आवरणका भेदर उसके तरफा वास्तविक रूप रम मने। आचार्य ज्ञानप्रसाद शिवने इन दाना आदर्शनताओंका पृथिके लिए जा अमनाय माधना, जो स्वाध्याय और जो तपस्वरण किया है। उसने न केवल शिष्य गाम्निको एक अनुनूत प्रभाषण और गाम्मिमय गाम्निक व्यक्तित्व प्रदान किया बल्कि उसके प्रकाशमें उसके पारदर्शी शिष्टिके आकाशमें मध्य

इतिहास-दान

१०३

वालोज्ञ-साहित्यके अनुमोचयितुं जनाको सभो प्रकारके कुहेलिका-जालका चीरकर भक्तिकाव्यके वास्तविक रूपको देखनेका अवसर मिला । द्विवेदीजीने भक्तिकाव्य का देखनेके लिए गवाशका निर्माण किया जहाँ उससे पूगत मायुज्य स्थापित हो गया और सभीलिए आधुनिक हिंदी पाठकके लिए द्विवेदीजी स्वयं एक पारदर्शी गवाश बन गये ।

भक्तिकाव्यके अध्ययनके लिए जिस प्रकारका यत्न चाहिए, वह द्विवेदीजीको पूरणरूपसे प्राप्त है । मास्कुतिक उदार, मानवतावादी पारम व्यक्तित्व । द्विवेदीजीने प्राचीन साहित्य और ध्यानका गम्भीर अध्ययन किया है । उनके अध्ययनके क्षेत्रकी विविधता किसे आश्चर्यचकित नहीं करेगी । प्राचीन उाकी आवासे मामने एक अखण्ड जीवित सत्तासे समान उपस्थित होता है । साहित्य शास्त्र, पुराण इतिहास, तंत्र मात्र ज्योतिष, दशन पुगतत्व आदि इसी जीवित सत्ता की विभिन्न छिन्नाणोसे समझनेका प्रयत्न करते हैं । द्विवेदीजी इनके माध्यमसे प्राचीनको खण्डन विमल करके, पुनर्माजित करके और बभी-बभी पुनर्निर्मित करके उसकी समग्र व्याप्ति और तलस्पर्शी गहराईका समग्राम मफल हुए हैं । यह पाण्डित्य उनसे लिए कभी भार नहीं हुआ । भारके बोध उत्पन्न करनेमें वे हा बढ़ने हैं जो तत्तात्म नहीं हो पाते । पाण्डित्यकी पाण्डित्य उनके व्यक्तित्वकी अद्भुत सामाजिक प्रक्रियाके कारण उनकी मन बुद्धिमा सहज अंग हा गया है । उन्होंने प्राचीनकी रस सजीवनीका अपनी आत्मामें उतार लिया है इसी कारण भक्तिसाहित्यके गूढ गढ स्पष्ट कथियाँ प्रोच्य उत्पन्न जसे उनके निकट अपना गाग रहस्य स्वयं खोज देते हैं । उन्होंने एक स्थानपर लिखा है कि "यह भगवत प्रेम इन्द्रिय-ग्राह्य विषय नहीं है मन और बुद्धिको भी जनीत समझा गया है । इसका आस्वादन बबल आवरण द्वारा हो हा सकता है ।" और इस साहित्यकी समझ भी बही सकता है जो इस जालका गजालामें बांधकर सिर्फ हात रहनेका काम ही न कर, बरि इस अपने व्यवहाराम यथाम्भव उतार भी मय ।

भक्तिकाव्यके अध्ययनके लिए मनम और अधिकागे व्यक्तित्वका दूरगे अनिवायता प्रे-गीत्य और समग्रता है जिसेके बिना भक्तिसाहित्यका अध्ययन तरह-तरहके पुत्रप्रहावा निवार बन जाता है । द्विवेदीजीने व्यक्तित्वके इस बोधपूर्ण समग्र भाव-बोधानाका पय परिणाम सिद्धाई पाता है । उनका निरुद्ध शूद्र सीमाएँ स्या ही त्याग्य रही हैं । वे सर्वोच्च जातिमें उत्पन्न होकर भी जाति पतितकी विभेद-प्रियामें मृग रहें । उाके लिए भक्त-विका आय गुंभच्छाम मरा, मानव-मग-वामनाम आननाम हृद्य समादा महत्वपूर्ण रहा उनकी

बाह्य बलवरगत स्थूल साम्प्रदायिकता नहीं।
 उनके व्यक्तित्वकी तीसरी विद्यपता है रचनात्मक प्रतिभा। जो कुछ मिल
 सका है, उसीमें सन्तुष्ट न होकर जो होना चाहिए वे प्रति उनरी अष्ट आम्था
 हैं। व इसा कारण भग्नावरोधक ढाँचका देखकर उनपर बने हुए, किन्तु सम्प्रति
 अस्थ विशाल भवनाकी पुन रचना कर सकत है। व्यक्ति-वका यह पाठसगुण
 मध्यकालीन अथवा प्राचीन साहित्यकी पुननिर्मितिका अदभुत शक्तिम मन्वित
 है। इसी गुणने द्विवेदीजीको वह शक्ति प्रदान की है कि वे अस्पष्ट प्राचीन और
 धुंधले मध्यकालको एक सटी-सवादी इतिहास चेतनाक समग्र रूपके साथ
 भलाभाँति जोड़ लेते हैं। भक्ति चेतनाको रचनात्मक धरातलपर उपस्थित करनेके
 प्रयत्न हिन्दीका भट्टिनी सुचरिता महामाया चन्द्रलम्बा और नाजी माता-जम
 चरित्र प्रदान किये।

द्विवेदीजीक इस व्यक्तित्वका विनाम कागीके शास्त्रीय आप वातावरणमें
 हुआ, और इसका पण पल्लवन उस बगालमें जो आधुनिक भारतीय
 पुनर्जागरणकी जन्मभूमि रहा। भारतीय पुनर्जागरण यूरोपीय रनेशने के कई
 नष्टियामें भिन्न और कहीं अधिक भास्वर प्रवाह था। इसमें धार्मिक
 आन्दोलनोंके माय बज्ञानिक और औद्योगिक विकासके आधारकी प्रतिष्ठा तो
 ही ही राष्ट्रीयता और मानवतानादी दष्टिका एव नया उमेर भी साथ
 ही था। यह आन्दोलन एक आर राममोहन राय रामदृष्टण परमदस और
 उनन मिगन कणवचन्द्र संन प्रह्लादमाज आदि धार्मिक व्यक्ति और सस्थाओंके
 प्रेरित था जिसके मूलन भारतीय आध्यात्मिकताकी पुनर्जागन शक्ति थी तो
 दूसरी ओर इस आन्दोलनमें कालजयी सौत्यबोध और अबाध मानवताकी
 अप्रतिहत विजययागाना मन्श दनवाल रवि टातुर और उनक पूर परिवर्तका
 अभूत सांस्कृत सयोग भी था। इन वातावरणमें द्विवेदीजीके व्यक्तित्वको जस
 अपनी रचिका कायभेन मिल गया और उन्होंने अपना पण प्रतिभा कचनाशक्ति
 और श्रम-साननाके धरपर इस नये वातावरणमें जीवनाक्ति और प्रेरणा लेकर
 अपन भीतर एक ऐसे व्यक्तित्वना निर्माण किया जो हिन्दी साहित्यक लिए
 सामान्य रूपमें और भक्ति काव्यके लिए विशेषत एक अद्भुत पारदर्शी गवाण-
 दन गया।

भारतीय पुनर्जागरणके वातावरणमें मांस लेनवाले औद्योगिक विकास और
 धर्मानिक प्रक्रियामें आस्था रखनवाले आध्यात्मिक धम साधनाओंके ममका छून
 वाते, राष्ट्रीयता और विश्व मानवतावादी अभ्ययना करनेवाल आलाचकको
 यह जातकर बग आघात पहुँचा कि हमारा समूचे साहित्यको लाग हायी हुई
 इतिहास-दगन

हृदय जातिवा साहित्य समझते ह । यह आघात कितना तीव्र था, इसका अनुमान निम्न पक्तियाँसे लगाया जा सकता है

“दुर्भाग्यवश हिन्दी साहित्यके अध्ययन और लोकचक्षु मोचर करनेका भार जिन विद्वानोंने अपने ऊपर लिया है व भी हिन्दी साहित्यका सम्बन्ध हिन्दू जातिसे साथ ही अधिक बताते हैं और इस प्रकार अनजान आदमीका दो प्रचारने सोचनेका मोरा देते हैं—एक यह कि हिन्दी साहित्य एक हृदय पराजित जातिकी सम्पत्ति है, इसलिए उसका महत्व उस जातिसे राजनीतिक उत्थान पतनके साथ अगाधिभावसे सम्बन्ध है और दूसरा यह कि ऐसा न भी हो तो भी वह एक पतनशील जातिकी चिन्ताका मूल प्रतीक है जो अपने-आपसे कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता ।”^१

इस आरोपका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह था कि हम अपने पूरे भक्तिवाच्य वा जिस हिन्दीका स्वर्ण युग कहते हैं इसका भी आक्रमणसे सतत जातिकी दोषनाका इजहार मान लेते ह । यीलिए डिबेगीजीने काफी जोर देकर कहा कि ‘यदि इसलाम न भी आया होता तो इस साहित्यका बारह आना बँसा ही होता जैसा आज है और कुछ दूरके लिए मान भी लें कि हमारा पूरा साहित्य एक हृदय जातिकी सम्पत्ति है तो भी इस साहित्यका अध्ययन एक आवश्यक वस्तु है। जाती है क्योंकि हम सौ वर्षों तक हम करोड़ बुचले हुए मनुष्योंकी बात भी मानवताकी प्रगतिके अनुसंधानके लिए केवल अनशेषणीय ही नहीं अवश्य प्राप्त वस्तु है ।’^२

हिन्दी साहित्यके विषयमें यह एक नयी दृष्टि थी एक विश्वासपूर्ण आस्था वान आत्मगौरवमयी मर्मा दृष्टि जिससे हमारे सम्पूर्ण दृष्टिकोणमें आमूल-मूल परिवर्तन उपस्थित कर लिया । भक्तिवाच्यका अध्ययन अबतक साहित्य शास्त्रके वैध-वैधाये लक्षणों और तरीकोंके आधारपर किया जा रहा था । भक्तिवाच्यकी तत्कालीन सामाजिक संघर्षोंके सच्चे प्रति-प्रत्यक्ष रूपमें रचकर समझने परमने या प्रयत्न नहीं किया गया था । इस दृष्टिकोणकी दो कोटियाँ थीं दोना परस्पर विरोधी किन्तु एक-दूसरेकी पूरक । पहली यह कि हिन्दी साहित्यके उन पद्योंकी मन्त्री कृष्ण उभारना और आलोचन करना जो हमारी वमकगुण परम्पराके रिमी-न किम्बा पन्थ जीवनत और विवर्णित पद्योंकी वाग सन्त करते हैं और दूसरी यह कि उन पद्योंकी उचित छानबीन करना जो हमारी सन्मृति और

१ दिग्ग साहित्यकी भूमिका पृष्ठ २ ।

२ वही ।

सम्पत्ताक अथ पतनको कहाना कहते हैं और उन्हें इस प्रकार अनुबोधानका विषय बताना ताकि व उन कारणाना सहा रूप लिखा सकें जो हमारे विनिपात के लिए उत्तरदायी हैं और उनसे यदि भविष्यके लिए मानव विकासकी यात्रामें कुछ सहायता मिल सके ता उसका भी उचित निर्देश दे देना ताकि उनमें बचा जा सक। मध्यमालीन माहियम सद् अखद् उचित-अनुचित, मृत जीवित, ऋट और स्पन्दित प्रणालियाका एसा सम्मिलन दिखाई पडता ह कि सया नुम-यानक श्रती तन प्राय डिग जान ह। द्विव्याजीन इम दिसामें दो आलाक स्तम्भ कायम किय। पहला यह कि साहित्यका एकमात्र उद्देश्य मनुष्य ह। साहित्य उसक लिए साध्य नहीं साधन ह।

'मनुष्य हा साहित्यका लक्ष्य ह' शीपक निबन्ध द्विव्याजीक दष्टिवाणकी पूरी व्याख्या कर देता ह। उहान पहली पक्तिमें ही लिखा ह— म साहित्य-का मनुष्यकी दष्टिम त्वनका पणपाती हूँ।' व मनुष्यका मावभौम मत्ता मानन ह साहित्य इसक श्रितमें नियाजित साधन ह साध्य नही। जो वाग्जाल मनुष्यको दुगति हीनता परमुखापणितान बचान सक जा उसकी आत्माको तजोदास न बना सक जा उसके हृदयका पग्दुख-कातर और सबन्धाना न बना सक उम साहित्य कहनमें मुस मकोच हाता ह।

साधन रूपमें साहित्यका अव्ययन क्या? इसलिये कि हम अपन प्राचान और नवान साहित्यक द्वारा अपना आधुनिक समस्याजीका समाधान ढेंढनका प्रयत्न करत ह। उहान साहित्यकाराका उत्तरदायिन शीपक निबन्धमें इमी बानना स्पष्टीकरण करत हुए लिखा ह कि 'प्रधान बात ह हमारी आधुनिक समस्याएँ। साहित्य अगर उनक लिए उपयुक्त अव्ययन-साधन नहा उपस्थित करता ता वह बकार ह।'

पहली मानवतावाणी दष्टि ह और दूसरी उपयागितावाणी। इन दाना दष्टियाका उनक व्यक्तिक्में इस प्रकार सपुजन ह कि दानोंको अलग करव दानना प्राय कठिन हा जाता ह। इस प्रकार दष्टि वाणवाल प्राय कड धरानल एक साथ छत प्रतात हात ह और इमी कारण सम्भवत एस शक्तिया का आगयनाएँ भी विभिन्न धरातलाय हुआ करती ह। जा लाग इस नमग्र भाव चेतनाक अक्षरी रूपरा नहीं पटचानन के द्विव्याजास तर-तरकी आका ताएँ रखत ह और बहुत प्रय ना और आग्रहके बाजजू अपनी हकिवी पूति न दनकर व आत्रानक हा उद्यत ह। कभा उपयागितावादी आगि प्रयत

१ भ्रमराकते शून, १०, १५६।
२ वही १० १५१।

और सन्तुष्ट हाकर उनसे एकांगी यथायुक्त अतिवादी रूपका स्वीकृति माँगी जाती है, कभी उनके मानवतावादी दक्षिणपथी विचारधाराका पर्याय मानकर उनसे वामपथी विचारोंके सक्रिय विरोधकी माँग की जाती है। कभी ये धर्म-संस्थानात्मक साम्प्रदायिक साहित्यपर भाषण देनेके लिए बुलाये जाते हैं जहाँ बाह्याचार और कमवाण्ड पूजित होता है, तो कभी सुधारवादी धर्म-समाजिक सभापतिक लिए आमंत्रण आता है, जहाँ सहज जीवनकी विरोधी रुढ़ियाँ ध्वस्त की उड़ायी जाती हैं। मैं यह नहीं कहता कि परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले ये पक्ष द्विवेदीजीके व्यक्तित्वमें नहीं हैं। हैं किन्तु ये खण्ड हैं बाह्य व्यक्तित्वके परस्पर भिन्न प्रतीत होने हुए टुकड़, जिन्हें संजाकर, रासायनिक प्रक्रियामें अविरल बनाती हुई, एक तारमें गुँथती हुई अतिसमग्र भावचेतना है जो उनके पूरे व्यक्तित्वमें अनुस्यूत है और उसे उपयुक्त वा आलाक स्तम्भाक प्रकारमें प्रकटित करती है।

उन्होंने उही दाना उद्देश्योंके दृष्टि रखकर भक्तिकालका अध्ययन किया है। वे लिखते हैं— इस देशमें हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, ब्राह्मण हैं, चाण्डाल हैं, धनी हैं, गरीब हैं—विरुद्ध संस्कार और विरोधी स्वार्थोंकी विराट वाहिनी है। इसमें पञ्चदशपर गलत समझे जानेवाले अज्ञान हैं प्रतिपक्ष विरोधी स्वार्थोंके सघर्षमें पिस जानेका डर है, संस्कार और भावावेशका शिकार हो जानेका अज्ञान है परन्तु इन समस्त विरोधी और सघर्षमें बड़ा और सबका छाप कर विराट रहा है मनुष्य। इस मनुष्यकी भलाईके लिए आप अपने-आपको निरपेक्ष भावग दूर हो साथक हो सकते हैं।^१ भक्तिकाव्यके अध्ययनमें भी यही एक मूल आधारका तरह विद्यमान है। जो भक्त सन्त या सिद्ध अपने निजी स्वार्थों संस्कार और भावावेशोंको ताड़कर जितना ही ऊपर उठा है उसने विराट मनुष्यके सामने अपनेका विसर्जित कर देनेमें जितनी अधिक निष्ठा दिखाई है द्विवेदीजीकी धृष्ट और प्रशंसा वह उसी अनुपातमें पात्र बन गया है। दलित दानागी तरह निश्चुटकर अपने आराध्यके चरणोंमें समर्पित होनेवाले प्रत्येक भक्तकीविकी उन्होंने समझा और सराहा है।

जाहिर है कि इस दृष्टिकोणका माननेवाला व्यक्ति उन सभासमाजिक अनुचित मानगा जा मनुष्य मनुष्यके बीच उपयुक्त भेद-बुद्धिका जगता है। इसी कमीटीपर कमनपर हमें मालूम हुआ कि उन्हें क्या सगुण निगुण गान्त-वर्णन, परम्परा उपरम्परा आदि धैर्यनि स्वाभाविक चिह्न है। उन्हें यह सहन नहीं होता

१ मनुष्य ही साहित्यका सार है 'भक्तिके पूज,' पृ० १८९।

कि लोग कब्रोंकी बटूकियाका उनक मुसलमानी खूनका जाश कहें । ऐसे लोग-
का जवाब दते हुए वे कहते ह—“ये उक्तियाँ कुछ जँचती सी नहीं जान पडती ।
जाति-वण भेदसे जजरीभूत इस देशमें जो भी महासाधक आया ह उमे यह प्रया
सटकी ह ।”^१ और तत्र अचानक मानवतावादी आलाचकके सामने अपने समाज-
में आधुनिक युगम पिसते हुए असह्य व्यक्तियाकी भीड़ खड़ी हो जाती ह जा
तथाकथित नीच जातिस उत्पन्न होकर अस्पश्य हो बठे ह । और वे मूडु किन्तु
दढ भाषाम कहते ह— ‘एम बहुत-मे प्राचीन ग्रथ ह, जिनम जाति भेदका उडा
दनेपर जोर दिया गया ह । पर सस्कृतकी पुस्तकें साधारणत ऊँची जातियोक
लोगो द्वारा लिखी गयी ह जिसमें लेखक तटस्थ विचारकरी भाति रहता ह ।
स्वय नीचे कहे जानेवाले बशम उत्पन्न नहीं हानेके कारण उनम भुक्तभागीकी
तोब्रता और उप्रता नहीं हाती । सहजयान और नाथपंथके अधिकां सामक
तथाकथित नाच जातियाम उत्पन्न हुए थे, अत उन्होंने इस अकारण नीच
बनानेवाली प्रथाका दागनिव तटस्थताक साथ नहीं दखा । कबीरदासादिके
बारेमें भी यही बात ठीक ह ।”^२

सत साहित्यके अध्ययनकी सत्रसे बडी उपलब्धि सायद यही है कि
उन्हाने इसक आधारपर मनुष्य और मनुष्यके भक्ता मिटानवाली शक्तियाका
पना लगाया । भारतीय समाजमें पहलेसे फग हुआ जातिवाद और इसलामी
आक्रमणक बाद उत्पन्न हिन्दू मुसलिम समस्या आज भी उतनी ही ज्वलन्त ह ।
इन समस्याआना धम और अध्यात्मक आधारपर सुलझानेका प्रयत्न सन्त
कत्रियान किया था, परन्तु व पूण सफल नहीं हुए । उनकी असफलताके कारण
भी द्विविजीजन हूँ ह और उनकी वार हमारा ध्यान भी आकृष्ट किया ह ।
उन्हान अपन निरग्र ‘भारतवपकी सांस्कृतिक समस्या’ (अंग्रेजके फूल) म
इन पहलुआपर बडी गहराईमे विचार किया ह । जातिवादका प्रया अथवा हिन्दू-
मुसलिम एकतारी समस्याआका भा व माध्य नहीं साजन ही मानते ह । सांघ
ता बहतर मनुष्यता ही ह, और इसका दुष्टिमें रखकर जा भी प्रयत्न हा सक,
उस सराहा ही जायेगा । सत साहित्यन इस निगामे जा काय किया उसक
महत्त्वकी वार द्विविजाका यह सक्त कितना सामयिक और समाजान था । मध्य
कालान धमसाग्रनामें यह प्रश्न वार भी उभरकर सामन आया वार जातियाकी
समस्यापर प्रामाणिक और उपस्थित करक नया प्रकाग टाग गया ।

कवारक आलाचक उहें इसलामी जागम प्रेरित कटकर ही सन्नुष्ट नहीं हा

१ दिदी साहित्यका भूमिका, पृ० ३२ ।

२ हिन्दी साहित्यकी भूमिका, पृ० ३२ ।

जात बल्कि काफी सूक्ष्म मात-पस पूरी निगुण परम्पराका ही विदेशा कहकर इहें घट्टिष्ठ कर दना चाहते हैं। द्विवेदोजीने इसीको रुक्ष करके कहा—
 “यदि कबीर आदि निगुण मनवादी सतोंकी वाणियोंकी बाहरी रूपरेखापर विचार किया जाये ता मालूम होगा कि यह सम्पूर्णत भारतीय है। और बाद धमक अन्तिम सिद्धी और नासपत्नी मिदमि इनका सीबा सम्बन्ध है।”^१ इस प्रकारके आरोपाक जालने निकलकर निगुण सन्त साहित्य एक दूसरे वाणि विवतमें जा पैसा। आठचकाने विभिन्न दशनिव धारणाआका पैमाना लेकर इनके साहित्यका तालना आरम्भ किया। बात बढ़ती गयो, और कबीरादिमें तत्वागिन भाषा शलीनी अस्पष्टता तो थी ही, उनपर विचारधाराआकी अस्पष्टता का इतना बडा आरोप लादा गया कि कुछ लाग चुपके-चुपके इहें ‘साहित्ये तर’ भी कहने लगे। गोया कबीरादि कवि न होकर दशनके व्याख्याता थे। एक एक शब्द पीछे माथापच्ची होती रही, रम्बे लम्ब चाट बना-बनाकर कुण्डलिनी और चक्र समझाये जात रहे। इस कुहेलिकामें जो तत्त्व थे, वे और भी अधिक अस्पष्ट हाते गये। लाग भूल स गये कि निगुण सताने आंतरिक प्रेमकी गहराई पर जोर दिया था। व मानने थे कि प्रेम आत्माकी वस्तु है, प्रदशन और त्रिषावे की नहीं। ‘इम रमका जिसने पाया है वही जला है। इस प्रेम-लीलाम भक्त के समान भगवान भी उत्सुक है। जिसने प्रेमके क्षेत्रम भगवान्का याग पाया है, वस्तुतः वही यागी है। इस प्रेमकी ज्वालामें जलकर हा भगवान्नु बनाहत संगीतकी तरह इम सुंदर नृष्टिया रचना का है।”^२ कबीरपर व्यक्त द्विवेदोजीक विचारान सन्त साहित्यको तबीन दष्टिमे बढनेकी प्रेरणा दी। सत साहित्य गूढ़ पहेली और सच्चाभाषामें अभिव्यक्त बूट साहित्य की सामान निकलकर एक जीवन्त समाजकी सघपपूण परिस्थितियाका सजीव चित्रण कहे जानेका अधिकारा हुआ। सत या भक्ति साहित्यके अध्येताको उस युगके जावन और मायताआगे स्वीकार करके ही चलना होगा। जा उस युगकी विचार पद्धति और प्रवृत्तिमाग परिचित नहीं है व कभा भी इनके साहित्यके साथ याय नहीं कर सका।

द्विवेदोजीने इस भक्ति भावनाका विराट जन-आन्दोलन बताया है और प्रियसनक इन कथाका स्वीकार किया है कि धम पानका नहीं, भावावस्था त्रिपय हा गया था। यही हम माधना और प्रेमालासक दगम जात है और ऐसी आत्मानाका माभात्कार करने है जा वाणाकी निगज पणिन्तारी जातिव नहीं बल्कि जिनरी समता मध्ययुगक यूरोपियन भक्त वनद जीव कठयगवाक,

१ द्विती साहित्यकी भूमिका पृ० ३१।

२ वही, पृ० ४०।

धर्मस ए० बम्पिन और मेण्ट घेरघामे ह ।' किन्तु प्रियसनने 'इस साधना और प्रेमोल्लास के नय देगके मानावाग्क आलवारोमे जोडकर तथा इम मूलमें ईसाइयतकी प्रेग्णा मानकर इस समूचे कान्य एदवयका क्रिश्चियनिटीके साथ जोडने-का प्रयत्न किया । और द्विवेगीजीने इन प्रवृत्तिमूलक कुतर्कों और हानिकर विचारों का सटीक और मप्रमाण उत्तर दनके लिए ही भारतीय चिंताका स्वाभाविक विकास सापक बहद निबन्ध लिखा । उन्होंने स्पष्ट कहा कि ऐसे प्रयत्न अत्यन्त उपहामास्प्य ह । और यह कहना तो और भी उपहामास्प्य ह कि जज मुसलमान हिन्दू मन्त्रिकाको नष्ट करन लगे तो निराग होकर हिन्दू लाग भजन भावम जुट गय ।' वस्तुतः भक्तिकान्यका मुसलमानों की आक्रमणकी प्रकारालर दन मानकर हम प्रियसन तथा उनके दूसर सटधमियाके उस तर्कना हा बल दते रहे हैं जो भक्तिका आनस्मिक उच्यकी वस्तु मानकर इसका सम्बन्ध ईसाइयतम जोन्ठा रण ह । इन विन्नेगी लेखकोंन यह सब-कुछ एक दूष्णि अभिप्रायमे किया यह कह गेगा हा उनन आरापाङ्का उत्तर तो नहीं हो जाना । जबतक म अपना भक्तिकान्यका पूरी भारतीय परम्पराम सप्रमाण और साधार रूपमें नहीं जोन्त इस तरङ्क लाछन सन्ने हा पडत । द्विवेगीजान व परिश्रमसे इस मुट्टि श्रुतगनो जोटा और प्रयक भारतीयका इम महान कान्य-परम्पराको अपना समयनका गीग्व प्रदान किया ।

भक्तिकान्यके सम्पक आवलनक लिए मध्यकालीन घम साधनाआका उचित आनलन भा आवनयक था । मध्यकाल नाना प्रकारक घमों सम्प्रदाया और मयवगाङ्का सन्निस्थ था । यट घम-साधना कई स्तरापर, वर प्रकारक प्रभावों मे उत्प्रेरित होकर, परस्पर घात प्रतिघातने उल्लिप्त होता हुई चलती रही ह । दसवीं शताब्दीमें बन्दि-अबन्दि, भारतीय-अभारतीय नास्तिक-आस्तिक कई प्रकारकी घम साधनाएँ मिल-जुलकर एक नय लकघमका निर्माण कर रही थी । किस साधनामें किस पूर्ववर्ती विचारधाराके अवगाप ह और किसमें भविष्यमें विकसित हानवाणे रूपोंके बीजाकुट बतमान हैं—य प्रश्न विग्न अध्ययनकी आवश्यकता रखते थे । बहुत-से लाग भक्तिकान्यक नीति-उपगगा विधि निषेधम ऊत्र जात ह । उन्हें यह साहित्य नारस और गामक जमा प्रतीत हान लगता ह । एम लोगोंको ही लख्य वरक उहान लिखा—' भक्तिकान्यकी मर्याङ्का न समझनवाउ इन बातोंमे उब जान ह । व भूत जान है कि इस युगका साहित्य बवल साहित्य ही ह बकि लकमें बढमूउ साधना-सदतिना प्रतिपन्न भी

१ हिन्दा साहित्यकी भूमिका, पृ० ४४ ।

है। उसका यह हमारा पहला ही जैतिक महत्त्वपूर्ण है।¹ मध्यमालीन धर्म साधनामें द्विवेदीजीने एही महत्त्वपूर्ण पहलुओंको स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है।

भक्ति शब्दके गवाभकी यह दूरज्यापी द्वित्विक वीक्षण (Three Dimensional) प्रक्रिया है। मनुष्य साहित्य और धर्म इनके तीन पहलू हैं। किंतु यह ध्यापवता और विचार एक खाम पत्तारकी गहराईकी माँग करता था क्योंकि भक्तिनायके सामने केवल तन्निहित विचार वाराओंके ठीक-ठीक ममझनेकी ही वटिनाई नहीं थी उनके अश्रिव्यक्ति-मायमको भी जानने और परपनेकी आवश्यकता थी। भक्तिनायकी पारिभाषिक गद्दावली, मन्त्रदाय प्रचरित जगत्स रटियाँ तात्त्वान्त्रि क्वि समय कथनगैले, शास्त्रार्थोंमें प्रयुक्त होनेवाली पद्धतियाँ, भाषा, छन्द राग गगिनियाँ और लोकप्रचरित तथा गान्त्रानुमोदित गानाप्रकारके कायन्प एक ऐसी सूत्र तल्ल्पनीं रटिकी प्रतीनामें थे जो इनकी दाह्य कल्लेवरगत और आतरिक सभो प्रारकी विवेक ताजोको खोल-खाल कर विलगा सके। यह प्रश्न भक्तिनायके सभो पाठनों, आगोवको अनुमधित्मुजोंके सामने खग था किन्तु इनका उत्तर वही दे सत्रता था जो प्राचीन वाडमयके एकाधिव अगोमें परिचित हो जो भारतीय सन्धुनिका ममग हो, जो विभिन्न प्रकारक सात्कृतिक अन्तरावलम्बनके पहलुआका ठीकन समपता हो जो ब्रह्मिक, पौगणिव बौद्ध जन पाचरात्र उग्व पागुपन गैव वापालिक नाय सिद्ध आदि धर्म-भाषनाओंके सभो पशोमें अवगत हो जो सन्धुत प्राकृत पालि, अपभ्रंश, अवहट्ट तथा नय इतिहास आयभाषाआम-गे एनाधिकवा जानकार हो। और यह वाय यदि इतिहास पुरपने द्विवेदीजीके हायोम सौपा तो ठीक ही किया। द्विवेदीजीने अपन इस वाध्यका प्रयेक पाठक परिचित हैं। द्विती सात्त्विकी भूमिका' और उरगा परि निष्ठ गाय सम्प्रदाय कबोर मूर-साहित्य तथा अनेक निरग्र मग्रहामें सर्कित एतद्विषय निरग्र, प्राचीन भारतके कर्ग-मक विनाद आदि वृत्तियाँ इसी प्रश्नके समाधाका प्रयत्न करती हैं। मैं यहाँ उनके द्वारा ध्याप्यात प्रत्येक कर्गवा अलग अलग परिचय नहीं देना चाहता। सिफ कबोर पढ़नेवाले पाठक नी उनके इस अणु परिश्रम और निष्ठाका दगकर आरवयवकित रह जात है। यह इस गवाभकी सूत्रमवागण (साइप्रोकोपिन) शक्ति है जो भक्तिनायके एक

एक मन्थकी विश्लेषणात्मक मन्थपणाका काम करती ह, और इनकी उपलब्धियोंके म्पमें उस सामग्रीका सचयन करती ह जिसके आधारपर त्रिदिव् व्रीक्षण प्रक्रिया का पूरा सम्भार खडा होता है ।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सामग्रीको उपलब्ध ही साहित्यकी समरन-संतुलित व्याख्या नहीं कर सकती । इस पूरी सामग्रीको उसके सही परिवेशमें नियाजित करने, इसके जीवनत स्पष्टित अंगमें भविष्यका जोड़ने, कूटस्थ रूढ परम्पराके टूटते रूपकी ओर इशारा करनेके लिए लेखककी आत्मा ऐतिहासिक प्रक्रियाका मन्थक वाद्य होना चाहिए । विना इस बोधके महत्त्वपूर्ण सामग्री-मन्थन एक गड़गड़का रूप धारण कर लेगा, जीवित विचारधाराका क्रमवद्ध इतिहास न हो सकेगा और आज ता द्विवेदीजीका यत्निय ही ऐतिहासिक प्रक्रियाका पर्याय हो गया ह । इस प्रक्रियाकी ही शक्ति है कि उनके सभी प्रकारके सृजनमें एक अतनिहित सन्तुलन और एकमूर्तता दिखाई पत्ती ह । यह प्रक्रिया उन्हें अवातरमें बह जानेसे रोक्ती ह कल्पनाकी अतिगत्याको समयित करती ह, व्यक्तिमन्थिका परिगोमन करती ह और उनके सम्पन्न दृष्टिकोणका आधुनिक और पूण बनानिक बनाये रखती ह ।



तालों बर्गमीनमें फैले हुए हजारों बयके बूझ इस भारतवर्षकी साहित्यमाधना इतनी विराट्, रूढनी जटिल और इतनी गम्भीर है कि उसकी भाषीन और नवीन चिन्ताओं पर मक्षेधमें फैसला सुना देना हिमाकत भर है ।

—साहित्य सचकर

सन्त साहित्यके अध्ययनमें द्विवेदीजीका योग

• •

वासुदेव सिंह

सामान्यतया 'सन्त साहित्य' से ता'पय उन निगुनियों साधकोंकी रचनाओंमें लिया जाता है, जो समस्त बाह्याम्बरोका विरोध करते हुए आत्मगुणोंके लिए प्रयत्नशील थे। जिनकी दृष्टिमें ईश्वर एक अनन्य और सर्वव्यापक था, जिनके लिए गुरु गावि'दसे भी बड़ा था और जिनकी दृष्टिमें भक्तिके क्षेत्रमें ऊँच-नीच या छूत-अछूतका कोई अर्थ नहीं था। द्विवेदीजीके सन्दर्भमें इस 'सन्त साहित्य' के अन्तर्गत हिन्दीके बबीर तथा अन्य निगुणमार्गी आराधकोंके अतिरिक्त महत्तमानी मिथों नाथयोगियों और जनमर्मी कवियोंको भी रचना चाहता है क्योंकि द्विवेदीजीने भारतीय चिन्ताका स्वाभाविक विकास राजत हुए, इनमें अविच्छिन्न और अटूट सम्बन्ध देखा है।

यह 'सन्त साहित्य' ही नहीं पूरा भक्तिवाच्य विचारका विषय रहा है। मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलनके उदभवपर विचार करते समय किसीने उसे मुगलशासनके अत्याचारकी प्रतिक्रिया कहा किसीने उस सिद्धांत-प्रभावपर माना किसीको उसमें निराशा और हतदय जानिकी कुण्ठाग्रस्त वाणी सुनाई दी और किसीका पलायनवादी स्वर। द्विवेदीजीके पूर्व जो हिन्दी साहित्यक इतिहास-ग्रन्थ लिखे गये उनमें-म (गुलजीकी छाया) कुछमें सामग्री संकलन-मात्र था कुछमें उपाय वर्गीकरण अथवा तथ्योंका क्रमबद्ध विवरण। गुलजीने अद्यतन जनताकी चित्तवृत्तिक अनुसार विभिन्न प्रवृत्तियोंके अध्ययन एवं मूल्यांकनकी मर्यादनीय चेष्टा की। किन्तु उन्होंने भी उन तमाम उत्तमों और प्रभावोंकी उपेक्षा की जिनकी स्वाभाविक परिणति या हिन्दीका भक्तिवाच्य। यहा नहीं उनको इन स्वर्णयुगीन साहित्यक मूलमें मुगलशासी प्रभावोंकी प्रतिक्रिया भी दिखाई पली।

इन प्रकार अध्ययनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना—भक्ति आन्दोलन—का गायन-पाय नहीं हो सका था। द्विवेदीजीने इनका अध्ययन नहीं मावतावाणी,

समाजशास्त्राय उदार वनानिक दृष्टिसे किया। यह दृष्टि उन्हें मिली है खात्र और गतिमोहन सेनके सम्पर्कमे इतिहास जीवविज्ञान मनोविज्ञान नृत्य शास्त्र पुरातत्व आदि विभिन्न विषयके अध्ययनमे वैदिक पौराणिक बौद्ध, जन, वैष्णव सब कौल-वापालिक नाथ योगी सृष्टिया सिद्धों आदि धर्मा और सम्प्रदायोंकी सम्यक जानकारीमे और प्राचीन आय भाषाओंमे लेकर नव्य भारताय आय भाषाओंमे पारगत होनसे। वह स्वयं इस बातका अनुभव करत है कि 'हिंदी साहित्यका इतिहास लिखनेके पहल निम्नलिखित साहित्यो-की जाँच कर रना बड़ा उपपाया होगा जिनकी अच्छी जानकारीके बिना हम न ता भक्तिकालके साहित्यको समझ सकेंगे और न बौरगाथाकाल या रीतिकाल-को-१ जन और बौद्ध अपभ्रंशका साहित्य २ काश्मीरके गवा और दक्षिण तथा पूर्वके तात्रिकाका साहित्य ३ उत्तर और उत्तर-पश्चिमके नाथाका साहित्य ४ वैष्णव आगम, ५ पुराण, ६ निवन्-ग्रन्थ, ७ पूर्वक प्रच्छन्न बौद्ध बौधवाका साहित्य ८ त्रिविध लौकिक कथाओंका साहित्य। कहनेकी आवश्यकता नती कि द्विवाजावा विंगाल मानस-पट उपयुक्त साहित्यके गहन अध्ययनमे निर्मित हुआ है। इसलिए व हिन्दा भक्ति साहित्यका समूची प्राचीन भारताय परम्पराकी एक कथाक रूपमें जोड़ सके मध्यकालीन साहित्यिक चेतनाका अस्वाभाविक अघातक रूपमें नहीं, जानिकी स्वाभाविक चेतनाके रूपमें न्त सक और प्रो. हयल तथा प्रियसन-द्वारा प्रचारित मिथ्या धारणाओंका सफ़टन कर सक। उनका स्पष्ट मत है कि अगर इस्लाम नहीं आया होता ता भी इन साहित्यका वारह आना वैसा ही हाता जसा आज है।^१

उन्होंने अपनी उपस्थापनाका प्रमाणित करनके लिए हिन्दी साहित्यके उद्भन क एक सहाय्य पुर्वकी साहित्यिक और धार्मिक परम्पराओं और विश्वासाका इतिहास प्रस्तुत किया और दक्षिणक वैष्णव आदालतसे लिखा भक्ति-साहित्यका सम्बन्ध-सूत्र जाडत हुए वह इस निष्कपपर पहुँच कि ईसबाक हजार वष वा सभा सम्प्रदाय शास्त्र और मत लानमनका प्रधानता स्वीकार करने लग थे। उमाका स्वाभाविक परिणतिका मूत प्रतान हिन्दी साहित्य है।^३

भक्तिकाव्यके सम्बन्धमे उत्पन्न उन विचारके कारण सब साहित्यका सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन नहीं हा सका। यहाँ नहीं उनका जो उपेगा हुई उपयुक्त लिए आचार्य रामचन्द्र गुक्लकी पूर्वप्रष्टयुक्त भाष्यता भी उत्तरलाया है। जब

१ कसोकने पून, ६० = ६।

२ हिन्दा साहित्यकी भूमिका ६० = २।

३ हिन्दी साहित्यकी भूमिका, ६० = १।

उन्होंने यह निणय द दिया कि "इस शाखा (ज्ञानाश्रयो शाखा—यह नाम भी मुक्लजीका दिया हुआ है) की रचनाएँ साहित्यिक नहीं हैं—फुटकल दोहा या पदाके रूपमें हैं, जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित और उटपटांग है ।" तथा "निगुण सत और सिद्ध कवि साम्प्रदायिक और धमचालित अधिक थे । उनमें सामाजिक मद्भावना और सहृदयताकी कमी थी और उनकी बानीमें लोकधमकी अवहेलना छिपी हुई थी"—तो उसका दूरव्यापी प्रभाव पडा । मुक्लजीका व्यक्तित्व विराट था । प्राय लोग उन्हीके विचाराका अधानुसरण करने रहे और सहजयानी सिद्धो, नाय योगिया, जैन कविया, हिन्दी सत कवियो, विशेष रूपसे कबीर आदिको उन्हीके चश्मेसे देखा जाता रहा, उनपर तरह तरहके आरोप लगाकर उन्हें साहित्य-सीमासे निर्वासित करनेका प्रयत्न तक होता रहा । यतःतक कि अब भी ऐसे पाण्डित विद्यमान हैं, जो नि सकोच बट् दते हैं कि कबीरकी रचना उपदेश तो देती है पर भावोन्मेष नहीं लाती । उनके उपदेशको अथवा ऊँचा मानकर भी उस 'साहित्य' या 'काव्य' कहनेमें बहुतका सकाच होता है ।" सक्षेपमें, इन सन्तापर निम्नलिखित आरोप लगाये जाते रहे हैं —

- १ जैन, सिद्ध व सन्त कवि साम्प्रदायिक व धमचालित थे । उनकी रचनाएँ काव्यकी परिधिमें नहीं आती ।
- २ सत साहित्य गूढ और अस्पष्ट है ।
- ३ उममें लोकधमकी उपेक्षा की गयी है ।
- ४ वह पतनशील जातिको चिन्ताभासा मूस प्रतीक है ।
- ५ त्रिगुणियाँ सतों विशेष रूपसे कबीर को जाति-मात विराधी प्रवृत्ति, अवतारवाद और मूर्तिपूजा खण्डनकी चेष्टा 'मुसलमानी जोग' या 'दृष्ट बण्डा है ।
- ६ कबीर प्रच्छन्न रूपमें इस्लामका प्रचार कर रहे थे ।
- ७ कबीरदास साम्प्रदानहीन और सुनी-सुनाई वाताका मढ़नेवाले थे ।
- ८ वे पाशाश्रयो थे, प्रेम अथवा भक्ति इनका कोई लगाव न था ।
- ९ इनकी भाषा 'सधुक्लली' 'अव्यवस्थित' और बसल गिबडी है ।

सन्त साहित्यके अध्ययनमें आचार्य द्विवेदीजीका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान यही है कि उन्होंने उपयुक्त सभी आरोपाका सप्रमाण और सत्य गल्लोंमें खण्डन किया और समूचे सत साहित्यका नये परिप्रेक्ष्यसे दरानकी दृष्टि दी ।

जैन साहित्य मूलत धार्मिक साहित्य है । जैन कवियान छिछल शृंगार अथवा लौकिक आस्थागामी अगभा धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्यकी रचना-

में ही अधिक रुचि ला है, यद्यपि लौकिक साहित्य भी उनका द्वारा कम मात्रा-
में नहीं लिखा गया है। इन कवियामें कुछकी साम्प्रदायिक मनावृत्ति जन
मुनिया और धर्माचार्योंका सकीणता और उपलब्ध सामग्राय भा समुचित
अध्ययनक प्रति रुचि अभावक कारण उनका साथ साथ नहीं हो सका। हिन्दी
साहित्यके इतिहासमें उन्हें उचित स्थान तक न मिल सका। गुणज्ञान का
मान धार्मिक रचनाकार कहकर साहित्यक इतिहासक इनका निकाल देना
प्रस्ताव किया।

विन्तु आचार्य टगारीप्रसाद द्विवेदान भागडागाराम बन्द विपुल सामग्री-
का निकालकर हिन्दी साहित्यमें अवसरस्ती हूँमनके आरापनी उपना करत हुए
स्वय इस साहित्यका सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन किया और अनन्य लगातार इस
आर आदृष्ट किया। सम्भवन उहान मवप्रथम यह धापणा की कि उनमें कई
रचनाएँ एसा ह जा धार्मिक ता ह विन्तु उनमें साहित्यिक सरसता बनाय
रचनेका पूरा प्रयास ह। धम वहाँ कविका बवल प्रेरणा दे रहा ह। स्वयम्भू
चतुमुख पुष्पत और धनपाल जस कवि बेवल जन हानक कारण ही
काव्य-श्रेष्ठम धार नहीं चल जात। धार्मिक साहित्य होन-भाप्रस कई रचना
साहित्यिक काटिस अलग नहीं की जा सकती। यदि एसा समझा जान लग
तो तुलसादासका रामचरितमानस भी साहित्य क्षेत्रम अत्रिच्य हो जायगा
और जायमीका पद्मावत भा साहित्य-सामाक भातर नहीं धुम सकगा।
उहान ८ श्वी गता-क जनममी सत यागी- मुनि तथा अय जन सन्त
कवियामें वहा विापताए—बाह्याचारका विराय चित्तगुडिपर जार देना
सरोरका ह। समस्त साधनाआका आधार मनमना और समरमा भावन स्वसवन्त
आन-का उपभाग—आन निका- जा तालान यागिया और तान्त्रिकामें
पायी जाती थी और जा परम्परा धामें कबीर आन्नि निगुण मतक साथकामें
ज्याना त्या चल आयी ह। उनका विश्वास ह कि 'अगर उनका रचनाआवें
ऊपरम जन विापण हुटा किया तो ता व यागिया और तान्त्रिकोंका रचनाआ
म बहुत भिन्न नहीं लगेगा। व ह श- व ह नाव और व ही प्रयाग धूम-
फिरकर उम युगक गभा साधकाने अनुभवमें आया करत थ। २

जन कवियाके अतिरिक्त द्विवेदान महजयाना सिद्धा और नाययागियाके
साहित्यपर भा गम्भारतापूर्वक विचार किया ह। नाय सम्प्रदाय 'नाय सिद्धा

१ हिन्दी साहित्यका आदिकाल, पृ० ११।

२ मध्यका-नीन धमसाधना पृ० ४६।

की धारणा' (सम्पादित), 'मध्यकालीन धर्म साधना और 'हिंदी साहित्य की भूमिका इसके प्रमाण प्रथम है। 'नाथ सम्प्रदाय'में आचार्य द्विवेदाने नाथ सिद्धांत की साधना-मदति, हठयोग, यागियोंका समय, पिण्ड और ब्रह्माण्ड आदिका विश्लेषण करते समय अपनी तलस्पर्शनी गहन दृष्टिका परिचय दिया है। यहां उनका समीक्षकके अतिरिक्त गवेषक रूप भी सामने आया है। उनके मनसे इन योगियोंका भी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थापर दूरव्यापी प्रभाव पड़ा। "गोरखनाथने निम्न हथौड़ेकी चोटसे साधु और गृहस्थ दानाकी कुटीरियाका चूण बिचूण कर दिया। लोकजीवनमें जो धार्मिक चेतना पूर्ववर्ती सिद्धांत से आकर उसके पारमार्थिक उद्देश्यसे विमुक्त हो रही थी, उसे गोरखनाथने नया प्राणशक्तिम अनुप्राणित किया।" 'नाथ सिद्धांत की धारणा में चौदोस नाथ सिद्धांतोंकी रचनाएँ सम्प्रहोत की गयीं हैं। इसकी भूमिकामें द्विवेदाने चौदोस नाथ, नागाजुन, चम्पटीनाथ, काणरीजी, जालधरीपाव अजयपाल, लक्ष्मणनाथ घोडाचोनी दत्तजी और पद्मीनाथ आदि नाथयागियोंपर अत्यंत श्रम और 'गाथपूर्वक' नयी सामग्री प्रस्तुत की है।

द्विवेदाने द्वारा इस अध्ययन का तथ्य विशेष रूपसे प्रकाशमें आये है १ अपने अन्तरमें मध्यकालीन धर्मसाधनाका पूरा रहस्य छिपाये हुए कतिपय पारिभाषिक शब्दा (सहज, गूय, निरजन अवधू, नाद, बिन्दु, यत्न घटना समरसो भाव और महासुप्त आदि) को समझनेका आधार मिला है। इन शब्दोंकी व्युत्पत्ति इतिहास विभिन्न सम्प्रदायोंके मन्त्रमें इनके नूतन अर्थ आदिकी प्रामाणिक विवचना प्रस्तुत की गयी है। २ हिंदी सन्त काव्यका नूतन परिप्रेक्ष्य समझनेमें महायता मिली है। उसके सम्बन्धमें प्रचलित प्रवाणियोंका निरसन हुआ है। कबीर तथा अन्य सन्ताने जिस निम्न ढंगसे हिंदू विधि विधानों—जप माला छपा तिलक तीर्थाटन आदि बाह्यचार तथा पुस्तकाय पानम परमात्म प्राप्तिका विराट व सत्य व्यक्त किया था उनका उन्हें मुसलिम धर्म प्रचारक सनातन धर्म निन्दक और न जाने क्या-क्या कहा जान लगा था। द्विवेदाने मिथ्या और यागियोंकी रचनाओंके अनेक अर्थ उद्घृत करत हुए यह प्रमाणित किया कि कथार आदिने जो कुछ कहा वह न नया था, न अभावात्। कथारम भा अधिः शाय और चक्रनाचूर कर देनेकाला नाथोंमें इन सिद्धांत व यागियोंके बाह्य विधानोंका स्थान किया था। 'क्या भाव, क्या भाषा क्या अलंकार क्या छन्द क्या पारिभाषिक शब्द सबत्र व ही कबीर

दासके मागदसक है। कबीरका ही भाँति य साधक नाना मतका खण्डन करते
 य महज और गूयमें ममाधि लगानेको कहते थे। सहजयानी सिद्धा और नाय-
 पथी यागियाका अक्वचना कबीरम पूरी मात्रामें ह।^१

किन्तु इससे यह भ्रम नहीं हो जाना चाहिए कि कबीर या अय निगुनियाँ
 सत्ताम मौलिक दष्टिका अभाव था अपवा व सिद्धा व यागियाके अधानुवर्ता
 थे। वस्तुत य सत्त, विगेष रूपम कबीर सिद्धा और यागियाकी परम्पराम हात
 हूण भी सबथा उनके अनुगामी नहीं थे। उनके पास एक ऐसी भक्ति थी जो
 न यागियाम थी, न सहजिया सिद्धाम। वह थी भक्ति। वह यागियाके पास
 नहीं था पण्डिताने पास नहीं थी। काजियाक पास नहीं थी। इम परमादभुत
 रनका पाकर कबीर कृतकृत्य हा रहे।^२ वस्तुत कुठ विद्वानान इन सन्तोका
 'नानाश्रया कहकर इस धारणाको वनावा निया कि इनका भक्ति या प्रेमसे
 काई सम्बन्ध न था। व गुप्क और नारम उपपन्ना मात्र थे। मनुष्य-मनुष्यक
 बीच जा रागात्मक सम्बन्ध ह वह उनके द्वाग व्यक्त न हुआ। इस प्रकारकी
 धारणाका एक कारण यह भी था कि ये सन्न जिस निगुण तत्त्वकी चर्चा करते
 थ, उसकी भक्ति कसे सम्भव ह? इम प्रतीत हानवाले अतविरोधको दूर करनेके
 लिए शिवदीजान 'निगुण शक्तकी व्याख्या की ह सत्ताके आराध्य और
 वान्तियाकी अर्द्धत सत्तानो अलगाया ह और कबीरके राम व पुराणाक ब्रह्मका
 अन्तर स्पष्ट निया ह। कबीरक निगुण राम और वान्तियाके पारिभाषिक
 निगण ब्रह्म में जो मौलिक भेद ह उमे स्पष्ट करत हूण वह इम निष्पपर
 पहुँच ह कि कबीर निगुणम कवल एक निपेयामक भाव ग्रहण करत हो सा
 ह। और इमी गुणातीत रूपनो 'निगुण गत्य प्रकट करते हैं।^३ कबीरका
 प्रेमपारावार भगवान 'दासनि क वाल मान्यने पर ह ताकि बहसक
 उपर ह पुस्तकी विधाम अगम्य ह परप्रेमम प्राप्य है अनुमृतिना विषय ह
 सत्तज भावम भावित ह।^४

भक्तिकाव्यका सगुण निगुण और पुन शोनाक दास उप विभाग कर दनम
 और इनमें कवल अन्तर शोजनका परिणाम यह हुआ कि प्राय यह माना जाने

१ हिन्द। साहित्यकी भूदिका ५ ३१ ३३।
 २ कबीर, पृ० १३२।
 ३ कबीर, पृ० १३२।
 ४ कबीर पृ० १३०।

इतिहाम-ददान

लगा कि इन विभिन्न धाराओंमें कोई मेल न था। एका जम दूसरेके विरोधाय हुआ था। सगुण और निगुण मतावलम्बियोंके सम्कार, सामाजिक परिवेश, मायताएँ और लक्ष्य भिन्न होनेके कारण, दोनों ऐसी दो समानान्तर रेखाओंके समान थे, जो कही नहीं मिलती। यद्यपि द्विवेदीजी भी यह मानते हैं कि दोनों सम्प्रदाय साधना-वृद्धि, आचार-विचार-विश्वास-सिद्धांत आदिमें एक-दूसरसे अलग थे। एका माग समझौता था, दूसरा विद्रोहका, एक शास्त्रका अनुयायी था दूसरा अनुभवका अवलम्बी एक श्रद्धाका प्राथमिकता देता था, दूसरा ज्ञानको। किन्तु 'प्रेम दोनोंका ही भाग था, सूखा ना दानाको अप्रिय था, केवल बाह्याचार दोनों में से किसीको सम्मत नहीं था, आन्तरिक प्रेम निर्वन् दोनाको इष्ट था, अहंनृत् भक्ति दोनाकी काम्य थी, आत्म-समर्पण दानके साधन थे भगवानकी लीलामें दोना ही विश्वास करते थे।'^१ इस प्रकार द्विवेदीजीने भक्तिकालीन विभिन्न सम्प्रदायों और मतावे मूलमें निहित समान तत्वाकी छानबीन करके यह सिद्ध कर दिया कि ये नाना पथ भले ही बहुसंख्यक रहे हा वे अपनेको श्रेष्ठ सिद्ध करनेके लिए दूसरेकी निन्दा और विरोध भी करते रहे हो किन्तु कही-न-कही जाकर ये सभी एक दूसरसे मिल जाते थे, कोई ऐसा सूत्र था, जो अतन्त सबका एकमें बाँधे हुए था।

वकीर तथा अय सायक 'सत रूपम अपने समयम हा प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुने थे किन्तु उन्हें 'कवि' माननेमें अब भी बहुताका सकोच होता है। इस सम्प्रदायमें भरा विनम्र निर्वन् यह है कि कविकी कमीटी क्या है? कायके लक्षण क्या है? क्या कायकी सायकता या सोमा हाव भाव वजनमें, सयोग वियोगकी वाह्य एव अन्तःशाशाने निरूपणम जाजगुणमभ्यन्त वीर रमा मय आख्यानामें, आश्रयतात्राके विरुग्गानाम प्रेमगीनामें और सामयिककी अभिव्यजनामें ही है? क्या साहित्यकी सोमा गरीर हो है? आत्मामे उमका काई सम्बन्ध नहीं? अथवा धार्मिक रचना होनेसे ही क्या काई कृति या कवि साहित्य-परिधिसे निकाल दिय जाने योग्य हो जाता है? यदि साहित्यका कवय मोतिक सुग-ट्टा अथवा इन्द्रियानुभूतिकी अभिव्यक्तिका माध्या मान लिया जायगा ता इससे न केवल साहित्यका, बरन् हमारा भी काशी अवस्थाण हागा। साहित्यकी सायकता जागतिक प्रपचामे उत्तम समस्याआव भावात्मक निरूपणमें ही नहीं है। इन प्रतीत होनेवाल द्व द्वोगे भी एक वन्ने मत्ता है जिगमा अनुभूति इन्द्रियों-द्वारा सम्भव नहीं। वह अनीन्द्रिय है। किन्तु उमकी अनुभूतिकी गुण इन्द्रिय-मुग्गमे भी व्यापक और स्थायी है। जिम अज्ञान-का अनुभव यानी मागक

१ मध्यकालीन धर्म साधना, १० १२।

बल्पर करता ह, कवि उसीका रसास्वादन अपनी साधनाके बल्पर करता ह और उमे वाणी तेनकी चेष्टा करना ह। एने अतीन्द्रिय आमानकी अभिव्यजना भी साहित्यका लक्ष्य ह। रवीन्द्रनाथने काव्यकी साधना इसी एक रन की साधनामें मानी ह। द्विवेदीजीके शब्दोंमें "छोटासे छोटी वस्तुमें उसकी विभिन्नता और क्षुद्रताके बावजूद एक एसा सत्य ह जा मारी वस्तुओंमें समान रूपमें पाया जाता ह। उसीको रवीन्द्रनाथ एक कहते ह। जहा इम एक के साथ किसी वस्तुमें सामंजस्य ह वही सौंदर्य ह और कला ह।"१ कबीर तथा अय मतान इमो 'एक की साधना की ह और उसे अपनी वाणीका विषय बनाया ह। उमीने कबीरकी वाणियोंमें अनन्य-साधारण जीवन रस भर दिया ह। इसी व्यक्ति-वच आकषणको सहृदय समालोचक संभाल नहीं पाता और रीचकर कबीरको कवि कहनाम सन्ताप पाता ह। २

जहातक एन सन्तोकी भाषा या गिरफका प्रश्न ह यह मभी जनत ह कि ये साधक (सुदरलासका छोकर) अधिक पढे लिख नहीं थ। कबीरन मनि गणन का भी स्पद नथी निया था। उन्हें छन ज्ञान भी नहीं था। इसलिए नके काव्यम भाषा या रूपगत सौंदर्य खोजना अधना उसमें अलकार छद आन्तिकी बारीकियोंकी आसा करना यायसगत न होगा। यही नही उहो कविताके लिए कविता नहीं लिखी थी। काय उनक लिए साधन था साध नहा। रीति कालीन कवियोंके समान शब्द-बौगल अधवा उचित-वचिय का भगीभणितिके द्वारा सामन्तोका मनारजन भी उनका इष्ट नहीं था। उनके लिए कविता भावाके अभिव्यजनीकरणका माध्यम-माध थी। और इम दष्टिसे वे पूण सफल रहे हं। वस्तुत भाषाकी दृष्टिम ये मन सच्च लवनायक थे। उहान लोनभाषाम अपनी बात कगी ह। व भाषाका बहत नीरके समान सवजनमुलभ दबना चाहते थे। उनकी भाषा दमेल निचन जहातक भाषाका गक्तिवका प्रश्न ह, उहान अरूप अलत और अगीचर प्रत्यकोरूप और वाणी दी ह। उमे अभिधा उाग व्यनन करना सम्भव नहीं। इन मतोन उसका ध्वनन किया ह। यह ध्वनि या व्यजना ही काव्यनी उत्तम गनि ह। कबीरके सम्बन्धमें द्विवेदीजीका मत ह कि आज तक हि गम एगा उत्रन्स यय केवरू पना ही नगी हुआ। उनकी माफ चाट करनवाली भाषा

१ साहित्य महार, १० ५ १।
२ कबीर, १० २७।

बिना कहे भी सब-कुछ कह देनेवाली शैली और अत्यंत साने, किंतु अत्यन्त तेज प्रकाश भगी अनय साधारण ह।^१ यही नहीं, “भाषापर कबीरका जड़दस्त अधिकार था। वे वाणीके डिक्टेटर थे। जिस बातका उन्होंने जिस रूपमें प्रकट करना चाहा ह उसे उसी रूपमें कहलवा लिया वन गया तो सीधे सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीरके सामने लाचार-सी नजर आती ह।”^२

इस प्रकार द्विवेदीजीने सत वाक्यो समूची भारतीय परम्पराकी एक अनिवाय और स्वाभाविक कडीक रूपम देखते हुए उसे साहित्य-भेदमें उसी प्रकार प्रतिष्ठित किया जिस प्रकार मूर तुलसी अथवा जायमीको आचार्य रामचन्द्र शुक्लने।



अध्यापक जीवनका एक बड़ा भारी अभिशाप यह है कि आपकी ऐसी सैकड़ों बातोंकी पन्ना-पडाना पड़ेगा जिसे आप न तो हृदयमे स्वीकार करते हैं और न साहित्यिक निरूपणके लिये मानते हैं। यहाँ आदमीको आपा खोबर ही सपनठा भिन्नती है।

—आलोचनाका हृदयत्र मान

१ कबीर, पृ० १६४।
२ कबीर, पृ० २७७।

नाथ-साहित्यके अध्ययनमें

द्विवेदीजीका योग

• •

नागेश्वरनाथ उपाध्याय

नाथ सम्प्रदाय, साधना, दान और साहित्यके आधुनिक दृष्टके अध्ययनका आरम्भ सबसे पहले अँगरेजीमें ही हुआ। सबसे पहले 'इंसाइक्लोपीडिया ऑफ रजिजन ऐण्ड एडिक्चर' में नाथसे सम्बन्धित कई लेख लिखे गये। सबसे पहला अथर्वस्युन और विस्तृत ग्रन्थलेखन अँगरेजीमें जी० डब्ल्यू० ब्रिम्सने किया। उनका ग्रन्थ 'गोरखनाथ ऐण्ड कनकटा चागोज के नामसे १९३८ में प्रकाशित हुआ। फिर हिन्दीमें कई लेख लिखे गये। लागाने स्वीकार किया कि बौद्ध सिद्धा और नाथ सिद्धाक सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। कुछ लोगान तो और आगे बढ़कर यह भा धारणा कर ही कि नाथ-सम्प्रदाय तांत्रिक बौद्ध मतके बख्यानका एक उपयान है। गोरखनाथका पूवनाम ता रमणबख था ही वे पहले बौद्ध थे ही फिर ब्रह्म उाहो गवमत स्वीकार लिया। यी कारण है कि नेपाके बौद्ध लोग धमत्यागी गोरखनाथको अभद्राकी दृष्टिमें लवत हैं। इस प्रकारकी स्थापनाओं का घुष्ट रूप दनक लिए महापणित राहुल साहृत्यापनने बहुत-सी सामग्री जुटायी। उाहाने रत्नाकर ज्ञापन कथाका प्रमाण प्रस्तुत किया और तारानाथक इतिहास-ग्रन्थका बने विश्वासके साथ उद्धृत किया। उाहाने बख्यानक तत्त्वाका विश्लेष नाथसाधनामें नहीं किया, फिर भी गोरखनाथातिके बौद्ध धेपित करनेक साथ ही उाहाने नाथ सम्प्रदायका बख्यानस विकसित माना। हिन्दीक प्रारम्भिक इतिहासकाराने बिना तथ्या और प्रमाणाकी परीक्षा किय ही यह स्वीकार कर लिया कि नाथ और बौद्धादी परम्परा एक थी। यह भी मान लिया गया कि जान-परनाथ बौद्ध थे तथा वे ही नाथकि भा आदिनाथ थे। जब हिन्दोके विवेकक हिन्दी मन्त्र साहित्यक विभिन्न पारिभाषिक गान्था परम्पराक साजमें दत्तचित्त हुए ता उन्हें एक ही रान्ता लगाई पडा कि गोरखनाथाति बौद्ध सिद्धा और हिन्दीक तथाकथित निगुणी सन्ताके बीचकी बने है। (गोरखबानी का भूमिका)। यह बात डॉ० पीत्राम्बरात्त बडध्वानने कही और प० अयाध्या

बिना कहे भी सब-कुछ कह देनेवाली शैली और अत्यन्त सादी, किन्तु अत्यन्त तेज प्रकाशन भगी अनन्य माधारण ह।" यही नहीं, "भापापर कबीरखा जबदस्त अधिवार था। वे वाणीके डिक्टेटर थे। जिस बातका उद्दाने जिस रूपमें प्रकट करना चाहा है, उम्ने उसी रूपमें कहलवा लिया उन गया तो सीधे सीधे ननी तो दरेग देकर। भापा कुछ कबीरके मामने लाचार-सो नजर आती ह।"५

इस प्रकार द्विविजीने मत वायको समूची भारतीय परम्पराकी एव अनिवाय और स्वाभाविक कडीक रूपम देखते हुए उम्ने साहित्य-क्षेत्रमें उसी प्रकार प्रतिष्ठित किया, जिस प्रकार मूर तुलसी अथवा जायसीके आचार्य रामचन्द्र शुक्लने।

अध्यापक जीवनका एक बड़ा भारी अभिशाप यह है कि आपको ऐसी सैबद्धों बाटोंको पढ़ना पनाता पड़ेगा जिसे आप न तो हृदयसे स्वीकार करते हैं और न साहित्यक निप द्विद्वर मानने हैं। यहाँ आदमीको अपना खोबर ही सफनता भिन्नती है।

—आलोचनाका स्वतंत्र मान

१ कबीर ५० १६४।

२ कबीर, ५० २१७।

नाथ साहित्यके अध्ययनमें

द्विवेदीजीका योग

• •

गोरखनाथ उपाध्याय

नाथ सम्प्रदाय साधना ज्ञान और साहित्यके आधुनिक दर्शन अध्ययनका आरम्भ करने परने प्रेरणा देने ही हुआ। सबसे पहले 'सन्तानुसंगीत्या' और 'रत्नसुखा' एक एकात्म्य में नाथोंके सम्बन्धित कई लेख लिखे गये। सबसे पहला व्यवस्थित और विस्तृत सम्बन्धन डॉ. जीने श्री० एन्ड्रू० मिश्रने किया। उनका एक गोरखनाथ एण्ड कन्या 'योगेश्वर' के नामसे १९३८ में प्रकाशित हुआ। डॉ. मिश्रने कई लेख लिखे। उन्होंने स्वीकार किया कि बौद्ध सिद्धा और नाथ-सिद्धाँके सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। कुछ लोगोंने तो और जागे चक्कर चह भा घायल कर ही कि नाथ-सम्प्रदाय तांत्रिक बौद्ध मतके वज्रयानका एक रूपान्तर है। गोरखनाथका पूर्वनाम तो रमणवच था ही वे पहले बौद्ध थे ही डॉ. वाग्नेर नेहीने स्वयं स्वीकार किया। यही कारण है कि नेपालके बौद्ध लोग घमयाना गोरखनाथको अश्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। इस प्रकारकी स्थापनाओंका एक रूप दनक निर मत्पणित राष्ट्र साहित्ययानने बहुत-सी सामग्री प्रकाश। उन्होंने रनाकर ज्योतिष कथाका प्रमाण प्रस्तुत किया और तारानाथके इतिहास-ग्रन्थका वे विश्वासके साथ उद्धृत किया। उन्होंने वज्रयानके तत्त्वोंका विकास नाथसाधनामें नहीं लिखाया, फिर भी गोरखनाथादिको बौद्ध घोषित करने का ही उन्होंने नाथ सम्प्रदायका वज्रयानसे विवक्षित माना। हिन्दीके शारंगदेव इतिहासकारने जिना तथ्या और प्रमाणाकी परीक्षा किये ही यह स्वीकार कर लिया कि नाथों और बौद्धोंकी परम्परा एक थी। यह भी मान लिया गया कि नाथ-सम्प्रदाय बौद्ध थे तथा वे ही नाथके भी आदिनाथ थे। जब डॉ. वाग्नेर विवक्षित हिन्दी सन्त साहित्यके विभिन्न पारिभाषिक शब्दोंकी परम्पराने साक्षर स्तम्भित हुए ता उन्होंने एक ही रास्ता लिखाई पडा कि गोरखनाथादि बौद्ध सिद्धा और शिवाक तथाकथित निगुणो सन्तके वाचकी बड़ी है। (गोरखवानी का भूमिका)। यह बात श्री० पीताम्बरदत्त बटखानने कही और प० अयोध्या

इतिहास-दान

सिंह उपाययाने इस समयन प्रदान किया। इसके बाद सन्ताके साहित्यका विवेचन करनेके लिए बौद्ध और नाथ मिद्ध-साहित्यका विवेचन अपरिहाय हो गया। आजके अध्ययनकी स्थितिको देखते हुए अब हमें पिछले अध्ययन अपरिपक्व-से मालूम पड़ते हैं। कारण यह है कि पिछले अध्ययन भारतीय साधना, सस्कृति दान और सम्प्रदायोंके विकामको बिना ध्यानमें रते ही किये गये थे।

द्विवेदीजीके नाथ सम्प्रदाय और सत साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थको देखनेत अध्ययन सम्बन्धी उनकी दृष्टिकी विविधता, जैसे ऐतिहासिक पुरातात्विक सासृतिम्, भाषाबनानिक साहित्यिक, साधनात्मक आदि, स्पष्ट हो जाती है। द्विवेदीजी सम्भृत वाडमयके प्रकाण्ड पण्डित हैं। इनीलिए जब भी व वापुनिक भारतीय जायभाया और साहित्यका पर्यालोचन करने लगते हैं तो उनकी दृष्टि अनायास ही अतीतके साहित्य, दशन साधना आदिकी अनुदघाटित बडिया तक बौद्ध जाती है। फनत शब्दाके नये अर्थ, साजना और दशनकी नयी जीवत परम्परा पुष्ट रूपमें प्रत्यक्ष हो जाती है। इनीलिए भूमिका प्रस्तुत करनेमें द्विवेदीजी बहुतसे विद्वानाकी अपुष्ट और सवधा कल्पित स्थापनाआका श्वशोर देनेमें समय हो सके। दुवनजीने अपनी आलोचना-मद्धतिम और अपने इतिहास ग्रन्थमें भी सावजीवन और साजमगरापर बहूत जोर दिया है। लेकिन साहित्य आलाचनात्मक विवेचन तथा शोधके क्षेत्रमें ध्यापक लोकजीवन, लोकयुनि लौकिक सस्कार, विश्वासादिका किस प्रकार उपयोग हो सकता है और उसने कस-कसे रत्नाका उद्घाटन हो सकता है यह द्विवेदीजीके नाथ सम्प्रदाय और 'बीर' नामक ग्रन्थोंमें प्रकट हुआ। गुवनजीने जिम लोकजीवन और 'त्रोत्रमगनका मस्त्व दिया था, उमका भावपण ही काव्यके लिए विवेच्य समया गया। कवि और काव्यके विभिन्न रहस्योंको उद्घाटित करनेके लिए सामान्य सावजीवनकी रुझिया, रीतिया, विश्वासा, सस्कारा और परम्पराआकी छानबीन करने उनीकी। उसके समयकी और उसके पूर्वकी धार्मिक मामाजिक, साधनात्मक और दार्शनिक परिस्थिति और परम्पराका उत्तना महस्त्व नहीं दिया। दूसरे उनकी दृष्टि स्मृतिमर्षित व्यवस्था और अर्थ क्षत्रांमें भी रुझियोंमें बंधी हुई थी। यही कारण है कि इम परम्परा आर दृष्टिने पथक रहर अपनी ही धन्तिमें जीवित रहनेवाली सस्कृति, साधना और साहित्यकी जानाचना और परीणा व आसोचके सादरम्प के साथ नहीं कर सके। उनीने विभिन्न साम्प्रदायिक और मनमतान्तरीय सधनों क्रिया प्रतिक्रियाआ, विभेदा, विगिष्टापरक लगणाकी भी परीणा और साव शान्तिनिवेतनसे दियार्लिक

नहीं थी। इस सत्र वातावा कारण यह था कि व काव्य और साहित्यक लिए काव्यास्त्रीय और साहित्यशास्त्रीय निष्पत्ति ही आवश्यक और उपयोगी मानते थे। उन्होंने भक्तिजी जो परिभाषा अपने मूरदास ग्रन्थमें स्थिर की, वह भी उनकी दृष्टि और आप्रष्ट विशेषकी ही परिचायिका ह। ऐसा स्पष्ट हाता ह कि, जमे यह परिभाषा और साहित्यास्त्रीय मानदण्ड तुलसादासको ही ध्यानमें रखकर स्थिर किये गये ह। शुक्लजीके विविध ग्रन्थाने प्रकाशित हा जानेके बाद द्विवेदीजीके जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए, उनमे यह स्पष्ट हुआ कि इन्होंने अपने ग्रन्थामें अधिक उत्तार साहित्यिक दृष्टि विवमित कर, और अधिक व्यापक मान्यताको समाहित कर उनके प्रकाशमें कवि और काव्यका मूल्यांकन किया ह। हिन्दी साहित्यकी भूमिकाके निवेदनमें उन्होंने लिखा भी ह— ऐसा प्रयत्न किया गया ह कि हिन्दी साहित्यकी सम्पूर्ण भारतीय साहित्यमें विच्छिन्न करके न दगा जाय।”

नाथा जीर सत्ताकी रचनाअने चारमें द्विवेदीजाने जा कुछ लिखा ह उसमे यह बात प्रमाणित हा जाती ह कि द्विवेदीजा इन रचनाअना मूल्यांकन केवल काव्यास्त्रीय दृष्टिने ही नहीं करत। वे उसका मूल्यांकन काव्यरूप छत्र, गदकाग भाषा, धम, भाषना और दशनरी भी दृष्टिने करते ह। वे यह मानते ह कि नाथा और सन्ता, दानाका रचनाअना इन क्षेत्राम अपना योगदान ह। शुक्लजीने आन्तर्गत साहित्यमें जहा चारणा और नाथाने साहित्यका महत्त्व स्थापित किया वनी द्विवेदी जीने बौद्ध मिठ्ठा और नाथाने साहित्यका महत्त्वस्थापन किया। द्विवेदीजीकी नाथ और सत्त साहित्य सम्बन्धी दृष्टिकी तीन विशेषताएँ स्पष्टतया निर्गई पन्ती ह। पहली ता यह कि यह आधुनिक साधकी प्रकृतिसे सम्पन्न ह। दूसरी विशेषता यह ह कि भारतीय धनमापनाके अन्वयानुच्छत्र और अनुद्घाटित पन्ना एव तत्त्वाना प्रवाणित करनेका श्रेय उग मिठा ह। और तीसरी विशेषता यह कि काव्यमें प्रवाणित हातवाठ कविक व्यक्तिय और उमके रचनात्मक तत्त्वका विद्वेषण सम्भव हो सता निममे साहित्येतिहासलेखनमें प्रथम बार कवि और उनके व्यक्तिय की महत्ता स्थिर हुई। हिन्दी साहित्यमें गारणनाथ और कमीरामसे व्यक्तिय का स्थापित करनेका श्रेय द्विवेदीजीका ही ह।

गाथ मन्त्रनायक मन्त्रधमें द्विवेदीजाने एव स्वतन्त्र ग्रन्थ ही लिखा ह, एकिन उमके सम्प्रधमें बहुत पहलमे ही सचिने-समजते रहे ह। आपने हिन्दी साहित्यका भूमिका नामक ग्रन्थमें अपना यह विचार किया कि नया-नयावीं गताहित्यामें नेपात्री तगश्याम शक और बौद्ध साधनाअने सम्मिथणम

नाथपंथी यागियाका नया सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ।" इस कथनका अयनिरूपण इस विषयके हिंदी पुराने लेखकोंके कथनाको ध्यानमें रखकर करना चाहिए जिसके अनुसार गारुडनाथ मूलतः बौद्ध थे और बादमें शैव हो गये। शुक्लजीन भी (१९२९ में) यह घोषणा कर दी थी कि "गोरखनाथके नाथपंथका मूल भी बौद्धाकी यही वज्रयान शाखा है। चौरासी सिद्धांमें गोरखनाथ (गोरक्षनाथ) भी गिन लिये गये हैं। पर यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपना भाग अलग कर लिया।" राहुलजीके दिये हुए प्रमाणपर शुक्लजीने कुछ और बातें भी कही जो आजकलके अध्ययनकी दृष्टिमें अप्रामाणिक कही जायेगी— "नाथपरम्परामें मत्स्येन्द्रनाथके गुरु जालधरनाथ माने जाते हैं। सब बातोंपर विचार करनेसे हमें एसा प्रतीत होता है कि जालधरने सिद्धानि परम्परा अलग की और पंजाबकी ओर चले गये।" मत्स्येन्द्रके गुरु जालधर थे, यह भ्रम रत्नाकर जोषम कथाका प्रमाण मान लेनेके कारण हुआ। इस प्रमाणसे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि जालधरनाथ ही आदिनाथ है और नाथाकी परम्परा आदिनाथसे ही चलती है। ऐसी स्थितिमें और जागे विचार करनेपर यह बात भी माननी पड़ेगी कि कृष्णपा या बाहुपा मत्स्येन्द्रनाथके गुरुभाई थे। लेकिन आज द्विवेदाजीने प्रामाणिक विवेचनसे यह बात साफ हो गयी है कि मत्स्येन्द्र और जालधर दोनों ही समसामयिक थे तथा दोनोंकी साधनपद्धतियाँ भिन्न थी और गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथके और कृष्णपादे जालधरपादेके शिष्य थे। नाथ सम्प्रदायकी कोई भी परम्परा जालधरनाथका मत्स्येन्द्रनाथका गुरु नहीं मानता। द्विवेदाजीने जो यह बात कही है कि यागयोगियाका नया सम्प्रदाय नेपालमें गया और बौद्धाने सम्मिश्रणमें उठ खड़ा हुआ, इसका अर्थ केवल यही लगाया जा सकता है कि नाथाकी साधनामें बौद्धाकी भा कुछ यत्नाली महजाली जसी साधनाएँ भी किमी न किमी प्रकार छिप छिप विभिन्न अर्थ सम्प्रदायोंमें सगठनक बात नाथ सम्प्रदायमें सरबती हुई चली आयी है। लेकिन द्विवेदाजीके पुत्र मत् प्रवट न हा सका था कि गारुडनाथके विभिन्न शैव-आव सम्प्रदायोंका सगठन नाथ सम्प्रदायमें किस तरह किया था।

प्रारम्भमें हिंदी साहित्यमें इतिहास-लेखनमें निगुणो सन्ताका विचार करने समय यह मत व्यक्त किया गया था कि निगुणो लागाकी जाति-माति रक्षणकी प्रवृत्ति मुसलमानाने प्रभाषके कारण है। द्विवेदाजीने इसे भ्रम बतलाया और स्पष्ट ही उन्होंने बौद्ध सिद्धांत और नाथ सिद्धांतका परम्पराकी ओर मकत करने हुए कहा— 'यदि कथार आदि निगुणधननाथ सन्ताकी यागियाका बाहरी रूपरूपपर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह सम्पूर्णतः भारतीय है और बौद्ध धर्म

के अतिम सिद्धा और नाथपंथी योगियोंके पन्नादिमें उमका सीधा सम्बन्ध है। उन्हीने बौद्ध सिद्धो और त्रिनेत्रर सरहपादकी वाणीकी परीक्षा कर जल्पडता, आडम्बर छुआडूत-जातिपाति आन्की प्रवृत्तियोंके विरोधकी भारतीय परम्परा सिद्ध कर दी। इसी प्रकार पारिभाषिक शब्द छन्द, पद रचना रागनिबद्धता रोहा चौपाई गीली, गुद महिमा, पिण्डब्रह्माण्डवात् आदि प्रवृत्तियोंके विषयमें उन्हीने कहा कि ये सभी सहजयानियों वज्रयानिया, तानिका नाथपंथियाम ममान भासमें समाप्त हैं। 'हिंदी साहित्यकी भूमिका में द्विवेदीजीने भक्तिकालीन गाथाविशेषका विचार करते समय नाथ सम्प्रदाय और सहजयान दानाका साय-साय उल्लेख किया है। अपने अगले ग्रन्थमें द्विवेदीजीने नाथ सम्प्रदायको भूत शव ही माना है बौद्ध नहीं। उनके भूमिका नामक ग्रन्थ में दो-तीन बातें और ध्यान देने योग्य हैं—उन्हीने सधामाया, उलट्यामी और दण्डकूटका सम्प्रथनिष्पन्न करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि यह प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। परम्पराका विस्तार बताते हुए उन्हीने नाथोंकी जमूनवाणी और मूरत्तमके दण्डकूटकी तरहके उपाकरण पथीराजरायो में भी दिखाये। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि द्विवेदीजीने इसमें गोरक्षनाथकी गिष्य-परम्पराका भी विचार किया है जो अभी तक नहीं हुआ था। उन्हीने लिखा—गोरक्षनाथके कई गिष्य थे—बागनाथ, हालीकपात्र, मालीपात्र आदि। हालीकपात्र या हाडिपा, हाथी नामक व्यंज जानिमें उत्पन्न हुए थे। पहले ये बौद्ध थे, बादमें नाथपंथी हो गये थे। कहीरा एव और नाम जाल्-घरनाथ था। उनके आगेने ग्रन्थमें जाल्-घरनाथके गोरक्षका गिष्य होनेकी बात नहीं आयी है। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ नाथोंके शिवयोगके विभिन्न पारिभाषिक शब्दोंकी शास्त्रीय आधारपर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। डॉ० बन्धुवालने सत साहित्यमें प्रयुक्त होनेवाले विभिन्न पारिभाषिक शब्दोंके व्योमोका वर्गीकरण तो किया था किन्तु उन शब्दोंके विवामामक सूक्ष्म अर्थोंका विचार नहीं किया। द्विवेदीजीने गूय जमे शब्दाका विस्तारमें विचार किया। उन्हीने कबीराल्लिके व्यक्तित्व निकामक लिए उत्तराग्यो जुगो आदि जातियोंका समाजवतानिक और जनानना सम्बन्ध तथ्याके आधार पर तत्कालीन समाज रचना और परिवर्तनका विवरण प्रस्तुत किया।

उपयुक्त पुस्तकमें ही द्विवेदीजीने यह सवेन कर दिया था कि नाथ सम्प्रदाय और तन्मयभूत जातियोंने कबीरको प्रभावित किया था। बागनाथ कबीरको इस काममें नवधर्मान्तरित इसी जुगो जातिमें मिला। डॉ० बन्धुवालने पत्र यह अवश्य बताया था कि कबीर निमी प्राचानतया कबीर किन्तु तत्कालीन जुगो कृष्ण थे जो मगलमान होनेके पहले जोगियारा अनुयायी था। द्विवेदीजीने यह

विस्तारमें इन तथ्यको उदघाटित मिद्ध किया कि जोगी जाति नाथयोगियों सम्बद्ध थी। इसके लिए उन्होंने रिजली और वेल्सको प्रमाण रूपमें उद्धृत किया है। द्विचैत्रीजी बोरीके मुसलमानी रूपको जुलाहा नहीं मानते। उन्होंने डॉ० वडव्याङ्के इन मतको भी अस्वीकार किया है कि सामाजिक प्रतिष्ठाके लिए ही यह धर्मांतर हुआ था। उनका अनुमान है कि मुसलमानोंने आनेके पहले इस देशमें एक ऐसी श्रेणी बतमान थी जो ब्राह्मणोंमें अमन्तुष्ट थी और वर्णाश्रमके नियमोंकी कायदा नहीं थी। नाथयोगी ऐसे ही लोगी थे। अथवा उन्होंने यह भी समझ लिया है कि गाँवोंके लालीश पागुपन आदि सम्प्रदाय वर्णाश्रम व्यवस्थाको मान्यता नहीं देते थे। वे वस्तुतः अनाश्रमी अथवा अतिवर्णाश्रमी थे। वे मुख्य रूपसे सयागो ही होने थे, लेकिन यहाँमें राजनैतिक-आध्यात्मिक परिस्थितियोंके परिणतमें उनके सम्प्रदायके अन्तर्गत अनाश्रमी और अतिवर्णाश्रमी गृहस्थोक्त भाग विकसित होने लगा। “उन दिनों नाथमतावलम्बी गृहस्थ यागियोंके एक बहुत बड़ी जाति थी जो न हिन्दू थी न मुसलमान। वस्तुतः ये जातियाँ एक जमानेमें आश्रमभ्रष्ट होनेके कारण वर्णाश्रम व्यवस्थाके धारण पड़ी थी। जागो नामक आश्रमभ्रष्ट घरदारियोंकी यह जाति सारे उत्तर और पूव भागमें फैली थी। जातिभेद और ब्राह्मणकी श्रेष्ठताके प्रति इनकी कोई मर्यादा नहीं थी। ये आमपातके बहतर समाजमें गीच और अस्यदय थे। मुसलमानोंने आनेके बाद ये धीरे धीरे मुसलमान होने लगे। पञ्जाबमें लेखर बगल तकके प्रदेशोंमें उनकी जातियोंके नामाधिक रूपमें इसलाम धर्म ग्रहण किया।” नाथ सम्प्रदायके सम्बद्ध जातियोंके धर्मांतरकी प्रक्रियाका विस्तृत विवेचन कर द्विचैत्रीजीने वेदल बजारपर ही नहीं अपितु अगीरगा, मैसूर गुन्ना, मुहम्मद शही मुरगिन यागि गभौर तथा शिमला विचार करके प्रेरणा दी और यह समझ लिया कि इन बगले बहियोंका तालीम मस्कृति समाज और साहित्यमें वैलम्ब्य स्पष्टतया बहुत महत्त्वपूर्ण है।

द्विचैत्रीके भक्तिशास्त्र नामक साहित्यकी भूमिकाके लिए बहोत नाथ साहित्य और सम्प्रदायकी चर्चा कई बार हो चुकी थी किन्तु नाथोंके दान, मायना और साम्प्रदायिक विस्वामात्रा सुलहर विषयन नहीं किया गया था। प० रामराज शुभरी अपने इतिहासमें नाथोंके मायना और दानगत धर्मोपचार का विवेचन करते हैं। वे पर्याप्त धामक थे— यागियोंके इन हिन्दू नामान ब्रह्मसामियात अज्ञान और बीभत्स विधाताओं अपनेका अनाथ रत्न मर्यादितिकिरी भावनाके कारण कुछ गृहस्थयोगी वाणी भी नाथोंके नामाधिक किताबों में (जैसे नाथयोगमन्त्र) में मिलती है। गारमने पत्रवित्त उच्च तथ्य मर्यादितिकिरी केर हठयोगी

प्रवृत्त विद्या ।" यद्यपि गुणजोने नाथोके अतम्यापना ईश्वरवादिता, परमात्मा-
की अविचरनीयता, नाथविदुसाधन आन्तिगी बार भी सकत किया ह तथापि
उपयुक्त अथनरा द्रुटिया भी छाटी नही है । यत् ता लीक ह कि नाथाने वज्र-
यातियादे अतीन विधानवि अपनरो अलग रखा किन्तु वे यह नही मनता सक
कि वज्रोत्ता यहजाली-जडी सापनाएँ नाथसापनामें बँधे स्यात् पा गयी । पयुक्त
इसी तरहगी वातगी म्यष्ट करनमें वे 'शक्तिमगमनत्र का नाथयो ग्रन्थ कह
गये । यह ग्रन्थ नाथ सम्प्रदाय अथवा पथका प्रमाणग्रन्थ नहीं ह । गार्ग्यविद्वान्त्र
मग्रह-जन ग्रन्थामें इस ग्रन्थ उद्धरण अवश्य है लेकिन कबल इसी आधारपर
नाथ सम्प्रदायका ग्रन्थ उन धारित नत् किया जा सकता । नाथयागना स्वल्प
और लघु पातजन यागमे भिन्न ह । उनका ग्रन्थ ह कायमिद्धि और नाथश्रवण
अवस्थान । लेकिन गुणजोने पातजन यागकी ईश्वरशक्तिका नाथ सम्प्रदायका लघु
बनाया । नाथ सम्प्रदायके जितन ग्रन्थ उपलब्ध है उनका आधार यत् कहा जा
सकता ह कि पातजन यागके ईश्वरका स्थान नाथ विद्वान्त्रे परम शिवमे बहुत
नीचे है । (लघु ग्रन्थमें नहीं कि नाथ सम्प्रदाय पूजाया ईश्वरवादी = जो
वज्रयात और सृजयान अनोईश्वरवादी) । द्वितीयोने नाथ सम्प्रदाय साधना
और दान साधनी विवचनने उपयुक्त बातें प्रकट हाया ह ।

इस विवचनका मूल परिणाम स्थानाविरा या कि नाथोके उन पार्थिभापिर
शक्तिके मम मूल जान त्रिनका बन्धु प्रयाग परतनीं स्तनान किया । द्विदशश्रीन
दृष्टयाग महाकृष्णतिना उसरी अख्याया कुण्डलितजागरा पञ्चक, सम्सार
गयचर दयास नाथिया नाथिन्दु कायामागन पठकम केररा गामामभक्षण,
अमरवाणी गामरम मनामनी ली आदि गारा गामनीय विवेचन ता किया
नी निरजन गय सञ्ज, विदु सुखम आदि गामना विन्नागम विचार पहली
बार किया । यद्यपि मारे पार्थीय और प्रामाणिक विवेचन नाथानरनक गारा
ये किन्तु इनके विवचनका लघु मन्त्र वाचने प्रयुक्त याग पार्थिभापिर गारा
मम साधना था । पार्थिभापिर गारा अयविकाय सम्बन्धी इस विवचनन नाथ
और मत्त साहित्यक अध्ययनकी मुक्त कर किया और इसमें भी एक प्रकारकी
एनिहामिक साधना उत्पन्न कर दी ।

महाविद्वान् साधनामत्र आर अयनिरूपगामक मम विवचनन सहज हा
नाथाना गारा स्वल्प उपस्थित कर किया । द्विदशश्रीन बौद्ध अपभ्रंश साहित्यक
भी पण्डित ह वन बौद्ध सिद्धिके गारा और चयापनामें प्रयुक्त हाजराग
साधामापा आर गैलीका उन्हें पूरा जान था । हमारिग नाथाना उरगा चया
सन्नाती उरगावानी और बौद्ध सिद्धारा साधामापाको परम्परा एक सिद्ध

कर्ममें उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। योगशास्त्रके छावेलिक गदा, प्रतीकोंका विस्तारमें विवेचन कर उठाने नाथा और मन्त्रोंकी शैलीका वैश्वव्याप्य उद्घाटित किया। इसमें उलटवर्तनियोंकी दुस्मृता भी दूर हुई। अपने कवीर नागर प्रथम उन्होंने कुछ और अधिक शब्दोंका विवेचन किया और उसके साथ ही बौद्ध, गैर और जन श्रोताकी समशील प्रस्तियों और अर्थोंकी ओर सनेत किया।

त्रिस्तके जिन प्रथकी तार ऊपर मकेन किया ह उसमें तैलवने कनफटा योगियोंके सम्प्रदायपर तो साम्प्रदायिक परम्पराने प्राप्त सामग्रीपर विस्तारमें विचार किया ह किन्तु सिद्धान्त और साधना आदिपर सामग्री नगण्य-सी ह। जो थोटा बहुत विवेचन ह उसके लिए त्रिस्तने प्रमाण-ग्रन्थ 'गोरक्षशतक' माना है। उस समय और भी प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध थे। फिर भी त्रिस्तन उन्हें विवक्ष्य नहीं समझा। परिणाम यह हुआ कि त्रिस्तका तत्सम्बन्धी काय अपूरा, एकपक्षीय और अप्रामाणिक रहा। उह सम्भवतः सम्स्तुनके गैर याग और तत्र साहित्य का भाषना गयी था। इस कायके एक घण पुन (१०३७ ई० में) डॉ० माहासिंहने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गोरक्षनाथ ऐण्ड मेडिकल हिन्दू मिस्टिसिज्म' प्रकाशित कराया था। इसमें उन्होंने 'मच्छीन्द्र गोग्ग बोध गाम्भी हिन्दी रचनाओंके प्रामाणिक माना और उसका अंगरजाम अनुवाद भी प्रस्तुत किया। यागशाधनाके भारतीय रहस्यवादीके रूपमें तो रवीशरर किया जाता रहा है लेकिन गोरक्षनाथके यागशास्त्री रहस्यवादीत यह पहला ग्रन्थ था। त्रिस्तने भी एक महत्वपूर्ण काय यह किया कि सम्प्रदायगत विवादा, रीति रिवाज मस्कारा क्रियाआ और तथ्याका विनाश और सम्पन्न भंडार उठाने प्रस्तुत कर दिया। द्वितीयजीने इस सारी सामग्रियोंकी भलीभांति परीक्षा की और नाथ सम्प्रदायके शास्त्रीय और प्रामाणिक ग्रन्थके आधारपर नये मिररे सिद्धान्त साधन और दानना विवचन किया। पत्रके लेखकोंका सम्बन्ध प्राकृत अपभ्रंशमें लिखित जन बौद्ध धर्म गाथा आदिना साहित्य हस्तगत नहीं था और न उनकी शक्ति ही बहुत ध्यापन भूमिकामें नाथाकी रचनाआना दान करनेम समय थी।

अनेक ग्रन्थ नाथ सम्प्रदाय में बहुत-से प्रमाण त्तर द्वितीयजीने यह सिद्ध किया ह कि मन्त्रोद्घाटनायका सिद्धामृत गाग ह। आगे चलकर नाथ सम्प्रदायके रूपमें विरचित हुआ। उठाने बताया है कि मन्त्र त्रिस्त 'पौष्पाननिग्रम'म धनेर कौट मनाम योगिनो कौट मनसा भो उठग ह। गोरक्षसिद्धान्त गद्यके अनुवाद कौटमाग अरधूतमाग ह और गाथा तत्र भी नाथानुयायी ह। नाथ सम्प्रदायके ग्रन्थोंके अपना मनाहीमें यह मान्य होता ह कि कावियोंका कौट माग और काव्यादि मन नाथानुयायी हैं। का आधारोंपर द्वितीयजीने तथ्यापिपयारा यह

दावा ठीक माना है कि कौशाचार उनके अपने आचार्यों-द्वारा उपदिष्ट माग है। त्रिपुरामतके आचार्यगण स्वयं अपनेको नाथमतानुयायी मानते हैं। दूसरी ओर वाश्मीरके कौशमागमे मत्स्येन्द्रनाथको वही श्रद्धाक साथ स्मरण किया गया है। जालन्धरनाथ कापालिक थे और काङ्गपाद उनका शिष्य थे। गोरक्षनाथ-द्वारा संगठित नाथ सम्प्रदायमें वामारण नामका एक अद्वैत सम्प्रदाय भी है जिसका सम्बन्ध काङ्गपासे माना जाता है। द्विवेणीजीने त्रिमूक आशारपर यह भी बताया है कि जालन्धरनाथ जीउड थे जब कि मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ बनफटा कहलाते थे। नाथपरिचयाका मुख्य सम्प्रदाय गोरक्षनाथी यागियाका है जिन्होंने साधारणत बनफटा और दशनी साधु कहा जाता है। नाथ सम्प्रदायमें और भी बहुत-से तत्कालीन प्रचलित उप-सम्प्रदायोंका संगठन हुआ जिसमें नाथ सम्प्रदायका पर्याप्त विस्तार हो गया। द्विवेणीजीने बहुतसे श्रोताओंकी परीक्षा कर विस्तारमें इन उपसम्प्रदायोंका विवरण किया। वेग, विदवास आदिके विवरणके साथ गृहस्थ नाथयागियाका व्रत परवर्ती सन्तोंके अध्ययनके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

सम्प्रदायके पुराने सिद्धोंका विचार करने समय द्विवेणीजीने नवनाथों और चौरासी सिद्धोंकी विभिन्न सूचियाँकी भली भाँति परीक्षा की। इनमें तीन सूचियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं—हृदयागप्रदायिकाकी सूची, वणरत्नाकरका सूची, राट्टल साहृत्यायन द्वारा प्रदत्त सस्वय विहारकी सहजयानी सिद्धोंका सूची। द्विवेणीजीने वणरत्नाकरकी सूचीका नाथसिद्धोंका सूची माना है। उन्होंने इसी तरहकी और कई सूचियाँ और परम्पराओंकी तुलनात्मक समीक्षा कर यह निष्कर्ष निकाला है कि नाथ सम्प्रदायके मरमाय जाकाय मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ जालन्धरनाथ और कानिषा हैं क्योंकि इनके नाम भभी सूचियामें मिलते हैं। उन्होंने कुल मिलाकर १३७ सिद्धोंकी सूची तयार की है किन्तु उनका यह भी कहना है कि उनमें-में कई अभिन्न-मे जान पड़ते हैं। उणाहरणाय काह, कङ्गी, करणिषा, काण्ठीनाथ आदि एकही सिद्धके नामके उच्चारण भेदसे भिन्न रूप हैं। इस प्रथम उन्होंने उपयुक्त चार नाथ सम्प्रदायोंका विस्तृत परिचय पहली बार विभिन्न प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधारपर किया है। मत्स्येन्द्रनाथके परिचयमें उन्होंने बहुत-सा स्थापनाओंका विमर्गनियाका स्पष्ट किया और निष्कर्ष निकाला है कि मत्स्येन्द्रनाथ और माननाथ दोनों ही व्यक्ति अभिन्न हैं। मान नामवारा सिद्ध एक-दूसरे सिद्ध हैं। "मक" लिए उन्होंने बहुत-से प्रमाणोंपर युक्तिमय विचार भी किया है। द्विवेणीजी महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीने इस मतका ठीक मानते हैं कि मत्स्येन्द्रनाथ वभी बाढ थे ही नहीं। उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ विषयक कथाओंकी परीक्षा कर निष्कर्ष निकाला कि मत्स्येन्द्रनाथ ९वीं शताब्दीके मध्यभागमें वनमान थे। जालन्धरपाद उनके

समसामयिन थे। मत्स्येद्र चद्रगिरि नामक स्थानमें पैदा हुए थे जा कामरूपमें बहुत दूर नहीं था। गुरू-शुक्लम वह एक प्रकारकी साधनाका व्रत ले चुके थे, परन्तु बादमें किसी ऐसे आचारम जा फँसे थे जिसमें स्त्रियाका साहचर्य प्रधान था और यह आचार ब्रह्मचर्यमय जीवनका परिपची था। वे जिस स्थानमें इस प्रकारके नये आचारम व्रती हुए थे, वह स्थान स्त्रीदंग या बदलीदंग था जो कामरूप ही हो सकता ह। इस मायाजालसे उनका उद्धार उद्दीर्षे प्रधान गिष्य गारक्षनायने किया और एक बार फिर वे अपने पुगने माणपर आ गये।

जहाँक मत्स्येद्रनाथके साधनमागका प्रश्न ह, वे पहले सिद्ध या सिद्धामृत मागके अनुयायी थे बादमें कामरूपमें वाममार्गी साधनामें प्रवृत्त हुए थीर वहाँसे कौलान अवतारित किया। फिर उनके प्रधान प्रवोण शिष्य गारक्षनायने उन्हें उत्पुद्ध किया और परिणामस्वरूप व पुन सिद्धामृत मागके अनुयायी बने। यह सिद्धामृत माग पूण ब्रह्मचर्यपर आश्रित था। इसमें रत्रीसग पूण रूपसे वर्जित था। डा० वागची द्वारा सम्पादिन प्रथियाम-स कौलान निणय और कौलावली निणय मत्स्येद्रक बादके प्रवर्तित यागिनीकी मतक ध्याख्या-ग्रथ ह। दूसरी ओर अबुलवीरतत्रको रूपनेम ऐसा लगता ह कि मत्स्येद्रने इस ग्रथमें सिद्धामृतमागका निवेचन किया है। इस तत्रका स्वर गोरगमहिताम पूरी तरहसे मिलता ह। इसक विपरीत डा० वागचान तानिन बौद्ध मता आर यागिनी काल मतकी तुलना कर यह बताया ह कि दानामें कई समान बातें मिलता ह जमे सहजपर आर दना, बाह्याचारका विराध कुत्थेन और पीटाकी चचा बञ्चोकणका प्रयाग पचपवित्र आदि पारिभाषिक गणना प्रयोग। इन आचारपर डा० वागचान यह निश्चय किया कि मत्स्येद्रकी इस साधनाका सम्बन्ध बौद्ध साधनाम अवश्य था। इस मतकी सधना करते हुए द्विवेदीजान एक बहुत ही महत्त्वपूण बात बही ह— इस बातमें ता काइ साह ही नहा कि जिन दिनों मत्स्येद्रनाथका प्रादुभाव हुआ था उन दिन बौद्ध और ब्राह्मण तत्रामें बहुत-सा बातें मिलती-जुलती रही हागी। द्वियन्त्राजाकी बर इसी मायताक आधारपर त्रिन्ना-नाहित्यर इतिहासकी बहुत-सी गुत्थियां सुझायी जा सक्ती ह। द्विवेदीजान और आगे बताया कि उपरकी पाँच बातें बौद्ध तत्रामें भूरिग आता ह, पर जब तत्राम भा उन्हें राज निरालना कति नही ह। यह कह गक्ता बहुत कति ह कि जिन तत्राम या उपनिषामें म दन्द आये ह व बौद्ध तत्राने बाद ही ह परन्तु तय परम्पराकी सभी पुस्तकाने अम्पयाम एमा ही लगता ह कि पुराना सिद्धमाग माणपरक था थीर पचमकारा या पचपवित्राकी ध्याख्या उगमें सग रूपके रूपमें ही हुआ करता

तो कोई भौतिक लाभ हा ऐसा करनेस उन्हें राख सका ह ।

ऐसे स्वच्छ एव अनाविल साहित्यको भी सदिया तक भस्मावृत रहना पडा, यह एक विचित्र विडम्बना ह । रत्न तभी रत्न है जब जीहरी उसे रत्न मानकर उसका मूल्यांकन करे, वरना वह भी पत्थरका एक ठीकरा ही ह । परन्तु इससे रत्नको रत्नमुलभ विशेषतामें कोई फरक नही आता, जब भी पारखी उसे हाथमें लेता ह वह अपना रत्नत्व ग्रहण कर लेता ह । यहा बात मध्ययुगके लगभग पाँच सौ वर्षोंके साहित्यके लिए भी लागू होती ह । इसका परखनेवाला व्यक्तित्व असाधारण तथा विज्ञानमय होगा तभी काम चल सकता ह । उसमें यदि अनक व्यक्तिताका समवेत स्वरूप अतर्निहित हो और जो एक दार्शनिक तन्त्र-भ्रमण, योगशास्त्र भ्रमण, समस्त प्राचीन एव अर्वाचीन साधनामूलक वाडमयके विश्व कोशस्वरूप व्यक्तित्वको लेकर सर्वांग सन्तुलित विवचनके क्षेत्रमें अवतरित हुआ हो वही इन विशद साहित्यके साथ यथाचित याय कर सकता था । सयाग यगात आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीम सभा वाछित माप्यताएँ बतमान ह और साथ ही उनमें आवश्यकतानुसार शोधको प्रवृत्ति तथा वारधित्री एव भावधित्री दोना प्रकारको प्रतिभाआका समन्वय भी है ।

द्विवेदीजीने अपना बहुमुखी सास्त्रज्ञता एव अनवरत साधना-द्वारा मध्य कालीन हिंदी साहित्यके अचकाराभिभूत क्षेत्रका प्रकाशित किया ह । उहान अत्यन्त कष्टवाकीण भागपर चलकर जा पथ प्रगस्त किया उसपर आजका एक बडा साहित्यावपक एव विवचनबग बगटवे चला जा रहा ह । द्विवेदीजीने स्वयं तो जा किया वह किया ही साथ ही अपने प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष मार्गदशन द्वारा अनेक ऐसे निम्न प्रणिष्पद्यगका उसी निशामें नियोजित कर दिया जिधर जानमें अभी कुछ समय पूर्व तक विद्वद्वग भ्रान्तिगय रूपेण अथवा भयस्य कतराना फिरता था । आग विभिन्न विश्वविद्यालयामें सतत और भक्ति साहित्य पर जितना साधन-लाय हा रहा ह उतना शायद निमी भी युगके साहित्यपर सम्भव नही हा पाया ह । इसका श्रेय निम्नान्ह द्विवेदीजीका ही ह । उहान इन क्षेत्रमें प्राचीन कायदा नया मूल्यांकन करख और विभिन्न वाक्यधाराअति उद्भव और विकासके सम्बन्धमें प्रचलित भ्रान्तियाका निराकरण करके— नयी दिशाआकी आर निर्देश किया । यह इतनी बनी दन ह जा मध्यकाला भक्ति-साहित्यको विवचना एव खोजन गितिकपर धुवनारका भाति प्रकाशित तथा अपने स्थानपर अटल है ।

यह साहित्य जा बहुत समयतर अनास रहा, जिसका एक बडा अंग शोधका या अर्थ विनाशक तरवारो पटमें समा गया अथ अग तत्तद् सम्प्रदायानुयायी

अविद्याग्रस्त मनुष्य या उत्तराधिकारियों-द्वारा अतः प्रेरणा रहित भावस अच्छत जल, पुष्प-नवद्य-द्वारा केवल पूजित होता रहा और जिसम निहित पानके प्रयोगको नाना प्रकारकी भ्रातियोंने जानने आच्छत कर लिया उम अपने पारदर्शी दृष्टि-द्वारा राज निवाल्ना तथा अध्ययन विवेचनके कष्टसाध्य कायको सम्पन्न करना अपने-आपमें बहुत बड़ा कार्य है। इस क्षेत्रमें द्विवेदीजीन अकेले ही इतना काम किया ह जितना कदाचित् विद्वानाका एक बड़ा समूह भी मिलकर न कर पाता। दूसरी कठिनाई यह थी कि जो कवि सभी प्रकारकी रूढियाँ वधनको क्षटकर फेंक देनेके लिए कटिबद्ध थे उनकी निवध वागियाका दशन या कायशास्त्रके मिद्वान्त विनोपके साचेम बैठानेका प्रयास बहुत दिनाम हाता आया था। यह प्रयास ही अपने-आपमें बड़ा उपहासास्पद सिद्ध हो गया। अतः द्विवेदीजीको दूसरा महत्त्वपूर्ण काम जो करना पड़ा वह था उक्त साहित्यको समग्र दृष्टिसे विवचित करनेके उचित यातावरणका सजन, जिसे उहाने बड़ी योग्यतासे सम्पन्न किया। इन कायके लिए उहाने साहित्य-जगतमें अपने अनेक निवधाको प्रकाशित कराया परन्तु उनके 'कन्नोर'न मवाधिक प्रमिद्धि प्राप्त की।

भक्तिकान्यका अधिकांश ऐसे कवियाकी कृति ह जो जमना अभिजात नहीं थे उन विद्वान् क्षेत्रम एकाधिकार सम्पन्न कुलीनवग कृति और कृतिकार दोनों का प्रभय न द सका। यदि कभी कुछ कहा भी गया तो अनिश्चय श्रद्धाभिभूत हाकर या उण्या भावसे परन्तु ये दाना बातें स्वस्थ दृष्टिकी सूचक नहीं ह बयाकि दानाम एकागिताका दाप बतमान ह। जाति-पाँतके कृत्रिम विभाजनको सतत क्विमान कभी भी स्वीकार नहीं किया। भक्ताकी, हरिजनाकी एक ही जाति हाती ह—जाति पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को नजे सो हरि का होई।' कन्नोरने जा जाति पूछनेवालोंको ललकारत हुए कहा था—

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए म्यान।

मात करो तलवार की, पड़ी रहन दा म्यान ॥

भक्त भक्ति भगवन्त, गुह चतुरनाम वपु एक कन्कर भक्त कवि नाभादासजीन भी हरि और हरिके जनाका सजातीयताका ही समथन किया ह। मानरताप्रादा दृष्टिवाणका पोषण करनवाले द्विवेदीजी भी साहित्यको समष्टिगत मानव जीवनका प्रतिबिम्ब मानत ह। उनका विराट मानव एव समग्र इकाई ह जा किमी भी वग वण, धम, सम्प्रदाय और राष्ट्रक मानवहूत सामाज्यसे विभक्त नहीं ह। साहित्य भी वही साधन ह जा मानव जीवनम प्रेम, भक्ति और सौन्दर्यका सृजन करता ह, आपसमें भेद-वृद्धि उत्पन्न करनेवाला साहित्य सत्साहित्य नहीं हो सकता।

इतिहास-दर्शन

हिंदीका काइ भी भक्त कवि, चाहू वह जिस धाराम सम्बद्ध हा, या ता भक्त ह या कवि दार्शनिक काई नहीं ह। महातर कि तुलसीदास, नदनास और सुंदरदासकी जो दार्शनिक ज्ञानके क्षेत्रमें अपेक्षाकृत पर्याप्त प्रसुद्ध थे, कृतियोंरा भा विश्लेषण किसी विशिष्ट दानक सिद्धान्तके आधारपर नहीं किया जा सकता। कविताका क्षेत्र हृदय-भक्ष ह और दशनका बुद्धि-क्षेत्र। दोनारा एक दूसरक क्षेत्रमें अनधिकार प्रवण अधिक दूर तक नहीं हा सकता। पूर्ववर्ती ममाशवाने दार्शनिक मूल्याक आधारपर कबीरादि भक्त कवियाकी कृतियाका विवचन करनका व्यथ प्रयास किया था और अपने विनोप सांचम उन्हें क्रिड न हात दस उपभास जा मनमें आया वह दिया था। द्विवदीजीने इस प्रवृत्तिका प्रपत्तिनापन मुक्त मानकर राय दी ह कि उनकी कृतियाम यदि कोई विरोप दार्शनिक सिद्धान्त मिल रहा हा सा उसका एक सीमा तक ही पानेका अपभा रपना चाहिए, कयाकि इन कवियाको दार्शनिक कहलानकी साध नहीं थी।

सात कवियाक जानि-भात विराधी उद्गारास इसलाभा जाशका गद्य पाकर उन्हें धृति-सम्मत हरि नन्दिन्यथका विराधी, समाज भजक तथा धर्मापन्नाककि मिथ्या दम्भस युक्त माना गया था। कुछ विद्वान उनकी इस प्रवृत्तिका मुसल मानी धम प्रचारका हथकण्डा भी बताया था। द्विवदीजीन हा मायताओका घडे डोरदार तर्कीं साध खण्डन किया ह। उहान अनक प्रमाणक आधारपर सिद्ध किया ह कि उक्त प्रवृत्ति बौद्ध सिद्ध-साहित्य और नाय-साहित्यमें पटलस ही बनमात थी। महजयान और नायपयक अधिकाग साधक समानधिन नीक जानियाम उत्पन्न हुए थे अन इस अंतरण नाक बनानवाला प्रयास उहान दार्शनिक तटस्थताके साध कभी नहीं दगा। यहीतक कि उच्चजमा विचारका तर्कने इस व्यवस्थाके प्रति रोप व्यक्त किया ह। अश्यथाप, सरटपा मत्स्य गारण काणरीपाव और शौरमीनाथ इमक उदाहरण ह। यहीतर कि 'जाति' दमे जारित इस दाम जो काई महामाघत आया ह, उा मह प्रया पटकी ह।

भक्त कवियाका युगधारा और उनके सामाजिक तथा मानिक परिवेयका दष्टिम न रसनक कारण भा अनक प्रचारका भातियी अस्तित्वम आयी। कई समय आलाचचान भक्ति-साहित्यका एक हतप पराजित जातिरा सम्पत्ति और एक निरन्तर पतनगोत्र जातिरी कितानाका मूल प्रतीक मान लिया था। दर एक एमी मात्र था जा समीपाक सन्तुलनी राइ हा समझा किये द रहो था।

द्विवेणीजीने सर्वाधिक जारण प्रहार इतीपर किया। उन्होंने स्पष्ट गदोंमें घोषित किया ' मैं उन दानों वाताका प्रतिवाद करता हूँ और अगर ये बातें मान भी नी जायें ता यह कहनेका साहस करना हूँ कि फिर इस साहित्यका अध्ययन करना नितान्त आवश्यक ह क्योंकि दस सौ वर्षों तक कर्णा कुचते हुए मनुष्याकी बात भी मानवताका प्रगतिके अनुमानातके लिए केवल उपपयोग ही नहीं बल्कि नातन्व्य वस्तु ह।' वे सबप्रथम विद्वान ह जिसेने इन युगके साहित्यको व्यापक धार्मिक और मुत्तय ऐतिहासिक पष्ठभूमिमें पर्यनेका प्रयास किया। वे इस विश्वासको स्थापूवक मानकर चले थे कि मध्यकालकी प्रयेक प्रवृत्तिना वीचारापण किसी-न किसी प्रकार पूषदनों कालमें ही हो चुका था। "वित्रमकी छटीं गतातीके बात्से जो तात्रिक प्रभाव भारतीय सन्धताके उपर पना वत् परदनोंकालक सन्ता या निगा भनाकी साधनाके रूपमें प्रकट हुआ," यह उनका निष्प था।

भक्ति-कायमें प्राप्त हातवागी पारिभाषिक पणावली, काय्य श्रिया, राग-रागिनियां अभिनयक्ति पद्धतिया, छंद और काव्यदय आदि अनेक ऐसी बातें ह जिनक उस और विकासकी कती बौद्ध साहित्यसे मूल साहित्य तक शृखला बद्ध रूपम मिगाकर उन्हें एक ही प्रगाका अग, सिद्ध कर देनेमें द्विवेणीजीको अमृत सफलता मिली ह। वस्तुतः उस लयकी पूर्तिमें उनका धत्तिक, पौराणिक, बौद्ध, जन पाचराज-वर्णव, पाणुपत, वैव कापात्तिक, नायसिद्ध आदि धर्म साधनाआक सभी पणामे अवगन होना तथा सम्मृत प्राहुन, पात्रि, अपध्ना अवष्टृ तथा नय्य भारताय आर्यभाषाआमें-स एकात्रिकका पान बहुत हद तक सहायक हुआ।^३ द्विवेणीजीक समन्त विवेचनात्मक साहित्यमें उनका गवपक रूप समीपकके रूपसे अधिक भाम्बर शिवाई देता है। अपनी वस्तुमुत्था शास्त्रान्नाके कारण वे आगेच्यके प्रयेक तत्त्वक मूलकी खोजमें बगवर प्रवत्त शिवाई देने हैं। इस प्रगा उननी ममोता उनकी गवेषणाका अनुमान-सी करता शिवाई देती ह।

समोणारे क्षेत्रमें बहुत-स एम लाग भी ह जिन्हें प्राचान या मध्यकालीन साहित्यके प्रति महज हा अरवि हैं। एके मूयमें सम्भवतः उनका अभिनयनि

१ हि नी साहित्यनी भूमिका, पृ० १।

२ मध्यकालीन धम साधना, पृ० १५।

३ आचार्य इजारीसहाद द्विवेणी व्यक्तित्व और इतिहासे संबंधित डॉ० रिच प्रगासिद्धा लेख, पृ० ११६।

और भाषाकी आधुनिक दक्षिमे विलुप्तता ही कारणस्वरूप हो सकती है । प्रत्येक प्राचीनको हेय और नवीनको प्रशंसनीय या प्राचीनको अच्छा तथा नवीनको निन्दनीय माननकी प्रवृत्तिको भी स्वस्थ दृष्टिकोणका धोतक नहीं माना गया है । आजकी स्तर विज्ञानवादी एवं बुद्धिवादी दृष्टिको आलोचना करने हुए द्विवेदी जीका यह कथन मनीय है—

क्या अतीतको एकदम अस्वीकार करके भविष्यका हृत्पहारो भवन निर्मित हो सकता है ? क्या सन्तो और भक्ताके पुराने साहित्यमें जो कुछ उपलब्ध होता है वह मृत विचाराका भूत है या उसमें भी ऐसे प्राणवान तत्त्व हैं जो इन युगके विचाराघात जजर मानवको कुछ आशाका सदेश दे सकते हैं । मैं यहाँ यह नहीं कहता कि आप उनकी सारी बातें स्वीकार कर लें या यह कि आजके समूचे प्रयत्नको व्यय समझकर उसी रास्ते चलने लें पर मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि उस समूचे चिन्तनको एकदम भुला न लिया जाय । उसमें भी सत्य है, उसमें भी प्रकाश देनेकी क्षमता है ।^१

द्विवेदीजीका सर्वाधिक प्रिय विषय मध्यकालीन साहित्य ही है, जो दूसरा को अस्पष्ट या निलुप्त लगा है । इसका मुख्य कारण सम्भवत यह है कि भारत वर्षका यह सुसुप्त मध्ययुग, जिसके गर्भमें हमारा आधुनिक युग उत्पन्न हुआ है, अनेक दृष्टियोंमें उन्हें बहुत महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुआ है । इसका उदा। भाग्यीय जन-जीवनका जीवन्त प्रतिबिम्ब माना है ।^२ स्पष्ट है कि उनके विचारमें साहित्य जन-जीवनमें अलग कुछ भी नहीं है । वे साहित्यको केवल कल्पना विगम-मात्र न मानकर मनुष्यकी दृष्टिमें दायनक पश्यपाती है । जो बाग्याल मनुष्यको दुःखिता, हीनता और परमुखापन्निताम वचा न सके जो उसके हृत्पेशा परदुःखित और सबन्त-हीन न बना सके उस साहित्य कहनेमें उन्हें सहायता अनुभव होता है ।^३ उनकी इस मान्यतावादी कर्मागोपर भक्ति साहित्य पूर्ण तरह सरा उनका है अतः उन्हें प्रिय भी यही हुआ है । उनकी यह मान्यता विपक्ष शक्ति समाज के वागित्तिकी वीकरणको जिस आज माय विना गया है, प्रथम न दखर अध्याय या विगुद्ध मान्यता पकड़कर चलती है ।

सत्य कविया मूर्तिमा तथा कुछ अन्य भक्त कवियाका रचनाश्रम निहित

^१ सङ्गमाध्याय ५० ६ १० ।

^२ 'इस देशकी राजाको, उसके विरासोका, धर्म-परिवर्तने कारणोंकी समझकी सामग्री इस कालके साहित्यमें प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होती है । इसे समझ विना भारतवर्षकी हीन टिकाये नहीं समझ सकते ।'—कल्पलता ५० १६७ ।

^३ अर ६५ ५५, ५६ १०१ ।

भावपत्र एवं अभिनयकर्ममें इस्लामी या ईसाई तत्त्वोंकी भी बड़ी तत्परतासे खोज-खीन हुई है। वग-व्यसत्या, मूर्तिपूजा आदिक अक्वत्पनर साथ किये गये विरोध और तान विरुद्ध मन्व-मी निवन्तारमें च्चगमा जोग या साधना-मद्धतिके अनुगमनकी बातको द्विवेदीजीने स्वाकार नहीं किया है। सत्र कवियाको ता वान ही करा सूफी कवियाकी प्रवच-मद्धति (जिसे ममनवी पद्धति कहा गया है) तथा छत्र, भाषा आदिका भी उहान पूणत भागनीय परम्परामें माना है।

“ ऐसा करके म च्चगमके महत्त्वका भूत्र नहीं रहा हूँ लेकिन जोग दकर वन्ता चाहता हूँ कि अगर च्चगम नहीं आया होता ता भी इम साहित्यका वारह आना वैसा ही हाता जसा आन है।” उनके मतानुसार क्या ता स्पष्टन लोकप्रवर्तित्त क्याअसि ली गयो है दाहि-चीपार्तवाली पद्धति सन्नायानी और जन-साहित्यम पद्धत ही बतमान था और भाषा अवधी ह थी। सत्र कवि ता प्रपेक श्लिम उतने हा भागनीय है जितने मूर आर तुल्सा आदि ता मन्त है।^१ आन्वाराको भक्ति-भावनाक स्वप्नमें, जा आग च्चकर समन्त भागनका भक्ति-धारामें परिणत हुआ, लॉ० प्रियमन प्रनति छुट विद्वानाका सन्नायनकी स्पष्ट धक्क मिली। द्विवेदीजीने त्त सभी मताना जिनम विन्गी पद्धतिक जागमका बात कही गयो है सणन किया है।^२ और यदि यह मान भी लिया जाये कि उक्त परम्पराक साहित्यमें कुछ विदगा या अनाध्यात्मिक तत्त्वका भा प्रवग हा गया है ता भी वाई अतर नहीं पडता। इमाग घम और मार्तय मन्वस मार-ग्रहा र्ता है। इस सम्प्रारमें द्विवेदीजीका यह कपन भी उनके श्लिकाणको स्पष्ट कर दता है—‘ हम व्रधर इम च्चगमने न पत्र जायें कि वाइ वन्नु कर्तक भारतीय या अगारतीय आध्यात्मिक या अनाध्यात्मिक है। चीत्र जार अच्छी है ता वत्र भारताय हा या न है, आध्यात्मिक हा या न हा, ग्राह्य है।’^३

आचार्य गुत्र प्रनति पूववर्ती आगवकान बोद्ध, जन थोर नाथ साहित्यका ‘अनाहित्यिक और साम्प्रत्यिक शिगा भाव मानक’ दिगुद्ध साहित्य-नेयस धक्का दकर दाह्य निवात्र दनकी राम दी या परन्तु द्विवेदीजीन उक्त साहित्यका न वेवत्र नामाचित्त और साम्प्रतिक श्लिम महत्त्वपण वनाया वक्ति गुट साहित्य-

१ यदि छत्र आन्ति जिगुग मन्वका कवि-श्ल बाहरा नररेखार विचार किया जाये तो म त्तुस दाग कि वा मन्पूरत भारताय है और दीह धक्के श्लिम मिगे और नावनी दगिथोके परान्ति उग्रता मीधा मन्व है। —दि नी साहित्यका भूमिका पृ० २०।

२ वहा पृ० ३०।

३ विचार और श्लिक, पृ० १६२।

के क्षेत्रमें प्रतिष्ठित भी किया। गुल्जरी धम या भक्तिको व्यक्तिगत साधना तथा लोचनधमका विरोधी मानत हैं। व श्रुति-सम्मत ज्ञान, कर्म और भक्तिके समन्वित रूपकी साधनाके प्रयासर हैं परन्तु द्विवेदीजीकी दृष्टिमें वह व्यक्तिगत साधना और वह व्यक्ति महान् ह जा निजी स्वार्थों और सम्भारमें उपर उठकर आराध्यके समक्ष अपना मजस्ब समर्पित कर देता ह। डॉ० गिब्रप्रसाद मिह्रके शब्दोंमें - दत्तित ज्ञानाको तरह निचाकर अपने आराध्यके श्रृणोंमें समर्पित करनेवाले प्रत्येक भक्त-व्यक्तिको उलाने समझा और मराना ह।'

मध्यकालीन भक्ति साहित्यके अनुगोलन और उसमें निहित तत्त्वके सम्यक विवेचनके लिए मुख्यत तीन आवश्यकताओंकी पूर्ति आवश्यक थी—१ प्रकाशित तथा अप्रकाशित उपलब्ध साहित्यमें दूबनेकी लगन, २ विवेच्यकालीन सामाजिक धार्मिक तथा मानसिक परिस्थितियोंका आस्थापन यथाय ज्ञान ३ देशके पारम्परिक अध्यात्म विद्वानके परिवर्णोंमें व्यष्टि श्रुति तथा विचारोंके परीक्षणकी क्षमता। स्पष्ट ह कि एकमात्र द्विवेदीजी ही इन सभी श्राष्टित आवश्यकताओंको एक साथ पूरा कर सके। उनके व्यक्तित्वकी श्रृणोंमें गाय विवेचन और दत्तित श्रृणों—इन तीनों धाराओंका अद्भुत मगम ह। शान्तिनिकेतनके मध्य ज्ञान मन्दिरमें मन्महापाध्याय हरप्रसाद गान्धी, आचार्य गिनिमाहन सन तथा गुम्देव खानाथ टगारके सतत मानसिक एव माण्डालमें श्रृणोंकी उशरोक तीनों व्यक्तियोंका क्रमशः विकास होता गया। भगवता सरस्वतीको कुरीरकी भेंट चलाकर उलाने अपनी आगमनासी वास्तविकताको प्रमाणित किया। शान्ति के मारस्वन मन्मार एव परिवारके कौलायके परिवर्णित दिशा विनय-मगमत द्विवेदीजीका पाण्डित्य अपन-श्रापमें अद्वितीय हो उठा ह।

भक्ति-शास्त्रिका एक दशमाग ही अभीतक प्रकाशित हा पाया ह जिनमें कुछक प्रमुख कवियाता छोडकर गेपनी रचनाएँ केवल भक्ति-भावमें प्ररित होकर ही प्रकाशित की गयी हैं जिनके सम्पान सकल आत्मिमें वैनातिन श्रृणोंका सदथा अभाव है। इस साहित्यमें भक्ति शान्ति और वैराग्यकी प्रधानता होनेके कारण ललित काव्य-मुल्लम श्यामकनारा स्पष्ट अभाव हाता ह। जिसके फलस्वरूप रमावपी पाठक नाक भी मिसाने हुए उगमें अनरूब ही निकल आने हैं। जिन मठों या मन्दिरोंके स्वामियोंके मणों उनके तथा शतर सम्प्रदायके मन्वद्व वानियाँ पनी हुई हैं उन्हें प्रकाशमें लाने या विज्ञानाका उनकी ओर आकर्षित करनेकी श्रृणोंमें उनके द्वारा प्राय काइ तपसना नहीं

दिलाया गयी। इसके लिए साधनोक्त कमी नहीं थी, कमा थी इच्छा शक्तिकी। जो कवि अधकारके गहन आवरणका भेदकर प्रकाशका दशन कर सके वे अपने काव्यगत वशिष्ठ एव अभिपक्ति-नालित्यके कारण ही, उसमें उनके सम्प्रदाया नुमायियाका योगदान नगण्य ही रहा है। अपनी अयक गोध-वृत्तिके कारण द्विवेदीजीने इस क्षेत्रमें भी आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। साहित्यावेपणमें सलग्न विचारक यह भली भाँति जानते हैं कि यदि किसी प्रकार हस्तलिखित चानिया प्राप्त भी हो जायें तो लिपिकी अस्पष्टता अथवा मात्रा और पृष्ठानि मुद्रित, अव्यवस्थित और भाव भाषाम अव्यक्त वृत्तियाका मनन विवेचन तथा उनके सम्बन्धमें विविध तथ्याका उदघाटन कितना कठिन काय है। जय प्रकाशिन साहित्यके सम्बन्धमें ही अनेक भ्रातियाके लिए स्थान हो सकता है तो विशाल अप्रकाशित असाका कहना ही क्या ?

आचार्य शुक्लजी तथा उनके अनुगामी समीक्षकाने कबीर जीर उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित सत्ताकी भाषाकी सधुक्कड़ी व्यक्तित्वकी पवीरा, काव्यकी अकाय, भक्तिका ज्ञान सहजसाधनाका हठयोग छन्दको लय-ताल-नुक मात्रादि दायोमें युक्त साहित्यिकरूपकी समाज सुधारक तथा उपदेशक रूपको गृहिभजक आदि कहकर ऐसा तिरस्कृत किया कि सत्त-साहित्य ही नहीं बल्कि उसके साथ सगुण साहित्यका भी एक बड़ा अक्ष उपभित सा हो गया। ग्रास्त्रानुमोदित कसौटियापर खरे न उतरनेके कारण ये कवि तुक्कड़ और फक्कड़ मात्र रह गये। इन स्थितिमें द्विवेदीजीको ग्रास्त्रानामे समर्पित स्वच्छदतावादी समीक्षा दृष्टिने मक्था मौल्य माग प्रशस्त किया। उन्होंने भक्त-कवियाकी अनलकृत सहज भाषा, सहज साधना और व्यक्तित्वकी सहजताका भूरि भूरि प्रशंसा की तथा उसे ही साधना और भाषाके क्षेत्रकी श्रेष्ठताका मानदण्ड बताया। उनके कथनानुसार 'जिन लोगोंने गहन साधना करनेके लिए अपना सहज नहीं बना लिया है वे सहज भाषा नही पा सकते। व्याकरण और भाषाशास्त्रके चरपर यह भाषा नहीं बनायी जा सकती काशामें प्रयुक्त शब्दोंके अनुपातपर इस पडा नही जा सकता। कबीरानाम और तुलसीरामका यह भाषा मिली थी। महात्मा गांधीकी भी यह भाषा मिली क्याकि वे सहज हो सके। अगर दन लयक वस्तु है तो भाषा स्वयं सहज हो जायेगी।'¹

अलोक्य साहित्यको उन्होंने कवन्द हिता साहित्यका समीपामें ही न लेकर उस समस्त भारतीय वाग्मयकी विवागात्मक कडीके रूपमें देखा है। यही

१. अशोकके फूल, पृ० १७६।

कारण है कि उन्होंने रचित साहित्यका एक व्यापक परिभाषा अन्तर्गत ग्रहण किया है जबकि आचार्य गुनन प्रभृति समीक्षकाने विगुण साहित्यको धर्मोपदेश या योगशास्त्र गिनाये सबथा अग्न समझा है। इस सम्बन्धमें द्विवेदीजीका उनसे स्पष्ट मतभेद है। अपनी इसी विशिष्ट मायतासे प्रेरित होकर उन्होंने हिन्दी के उद्भवकालके समय ह्यातामून परन्तु लावण्या समन्वित बोद्ध धर्म विषयतः सहजयानक साहित्यकी सराहना की है। वहाँ उन्हें भाषा व्यक्तित्व और अभि व्यक्तिकी सहजताके साथ लोगमगलकारी साधकारी एक बन्धी जाता मित्र जाती है। उनके विचारसे मध्यकालीन भक्ति साहित्यको समयनक लिए परवर्ती शक्ति जन, बोद्ध शैव, और कणन साधनाके वाम शक्ति मार्गना परिचय अत्यन्त लाभप्रद है। बिना ऐसा नये आलाच्यकालमें दृष्टिगोचर होनेवाले ग्राह्य और अग्राह्यन मताभ तीव्र गतिसे हुए विगणकारी प्रवृत्तियाका ठाक ढग से विवचन सम्भव नहीं है। 'मध्यकालीन धर्म-साधना'में संकलित एतद्विषयक अपने बीस निबंधोंमें उन्होंने इस तथ्यका भला भाँति समयन किया है।

भक्ति-साधनाके निगुण कायधारान अन्तर्गत पानमार्गी या पानाश्रयी कह जानेवाले विभाजनका भी द्विवेदीजीने स्वीकार नहीं किया है। उनसे मतानुसार वे कवि प्रेममार्गी अधिक हैं पानमार्गी कम। इसी प्रकार उन्हें 'गणेश्वरवाणी,' 'अनीश्वरवाणी' या 'अतवादी कहना भी उचित दष्टिसे मुक्ति-संगत नहीं है, क्योंकि वे इनमेंसे एक भा नहीं थे। अतः द्विवेदीजीने साधना मूलक प्रवृत्तियोंको ध्यानमें रखत हुए बस दो मार्गोंका ही नामनिर्देश किया है—१ यागमूलक साधनाएँ, २ भक्तिमूलक साधनाएँ। प्रथम विभाजनकी पृष्ठभूमिकी समझानके लिए उन्होंने हिन्दी साहित्यकी भूमिका के अन्तर्गत बाद्ध धर्मसे लेकर सततत तकका विकासत्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस सन्दर्भ में शंकर और कुमारिल-द्वारा बोद्ध धर्मका उन्मूलन करवाकी निशामें किए गये प्रयासों और जाड़ू टोटका तथा ही सीमित महायानकी अन्तिम परिणतिका बड़ा ही अवयवपरक परिचय उन्होंने दिया है। इसी प्रकार बज्रयान तथा सहजयान का हिन्दूमतमें घुलना, नाथपंथका आविर्भाव तथा विवास और सन्त मतोंमें इन दोनों परम्पराका सम्मेलन 'नाथ सम्प्रदाय' द्वारा उन्होंने भला भाँति पकाश डाला है। यागमूलक साधनाओंकी आचार विचार सम्बन्धी मायताओंको स्पष्ट करनेके लिए उन्होंने सत्रमत्त कुण्डलिनी शक्ति, पटचक्र इत्यादि पिगला-मुपुम्ना नाद विन्दु स्फोट, पटकम, महजयमाधि, उन्मुनिग्रहना, पाग्वपन, मन प्राण भूतादि पञ्चतत्त्व पिण्ड-ब्रह्माण्ड, शिव शक्ति सामरस्य, जनम, सुद्धमयद, गदसाधना, शक्ति बीज मन्त्र, सुरति निरति, यत्र मन्त्र-सत्र, हृदयाग योगान, सम्प्रदाय

अमप्रज्ञात समाधि, आमन-मुद्रा-बन्ध, प्रत्याहार प्राणायाम, अजपागयत्री नाडा-गुडि, छट्ट प्रवारका समाधियोग, लय याग, शान्ति ब्रह्म और सुरति याग आदि विविध ज्ञानापक्षी एव गुरु साधनात्मक आचाराका समन्वयाना द्विविधागीका आनन्द्यक प्रतीत हुआ है। उद्दान करीर, 'नाथ सम्प्रदाय, हिन्दी साहित्यकी भूमिका', 'मध्यकालीन धर्मसाधना' और 'सहज साधना' नामक ग्रन्था द्वारा एन जटिल विगद्यापर विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डालकर बौद्ध, नाथ और मान परम्पराके साहित्यमें बेसुधा साधन मुलम कर दिया है।

रागात्मिका भक्ति-परम्पराआको समन्वयके लिए भी उन्होंने कम प्रयत्न नहीं किया है। उन्होंने अपने विभिन्न ग्रन्थाम इस पद्धतिय सम्बद्ध द्विपयो यथा— अवतारवाद', गोपिया और श्री राधा', लीला और भक्ति लीलाका रस्य', 'राधाका स्वरूप 'गौत गोविन्दकी विरहिणी राधा', विद्यापतिकी विरहिणी राधा, चण्डीदानकी विरहिणी राधा' सुन्दरदासका राधा, वष्णव कविपानी रूपोपागना 'रामानुगा एव वधी भक्ति, निरिगोप-सत्रिगोप भगवद्रूप' 'नवधाभक्ति', 'उज्ज्वलरत्न', कृष्ण भक्ता और रामभक्ताका विविध दक्षिण प्रभृति गार्पक निग्रन्थाम बडी ही स्पष्टताम प्रकाश जला है। इस प्रकार याग ज्ञान और भक्तिमार्गके ग्राह्यस अपने पाठकको अवगत कराकर भक्ति-साहित्यके अध्ययनका काम सरल बना दिया है।

आगेच्य साहित्यके अनुसन्धान, प्रकाश अध्ययन मूल्यांकन और पाठ सन्साधन आदिके क्षेत्रमें द्विविधाजाका स्थान वही है जा महाभारतकालमें द्राणाचाय और भोष्पपितामहका था। अभी उनम और भा अरिक् पातकी आगा है अत जिनासु वग अपने स्वार्थका पूर्तिक लिए यदि उतकी दाचायुकी कामना कर तो इसे उचित हा मानना चाहिए।

४

3202

ईसा हत्यके मनुष्यकी दृष्टि दखनेका पक्षपाती है। जो वाग्जान मनुष्यकी दुर्गति हीनता और परधुरापक्षिताम बचा न कर जो उसका आत्मका रक्षादीक न बना सके जा उसके हत्यका परदुस्वरावर और संबेदनशील न बना सके उन साहित्य कहनेमें मुक्त सजाच होता है।

—अशोकके फूज

साहित्यके इतिहासकी सांस्कृतिक व्याख्या

• •

रघुवध

१९वीं शताब्दीके यूरोपमें आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टिपर बहुत बल दिया जाने लगा था। इसके पहले यूरोपमें इतिहास अज्ञानकी समृद्ध परम्परा थी और उसके बारेमें अनेक धारणाएँ और सिद्धान्त विवक्षित किये जा चुके थे। इतिहास चिन्तनके क्षेत्रमें बहुत-कुछ ऊँचापाह किया गया था। परन्तु अभीतक इतिहासका अध्ययन अतीतकी घटनाआका ज्ञान, उनका क्रमको पहचानने काय-कारणकी श्रृंगलाको मोजनेके लिए किया जाता था। अधिकसे अधिक उसके अध्ययनका उपयोग अतीतका काय-कारणके आधारपर अपन लिए कुछ परिणाम निकालने, घटना-क्रमका बढ़ानेवालाकी गलतियाँसे बचने, उसकी असंगतियों, विरोधाभासों और अतिशयोक्तियों परखन और बचनेके लिए माना गया था। यह अलग बात है कि इतिहास क्रम एक ही प्रकारकी गलतियाँ, असंगतियाँ, अनसंगतता और परिणामोंको देखकर कहा जाता रहा है कि इतिहास अपने आपको घुहराता है।

वस्तुतः इस नाम इतिहासके क्रमको ऊँचस्वित प्रवाहके रूपमें देखा गया, और उस समय राष्ट्र समाज और मानवताके नये निभागकी जो कल्पनाएँ और विचारधाराएँ सक्रिय हो रही थीं उन्होंने इस शक्ति पहचान की। इतिहास की दृष्टि का यह उपयोग नया था और राजनीति, समाज रचना आर्थिक-व्यवस्था धार्मिक-व्यवस्थाके लिए अनेक क्षेत्रोंमें किया गया यहाँतक कि अध्ययन मनन और चिन्तनके सभी क्षेत्रोंपर इसका गहरा मघाल देखा जा सकता है। परिणाम स्वरूप समस्त मानवशास्त्र और नातिक विज्ञानका भाग ज्ञान-कार्य और ज्ञान समूहके रूपमें न मानकर धारावाहिक परम्परा और ऐतिहासिक क्रममें अपने-आपके प्रयत्न किया गया। इस ऐतिहासिक दृष्टिने उन्नीसवीं शताब्दीके मानवशास्त्रको विवक्षित तथा पुष्ट करनेमें जिस प्रकार मजबूत दिया है उसी प्रकार मानवशास्त्र विभिन्न दृष्टिमान अपने-अपने पक्ष पर ऐतिहासिक दृष्टि का उपयोग भी किया।

उन्नीसवीं शताब्दीके चिन्तनाने इतिहासका प्रवाहका एक बुद्धिमत् सादेश्य और साधक शक्तिके रूपमें निरूपित करनेका चयन किया। इतिहासका वस्तुपरक

उत्पत्त्यताके साथ ग्रहण करनेकी प्रवृत्ति इनकी प्रायः नहीं रही। इतिहासकी क्रमिक साहचर्य व्याख्या करनेमें अथवा प्रयोजन खोजनेमें मानवीय दृष्टि प्रधान हो जाती है और यह उस युगकी व्यापक मानववाणी मानवाने अनुकूल नो था। ह्यूम और ब्रैंटले-जैमे विचारकोंमें कोई इतिहासकी बन्तुपरखनापर व्याख्या नहीं रखते, ह्यूम (एसे ऑन मिरकित्स) भौतिक प्रकृतिने नियमाका उल्लंघन करनेवाली अतीतकी घटनाओंका विस्वसयोग्य नहीं मानता और ब्रैंटले अतीतका उमौ सीमा तक विस्वसनीय स्वीकार करता है जिसे सीमा तक उमकी हमारे वर्तमान अनुभवोंमें अनुरूपता है।

इस शरीरमें मानव प्रकृतिकी धारणाहिकता, गार्वतता और सावभौमिकता को स्वीकार किया गया साथ ही कई प्रकारसे उमके विकास-क्रमको भी प्रतिपादन करनेकी चेष्टा की गयी। अतः इतिहासकी मूल विषयवस्तु मानवीय गतिविधि होनेके नाते ऐतिहासिक व्याख्याके पीछे भी अन्ततः मानवीय प्रकृतिके ही मापारण निदानताको माना गया। मानवीय प्रकृतिकी हमारी परिवर्तनना अनुभवपर आधारित है और अनुभव विस्वाङ्के साथ वह बदल भा सकती है। मानवीय व्यवहारमें तत्कालत तथा स्वाभाविक धारमें हम जा धारणा बनाते हैं हर प्रकारकी मानवीय व्याख्याओंपर उनका रंग और प्रभाव पड़ता है।

मानववाणी दृष्टिके साथ कई विचारकोंने इतिहासकी व्याख्या आचारमें नतिव और आध्यात्मिक विचारोंको स्वीकार किया है। यका यह परिणाम भी निकलता है कि ऐतिहासिक चिन्तन मात्र अन्तर्विन मनोभावोंमें सम्बद्ध है और इतिहासकी हर व्याख्या अनिवायत इतिहासकारके मनोभावमें प्रभावित होगी। इस प्रकार इस युगमें अतीतका अपनी भावनाओं, मन्वाकाशाया और आशाओंके अनुरूप दायनकी चेष्टा की गयी और इतिहासकी गति तथा शक्तिको किना निश्चिन मानवाय विधानके पूरा करनेके उद्देश्यमें विवचित किया गया। १९वीं शताब्दी पहल में इतिहासकी गति और उसमें प्रवाहमें प्रयोजन देखा गया था, पर उमका दृष्टिकोण इतिहासमें ईश्वरीय विधानका दायन था। सन्त अगस्तीनके 'ईश्वरके नगर (मिटी ऑन गा) में 'मो ग्वाइ मृष्टि मिद्धातका ऐतिहासिक प्रतिपादन है, वास्तव विव इतिहासपर अभिभाषण' (डिम्कोर्म ऑन मुनीवमल हिस्ट्री) में इधी मूलभावका आधार किया गया है और विधाने नया विचार (यू माइंग) में इसी दृष्टि इतिहासकी व्याख्या प्रारम्भ की गयी है। परन्तु १९वीं शताब्दीके विचारवान इतिहासकी व्याख्याका मुख्यतः मानवनिम्न किया यह उनका प्रमुख वाग है।

हजारोंप्रमाणोंके इतिहासकारोंमें धारणा इस मानववाणी दृष्टि

अत्यधिक प्रभावित रही है। यूरपके कुछ विचारकोंके मतोंके साथ इनकी चर्चा करनेमें यह स्पष्ट हो जायेगा। बाण्ट इतिहासकी बुद्धिगम्य योजनाके साथ अप्रसर स्वीकार करता है और यह भी स्वीकार करता है कि उसका लक्ष्य नतिक तर्कके द्वारा समर्थित भी है। सम्पूर्ण मानवताको उच्चतर स्थितिकी ओर बढ़ाने ही इतिहासकी साधकता है। प्रकृति या विधाता (बाण्टके लिए पर्याय जिस शब्द) व्यक्तिकी भलाईका उत्सर्ग करके भी एक लक्ष्मी विकास याजनाम सलग्न है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि १९वीं शतीमें डार्विनके विकासवादने भी काफी प्रभाव जमाया था। द्विवेदीजी प्रकृतिसे मनुष्य तकके क्रमका विकासकी दृष्टिसे स्वीकार करते हैं और साथ ही इस क्रमके सादृश्य हानमें भी उनका विश्वास है—“प्रकृति अपने प्रयोगमें कृपण कभी नहीं रही है। उसने बरबादीकी कभी परवाह नहीं की। दस वृथाके लिए वह दस लाख बीज बनानेमें कभी कानाही नहीं करती। यह क्या सब व्यर्थकी अघता है सुस्पष्ट याजनाका अभाव है या हिसाब न जाननेका दुष्परिणाम है? कौन बतायेगा कि किस महान उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए प्रकृतिने इतनी बरबादी नहीं की है?”

रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी यापक मानवतावाणी भावनाका द्विवेदीजीपर गहरा सघान रहा है क्वाकि उन्होंने गुप्तसे चिन्तनके क्षेत्रमें गहरी प्रेरणा प्राप्त की है। साथ ही समकालीन दृष्टिके कारण इनमें भौतिकवाणी, प्रत्ययवादी और नतिकतावादी सभी काटिके मानववादियोंके विचार प्रतिनिम्बित दखे जा सकते हैं पर यह सब उद्धान अपने चिन्तनके स्तरपर विकसित किया है। हडरने अपना पुस्तक 'मानवताके दार्शनिक इतिहासकी परिवर्तना' (आइडियाज फॉर ए फिलामफिकल हिस्ती ऑफ मनकाइण्ड) में ठेठ बौद्धिक हानके वजाय कल्पनागाल और भागगाल मनुष्यको अधिक याम्य इतिहासकार माना है अपनी सार्विक प्रतिभास अधिक उने अपनी सहजानुभूतिपर विश्वास राना चाहिए। हडरन स्वीकार किया है कि समस्त विश्व एक ही समायोजित करवाणी शक्ति अनुप्राणित है और ये सलग्न साठनकी शक्तियाँ आम शक्तिके उत्पन्ननक लिए कायशील हैं। इस प्रकार वह इन शक्तियाँकी ऐतिहासिक प्रक्रियाकी गोजक माय इतिहासक सामाज्य प्रयाजनकी स्वीकार करता है और उने एक नतिक धुमादके साथ मानवताके उत्कृष्टके रूपम प्रतिपादित करता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी मनुष्यकी जययात्राका धार-धार उद्घोष करत हुए शक्तिगके श्यो उद्देश्यकी स्वाकार करते हैं - मनुष्यकी जययात्रा! क्या मनुष्यका किमी आगत शत्रुको परास्त करनेक लिए अपना दुद्धर रय जोता है? मनुष्यकी जययात्रा! मुने यह वाक्य गनमव बन्ना बल दता है। जीवतत्व स्थिर अविशुद्ध भावने उचित

अवसरकी प्रतीकमें बड़ा था। अवसर पावर उमने समझ जड़ शक्तिके विरुद्ध विरोध करके मिर उठाया—नगण्य तथाकुरके रूपमें। सृष्टिके इतिहासमें यह एकदम अघटित घटना थी। अबतक महाकप (प्रेविटेशन पावर) के प्रिरान् वेगको रोकनेमें कोई समय नहीं हो सका था। जीवतत्त्व प्रथम अपनी उच्च गामिनी वृत्तिकी अदना ताकतके बलपर इस महाकर्षकी अस्वीकार कर सका। तबसे एक कौशले अनेक बाणोंके जटिल सघटनमें, कर्मद्वियोंसे पानेद्वियोंकी आर पानेद्वियमें मन और बुद्धिकी तरफ सद्बुचित होता हुआ मानवामाके रूपमें प्रकट हुआ।” द्विवेदीजीने इस प्रकार प्रकृतिके विकासमें प्रयोजन माना है मनुष्यके इतिहासके क्रमको जययात्राके रूपमें देगा है। इमने मानववादमें उनका अष्ट सिद्धांत ही प्रकट होता है।

इतिहास-सम्बन्धी धारणाओंपर उस युगके दार्शनिक चिन्तनका गहरा प्रभाव था। हीगलने ‘इतिहास-ज्ञानपर भाषण में विश्वकी रचना प्रक्रियाको तत्संगत और बुद्धिगम्य माना है, उसके लिए प्रकृति और आत्म-तत्त्व न केवल तार्किक प्रत्ययके अनुकरण है वरन् व उन्गीके विकास है। इतिहास-ज्ञान तत्त्ववादका ही अंग है। वस्तुतः उसके लिए इतिहास ज्ञानकी समस्या अनुभवके एक सास क्षेत्रमें तार्किक प्रक्रियाका योजना है। इतिहासके क्रममें तब काष्णील है और जो तबसंगत है वही सत्य है। ऐतिहासिक प्रक्रियामें काष्णील तबका प्रदग्गन उसके अवस्था द्वािकरण ही माना जायेगा। हीगलन समस्त सभारके इतिहासकी प्रक्रियाको एक तथा समान उद्देश्यकी ओर प्रेरित मानने हुए है राष्ट्रका विशिष्ट योग माना है। इस स्थितिमें प्रत्येक राष्ट्रकी अपनी प्रतिभा होती है और उसका अपना विशिष्ट मिष्ठान हाता है जो उसके घम, राजनीति, सस्थात्रा, आवरण संहिता, धार्यकी पद्धति, यहातिन कि कष्ण और विज्ञानमें भी प्रतिफलित होता है। हजारोप्रमाद द्विवेदाने ससृष्टिकी ध्याम्याम इतिहासकी इसी दष्टिकी स्वीकार किया है—“मनुष्य दिन दिन अपने महान लक्ष्यने नजदीक पहुँचता जायगा। सामाज्य मानव ससृष्टि ऐमा ही दुलभ लक्ष्य है। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक देश और जातिने अपनी ऐतिहासिक परम्पराओ और भौगोलिक परिस्थितियोंके अनुसार उस महान् लक्ष्यके किमी पल्लुका अवश्य साक्षात्कार किया है।” द्विवेदीजीकी विचारधारामें काष्णी दष्टि अनभुक्त है कि इतिहासके प्रयोजनकी मिष्ठ करने के लिए विधाता मानव प्रकृतिने बुर पगारा भी उपयोग कर लेता है और हीगलकी यह धारणा भी कि इतिहासकी महान योजनाकी तत्संगीलता मानवीय भाषावर्णकी महायतासे अपसर हाती है।

द्विवेदीजी इतिहासकी प्रक्रियामें व्यक्तिकी भूमिकाको बल-बुद्ध हीगलक

समान स्वीकार करते हैं। महापुरुष इतिहासक इस निश्चित क्रमकी गति देनेके लिए हैं, वे अपने व्यक्तिगत उत्कर्षके साथ (अनेक बार अपने महान पतनमें) इतिहासके प्रयोजनकी सिद्ध करते हैं। हीगलके अनुसार उनकी सामाजिक नतिक मानकपर नहीं परखना चाहिए, वरन उनपर विचार करते समय इस व्यापक म-दर्भके ध्यानमें रखना चाहिए। वस्तुतः मानववाल्की सामाजिक व्याख्याका स्वरूप यहीमें स्पष्ट होने लगता है द्विवेदीजीकी सामाजिक दृष्टिका आधार भी यह माना जा सकता है। इतिहासकी व्याख्याको इस रूपमें साध्यके आधारपर साधनका भी यथोचित मान लिया जाता है, यह अवश्य है कि यहाँ नतिक समथनको महत्त्व प्राप्त है। इतिहासकी तार्किकताको प्रदर्शित करनेके लिए घटनाओंकी केवल बौद्धिक व्याख्या पर्याप्त नहीं है वरन् उनके क्रममें नतिक समथन ही आवश्यक है। मूलतः द्विवेदीजी भी सच्ची नतिक इकाई अलग-अलग व्यक्तिका न मानकर सम्पूर्ण नतिक संघटनको स्वीकार करते हैं। इस प्रकार व्यक्तिकी नतिक चेतनाके स्थानपर समस्त समाजका भलाईकी भावनापर आधारित नतिक चेतनाका महत्त्व दिया गया।

स्वाधीनताकी भावनाकी दृष्टिस भी द्विवेदीजी हीगलके समीप पड़ते हैं। सामाजिक नतिकताके साथ वे स्वाधीनताको स्वीकार करते हैं। इतिहासका लक्ष्य इसी स्वाधीनताकी क्रमग उपाजित करते जाना है। स्वाधीनता अनि यत्रित जीवन नहीं है और प्राकृतिक अधिकारोंका सिद्धांत भी इस रूपमें सही नहीं है। व्यक्तिके उत्थान और विकासके साथ सामाजिक प्रगति और उन्नतिका भाव गहरे स्तरपर जुड़ा हुआ है। द्विवेदीजीकी इतिहास-सम्बन्धी दृष्टिका सम्यग्ध एक स्तरपर निश्चयवाच्यतासे भी है क्योंकि उन्होंने इनके समान सामाजिक गत्यात्मकता और अनुभवात्मक पद्धतिको स्वीकार किया है। द्विवेदीजीने इतिहासकी प्रक्रियाको समथनमें व्यापक मानवीय प्रकृतिको समथनकी चेष्टा की है, और राजनीति अधनीति समाजशास्त्र धर्मशास्त्र आदिक साथ इतिहासका परखनेकी चेष्टा की है। मानवकी समाजवादी दृष्टि और अद्यव्यवस्थाके प्रति आकर्षित होत हुए भा द्विवेदीजीने युगविशेषके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवनमें निरन्तर घण्टि होनवाली प्रक्रियाको स्वीकार किया है। और उसमें एक गहरा नतिक और व्यापक मानवीय प्रयोजन स्वीकार किया है, जो मानवका आर्थिक वस-संघर्षकी दृष्टात्मकतासे भिन्न है और प्राय हीगलके अधिक निकट है।

आगे इतिहासकी समथन प्रक्रियाको सांस्कृतिक सम्भ्रम रखकर देगते समय द्विवेदीजी अपनी व्यापक मानववादी सीमामें ही रहने हैं। वे दानिलस्वकी

स्पेंगलर, टवायनबी, साराकिन, बर्दिएफ ब्रोएवर पापर तथा ल्वज्वाय आदि इतिहासके दाशनिकाकी भाँति इतिहासकी प्रक्रियाकी मूलतः सांस्कृतिक मानते हैं। अपने विचारामें भिन्न होते हुए भी ये सभी विचारक इतिहासका अध्ययन सस्कृतियाँके जन्म, विकास, ह्रास, उत्थान और पतनके रूप स्वीकार करते हैं। इस स्तरपर द्विवेदीजी इतिहासकी गतिकी सस्कृतियाँके क्रमके माध्यमसे अप्रसर मानते हैं और पिछले मानववादी इतिहासके चित्तबोझि प्रेरित तथा प्रभावित होते हुए भी इन सस्कृतिवादियाँके विचारवादा यत्र-तत्र प्रतिफलित करते हैं। उनमें मानववादियाँकी अटूट आस्था है कि मानव इतिहास अतन मनुष्यका आगे बढ़ानमें सल्लभ है, पर साथ ही अनेक विचारवादियाँके नियतिवादका आभास भी उनमें विचारामें आ गया है। यद्यपि इनके नियतिवादमें भौतिक जड़ताके स्थानपर भाव तथा अनुभवमूलक गत्यात्मकता परिलम्बित होती है। सक्षय प्रयाजन और उद्देश्यके साथ आगे बढ़नी हुई मानवता सांस्कृतिक ऊँचाईपर चढ़ता जा रही है। इस प्रकार कमसे कम लक्ष्यकी निश्चित स्थिति द्विवेदीजी स्वीकार करते हैं।

वर्द्ध विचारक सस्कृतियाँकी उत्पत्ति, विकास, वृद्धि और नाशके क्रमका मानते हैं। दार्विन्सकी सस्कृतिवा जीवन-क्रम जीवधारियोंके शरीरके समान माना है विस्तृत विकास काटके बाद एक सक्षिप्त परिवर्तन आना है और उसके बाद सस्कृति विनष्ट हो जाती है। इस रेखात्मक विकास ह्रास क्रमके विपरीत स्पेंगलरने वृत्तात्मक विकास ह्रास क्रम स्वीकार किया है। स्पेंगलरने सस्कृतियाँके जीवन-समूहका मानव इतिहास माना है और यह स्पष्ट द्विवेदीजीमें भी परिलम्बित होती है। स्पेंगलरने मनुष्यके व्यक्ति और सामाजिक जीवनमें मान्य माना है और मानव विकासकी एक अदम्य अमीम प्रवाहके रूपमें देखा है—'जल राशिक अपार विस्तारपर अनन्त तरंगमालाएँ ब्रीडा करती है। इसपर जहाँ-तहाँ प्रकाशकी तीखी किरणें झलकती हैं और तरंगक शाश्वत नरयमें अस्पष्ट और अन्ध हो जाती है। इसी प्रकार जातियाँ, कब्रियाँ, पारियाँ, वगैरे समाज आदि प्रकट होते हैं और अधिक प्रभावके पदचान मानवताके प्रवाहमें विगन हो जान हैं।' द्विवेदीजीको मानव-सस्कृतिवा अदम्य तथा अमीम प्रवाह स्वीकार है लेकिन वे स्पेंगलरकी भाँति मानवप्रवाहके तलपट्ट महान सस्कृतियोंके तरंगवृत्ता के विलान हो जानका स्वीकार नहीं करते बरन टवायनबी तथा साराकिनके स्पष्टीकरणक अधिन निषट हैं। टवायनबी सस्कृतियाँका ह्रासकी स्थितिकी उनका विनाश नहीं मानता है, अपनी इस अवस्थामें ये सस्कृतियाँ अथ समसामयिक सस्कृतियाँ सम्पन्न स्थापित करती हैं और इस प्रकारके पारस्परिक सम्पर्कमें पुनर्जागरणकी प्रक्रिया चलता है।

टर्वायावा—दाना सस्कृतियोंके अनेक वृत्त स्वीकार करते ह, पर जब कि स्पेंगलर सस्कृतियोंकी अलग-अलग जीवन लीला मानता ह, ट्वायनबी ह्यासकी स्थितिसे सस्कृतियोंके पुनरुत्थानको स्वीकार करता है और इस स्तरपर वह सारोकिनके समान मानव-सस्कृतिको अखण्ड और अद्वैत सत्य मान लेता ह। मानव-सस्कृतिको अखिल अजस्र धारा युगसे सारे ससारके देशोंमें आप्लावित कर रही है, पर दस कात्के अनुसार उसके अनेक रूप देखे जाते हैं। यहाँ सस्कृतिको जिस 'यापक, सावदशिक और सावकालिक प्रवाहके रूपमें निरूपित किया गया ह, वह द्विवेदीजी द्वारा निर्धारित सामान्य मानव सस्कृति ह—“म सस्कृतिको किसी दश विधेप या जाति विशेषकी अपनी मौलिकता नहीं मानता। मेरे विचारसे सारे ससारके मनुष्योंकी एक ही सामान्य मानव सस्कृति हो सकती है। यह दूसरी बात है कि वह व्यापक सस्कृति अबतक सारे ससारमें अनुभूत और अगोचरत नहीं हो सकी ह।”

अतः द्विवेदीजीकी सास्कृतिक दृष्टि सामाजिक सभका विधेप महत्त्व है जिसे उठोने सामाजिक मानववाणीके रूपमें स्वीकार किया ह, और इस स्तरपर उनकी समता सारोकिनके इस सामाजिक-सास्कृतिक दृष्टिकोणसे की जा सकती ह—‘सस्कृति उन मूल्यों, आदर्शों और स्थापनायाका समूह ह जिसके अनुसार मनुष्य अपने जीवनकी रीति और शलीका निमाण करत ह। मनुष्य अपने जीवनमें जिन सध्याका सत्य शिव और सुन्दर मानते हैं उनसे सस्कृतिका स्वरूप निर्मित होता ह अतः यह एक मानसिक विनासको प्रक्रिया ह। चूँकि समाजमें रहकर ही मनुष्य इस विकासमें अग्रसर होता ह, अतः सस्कृति सामाजिकतामें धुल मिल जाती ह।’ द्विवेदीजीका यह कथन इसी बातको ध्वनित करना ह कि ‘मनुष्यकी श्रेष्ठ साधनाएँ ही सस्कृति हैं। इसकी अस्पष्टताका कारण यही है कि अज भी मनुष्य इसके सम्पूर्ण और व्यापक रूपको देख नहीं सका है। ससारके सभी महान तत्त्व इसी प्रकार मानव चरित्रमें अस्पष्ट रूपसे आभासित होते ह। उनका आभासित होना ही उनकी सत्ताका प्रमाण ह।’ आगे चलकर सस्कृतिके बारेमें द्विवेदीजीने व्यापक समन्वयगील दृष्टका प्रतिपादन विस्तारक साथ भारतीय सस्कृतिके विवचनमें किया ह। इसका स्वरूप सारोकिनके आत्म-समन्वय प्रधान सामाजिक-सास्कृतिक व्यवस्थामें परिष्कृत हाता ह।

ऊपरके समस्त विवचनसे स्पष्ट हो जाता ह कि हजारोंप्रसाद द्विवेदी इतिहासको मूलतः मानववाणी दृष्टिमें देखते हैं। वह विनाम क्रमको इतिहासकी गतिमें निहित मानते ह। यह विकास मनुष्यको ऊँचीसे ऊँचा भूमिकाआनी आर ले जा रहा ह। और मानव इतिहासके समस्त प्रयत्न सस्कृतिके रूपमें स्वीकार

किये जाने चाहिए । व सस्कृतियाक क्रमका और उनके उत्थान-गतनको स्वीकार कर लेते हैं, पर साथ ही व्यापक सस्कृतिके धारावाहिक क्रमको भी मानते हैं और इस प्रकार उनके लिए सस्कृतिके विकासकी एक व्यापक और अखण्ड परम्परा है । उन्हाने सस्कृतियाके पुनर्जन्म और पुनरुत्थानका माना ह । वेदिएफ जसे आधुनिक सस्कृतिके विचारकाके समान द्विवेदीजाने सस्कृतिके शारवत तत्वकी महत्त्व दिया है और सास्कृतिक विभिन्नतामें लब्ध्वाय-जसे विचारकाके समान एकता प्रतिपादित की है ।

हजारीप्रसाद द्विवेदीकी साहित्यिक इतिहासकी दृष्टि उनके उपयुक्त विचारा और धारात्रापर आधारित है । नलिनविलोचन शर्मनने अपनी पुस्तक 'साहित्यका इतिहास-दशान में माना ह कि द्विवेदीजाने स्पष्टत विधेयवादी गुल्जीपरम्परसे भिन्न प्रतिना की ह क्योंकि वे "साहित्यकी विभिन्न प्रवृत्तिये और उसके मूल और आन्तरिक स्वरूपका स्पष्ट परिचय देना ही अपना लक्ष्य धापित करते ह ।' वस्तुन जमा नलिनजाने स्वयं द्विवेदीजकी हिंदी-साहित्य'स गति-बान्धनी रूप रखा उदघत करके स्वीकार किया ह कि द्विवेदीजकी अपनी प्रतिनाका उदतापूर्वक पालन नगी कर सके हैं, द्विवेदीजकी साहित्य इतिहासकी दृष्टि गुल्जीसे इस स्तरपर भिन्न नही ह । सम्भवत नलिनजाने हिंदीमें साहित्यिक साहित्येतिहासकी परम्पराके प्रारम्भकी दृष्टिम ऐमा प्रतिपादित किया ह, अथवा द्विवेदीजकी मूल साहित्यके इतिहासकी दृष्टिका अनुसंधान उनकी हिंदी साहित्यकी भूमिका स किया जा सकता ह । हिंदी-साहित्यकी भूमिका म उहाने न केवल हिंदी-साहित्यको भारतीय साहित्यस सम्बद्ध करके दखा ह वरन उम सास्कृतिक अभिव्यक्तिने रूपमें भारतीय सस्कृतिकी धारावाहिक परम्परामे जोडा ह ।

वस्तुन रामचन्द्र गुल् और हजारीप्रसाद द्विवेदी दाना साहित्यके इतिहास का मानवीय परिवेशमें रखकर दखने हैं और उत दृष्टिसे १९वीं शतीक विधेयवादा और एतिहासिकतामे प्रभावित हैं । गुल्जीके अनुसार- "प्रत्येक दशका साहित्य वहाँकी जनताकी चित्तवृत्तिका स्यामी प्रतिबिम्ब हाता ह, वहाँका जनताकी चित्तवृत्तिक परिवर्तनके साथ-साथ साहित्यक स्वरूपमें भी परिवर्तन हाता चला जाता ह । आदिमे जन्म लेह ही चित्तवृत्तियाका परमते हुए साहित्य परम्परारू साथ उनका सामञ्जस्य सिखाना हा साहित्यका इतिहास कहना हा । जनताकी चित्तवृत्ति दृष्टम कुछ रासनैतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितिय अनुगार हाता ह । उन कारण स्वल्प इन परिस्थितिया का विचित सिखाना भी साथ-साथ आवश्यक हा जाता ह ।' इसी प्रकार द्विवेदीजी भी स्वीकार करत ह - 'वास्तवम हमारे अध्ययनकी सामग्री प्रत्येक

मनुष्य ह । आपने इतिहासमें इसी मनुष्यका धारावाहिक जययात्राकी कहानी पढ़ी है साहित्यमें इसीके आवेगा उद्वेगा और उरलासाका स्पन्द देखा ह, राजनीतिमें इसीकी लुका छिपीके खेलका दशन किया है, अथशास्त्रमें इसीकी रीढ़की शक्तिका अध्ययन किया ह ।” दाना विचारक साहित्यके इतिहासको युग और समाजक परिवेशसे सम्बद्ध करके देखते ह और मानववाद तथा लोककल्याण की भावनास साहित्यको प्रेरित स्वीकार करते ह । अन्तर केवल इस बातका ह कि गुबलजी साहित्यका युगीन जीवनकी क्रिया प्रतिक्रियाक रूपमें अथवा उसके प्रतिबिम्बके रूपम स्वीकार करते ह और द्विवेदीजी साहित्यका युग-जीवनकी सांस्कृतिक प्रक्रियाके रूपमें विवेचित करने ह ।

यह अन्तर भी कम महत्त्वका नहीं है । गुबलजीके द्वारा प्रतिपादित युग और साहित्यका सम्बन्ध बाह्य अधिक ह और धर्म, समाज, राजनीतिम साहित्य का कारणपरक सम्बन्ध स्थापित किया गया ह, उदाहरणक लिए भक्तिकालके युग जीवनसे उस युगके साहित्यका सम्बन्ध और रीतिकालके वातावरणका उसक साहित्यपर प्रभाव । परन्तु द्विवेदीजीने साहित्यका सांस्कृतिक अभिव्यक्तिक रूपमें व्याख्यायित किया ह और इस स्तरपर साहित्य युगके बाह्यको अपेक्षा उसकी रचनाशीलताम सम्बद्ध हो जाना ह । सस्कृति स्वतः युग विशेषकी विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण रचनात्मक उपलब्धि ह, जत जब साहित्यके इतिहासको समके आधारपर विवेचित किया जायगा तत्र साहित्यका मात्र युगक सामाजिक राजनीतिक आर्थिक तथा धार्मिक जीवनकी प्रतिक्रिया न मानकर सार युग जीवनकी रचनाशीलतासे सम्बद्ध करना पडगा । यही बात द्विवेदीजीने अपनी हिंदी साहित्यकी भूमिका’ म भक्ति आन्दोलनकी लम्बी परम्पराके आधारपर भक्तिकालकी विवेचनामें प्रदर्शित की ह । समस्त परम्परा और आन्दोलनक स्वरूपका प्रस्तुत करके भी द्विवेदीजीने भक्ति-वाच्यक रचना-तत्त्वको अधिक उजागर करनेका चष्टा की ह । एक भिन्न स्तरपर यह गुबलजीके वारम भा वटा जा सक्ता ह कि उन्हाने समस्त युगीन सामाजिक और राजनीतिक वातावरणसे प्रतिक्रियात्मक सम्बन्ध रखत हुए भी साहित्यका रचनात्मक माना ह जो एक शक्तिम ह । सामाजिक मानववादसे समाज उन्हाने साहित्यम लोकमगलकी भावनाको अवश्य प्रतिपादित किया ह पर कविता और वाच्यक विवेचनमें उन्हाने यदि पाश्चात्य काव्यशास्त्रक अनुसार वाच्यक रचनात्मक स्वरूपका विवेचन गुण अन्वय, शक्ति आदिके द्वारा किया ह ता भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्रक समतुल्यता कायक भाव रम, प्रभाव और सौंदर्य पत्तासी व्याख्या की ह । इस दृष्टिसे द्विवेदीजीने वाच्य तथा साहित्यको आन्तरिक तथा सूक्ष्म

रचनात्मक मूल्य दृष्टिसे सम्बद्ध माना है, जत उनके कनि अथवा काव्यके विवेचन का शुक्लजोकी तुलनाम वस्तुपरककी अपभा यत्तिपरक और भावात्मक स्तर है। यही कारण है कि सस्कृतके पण्डित हाकर भी उन्होंने मस्कृत कायशास्त्रका प्रयोग अपनी व्यावहारिक समालोचनाग्राम नही किया है।

सदभ-ग्रन्थ

१ मैटले द प्रीसचीरा स ऑव क्तिक्ल हिरटी। २ घाम इक्कायरी क्सनिंग
 घूमन अण्टरसैरिडग। ३ हजारोप्रमाद दिवेदी अशोकके फून दिदी साहित्य
 और दि दी साहित्यकी भूमिका। ४ काट द क्रिीक ऑव लजनेसट। ५ स्ट
 भाइटिया फार ए क्लिासक्रिकल हिरटी ऑव मेनकाइण्ड। ६ डीगल लेक्चस
 ऑन द क्लिासकी ऑव रिस्टी। ७ सारोकिन सोशल क्लिासफ्रीड ऑव एन एज
 ऑव ब्राइसिम। ८ एंगलर द डिक्लाइन ऑव द वेस्ट। ९ टर्वापनवी
 सिविलिजेसन ऑन टायल, माइ यू ऑव हिरटी, ए स्टडी ऑव रिस्टी। १० वेदि-
 एक : दि मीनिंग ऑव क्रिप्टियनेस दि मीनिंग ऑव हिरटी। ११ क्रोएवर
 कोक्रीगेशस ऑव कलचरल ग्रोथ। १२ पोपर दि पावरी ऑव हिरगेरिसिक्म।
 १३ लव ज्वाय दि ग्रेट चेन ऑव बीइग, स्टनीड इन द रिनी ऑव आइडियास।
 १४ रामन द शुक्ल सिन्दी साहित्यका इतिहास। १५ नलिनविलोचन रामो
 साहित्यका इतिहास दरान।

सन्तुलित दृष्टि

★

सन्तुलित दृष्टि यह नहीं है जो अतिवादिताओंके बीच एक मध्यम भाग खोजती है बल्कि यह है जो अतिवादिताओंको आवेग तरल विचारधाराका शिकार नहीं हो जावे और किसी पक्षके उस मूल सत्यको पकड़ सकने है जिसपर बहूत बल देने और अन्य पक्षोंकी उपेक्षा करनेके कारण उक्त अतिवादी दृष्टिका प्रभाव बना है। सन्तुलित दृष्टि सत्यान्वेषीकी दृष्टि है।

—विचार और चिन्तक पृ २८३

आचार्य द्विवेदीकी दृष्टिमें लालित्य तत्त्व

रमेश कुन्तल भेष

बाबाय हजारीप्रसाद द्विवेदीने कागिदासकी लालित्य याचना शीपक पुस्तकमें सौन्दर्यक इम महान् गायक कविके सौन्दर्यबोध तत्त्वपर सबप्रथम भारतीय मौनो प्राक लिखा ह । इसकी तुलना ऐमिगके 'लाभाकून' तथा डच चित्रकार जान धर्माअरपर लिखित पियाफिने थोरक मोनाप्राक्रमे की जा सकतो ह । इस कृतिके माध्यममे लेखकने अपने सान्ध्यवापसास्त्रीय (एस्पेटिक) दर्शनके भी इतस्तत स्फुट बिन्दु स्पष्ट सकेत किये हैं । अतएव इम हजारीप्रसाद द्विवेदीके सौन्दर्यबोध तत्त्वपर यह मानाप्राक प्रस्तुत करेमें ।^१

क

कला और साहित्य सम्बन्धी अनुगालन तथा अम्यासकी परिपूणता, कला एव साहित्यका अग्रण्ड मानकर, उसने चिन्तन एव दर्शनमें हाती ह । रमदर्शनमें काव्य एव नाट्यको अग्रण्ड माना गया, रीतिके अम्यासम अलकार एव वाणीका अग्रण्ड माना गया ध्वनिमें भाव एव अर्थकी एकता स्थापित वा गयो । जब इम अनेक ललित या सृजनारम्भ कलाओंके संयोगम एव समाहित इधरई प्राप्त करते हैं तब हमें इनकी मूलभूत एकता, एवावित कलानुभव एव वैश्वक कला भाषा, एक सावभौम मनुष्य तथा एक सदिल्लिष्ट जावन-गानकी शक्ति मिलने लगती हैं । अस्तुत सौन्दर्यबोधग्रासनका चिन्तन एव दर्शन इसी तत्त्वान्वयण एव

- १ सौन्दर्यदर्शनका इमारा सन्द द्विवेदी सौन्दर्यबोधशास्त्र (एस्पेटिक) पर एक सशतन पुस्तक भी लिख रह हैं जिसके प्रकाशनके बाद ही उनका लालित्य-सम्बन्धी दर्शनका सर्वोत्तम स्वरूप निरुत भवेगा । क्लिपहाल इम इनका निम्नलिखित सामग्रीकी ही मनुष्य उात्र अ्य बनायेगे—१ 'दानिदासकी लालित्य योजना,' २ 'प्राचीन भारतके कलात्मक विवेक,' ३ 'हिंदी साहित्यकी भूमिका,' ४ 'सिन्धुवादी स्वरूप' (कालावना, लिखा) ५ 'लालित्य तत्त्व' (हिंदी विभाग, पंजाब, की वार्षिक-१९६१-६२के पढ़ा गया लेख) आदि ।

कृतित्वका परम अभिप्रेक होता ह। सौंदर्यबाधशास्त्रीय जीवनदृष्टि कलाकारो तथा तत्त्ववेत्ताआ, दोनाके एक विशेष प्रौढ चरणमे उभीलित होती ह। हजारी प्रसाद द्विवेदीने भी तीस पैंतीस धरों तक निरंतर सांस्कृतिक अवपण करनेक उपरात अपनी कलादृष्टि एव सस्कृतिदशनको अतलागत्वा लालित्य तत्त्वके बोधम चरिताथ पाया। इसके पूव उहाने कबीर, तुलसी, चण्डीदास, चतय, रवींद्र भाय ठाकुर आदिके माध्यमसे अपना मानवतावाद विकसित किया, मूरदास और कालिदासके माध्यमसे व्यावहारिक रस सिद्धिकी गहराइयोको समझा, प्राचीन कलात्मक विनोदा एव साहित्यिक भूमिकाके माध्यममे अनेक कलाओकी एकाका अनुभव किया तथा 'वाणभट्टकी आत्मकथा' एव 'चारुचंद्रलेखक माध्यमसे कलात्मक सस्कृतियाकी पुनरचना की। इतना अनुशीलन एव अभ्यास करनेके उपरात उहाने कलात्मक विनोदो कवि-समयो तथा कायशास्त्र, तीनाको समो जित करनेकी एक धुंधली अन्तभूमि प्राप्त की। वैष्णव भावुकता, कबीरी सहजता, रवींद्रनाथीय मानवता कालिदासीय पद्यशुक्ता, शैवानदवादी दार्शनिकता आदिकी सम्यक् दृष्टियाने उनके मानवतावाद तथा सांस्कृतिक पटनका विकास किया। सौंदर्यतत्त्वको ओर उनके प्रयाणकी भूमिका यह ह।

चण्डीगढमे सन '६०-'६१ स व काव्यशास्त्रस आगे सौंदर्यबाधशास्त्रकी ओर मड। उहाने यह अनुभव करना शुरू किया कि काव्यशास्त्र एव नाट्य शास्त्रकी पुनश्च मैत्री ही सकती ह अब सौंदर्यबाधशास्त्रमें। उहाने यह भी अनुभव किया कि आधुनिक सौंदर्यबाधशास्त्रीय कई तत्त्वको प्राचीन शाब्दावलीक बुझामेम ढँकी धारणाओम देना जा सकता है एव कई प्राचीन रहस्यवादी गूढ बातोंको आधुनिक सौंदर्यबाधशास्त्रीय शब्दावलाम स्पष्ट किया जा सकता ह। उनकी यहा गहरी दार्शनिक अनुभूति ही कालिदासको माध्यम बनाकर सौंदर्यतत्त्वका अवपण करती ह। यही उनके लालित्य तत्त्वका उद्गम ह। कालिदासके माध्यमसे उहाने अवाधपूर्वास्मृति, 'अययाकरण,' 'यथा लिपितानुभव,' 'भावानुप्रवेश,' 'अचयन 'यथाप्रदग्निविश' आदि श्लोक-व्यवहृत शब्दोंको लेकर सौंदर्यबाध एव सृजन प्रक्रिया और सौंदर्यबाधानुभवका तार्किक विवेचन किया ह। इस तरहसे उहाने कायशास्त्रका अक्षलमदन लेकर सौंदर्यबाधशास्त्रकी आधुनिक चतनाका प्रातदर्शी संचार किया ह। महाकविके श्लोकके अलावा लक्ष्मणके मिथ्याकी अनुभव व्याख्याएँ करने भी अपने सौंदर्य तत्त्वका स्वरूप गढा ह। अतत उहाने पश्चिमके पण्डितके भी विचारानो या सो ग्रहण किया ह अथवा उनका भारतमाय सदर्थोम लागू किया ह अथवा उन विचारोंकी मानवीय गमानांतरताएँ पता पा ह। अनस्ट कमोररम उहाने

भाषा तथा मिथकक अन्तसम्बन्धाका समन्वयकी नयी दृष्टि ली है। गाम्ब्रिचस 'हिस्टोरियन'का धारणाका उपयोग ग्रहण किया है (और इसे कालिदासके 'अयथाकरण'स जोड़ दिया है), एरिकन्यूटनसे उन्हां कला-भाष्य (बाट-मोडियम) की सत्ता तथा स्वभावका आहरण किया है, फ्रेजर और वेस्टरमार्कसे लाकतत्वो एव आदिम चित्ररूपसृष्टिक सम्बन्धी बानानिक धारणाएँ प्राप्त करके मानव चित्तकी एकताकी दृष्टि पायी है। इस तरह सौन्दर्यबोधशास्त्रीय चिन्तनके प्रकाशनमें हगारीप्रसाद द्विवेदी चतुर्थ, कबीर और रवाद्रनाथके आध्यात्मिक मानवतावादके आगे फ्रेजर और वेस्टरमार्कके नृतत्वशास्त्रीय मानवतावादकी ओर मुड़ते हैं। बाणी सरम्बतीस आगे भाषा एव मिथकके सम्बन्ध खाजते हैं। रसके आगे सौन्दर्य या लालित्य तत्त्वकी मायासा करते हैं, सहृदयके आगे तत्त्वान्वेषीके व्यक्तित्वकी धारणा भी खाजते हैं। अतः उनके लालित्य तत्त्वकी आधुनिकताका कारण उनके कलात्मक चिन्तनमें इस १८० के मोड़का आ जाना है।

फिर भी, वे कालिदास और तुलसाकी तरह आद्यापान्त सौन्दर्य और मंगल की, प्रेम और तपस्याका, शैव दानवादी क्रियाशक्ति एव इच्छाशक्तिकी मन्त्री शायम रणते है। यह उनकी मासृष्टिक निष्ठा एव व्यक्तित्वकी स्वकायताका मतीजा है। इसके परस्वल्प वे सौन्दर्यबोधशास्त्रक आशयानी विचारक एव परम्पराके आधुनिक व्याख्याता हो जाते है। और इसी वजहसे उनमें मध्यकालीन बाध एव आधुनिक बोध सामंतीय सम्भार एव प्रजातांत्रिक उच्छाहके बीचके अतन्विराप भी मिलते है।

उन्होंने चार तत्त्वके आधारपर अपने लालित्य तत्त्वका ढाँचा तयार किया है। पहला मानवतत्व है जिमके अन्तगत उन्होंने माना है कि 'मानवचित्त एक है। समष्टि-मानसमें ही समान बाधके मान रहते है। दूसरा लाकतत्व है। इसके अन्तगत उन्होंने नृत्य चित्र और वाक्यके आत्मि बोधाका अन्वेषण किया है। तीसरा मिथक तत्व है जिमके अन्तगत उन्होंने मानवताके समान अनुभव कलाकी एव भाषा, सहृदयक एवचित्तकी प्रतिष्ठा की है। चौथा लालित्य तत्व है जिमके अन्तगत उन्होंने मनुष्यनिमित्त सौन्दर्यकी अन्वेषणा की है। इस तरह वे क्रमशः भावतत्त्व, लाकतत्व, मिथक तत्व और लालित्य तत्त्वका आर अग्र सर हाते चल रहे है। एक बार तो वे इन तत्त्वका आधुनिक ज्ञान आगकमें परम्पने है, तथा दूसरी बार इन्होंने पुरातनता और परम्पराके भी प्रमाणित करते है। अतएव उनके तत्त्वान्वेषणा दिग्ग हुंरी है।

लखकने कालिदासका एक 'द्रष्टा' की तरह देखा। तत्त्वज्ञानका परखनेवाला द्रष्टा होता है। द्रष्टाके लिए सम्यक् दृष्टि अनिवार्य होती है अथवा उसका अंतर और बाहर निमल हाता है वह राग और द्वेषसे मुक्त होता है, वह भय और भ्रांतिका शिकार नहीं होता और उसका मन योगसंयुक्त होता है। लेखकने अपनी आंतरिक शुद्ध दृष्टिसे कालिदासके लालित्य तत्त्वके साक्षात्कार करनेकी कोशिश की है। किंतु कालिदास ही क्या माध्यम बने? लेखक कालिदासको सौंदर्य (रसकी अपेक्षा) का महान गायक कवि मानत है, रूप, प्रभा, वण एव प्रभावका दुर्लभ चित्रण मानते हैं आभिजात्य एव विलासिताका उदगाता मानत है, तथा राग और सौभाग्यका उद्घाषी मानत है। इस प्रकार हजारी प्रसाद द्विवेदी एक 'द्रष्टा' की तरह 'सौन्दर्य', रूप एव सौभाग्यके कवि का तत्त्वावेपण करत है।

सौंदर्यतत्त्वका अवपणमें कई प्रश्न एकवारगी उठत है। सबसे पहला प्रश्न ता यही है कि कालिदासका सौंदर्यवाद क्या है? किंतु यह तो समग्र सौन्दर्यतत्त्वका ही अन्वेषण है। अतः स्वयं लेखकन प्रश्नावली प्रस्तुत की है 'सौंदर्यका स्थिति द्रष्टाके रागात्मक चित्तमें है अथवा सुंदर वस्तुमें? क्या सौंदर्यका कोई विश्वजनीन मानदण्ड है अथवा उसका कोई मानदण्ड ही ही नहीं सकता? रूप और सौभाग्यका क्या सम्बन्ध है? अलंकरण क्या सौंदर्यके हतुभूत है या सहायक है? मनुष्यकी शोभा और प्रकृतिकी शोभामें क्या और क्या सम्बन्ध है? प्रकृतिन जित सौंदर्यका प्रसार किया है उससे मनुष्यके प्रयत्न-साधित लालित्य-योजनाका क्या सम्बन्ध है? ऐतिहासिक चेतनाका और भौगोलिक गानका सौन्दर्यरूपानम, कैसा उपयोग हाता है? छन्द क्या है और नृत्य, गीत चित्र मूर्ति, सजावट आदिमें उसका क्या सम्बन्ध है? इस प्रकारके अनेक प्रश्न तत्त्वान्वयी पाठकके चित्तमें उन्तित हाने हैं और सब समय वह ठाक उत्तर नहीं सोज पाता।'

उपयुक्त तत्त्वावेपणका सूत्र ही लेखककी राह बता देत है। व शुद्ध रूप या सौन्दर्यकी नहीं स्वानारत अपितु सौन्दर्य एव सौभाग्य (अथवा निवम) का समुक्त करते हैं। ये सौन्दर्यमें शौण्ड या उपादान (अलंकरण) की भूमिकाकी विशेष महत्त्व देने हैं। इसीलिए वे प्राकृतिक सौन्दर्य बनाम मनुष्यके प्रयत्न-साधित सौन्दर्य या लालित्य में भ्रं करत हैं। ये लालित्यका ऐतिहासिक

१ कालिदासकी लालित्य-योजना, पृ ५१।

चेतना और भौगोलिक मान अर्थात् 'काल' एवं 'दश' के आयामों परखना चाहते हैं। या तो लालिय वदव (युनिवमल) हो सकता ह अथवा नितात अनिर्व-चनीय एवं अनमुखी (इण्डीजुअल)। वे सौदयकी सिसृधाकी छ'द' मानकर उसका विश्वकी गति एवं ताल या छ'दोपारामे रहस्यो-मूय सम्बध स्थापित करते हैं अतत वे 'छ'दक आधारपर अय सृजनात्मक कलायके सम्बध प्राप्त करत हैं। इस सब प्रयनोंमें लेखरुने स्वय एक मीमा भी बांध ली ह केवल और मूलत कालिदासके माध्यमकी। अत लेखरुकी लालिय-योजनाकी मीमासा सर्वांगीणकी अप्णा आगिक ह।

अस्तु हम सबसे पहले मानव-तत्त्वका विवेचन करेंगे।

ग

'मनुष्य की धारणाका निर्माण दानशास्त्र समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और सौन्दर्यबोधशास्त्रकी महत्तम अन्वीशा रही है। सौदय दानम मानव और मानवनाकी एकात्मा बनानेके प्रयासके द्वारा एक वैदव एवं चिरनन मनुष्यकी रचना होती रही ह। किंतु यह मनुष्य जविक विकास, सामाजिक निराम ऐतिहासिक घटना और भौगोलिक तत्त्वके मेलसे व्यक्त भी होता ह राष्ट्रीय चरित्र भी ग्रहण करता ह, वर्गीय समूहका अग भी होता ह, और समष्टिचित्त भी होता ह। हजारोप्रमाद द्विवेगिने एकचित्तवाे मानवकी वदव धारणाका स्वीकार विया ह। लेकिन अब वे चण्डीदास या बंदातकी अप्णा नृतत्वशास्त्र और मनोविज्ञानर सादय स्वीकार करत हैं। नृतत्वशास्त्रने मानव चित्तकी व्यापकताके रहस्यकी ढूँढ निकाला। हम रहस्यने जीवतान्त्रिक आवेगों और मानसिक सवेगामें सम्बध स्थापित करके बाह्य इन्द्रिया तथा अत करणमें एकतान अन्वितिको प्राप्त किया। वस्टरमाकने यही पाया कि उपरी विभेदोंके बावजूद मनुष्य एक ही जीव श्रेणीका प्राणी ह। फेडर और वस्टरमाकक शोधमि यही स्पष्ट हुआ कि जीवतात्त्रिक आवेग ममान भावम सबत्र मानस सूत्रम बोधाको उकसात है— मानव चित्त एक ह। हम चित्तका सामाय बोध ही नम (नॉमल) है। अव-नमिल तथा उन्नमिल अवस्थाएँ मनावानिक अयथाकरण ह। एकक प्रत्येक व्यक्तिक लिए सामाय रूपम सामप्रघभायके बात्रको ह सौदयतत्त्वक अभिज्ञान की आधार भूमि मानता ह। यही सौन्दर्यका एक मानवीय स्तर ह। इसके लिए व 'समष्टि मानव चित्त की कल्पना करने हैं। हम समष्टि-मानम ही पण्यगुणोंके नम (नॉमल) विद्यमान रान हैं। मारामें, सौन्दर्यका एक मानवीय स्तर ह जहाँ मनुष्यका चित्त एक-जमा ह और वह चित्त समष्टि-मानव चित्त भी ह।

सन्तुलित दृष्टि

लेखकने इस 'समाष्टि मानव चित्त'की व्याख्याके लिए कई प्राचीन दार्शनिक आधारोंको ग्रहण किया है। भट्टनायकको तरह उन्होंने भी सायब-सम्मत अत करण (मन, बुद्धि, अहकार) एव वाह्यकरण (मन ज्ञानेन्द्रियाँ, बर्मेन्द्रियाँ) का भेद स्वीकार किया है। अत यह माना है कि वाह्यकरणोंकी अनुभूति तो एक समान है लेकिन अत करण वे व्यक्तिगत भेद हो सकते हैं। तथापि, अत करण और ज्ञानेन्द्रियोंकी ग्राहिका शक्तिकी दृष्टिसे मनुष्य एक है। जहाँ व्यक्ति-विशेषमें सामान्य बोधसे भिन्न प्रकारकी अनुभूति होती है वही वह अवनमिल हो जाता है।^१ अत वे अवनमिल दशाका विवेचन नहीं करते। इसक उपरांत वे त्रिगुणाका आधार लेते हैं। वे गुणीभूत ज्ञानशक्तिको सत्त्व, इच्छाशक्तिको रजस और क्रियाशक्तिको तमस या जडता स्वीकार करते हुए एक ओर तो जड एव अत यके द्वन्द्वका सिद्धांत प्रतिपादित करते हैं, तथा दूसरी ओर यह सिद्धांत स्थापित करते हैं कि पूण समाहित चित्त या पूण समाधिकी अवस्थाम ही चित्त सत्त्वस्य रहता है और मत्त्वस्य चित्त ही अनित्य सुंदर रूपकी रचना कर सकता है। यहाँ वे भट्टनायककी भांति ही नतिकवादी एव अध्यात्मवादी मानसकी रचना स्वीकार करते हैं क्योंकि रजोगुणका धुंधलापन तथा तमोगुणकी जडता नम के बाहर पड जाता है।^२ इस तरह वे मानसविज्ञान और मनोविज्ञानके आधि-भौतिक रूपकी आर मुडते जाने हैं।

सत्त्वको जानने, रजसका इच्छाम तथा तमसको क्रियामे सम्बन्ध करनेके उपरान्त वे अभिनवगुप्त और पण्डितराज जगन्नाथकी तरह 'मानसदवा' एव अद्वैतचित्तको भी स्वीकार कर लेते हैं। शिव या ब्रह्मकी धारणा ए आनेपर वे सुरत उन दशमोके अनुगामी हो जाते हैं। अब वे कह उठते हैं कि ब्रह्मका इच्छा शक्ति ही 'छन्द' है जो समस्त भेदोपभेदना छादन करता है। अत एक विश्व व्यापक छन्द है जो उसकी चित्तशक्तिकी सजनच्छा या मिश्रा है। अत ब्रह्मका इच्छा शक्ति छन्द है। यह छन्द ही सृष्टि करता है उसे नाना वर्णों गंधों और रूपामें स्थापित करता है। छन्द इच्छा-भाव है गतिमात्र है चेतन घम है। इस चेतनघमक कारण ही गति और आनन्द है इस तरह वे कालमें प्रवाहित छन्दोधारका ब्रह्मकी सजनच्छा, तथा देशमें स्थिरीभूत सृष्टिको ब्रह्मकी क्रियाशक्ति स्वीकार कर लेते हैं। उन क्रिया शक्ति एव इच्छा गति हो जाती है।

१ साहित्य-ग्रन्थ, पृ २७।

२ 'कालिदासकी साहित्य योजना', पृ० ६०।

इस अध्यात्मवादी भूमिपर लेखन मनुष्यकी परम्परागत मीमांसा करते हैं। उनके अनुसार जो कुछ विद्वान् (ब्रह्म) में घट रहा है, वही पिण्ड (प्राणा) में। विन्दु जीव या प्राणा मायाय पचकचुका या कागामि आवृत्त होनेके कारण सीमित है। अतएव—ब्रह्मकी तरह—मानवचित्तमें भी गति एव स्थितिके द्वन्द्वमे ही 'रूप' (कर्म) बनता है। गति इच्छा है स्थिति क्रिया। गति चित्तत्व है, स्थिति अचित्तत्व। एम तरह जड़ और चतुर्था भी वाग्म्या द्वन्द्व चलता है। जन्ता नौचकी आर खीचती है, और चतुर्थ ठपरसी आर। "इच्छा अनन्त है, क्रिया सान्त है। इच्छा नाद है—वृष्टिनुअम है क्रिया रिक्त है—वृष्टम है। इच्छा गति है, क्रिया स्थिति है। गति और स्थितिका यह द्वन्द्व चरता रहता है। इसीसे रूप बनता है छन्द बनता है मणित बनता है। नय बनता है। इच्छा काल है क्रिया दग है। एमी दग-वाक्के द्वन्द्वम जीवन रूप लेता है प्रवाहके रूपमें। इसीसे घर्माचरण बनता है। नर्तिका बनती है। इन सत्रों छापकर, सबका अभिभूत करके, सबको अन्तर्ग्रहित करके जा साम प्रय भाग है वह सौंदर्यका दूसरा रूप है। यह भाषाम, छन्द, मियन रूपमें, नृत्यमें, गीतमें, मूर्तिमें, चित्तमें, सञ्चारमें अपने आपकी प्रकट करता है। एक प्राकृतिक सौंदर्य है, दूसरा मानवीय इच्छा गतिका विंग्रह है। दूसरा सौंदर्य प्रथम द्वारा चार्ति होता है पर है मनुष्यके अन्तरतका अपार इच्छा गतिसे रूप देनेका प्रयास। एव केवल अनुभूति देकर विरत हो जाता है दूसरा अनुभूतिसे उत्पन्न होकर अनुभूति परम्पराका निमाण करता है।" लेखक न दूसरे प्रकारके मानवनिर्मित सौन्दर्यको भी गालिय कहा है। इस तरह उटाने 'चतुर्थम मानवचित्तके उपगमित करके इच्छा (का गति) थी क्रिया (दग, स्थिति) गतिके द्वन्द्वमे ब्रह्मकी मृष्टि एव कल्पवाग्वा कर्तावृत्ति की एतन्मिता कायम का है कथाकि वे मानवचित्तके समानांतर ही एक विश्व व्यापक छान्दोग्यास धारणाकी पुष्टि भी करत है। "सा वाधापर वे समष्टि मानम एव सामाय रूपमे सामप्रय भानके बोधको प्रस्तुत करत है। ये दान ही मान्य, गवाइत एव वेदान चित्तके सम्यक यामे उद्भव हान है। इतं आपुनिक भी प्रतीत करानेक लिए एवकन दूसरे कागाम केर देन्त माक प्राक प्राग आत्मी समानान्तर स्थापनामें दी है। प्राक प्राक अनुमार नृक प्रस्तुत जटक गुणस्वाकषणपर चतुर्थका विजयेछाका प्रयास है। हजाराप्रमा

१ 'दानोन म रके कलात्मक विनोद'में लखकने कला कचुकार विनोद कल दे
दूर कला एव विधाके भावक सादर निरूपित किये हैं।

२ 'साहित्य टर', पृ० १४।

द्विवेदीने कहा भी है कि "फाव पीसवे बघनका बडा महत्व ह कि वस्तुत हर कला प्रयामम शिल्पी जड सामग्रीक सहज धमपर विजय पानेका प्रयाम करता ह । मनुष्यके कला प्रयत्नोंका अर्थ ही ह जडतासे सघप । जितनी मात्रामें शिल्पी इस सघपमें विजयी होता ह उतनी ही मात्रामें वह शिल्पी-रूपमें सफल होता ह । जितनी दूर तक उसके अतरतरका विशुद्ध चेतय जडावपण और भौतिक बघनको छिन्न करने लक्ष्योभूत द्रष्टा या स्रोताकी अतिनिहित उच्छल प्राणधाराका मुखर कर देता ह और जीवन्त रूपमें चैतयका अनुभवगम्य बगता है, उतनी ही दूर तक उसका शिष्य भरिताथ होता ह । हम किसी मूर्ति या चित्रको देखकर या कविताको सुनकर फन्न उठते ह, तो वस्तुत हम जडको गुस्त्वावपणसे मुक्त हानेका अनुभव करने ह ।"^१ लेखकने आगे चलकर जड उपादानों (माध्यम) को सँवाग्ने (नील) और जांचने (अम्याम) के क्रमिक विनाममें ही कलाओंके भेद, तथा कलाके इतिहासके सूत्रक सक्न दिये ह । जडकी इस जटिल धारणामें ही लेखकने 'माध्यम के धमकी समीक्षा की ह । जड चेतनके इस द्रन्द्रको शिवकी इच्छा एव क्रियाशक्तिके द्रन्द्रसे मण्डित करके लेखकने कलाकार और आगसक वृत्ती और तत्त्वावेपी, सभीमें एक मानव चित्त तथा चेतनधम (प्राण एव आनन्द) को आविभूत किया ह । इस तरह भाषा मिथक धम, काव्य मूर्ति, चित्र आदिमें अभिव्यक्त मानवीय इच्छा शक्तिना अनुपम विनास ही सौन्दर्यकी सत्ता पाता ह । मिथकीय चेतनाके अनुसार हमकी व्याख्या करते हुए लेखकने कहा ह कि यह विश्व-यापिणी सजनात्मक शक्ति (अर्थात् शिवकी लीलासती) 'ललिता'का व्यष्टिगत रूप ह । जय गिव ही लीलाकी लालसा होनी ह तब उनकी लीलासती ललिता जगतका प्रपचित करती ह । लोक रचना ललिताकी क्रीडा ह, और चिमय गिव उनसे सत्ता ह । इसीलिए वे मानपरचित सौन्दर्यका नामकरण 'लालित्य' करत ह । यह स्थापना उन्होंने 'ललिता सहस्रनाम से ग्रहण की है । अतएव लालित्यका क्षेत्र सौन्दर्यका आवपण, सौन्दर्यकी रचना और सौन्दर्यका रसास्वादन ह । लालित्य ही मनुष्य के ललित भावोंकी अभिव्यक्ति करता ह । यही लेखकके लालित्य शास्त्र'का क्षेत्र और तत्त्व ह ।^२ अत चेतयका धम प्राण और आनन्द हो जाता ह, चेतना और क्रीडान सौन्दर्यका आवपण, रचना और रसास्वादन होता ह, सौन्दर्यरूप लालित्यम भागत्य (गिव), काम (क्रीडा) तथा विनामना सयोग ह । सारागमें सरस्वतीका स्थान ललिता ल लेनी ह ।

१ 'लालित्य तत्त्व', पृ० ६ ।

२ वही पृ० १५ ।

। गिबकी इच्छाशक्ति ललिनाका एक रचना, और मनुष्यकी इच्छा-शक्ति द्वारा चालित कलामृष्टिकी इस मिश्रकीय एव यथाय एकरूपताकी लेखने विश्व व्यापी छद्मोपारा और कान्हे छद्मके रूपके माध्यमसे भी पुष्ट किया ह । अतः हम देखने ह कि कवि फ्रेडर, वेस्टरमाक, वीमोरर, फ्राक थीस, वट साकम आदिके जीवतात्त्विक (बायोलॉजिकल), मानवशास्त्रीय (एथोपलाजिकल) मनोवैज्ञानिक (नामः साइकालॉजी) आदि आग्रारको भी मिश्रकीय चेतना (mythic consciousness)-द्वारा प्रमाणित करता ह । किन्तु यह लेखने मध्यकालीन संस्कार और नतिकतावादी आम्पाने भी प्रबल आग्रह है । हम यह कमे स्वीकार करें कि सबमुच ही कोई विश्वात्मा' ह और उसकी कई सिमन्धा ह । फिर, विश्वकी छद्मोपारा अगर मानव-समाज ह, तब ता यह समाज गति स्थितिके द्वन्द्वम संचालित हुआ है जो मात्र इच्छा शक्ति आर क्रिया शक्तिकी सरलीकृत धारणा न हकर जटिल ह । लेखन नतिन मानवके विकासपर ही आस्था रखते ह किन्तु सामाजिक मानवके क्रांतिकारी रूपान्तर, वर्गीय मानव की श्रमरूपा रचना (समाधिके अन्तर्गत), तथा अवनतिल व्यक्तिके गूट दष्टि आदिकी वास्तविकताका अपभ्रष्ट उपगम करते ह । सारागमें, मनुष्यका जीवतात्त्विक आधार ही आध्यात्मिक आधारम समुन्नत कर दिया गया ह । मनुष्यके व्यक्तित्वकी यह निरक्षण धारणा अत्यधिक अमूर्तकरणसे आच्छादित हा गयी ह ।

मानवी सृष्टिकी अपूर्वता एव सामाजिकताका प्रकाशित करनेक लिए हजारों-प्रमाण दिवने पुन एक मियक-आम्पानेका आर उमुख हात है । भारतक नाट्य शास्त्रमें यह कथा आयी ह कि भाग्यात्मिक होनेक कारण देवता नाटकका अभिनय नही कर सने किन्तु मुनि (मनुष्य) अपना इच्छा-शक्तिक बल्पर दूसराका अनुकरण कर सकन ह । देवता कबल घोरालस हात हैं, जब कि मनुष्य घोरालस । मनुष्यकी महिमाका यह सजगत्मिक रूप ही कलामें प्रकट हाता ह । मनुष्यकी महिमा और उसकी सृष्टिके इस मिश्रकीय आम्पाने उपराल दिवनेकी काल्पनिक व्याजस कान्धारकी मनादगाने स्पष्ट करनेके लिए पुन एक मिय काय बाल्या करने ह । कालिदास विधाता (ब्रह्मा) को भा एक कान्धार मानन ह जो सुन्दर रचना करने समय समाविस्थ हाता ह । तिलापकी रचना करने गमय निश्चय ही उमन 'महाभूत समाधि धारण का हागा ('त कथा विश्वे नून महाभूतसमाधिना) । दिवनेका पुन रूपक (मेटाफर) के साधनसे कान्धार और सामाजिक कलाकारका रचना-शक्तिक निरक्षण करन हुए कहते

१ नाट्यशास्त्रकी भारतीय परम्परा और दशरूपक की भूमिका ।

है कि "वे विधाताको भी मनुष्यकी तरह एक कलाकार मानते ह । वस्तुतः कल्प पहले होता ह, सृष्टि बादमें । मनुष्य अपने रूपमें ही विधाताको देखता ह । कालिदासने स्वयं रचयिताका जो रूप सोचा होगा या स्वयं रचना प्रक्रियाका जैसा अनुभव किया होगा, उसीका विधातामें घटित कराया होगा, यह अनुमान असंगत नहीं है । कालिदास उत्तम रचनाके लिए समाधिस्थ चित्तको बहुमान देते ह, इस विषयमें कोई संदेह नहीं है ।^१ यदि विधाताके लिए 'महाभूत समाधि अपक्षित है तो कलाकारके लिए पूण समाधि' । पूण समाधिकी अवस्थामें ही चित्त सत्त्वस्थ रहता ह, और सत्त्वस्थ चित्त ही अनिष्ट मुक्त रूपकी रचना कर सकता ह । रचयितामें पूण समाहित होनेकी क्षमताके जभावमें रचना कमजोर हो जाती है । अतः जहाँ वही कलाकार 'शिथिल समाधि होता ह वही वह लक्ष्यभ्रष्ट होता ह । इस तरह कालिदासके श्लोकके बहाने उसने श्रेष्ठ मानव कलाकारके गुणाका उल्लेख किया है । पहले वह प्रयत्न करता है फिर 'समाधि की अवस्थामें पहुँचता ह फिर चित्तको सत्त्वस्थ करना है और अतः तब मुक्त सृष्टि कर पाता ह । अन्तर्मुखी प्रयत्न समाधि एवं सत्त्वस्थिति तथा बहिर्मुखी सृष्टि—ये चार चरण ही रचना प्रक्रियाके हैं । बहिर्मुखी रचनाके चरणमें माध्यमकी इच्छा तथा कौशलका मयाग होता ह । इसके लिए कलाकार 'उपादान' (इन्द्रियाँ—अतः करण एवं बहिर्करण) और 'उपकरण' (बीजार-तूलिका छेनी, लसना आदि) दानोका व्यवहार करता ह । उपादान एवं उपकरण ही 'माध्यम' (मीडियम) हैं । इस बहिर्मुखी रचना-मुक्तताके लिए इनके मयास्थान सजानके लिए, कालिदासने (कुमारसम्भव १-८९) मयाप्रदश विनिवेशनेन गन्तव्य व्यवहार किया ह । अतः लक्ष्यने 'मयाप्रदश विनिवेश' को एक सादयतत्त्वके रूपमें ग्रहण किया ह । उनके अनुसार यह (य० वि०) कलाकारका निरोधन शक्तिकी सञ्चार्य या कञ्चार्य की गवाही देते ह यमकि श्रेष्ठ कलाकार ही उपादानकी अनुकूल बना सकता ह ।

रचना प्रक्रियाके अन्तर्मुखी चरणके लिए वे कल्प या मानसी मूर्ति की धारणा प्रस्तुत करते हैं । 'बहि या गिपी वास्तव जगतकी वस्तुआका दृष्टकर पहले अपने चित्तमें एक मानसी मूर्ति प्रजाता ह और फिर उमें एक नया रूप देता ह । मानसी मूर्ति बहि या गिपीकी इच्छा शक्तिका विलास ह और रूप रचना उसकी श्रिया शक्ति । मानसा मूर्तिही भाव देता जाता ह । बहि या गिपीका भावगूहोत रूपका गन्तव्य, तूलिका या छेना आदिके द्वारा जड आधार

१ कालिदासका लालित्य बोधना पृ० ६३ ।

पर उतारता है। यही उगकी नयी सृष्टि है।^१ इस तरह द्विवेदीजी अपन दो मूत्रभूत सौन्दर्यसिद्धांतों—१ जड़पर चंद्रयकी विजयकी चेष्टा, और २ मनुष्यकी इच्छाशक्ति (गति) एवं क्रियाशक्ति (स्थिति) का द्वन्द्व—को पुन रचनाप्रक्रियामें भी प्रतिष्ठित कर दते हैं। यही उनके लालित्य-तत्त्वान्वेषणका सार है। मानसी सृष्टिकी अवधारणाके इद गिद ही उन्हें करण विगम 'ययालित्वितानुभाव', 'भावानुभव', 'अप्रत्याकरण आदिके कालिदासीय सौन्दर्य तत्त्वका उपस्थापन किया है जिनकी चर्चा यथाप्रसंग होगी।

कान्तर, शिल्पी कवि अभिनेताके साथ-साथ ही लेखकने गृहीताकी भी मामासा की है। सहृदय, द्रष्टा, तत्त्वान्वेरी, कृती आदि भेदाने गृहीता भी विकसित हुआ है।

लक्ष्मणने दार्शनिक तत्त्वमीमासा करनेवाले आचार्योंको द्रष्टा (या तत्त्वद्रष्टा) कहा है जा 'सही' दखने है। सही दखनेके लिए उनका अन्तर्बहिर् निमग्न हाता है व राग द्वेषम मुक्त हात है भय भ्रान्तिके गिकार नहीं हाते तथा उनका मन याम गुद्ध हाता है। अथवा व सुमाधि'की अवस्थाम चित्तका सत्त्वस्थ कर मक्ते है। उनका साधन गुद्ध आन्तरिक दष्टि है। उनकी तुलनामें कानिषका साधन प्रयागगात्र है। द्रष्टा तत्व और भावका, विरोपस्वमे विवृतत्व और सामग्र्य भावका, दान करता है। अत वह कानिषक भिन्न है, और उसकी पद्धति भी भिन्न है। इस सन्दर्भमें द्रष्टाका नियमहेतु सौन्दर्य एव प्रेम आदि हाता है। किन्तु क्या सौन्दर्य द्रष्टि-स्थापन नहीं है? लेखकके अनुसार कुछ इद तक। वे कालिदासकी एक उक्ति— 'किमिदं हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम' (कौन-सी वस्तु है जा मधुर आकृतियाँ मण्डन नहीं बन जाती)—का दृष्टान्त दत्त हुए कहा है कि कालिदासने दो बातें लख की १ मुदर सद्रक लिए मुदर हाता है पर २ उनके लिए अधिक मुदर हाता है जिनसे उसका लगाव हाता है।^२ सौन्दर्यके सबके लिए मूत्र हानक गिग लेखकने पल ही कहा है कि अत-करण और ज्ञानद्रियाका प्राहिषा शक्तिकी दष्टिसे मनुष्य एक है, तथा लालित्य-मीमासाकी दृष्टि यह बात विरोप महत्त्वपूर्ण है जा इसमें विषयके विषयमें एक मानवाय दष्टिका मान्य बनता है। इससे साथ ही वे मनुष्यकी इच्छा-शक्ति (ललित्या प्राप्ति) का भा विस्वस्थापक उदाहरणका ही रूप मानते है। इन दो आधारका तन्त्र या विरोप सान्दर्य सम्कारका धारणा प्रकट हाती है, और इसमें ही कृती सहृदय आदि की स्थापनामें सम्बद्ध हाती है।

१ लालित्य २५१, पृ० १०।

२ लालित्य द्रष्टव' पृ० २।

सौंदर्य उभके लिए अधिक सुंदर होता है जिससे उसका लगाव होता है। 'लगाव' अर्थात् आरूपण एव सस्कार। आरूपणके लिए लेखक एक कालिदासीय तात्त्विक शब्द 'अबोधपूर्वा स्मृति'को प्रचलित करते हैं। यह अध्यात्मवादी धारणा पूवजन्मके सस्कारों एव वासनाशक्तिको समाहित करती है जिसे कालांतरमें अभिनवगुप्त एव विश्वनाथने निरूपित किया। "कालिदासके युगमें यह बात सिद्धान्तके रूपमें स्वीकृत थी कि मनुष्य अनेक योनियों धूमता हुआ दुर्लभ मानव जन्म पाता है। उसकी आत्मापर अनेक भाव जमे रहते हैं। सभी सब समय स्मरण नहीं आते परन्तु सौंदर्याधायक वस्तुके साक्षात्कारसे वे किसी पुरानी स्मृतिको उभार देते हैं। इस उभरी हुई स्मृतिको कालिदास 'अबोधपूर्वा' कहते हैं अर्थात् जिसकी यादमें विशेष तत्त्वका स्मरण नहीं रहता, केवल निर्विशेष स्मृति मात्र रहती है।" जन्मांतरवादी आस्थापर टिकी इस धारणाका आधार अवचेतन (unconscious) तथा जातीय अतीत (racial past) है। इसीलिए स्मरणीय वस्तुको दखकर और मधुर शब्दोंको सुनकर अर्थात् सौंदर्याधायक वस्तुके साक्षात्कारमें निर्विशेष अबोधपूर्वा स्मृति जाग जाती है। निर्विशेष एव अबोधपूर्वा होनेके कारण इस स्मृतिका धर्म 'पयुत्सुकीभवन' होता है। अर्थात् यह अनेक सस्कारस्थ भावोंको 'पयुत्सुकीभाव'में रूपांतरित कर देती है। बान्के आचार्यान् इस चित्तकी दीप्ति एव द्रवण दशाशाम व्यजित किया। यही अबोधपूर्वा स्मृति अपनी सुषुप्त दशामें सस्कार एव वासना है। स्थायीभाव वासनारूपमें स्थित रहता है। अतः लेखकके कालिदासीय भाषके अनुकूल अबोधपूर्वा स्मृति वासनोको चालित करके स्थायीभावमें रूपांतरित करती है। यह रूपांतरण धर्म 'पयुत्सुकीभवन' है। अतः रचनाके लिए 'समाधिस्थ चित्त'की ओर आगसावे लिए 'पयुत्सुकीभाव'की अपेक्षा होती है। आगसावे लिए यह भी अनिवार्य है कि आगसक सहृदय—समान हृदयवाला हो अर्थात् कवि, गीतपी चित्रकार आदिक हृदयमें जा विनिष्ट भाव रहने हैं उसका वही अनुभव कर सकता है जो उसी प्रकारका अनुभूति-भम्पय हृदय रगता हो। अतः 'यदि कलाकार समाधिनिष्ठ है सजता है तो बदलमें सहृदयको भी समाधिनिष्ठ कर सकता है। यदि वह निधिस्थमाधि है तो सहृदयकी भी समाधि शिथिल होगी।' एक दूसरे ढंगसे यह तमयीभवन योग्यता है किन्तु लेखकने इसका लिए भी दो कालिदासीय शब्द—'यथागितानुभाव' एव 'करणविगम'—का व्यवहार किया है। मेघदूत में एक श्लोकपर 'करणविगम'

१ कालिदासकी साहित्य योजना, पृ० १००।

२ वही, पृ० १०१।

शब्दका प्रयोग है (यस्मिं दृष्टे करणविगमाद्बुधमुद्रतपापा) जिसका सीधा-सादा अर्थ है 'इन्द्रियोक्तो बाहरी विषयोक्तो ओरसे मोड़कर अन्तमुखी करना ।' करण-विगम भावित करानेका आरम्भिक हेतु है किन्तु पात्रोकी भावनाआके साथ सहृदयकी भावनाआका सादात्म्य करनेके लिए (भट्टनामकीय 'भावकत्व व्यापार' के लिए) दूसरा हेतु 'यथालिखितानुभाव-ह अर्थात् जसा लिखा या चित्रित हुआ उमे सत्य समझकर अनुभव करनेके कारण चित्रगत विचार ओर उससे उत्पन्न स्वयं रामावादि अनुभव उत्पन्न होने लगे । कालिदासने निम्नलाके प्रसंगमें ही प्रथमतः 'लिखितानुभाविता ना उल्लेख किया है । कलाकारके सद्बोधमें ऐसी दशा 'भावानुप्रवेश' की है । इस तरह रसानुभव सहृदय श्रोता या दशकके चित्तमें अनुभूत होता है । पात्रके चित्तमें नहीं । सारासम, सहृदयत्वके लिए मनुष्यकी भवन, करणविगम, यथालिखितानुभाविता तथा सहृदय समाप्ति की दशाओंका संयोजन किया गया है ।

'सहृदय' की कायास्त्रीय धारणाका सौन्दर्यतात्त्विक सद्बोधमें ढालनेकी लेखककी यह चेष्टा 'कृती' की धारणा परिपूर्ण हुई है । कृती वह है जो तत्त्वा-वेपणकी बातोंमें नहीं उल्लसता, बल्कि 'छत्रकर सौन्दर्यस पीता है । कृती धर्म है ।

उपयुक्त निम्पणम विधाता और कलाकार, द्रष्टा और तत्त्वावपी, सहृदय और कृतीकी धारणाओंका पुनर्निर्माण हुआ है । हजारोप्रसाद द्विवेदीका मूलाधार कालिदासका 'चेतन धर्म रहा है जिनके मायमसे उहाने शिवकी इच्छात्मिके ललित विलास, विधानकी पूण समाधि, जन्मांतरवादी अबोधपूर्वा स्मृतिवा दानिक अवलम्बन लेकर ललित्य भीमामा की है । किन्तु अपर आध्यात्मिक एव धार्मिक यदि हमारा विश्वास न हो, तो इनकी पुनर्स्थापना हमारे ढंगसे होगी । लेखकका ममत्त ढाँचा आध्यात्मिक आदर्शवात्पर आधारित है । वे मूलतः एक नतिक एव आध्यात्मिक मनुष्यकी धारणाका विधान कर रहे हैं । सम्भवतः ऊपर कालिदास और उनके युगके मायमन भी यह भीमा बाँधी है । इस मनुष्यकी धारणामें व मनोवैज्ञानिक अवर्णनिलताआ, वैयक्तिक विशेषताआ तथा युगीन दृष्टी (जा विश्वव्यापक छन्दोधारके विशुद्ध है) पर विचार नहीं करते । विश्वव्यापक छन्दोधारा प्रकृतिमें तो सम्भवतः कल्पित भी की जा सकती है किन्तु समाजम यह एक असम्भावना है (लेखक तात्पर्यमें) । मनुष्यक इस उल्लासवादी, आनन्दवादी नतिवतावादी एव अध्यात्मवादी पक्षको लेकर ही वे आगे अपन ललित्य तत्त्वका उभेय करते हैं । " सवत्र मनुष्यने उल्लास चक्र हाकर जड़तापर विजय पानेका प्रयाग किया है । आरम्भमें उमने नृत्य चार्मिकमे

और स्वर सन्धान-द्वारा इस वचनके विरुद्ध विद्रोह किया है और धारमें वाक्यमिच्छक और भावमन्मूतनके द्वारा अपने भीतरके किसी वचन द्रोही व्याकुलताके रूपमें देनेका प्रयास किया है। वही कुछ ऐसा है जो मनुष्यके आदि उद्भवके समयसे ही अपनेको वचनमुक्त करनेके लिए छटपटाता रहा है। जान पड़ता है यह उसका चतय है अनाविल व्यापक चित्तत्व उसीका अद्भुत और अकालत प्रयत्न है जो लालित्य रचनाके द्वारा नित्य वचनजयो होनेकी क्रियासे प्रकट हो रहा है। इस प्रयासका समझनेके लिए उसकी इच्छागतिका स्वरूप जानना तो आवश्यक है ही ।^१

अब हम लताके लालित्य तत्त्वका निरूपण करेंगे।

य

मनुष्य (कलाकार और कृती), मानव चित्त चेतन तम और मानवीय शक्तिवाली विवचनाके साथ हजारीप्रसाद टिबेदी प्राकृतिक सौंदर्य तथा मानवनिमित्त सौंदर्यतात्विक लालित्य' एवं उसने अलंकरण मण्डनकी व्याख्याएँ करते हैं।

'सुन्दर वस्तु या कृतिके एक समग्र भावकी अनुभूति है जिसे समष्टि-मानस अनुभव-रता है। सौंदर्यका अन्तर्भाव मानवीय स्तर है जिसके लिए एक 'समष्टि मानव चित्त की कल्पना की गयी है जो नैमित्तिक (नात्मिक) है। अतः कही कभी चित्त-विशेषका स्तर इनसे आघात विरुद्ध हो जाता है। लेखक सुन्दर वस्तु या कृतिका समग्रताकी अनुभूतिके दो रूप मानते हैं १ एक सौन्दर्य तो हमें प्रभिभूत करता है प्रभावित करता है, चालित करता है पर इसलिए यही के वह ऐसा करना चाहता है। वह सौंदर्य की-मो अदृश्य इच्छा शक्तिस में चालित करता है, यह कल्पना या तक्का विषय मात्र है। यह प्राकृतिक सौंदर्य है। २ दूसरा सौंदर्य मानवीय इच्छा शक्तिका विलास है जो उसे रूप देता है, अनुभूति-परम्पराका निर्माण करता है। यह मानवनिमित्त सौंदर्य प्राकृतिक सौंदर्यमे भिन्न किन्तु उसके समानांतर चलनवाला है। इसका नाम लालित्य' है। यह भाषामें, मिथकमें, धममें, वाच्यमें, मूर्तिमें गन्धारमें, चित्रमें बहुधा अभिव्यक्त मानवीय इच्छा शक्तिका अनुपम विग्रह है। इन सौंदर्यकी शक्ति रहस्यवादी एवं अदृश्य न होकर गत है अर्थात् यह मानवीय चित्त शक्ति है। इस भी स्पष्ट करनेके लिए लेखकन इस विचारवादिता प्रनामक शक्ति लालिता' (गिदकी लालिता) का व्यष्टिगत रूप कहा है।

१ 'लालित्य १९१', पृ० १८।

यहो कला रचना करती है, और लालित्य बोधकी भूमिका है। अतः लेखकने लालित्यमें मागल्य (शिव), नतिकता (धम) और महत्ताकी एव साथ अन्विति की है।

लेखक पुनः शिव शक्तिका आध्यात्मिक मिश्रणका सहारा लेते हुए कहते हैं कि ब्रह्म या शिवकी मिसृष्टाने ही उसे स्त्री और पुरुष रूपम द्विधा विभक्त होनेको प्रवृत्त किया। द्विधा विभक्त होकर जाने परस्पर आकृष्ट हानका मिलसिला निरंतर है जो मनुष्याम प्रेम और आकषणके रूपमें विद्यमान है। इस तरह द्विबदोजोने सौन्दर्यके साथ प्रेम और आकषण, तथा धमको भी पूरक माना है। सौन्दर्य यावन काम और धमको साथ-साथ निरूपित करनेकी व्यापकता उन्हें कालिदास के माध्यमसे मिली। अतः उनका लालित्य तत्त्व मूलतः सौन्दर्यके साथ यौवन, काम और मग्नता भी मयोजित करता है। लालित्यकी यह व्यापक परिणति शिव शक्तिको मिश्रण तथा कालिदासके लालित्य बोधके कारण ही सिद्ध हो सगी है। हम समते हैं कि लेखकने मानवतत्त्व एव लालित्य तत्त्व दोनों ही मिश्रण तत्त्वका अनन्त बौद्धिक समुपारजन किया है। शिव और पुरुष, सृष्टि और कृतीमें आत्मनय (अद्वैत) माननेके कारण द्विबदोजी सौन्दर्यको वस्तु एव प्रमाना का उभयनिष्ठ धम माननेवाले मतके अनुयायी है। 'द्रष्टव्य वस्तुमें सौन्दर्य एक ऐसी शक्ति या ऐसा धम है जो द्रष्टाको आकृष्टित और हितकामित कर सकता है और द्रष्टामें भी ऐसी शक्ति है एसा एक सवन्त तत्त्व है जो द्रष्टव्यके सौन्दर्यसे चालित और हितकामित होनेकी योग्यता दत्ता है। यह (तीसरी) बात अधिक समझमें आने योग्य है। प्रहीता और गृहीतन्त्रके अंतररक्षा आकषण ही ता वह लीला है जो अनादि शिव-तत्त्व और शक्ति-तत्त्व का अन्त लीला विलासकी सृष्टि निष्ठ अभिव्यक्ति है।' इस भाँति लेखक मनुष्यकी दुन्दुभ शक्ति और उमकी आत्माके चतुर्थ धम तथा कल्पितानी व्यष्टिनिष्ठ अभिव्यक्तिके प्रथम लालित्यक मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक एव मिश्रणीय व्यापकता स्पष्टाटन करता है। उक्त उभयनिष्ठ आकषणक कारण ही एक ओर सौन्दर्य यौवन तथा प्रेमसे सम्बद्ध किया गया है तथा दूसरी ओर हर वस्तुके प्रभावना हर व्यक्तिमें स्वकीय सवध भी माना गया है—(एक मामूहिक सवन्तके अन्तर्गत)। 'सत्त्वस्थ चित्त की मानववैज्ञानिक व्याख्या करते हुए लेखक कहते हैं कि वस्तुतः यह मजक चित्तके साथ-साथ ताठ मिलाकर चलनवाली महत्त्व सवधना है। इस 'बौध्मन ह्युमनिगी' को शिवा कह सकते हैं। इसकी तुलनामें राजमचित्त यत्किता

१ 'कालिदासकी लालित्य रचना' पृ० ८८ ८९।

एकान्तचित्त होता है। यहाँ वे मानसिक या ऐंद्रिय विकारमें प्रसन्न अवनमिल एव उन्नमिल दशाओंकी चिकित्सामूर्ख दशाएँ मानते हैं। अतः मौदय द्रष्टावा सर्वान्-मत्त्व सत्त्वस्य चित्तमें अतभाव्य रहता है। यही मौदयका एक मानवीय स्तर है 'सर्वास्त्ववस्थामु अनवद्यता रूपस्य' (मालत्रि० २)। यह स्तर सामान्य रूपसे सामग्रय भावका बोध है। यह प्रत्येक 'नर्मिल' व्यक्तिके लिए आकषक है।

इन मानवीय स्तरकी अधिक गहराईके विषयमें लेखकका मत है कि "जिसे हम सुन्दर कहते हैं, वह वस्तुतः हमारे भीतरकी विा गतिके ज्ञान, इच्छा और क्रियाका समन्वय है।" किंतु सुन्दर वस्तु होनेके लिए कुठ और गुण भी आवश्यक हैं। इन गुणोंके अंतर्गत ही लेखकने काल्पनिक लालित्य तत्त्वको छाँटकर यौवन, धर्म, भाग्य आदिका समावेश किया है। इस समावेशकी विधियाँ ही 'रूप' की सृष्टि करती हैं कलाकृतिमें कौशलका समावेश करनी हैं, तथा ऐतिहासिक चेतना एवं भौगोलिक ज्ञानके योगम सांस्कृतिक पटनका प्रदर्शन सम्पन्न करती हैं। अतएव प्रवृत्तिदत्त मौदय जसा है वसाके अनुभवका आस्वाद है मनुष्यद्वारा मौदय रस अनुभव और 'जो जैसा जाना चाहिए वसा ज्ञान जेनाम उदभूत विविष्ट आनंद है।" यहाँ मौदय या चाहाके आकषणके अतिरिक्त आनंदको भी शामिल कर लिया गया।

सारासमें, कविते कथगत एक प्रवृत्ति मौदयको—इ० एफ० वरिष्ठीकी तरह—समानजातीय माना है। पहलेका कता कलाकार है तथा दूसरका विधाना। दोनोंमें ही क्रमशः मानवीय इच्छा गति और गिवकी ललित गति क्रियारत है। दोनोंमें ही मत्त्वस्य चित्तकी समाधि दशाएँ हैं। प्रवृत्तिर सौन्दर्यमें यदि विश्वयापी छन्दोधारा है तथा लालित्यमें उमक अनुकूल अन्तर्गतका छन्दोधारा। अतः विश्वयापी छन्दोधाराके अग्ररूपमें मनुष्यके अन्तर्गतकी छन्दोधारा प्रवाहित है। जब दूसरी छन्दोधारा पहलीके अनुकूल प्रवाहित होता है तभी मौदय है। इसके विपरीत असादय (ugliness) की स्थिति है। अतएव अमौदयो बोधमें मत्त्वस्य चित्तके वजाय सामसिक चित्तकी सबदना रहती है। यही 'मौदय' एवं 'लालित्य' की शक्ति तथा धर्म है।

सौन्दर्यकी इन धारणाकी हजारीप्रसाद द्विवेदान अपन काल्पनिक विवेकमें चरिनायता एवं परिपक्वता प्रदान की है। इनके लिए उन्होंने सौन्दर्यमें यौवन (प्रेम) तथा धर्म (तप) तथा भाग्यके दिनायक धर्म जोड़ दिए हैं। वस्तुतः वे

‘उदात्त’ (sublime) की धारणाका भी सहज विनाम करते हैं।

कालिदासने प्रेमके साथ तपस्याका, मुकुमारताके साथ सुशीलताका, मानसिक मृदुताके साथ चारित्रिक दृढताका, अपार वैभवके साथ विपुल वैराग्यका अर्थात् सौन्दर्यके साथ धमका मणिकावत योग किया है। यह सहजान मानस-भावका उदात्तीकरण है जो सौन्दर्यके विलासको सौन्दर्यके अध्यात्ममें प्रतिष्ठित करता है। यहाँ रूपासक्ति भस्म होती है (कामना विरचन), तथा तपस्या-साधित कात्तिक्रम प्रेम उदित होता है (सौन्दर्यका उदात्तीकरण)। इस तरह तपस्याकी अग्निके साधित सौन्दर्यका आकषण उदात्त हो जाता है। यही श्रेष्ठ सौन्दर्य अर्थात् उदात्त सौन्दर्य है। इसमें बष्पास्त है तो द्वन्द्वोत्त सामञ्जस्य। ‘कुमारसम्भव’ में काम (असत्यत काम-चेतना) पर स्थिर मयमा शिवके प्रशान्त रूपकी विजय हुई है तथा शत्रु-तन्त्रात्म उभय आकषणपर मगलमय वात्सल्यकी विजय हाती है। ‘कुमारसम्भव’ में त्यागके साथ ऐश्वर्यका और तपस्याके साथ प्रेमका मिलन हुआ है। इस तरह त्याग और भोगके सामञ्जस्य ही जीवन का चरितायता एवं प्रेम सौन्दर्यकी पूणता दिखाई गया है। त्याग और भोग शिव और कामके द्वैत तथा द्वन्द्व तथा सामञ्जस्यके अतिरिक्त लक्षणने मिलन और विरहके द्वैत-द्वन्द्व-सामञ्जस्यका भी समावेश किया है। मेघदूत के अष्टादशमें वे कहे हैं कि मिलन स्थिति विन्दु है, विरह गति वेग है। दानाके आकषणसे ‘रूप’ की प्रतीति हाती रहता है। विचार मूल आकार ग्रहण करते हैं भावना सौन्दर्य बनता है। यहाँके शिवके द्विधा विभक्त होने तथा शिव शक्ति-री सामञ्ज्यावस्थाको अपनी लालिय मीमासा एवं कालिदासकी लालित्य याचना, दानोंपर लागू करते हैं। अतः, हजाराप्रसाद द्विवदोकी कालिदासीय उदात्त सौन्दर्यकी अवधारणाका स्वरूप यह है।

कालिदासने नारी-सौन्दर्यको महिमा मण्डित किया है। लेखकने इसके माध्यमसे सौन्दर्य-तत्त्वाका उल्लेख किया है। नारीके साथ अथ राज समाश्रय अलकारमें से ‘शोभा’ भी एक है। शोभाका अनुशासनक धर्म ‘शोभा’ है। शोभाका तत्त्वसाम अगामें सौन्दर्य, विपुलभार, विभक्त या उभार आता है। इस विभक्त या उभारका कालिदासने जमकर अलकार लभित करके सौन्दर्यका बत किया है। कालिदासने कहा भी है कि प्रेमका रचना बहुत प्रकारसे समीचीन-गली शरीरमें निवास करके इस विभक्त या उभारका आकषक बनाता है। लेखक इस भेदकी भी तात्त्विक मायासा करने हैं। उनके अनुसार समष्टिमें जा शिव और शक्ति है वही व्यष्टि

१ कालिदासकी लालित्य याचना, पृ० १३।

में पुरुष और स्त्री ह। व्यष्टिम यह भेद यौवन कालमें अपनी चरमविकासावस्था की प्राप्त होता ह। इस तरह युवावस्थाम ही सौन्दर्यका 'सहज' एव मनोहर' रूप उभरता ह। इसीलिए भारतीय वाक्यशास्त्रमें उत्तम रस शृंगार ह, और सौन्दर्याख्यापनमें सहजरूप यौवनावस्थावाला ह। किन्तु इसका महिमा मगल सापेक्ष्य हानेमें ही है। मगलनिरपन्न यौवनावस्थावाला रूप माहमय ह। कालिदासने शकुन्तला तथा पार्वतीको कठिन तपस्यास तपाकर ही विगुड प्रेमकी व्यजना की है। तपस्याके बाद काम अतनु और (मोहमय होनेकी अपेक्षा) 'भावैकरस' होता है। अत कालिदास माभाग्य धर्मसे चालित मगलभाषक सौन्दर्यका श्रेष्ठ मानते ह। ऐसी भावैकरस दशा प्राप्त करनेवाला सौन्दर्य ही उदात्त ह।

सारशभे, नारी-सौन्दर्य वणनक अन्तगत शोभासे सौभाग्य नामक गुण तब एकतात हो गये है। अत यह सहज सौन्दर्य ह। इस सहज सौन्दर्यका प्रेम, रूप तथा यौवनका त्रिकाण 'श्रेष्ठ सौन्दर्य' म रूपायित कर दता ह। प्रेम तपस्यास तपकर निमल होता है, रूप सौभाग्यमण्डित हाता ह, तथा यौवन विभक्तिपूर्ण हाकर विलास हाता ह। तब ही 'उदात्त सौन्दर्य' की सिद्धि होती ह। कालिदास क इस कल्पकी लेखकने अपनी लालित्य सृष्टिसे सजावित किया ह।

श्रेष्ठादात्त सौन्दर्यके लिए 'अलकरण' और 'मांगल्य'का अपनित मानेवाले कालिदासीय योषके अनुगामी हजारप्रसन्न द्विवन्धु भी ह। कालिदासकी अलकार राजनाके विषयमें ये कहते ह कि अलकाराकी राजनाक विषयम कालिदास रगाके सामजस्यका बड़ा ध्यान रखते है। रूप और वण समवायक समजस विधानस ही निररता है। लेकिन अलकार-यौवनाका उद्देश्य आभिजात्य विन्ना सिता और परिपाटी विन्नि साज-सज्जाकी अधिक आनपक करना भी ह।^१ कालिदासके अनुमार श्रेष्ठ सौन्दर्यके लिए श्रेष्ठ अलकरण द्रव्योका पहचान तो उनकी नायिकाओंके वेग, चष्टाएँ गज्जादिक द्वारा ही ही सबता ह। पार्वती मुदक्षिणा सीता और शकुन्तला तपावनाम खिली ह। अत कविन उन्हें पुष्पा पल्लवों विसलया दूर्वात्रुरा आदिम ही सजाया ह। मालविका, रति उगो, यगप्रियाको उहान मणि रनाते भा सजाया ह। किन्तु दाना कटिका नायिकामें प्रेम शीघ्र सवा समय, तप जात्रिणी हा प्रधानता ह। कालिदास विदाहक मांगल्य आभरणानि बधुका सजाने ह तथा हर प्रेम-व्यापारका विवाहका आर ल जात ह और बधुका मानवपर ही उगका अवगान करत ह। इस भाँति उनका सौन्दर्य मगल आभरणमें ही अधिक निररता ह।^२ मांगल्यक विषयमें तरावका

१ कालिदासका लालित्य योषना', पृ० १४८।

२ 'कालिदासकी लालित्य योषना', पृ० १४१-१४७।

मत है कि यह प्रयोजनातीत होता है। यह एक प्रकारका अभिप्राय (motif) है। मागल्यके प्रयोजनातीत होनेका तात्पर्य है कि यह गरीर और मनके स्थूल प्रयोजनाको निन्दन करने विगुह्ण आनन्दजनक है। यह मगल इसलिए होता है कि यह 'सृष्टिव्यापी' विरजमूर्ति छदोषाराके अनुकूल है अर्थात् जिस मूलेच्छास सृष्टिकी यह अभिव्यक्ति हुई है उसके अनुकूल होनेवाली वस्तुएँ ही मगलमय हैं। यहाँ भी लेखक पुनः पुनः ललित इच्छा-शक्तिवाली अपनी मूल धारणाके चित्रमें बाध लौट आने है। सारागमें सौन्दर्य मगलमय, तथा कुरूपता अमगल है। मोक्षमें सौभाग्य एव आनन्दकी सिद्धि है।

मागल्य साय अलंकरण गुण है। अलंकरण शोभाका निवारणकाल है। रत्न, हेम, वस्त्र माल्य, मण्यन, द्रव्यप्रयोजन आदि अलंकारका प्रचुर विवरण देने है। कालिदासकी ललित याजनामें 'संस्कृतिमयी प्रकृति शीपक अव्यायक अलगन लेखन कालिदासकी अलंकरण-याजनाका गहराई, व्यापनता और वारोकीक साय सादाहरण सौन्दर्यतात्त्विक विवरण प्रस्तुत किया है जिससे प्रतीत होता है कि कालिदासका प्रिय धातु हेम या साना है, वे केशरचनामें पुष्प-पत्राका अधिन मन्त्रव दते हैं, गहनामें उन्हें मञ्जोर या नूपुर प्रिय है हाथके आभूषणोंमें बलय (ककण) उन्हें अधिक प्रिय है, हार उनका सवप्रिय अलंकार है मृणालमूर्धोकी माला ता उन्हें चाह लेती है स्नान करने बाद मण्यल द्रव्याका चर्चा वे नहीं भूते, सौमत्त रचनाम कुमुम्भ-स्वच्छ सिद्धर धारण करनेन सौभाग्यता उल्लेख वे करते है, वे दहकते हुए अंगारके समान वास्तविक पुण्यान कनकाभरणका प्रतिनिधि मानने है, इत्यादि इत्यादि।^१ इसी-तरह कालिदास जीवनके भेद या उभारका भी जमकर अलंकार लभित करते है।

फिर भी, कालिदास रसाश्रय अलंकारका ही मन्त्रिमा प्रदान करने है। इनमें तीन गारारिक, सात अपलज तथा दस स्वामाविक अलंकार हैं। ये बीसों अलंकार मित्रर अनायास ही वण, प्रभा, राग, अभिजात्य, विलामिता, लावण्य लभण, छाया और सौभाग्यकी निवार दते है। इस तरह ये सहज गुणनि बधक सहज रूपका ही अभिप्रेक करते है। इस सहज रूपका ही गुण 'माधुय' है। माधुय समस्त जयस्थात्रायें शब्दाका रमणीयतामें आविभूत होता है। अतएव सहज सौम्यक लिए आकषण क दजाय 'माधुय'की प्रधानता दी गयी है। यह लभकका अनुपम तत्त्वावेण है।

१ 'कालिदासका ललित याजना', पृ० १५३।

२ 'कालिदासकी ललित याजना', पृ० ११०-१४८।

मनुष्यका यह सृज रूप समवायके सामजस्य विधानसे ही निखरता ह । इस सृज रूपके माधुय-मण्डनमे प्रकृतिकी मत्तम भूमिका हाती ह । लखनन यह सिद्ध किया है कि कालिदासने मनुष्यकी परिपूणता प्रकृतिके साहचयमें देखी है । उदाहरणाय ऋतुसंहार म प्रवृत्ति मनुष्यकी आशा आकाशाके साथ निरन्तर ताल मिलाकर चलनेवाली अविच्छेद्य सगिनी ह । इस तरह यह ललिता शिवकी लीला-मन्त्री है तो प्रकृति पुरुषकी । लखक पुत्र शैव मियनदशनसे ही अपनी यह प्रतिपत्ति भी प्राप्त करता ह ।

निष्प यह ह कि कालिदास सम्मत सौन्दर्यके साथ मागत्य, अलकरण, रमाश्रय अलकार प्रकृति और धमका समजस प्रदर्शित कराकर हजारीप्रमाण द्विवेदीने श्रेष्ठ सौन्दर्य, उदात्त सौन्दर्य, सहज सौन्दर्य आदिकी सौन्दर्यवाधान्मक ललित धारणाआकी रचना की ह । इनका पयवसान उदात्तमें ही होता ह ।

अब हम 'रूप'विषयक चर्चा करेंगे । सहज रूप की धारणाम यौवनके आगमनपर अगाक सौष्टव, विकास और विभक्तिमे जा शरार रचना हानी ह वह अलकारो एव नशागुणाक समावगम रूप' (form) का पूण एव सजग बना देती ह । इस रूपमें आकषण एव माधुर्य हाता ह जो सौन्दर्यके भी धम है । रूपके साथ ही 'कला'का अनुभव होता ह ।

रूपसृष्टिक तात्त्विक सिद्धातका रचत हुए लखक कहते हैं कि गति और स्थितिक द्वन्द्व ही रूप बनता ह । इसके पूव व इच्छा शक्तिना छन्दमात्र और गति तथा क्रिया शक्तिका सृष्टि और स्थिति माा चुके ह । उनका अनुमार गति चित्तत्व एव स्थिति अनिततत्व (मटर) ह । इस तरह रूपका बोह्य भूत और सृष्टि ह तथा आम्यन्तर छन्द और विभक्ति ह । अत यौवनम नारी आवृत्तिका रूप परिपूण ह वसन्तम प्रकृतिका । लखक रागानक ग्यक्का मन वता ह हुए कहत ह कि वे दम गाभाश्रिषायन धमाम रूपकी प्रथम तथा सौभाग्यकी जन्मिमानत ह । दम महन गुणावाला रूप ही सहज रूप हाता ह । सहज रूप ही भागे आवृत्तिका रमणीयता प्रदान करता ह । और रमणीयता हा माधुय ह । लखन भी रूपके दो छार स्वीकार करता ह जिनम-म पन्हा रूप बाह्यावपण है तथा दूसरा सौभाग्य आन्तरिक । इस तरह रूपके अन्तःबाह्य आवपण जाने ह । निष्प रूपमें बाह्यावपणवाला रूपका वर 'आन्तरिक वगाकरण या माधुम ह । कालिदासने अनुमार प्रियक प्रति सौभाग्य उद्दिष्ट करना ही रूपका वास्तविक पत्र ह । इसी भूमिकापर जब सौभाग्य आर आन्तरिक वगीकरण मित्र जान ह

तब 'रूप मौन्दय की लालियपण अनुभूति होती है। अतः मौन्दयमें प्रेम और तपस्याका सामञ्जस्य भी सम्भव हो जाता है। इसीलिए कानिदासके रूप-मौन्दय वृणतका लक्ष्य 'तपस्यासे तपकर निर्गुण प्रेम-परा व्यजित सौभाग्य धर्म' है। इस विद्वत्पर रूप और सौभाग्य रूप मौन्दय और आत्मिक वीर्यरक्षणका तात्पर्य हो जाता है। ऐन रूप-मौन्दयमें मत्वादेवकी शक्ति होती है।

हजारप्रसाद द्विवेदीने रूप-मूर्ष्टिमें प्रकृतिके सौन्दय निर्माण तथा मनुष्यकी लालिय-मूर्ष्टिक विराधको दिवानेके लिए सौन्दयबोध शारत्री एगिब यूननका साम्य लिया है। 'कलाकारकी वृत्ति होती है कि 'एकमात्र यही आकार (दूसरा नहीं) मेरी इच्छाका सन्तुष्ट कर सकता है' और प्रकृतिकी वृत्ति यह होती है कि 'एकमात्र यही आकार (दूसरा नहीं) टीक-टीक उपयोगी हो सकता है (दीर्घादि आदि यूननी पृ० ८६)। कालिदाससे पूछा जाता तो वे कदाचिन कलाकारकी वृत्तिका रम प्रकार बताने कि 'एकमात्र यही आकार विवाहाकी मूल सजनच्छा (जिस आजकल प्रकृति कहा जाता है) के अनुकूल है दूसरा नहीं।' जो व्यक्ति ऐसा मानता है उसका लिए सौन्दयशास्त्रमें नित्य आशोचिन होती रहनेवाली अनेक समस्याओंका समाधान अनायास हो जाता है। स्पष्ट है कि 'ऐसा माननेवाले' स्वयं हजारप्रसाद द्विवेदी हैं। अतः यहाँमें वे कानिदास की भावनाका स्पष्ट वर्णनमें अपनी भावना ही अभिव्यक्त करते हैं।

लेखक अपने आध्यात्मिक मानवतावादी दृग्गण रूप-मूर्ष्टिका सिद्धांताकी मूल सजनच्छा मानते हैं जो आनन्दमय है। लेकिन रूप-मूर्ष्टिमें मूलमें आनन्दकी रम भावनाके प्रमाणक तिर वे प्रेङ्गवा माध्य प्रस्तुत करते हैं। प्रेङ्गरन आत्मि जाणियोंकी कलाका अध्ययन कर यह सिद्ध किया है कि आदि मानवकी कल्पना और रूप-मूर्ष्टिके मूलमें भयकी भावना नहीं थी, बल्कि वह (आदिमानवकी रूप-मूर्ष्टि) माण्यमूर्त्त थी। लेखकने एग० रनेका भी प्रमाण लिया है जिहाने मनु १००३ में लगभग बारह सौ प्रागैतिहासिक चित्राना प्रकाशित करके यह सिद्ध किया कि आदि मानवकी तांत्रिक मूर्ष्टि या भित्तिले चित्रण के आधारभूत मानसिक हनु भय और अमुरता कातरता नहीं, उन्मत्त और आनन्द थे। इस तरह लेखककी आध्यात्मिक मायताकी नृत्तरागात्म्योय मध्यमन भिन्न जाता है 'मनुष्यकी प्रथम मूर्ष्टि आनन्द-तुल्य सिद्ध हुई। भयमूलक मूर्ष्टि इसके बाद हुई थी (जब मनुष्यमें तब बुद्धिका विकास हुआ होगा)।'^२ जब कलाकार, कवि, गीतक आदि चित्तमें वेनी मानवा-भक्ति का भिन्न भिन्न उपायाना एक उपकरणोंसे

१ 'कानिदासकी लालिय बोधना', पृ० ५६।

२ 'साहित्य सङ्घ', पृ० ६७।

मनुष्यका यह सहज रूप समवायके सामजस्य विधानस ही निररता ह । इस सहज रूपके माधुय मण्डनमे प्रकृतिकी महत्तम भूमिका होनी ह । लेखकने यह सिद्ध किया है कि कालिदासने मनुष्यकी परिपूणता प्रकृतिके साहचयम दसी ह । उदाहरणार्थ 'ऋतुसंहार म प्रकृति मनुष्यकी आशा-आकाशाके साथ निरतर ताल मिलाकर चलनेवाली अविच्छेद्य सगिनी ह । इम तरह यह ललिता शिवकी लीला-भानी ह तो प्रकृति पुरुषकी । लेखक पुन शव मिथरन्शनमे ही अपनी यह प्रतिपत्ति भी प्राप्त करता ह ।

निष्कप यह ह, कि कालिदास सम्मत सौन्दर्यके साथ मागल्य, अलकरण, रसाश्रय अलकार, प्रकृति और धमका समजस प्रदर्शित कराकर हजारीप्रसाद द्विवेदीने श्रेष्ठ सौन्दर्य, उदात्त सौन्दर्य, सहज सौन्दर्य आदिकी सौन्दर्यवाधात्मक ललित धारणाओकी रचना की ह । इनका पयवसान उदात्तमें हा होता ह ।

अब हम 'रूप विषयक चर्चा करेंगे । महज रूपकी धारणाम योजनक धाममनपर अगाक सौष्ठव विकास और विभक्तिम जो शरीर रचना होती ह वह अलकारा एव दशगुणके समावशसे रूप' (form) का पूण एव सजग बना दती ह । इस रूपमें आवरण एव माधुय होता ह जो सौन्दर्यके भी धम ह । रूपके साथ ही 'कला का अनुप्रवण होता ह ।

रूपसष्टिके तात्त्विक सिद्धातका रचते हुए लख कहते ह कि गति और स्थितिके द्वन्दसे हा रूप बनता ह । इसक पूव वे दृच्छा गतिका छदमात्र और गति तथा क्रिया गतिकी नृष्टि और स्थिति मान चुके ह । उनक अनुमार गति विसृत्व एव स्थिति अनिततत्व (मटर) ह । इस तरह रूपका वाह्य भूत और सष्टि ह, तथा आम्बन्तर छद और विभक्ति ह । अत यौरामें गरी-आकृतिका रूप परिपूण ह वसतमें प्रकृतिका । लेखक राजानक म्यकना मन प्रतान हुए कहते ह कि वे स्व धामाविषयन धमोंम रूपका प्रथम तथा सौभाग्यकी अन्तिम मानते हैं । धम सहज गुणावाना रूप ही 'सृज रूप' होना ह । महज रूप हा नाये आकृतिकी रमणीयता प्रदान करता ह । और, रमणीयता हा मापुय है । लख भी रूपके दा छार स्वीकार करता ह जिनमेंम पहला रूप बाह्यावपण ह तथा दूसरे सौभाग्य आन्तरिक । इस तरह रूपके अन्तर्गह्य आवरण हाउ ह । गणप रूपमें बाह्यावपणवाउ रूपका एउ 'आन्तरिक वगीकरण' मा मापुय ह । कालिदासके अनुमार प्रियक प्रति सौभाग्य उदिक करना ही रूपका वास्त्विक एउ ह । इसी भू भिन्नपर जत्र सौभाग्य ओर आन्तरिक वगीकरण मिल जान है

तब 'रूप सौंदर्य की लालित्यपूर्ण अनुभूति होती है। अतः सौन्दर्यमें प्रेम और तपस्याना मामुक्त्य भी सम्भव हो जाता है। इसीलिए कालिदासके रूप-सौंदर्य वर्णनका शब्द 'तपस्यामे तपवर विन्दु प्रेम-द्वारा व्यजित सौभाग्य घम' है। इस विन्दुपर रूप और सौभाग्य, रूप सौंदर्य और आन्तरिक बर्णनका तात्पर्य ही जाता है। ऐस रूप-सौंदर्यमें सत्त्वाद्रेककी शक्ति होती है।

हजारीप्रसाद द्विवेदीने रूप-सृष्टिमें प्रकृतिके सौंदर्य निमाण तथा मनुष्यकी लालित्य-मूर्ष्टिक विरोधको दिखानके लिए सौंदर्यबोध शास्त्री एरिक यूटनका शायद लिया है। "कलाकारकी वृत्ति होती है कि 'एकमात्र यही आकार (दूसरा नहीं) भरते इच्छावा मनुष्य कर सकता है और प्रकृतिकी वृत्ति यह होती है कि 'एकमात्र यही आकार (दूसरा नहीं) ठीक-ठीक उपयोगी हो सकता है' (दी मोनिंग आब व्यूटी, प० ८६)। कालिदास पूछा जाता तो वे कदाचित् कलाकारकी वृत्तिका इस प्रकार बताते कि 'एकमात्र यही आकार विद्यात्माकी मूल सजनच्छा (जिसे आजकल प्रकृति कहा जाता है) के अनुरूप है दूसरा नहीं।' जो व्यक्ति ऐसा मानता है उसके लिए सौंदर्यशास्त्रम नित्य जागोचिन रहता रहनेवाली अनेक समस्याओंका समाधान अनायास ही जाता है। स्पष्ट है कि 'एसा माननशात्र' स्वयं हजारीप्रसाद द्विवेदी है। अतः महामं व कालिदास का भावनाका स्पष्ट करनेमें अपनी भावना ही अभिव्यक्त करते हैं।

एकके अपने आध्यात्मिक मानवतावादी ढंगम रूप-सृष्टिके विश्वात्माकी मूल सजनच्छा मानत है जो आनन्दमय है। लेकिन रूप सृष्टिके मूलमें आनन्दकी कम भावनाक प्रमाणक लिए वे फ्रेजरका शायद प्रस्तुत करते हैं। फ्रेजरने आदिम जातियाकी कलाका अध्ययन कर यह सिद्ध किया है कि आदि मानवकी कल्पना और रूप-सृष्टिक मूलमें भयकी भावना नहीं थी, बल्कि वह (आदिम मानवकी रूप-सृष्टि) मायायमूर्ष्टक थी। एकरने एम० रनेकका भी प्रमाण लिया है जिहान मन् १९०३ में एगमग बारह सी प्रागैतिहासिक चित्राका प्रकाशित करके यह सिद्ध किया कि आदि मानवका तांत्रिक सृष्टि या मन्त्रिक क्रियाके आधारभूत मानसिक शक्तु भय और अमरुणा कातरता नहीं, उत्थान और आनन्द थे। इस तरह एकरकी आध्यात्मिक मायताकी नृतत्वशास्त्रीय समर्थन मिल जाता है "मनुष्यकी प्रथम सृष्टि आनन्दशक्तु सिद्ध हुई। भयमूलक सृष्टि इससे बाद हुई थी (जब मनुष्यमें तक बुद्धिका विकास हुआ होगा)।" ३ जब कलाकार कवि, गिण्डो आदि चित्तमें बनी मानसा-मर्तिका भिन्न भिन्न उपानाना एवं उपकरणयो

१ 'कालिदासकी लालित्य बोधना', पृ० ५६।

२ 'साहित्य दर्पण', पृ० ६-७।

अर्थात् भिन्न भिन्न माध्यमों (mediums) में नये-नये रूप देने लगे अर्थात् नया 'रचना' करने लगे, तब रचनात्मक कलाएँ (creative arts) आविर्भूत हुई।

ड

कला-सृष्टि सम्बन्धी साहित्यमूलक समस्याका हजारीप्रसाद द्विवेदी दो प्रकारसे स्पष्ट किया है। पहलेके अंतगत उन्होंने जड़ चतुष्टयके सधप एव विद्या की महाभूत समाधि की द्वाारा रचनाके मिथकीय रूपकोका इस्तेमाल किया है, तथा दूसरेके अंतगत माध्यमकी इच्छा एव कलाकारकी इच्छाके बीचके निरंतर द्वन्द्ववा उद्घाटन किया है।

प्रायः धीसके नृत्यकला सम्बन्धी विवेचनमें प्रभावित होते हुए लेखकने स्थापना की है कि वस्तुतः हर कला प्रयासमें कलाकार जड़ सामग्रीसे सहज धम पर अपने चैतन्यकी विजय पानेकी कोशिश करता है। मनुष्यके वर्य प्रयत्नाका अर्थ ही है जन्तास सधप। जड़के गुरुत्वावपणस मुक्त हानना अनुभव ही कलानुभव है। कलारचनाके ये सिद्धान्त भी वे अपनी इच्छाशक्ति (गति) और क्रिया शक्ति (स्थिति) के बाल (इच्छा) और दान (क्रिया) के द्वन्द्वके अनुकूल ढाल देने हैं। उनकी यही क्षमता तो उनके स्वकीय (original) साहित्य सिद्धांतकी विवृति करती है।

विधाताकी महाभूत समाधि तथा कलाकारकी सत्त्वमयचित्तवागी पूण समाधिक रूप-माध्यमे भी उन्होंने कला-मृष्टिके चार चरणोंका उद्घाटन किया है जो क्रमशः प्रयत्न, समाधि, चित्तकी सत्त्वमय दशा और मुदर सृष्टि हैं। हम इस मानाप्रक्रिके सधपमें इसका विस्तृत निरूपण कर चुके हैं।

कला-मृष्टिके उपयुक्त दाना प्रकार प्रतिकल्पनामय है। अतः लेखक माध्यमका व्यावहारिक चुनौतीमें उल्लाते हैं जहाँ जहाँ बौद्ध और अम्यातकी अनिवाय भूमिका होती है।

पहले ता वे यज्ञ स्पष्ट करते हैं कि कवि या गिल्पी वास्तव जगतकी वस्तुओं का दसपर पहले अपन चित्तमें एक मानमा मूर्ति बनाना है और फिर उस एक नया रूप देना है। मानमा मूर्ति ही भाव है और रचना प्रक्रियामें वह पद्यसुकी भाव मर्यादातरित हाना है क्याकि मानमा मूर्तिपर अरोपपूर्वा स्मृतिकी भी छाया आच्छादिना होता है। भावमर्यादा हानेके कारण मानमा मूर्ति कवि या गिल्पीकी इच्छा-शक्ति का विद्यमान है। मानमा मूर्तिकी बाह्य एव माध्यम सम्भूत रूप रचना कवि या गिल्पीकी क्रिया शक्ति का विलास होता है। हमारा सम्बन्ध रूप रचनामें क्रिया शक्तिके विलासम है। यहाँ माध्यम केन्द्रम्य होता है।

माध्यमके स्वभाव एवं धर्मके विषयमें लखन ऐरिक यूटनय ही प्रभावित हैं। जिनके अनुसार कलाकारकी अपनी इच्छा तथा माध्यम या उपादानकी प्रकृतिसे बीच [धर्म-य-जन्ता परक] द्वन्द्व चलाता है। जिन या जिन उपादानों से शहारे कलाकृतिका निर्माण होता है वे भी अपना व्यक्तित्व रखते हैं। उनका निर्देश मानना पड़ता है। उनको प्रकृतिके विरुद्ध यदि दलान उनका उपयोग किया जाय तो कलाकृतिकी चाटनाको नष्ट कर देते हैं। उपादान सहानुभूति चाहता है, सुलभा चाहता है मनुहार चाहता है।¹ अतः कलाकार माध्यमके स्वाभाविक आचरणकी उपाय नहीं कर सकता। कुशल निम्नी माध्यमके स्वाभाविक आचरणका अनुकूल घनाकर उसका ठीक-ठीक उपयोग करना है। हम जानते हैं कि क्लामिकल सौन्दर्यात्त्विक दृष्टिमें माध्यमकी इच्छाका अधिनायकत्व जाना है तथा रोमाण्टिक सौन्दर्यात्त्विक दृष्टिमें कलाकारकी इच्छाका प्रमुख। द्विवेदीनी इन जानाका ठीक-ठीक सन्निवग प्रतिपादित करते हैं।

कलाकार जिस प्रकार अपना इच्छाके साथ माध्यमकी मरतीका एकमेव करता है उसकी विधियाँ क्या हैं इनके स्पष्टीकरणके लिए हजारीप्रसाद द्विवेदीने बालिशासुको दृष्टान्त बनाया है। उन्होंने कालिदासकी कृतियोंमें व्यवहृत कुछ गणनाका चुनकर कला-सृष्टिके दृष्टियोंको उलघाटित किया है। यथा प्रदश-विनिवग या 'पयानुप्रवग', 'भावानुप्रवग', अयथाकरण, 'अन्वयन' आदि ऐसे ही शब्द ह जा दा इच्छाजाको एकमेक करनेकी विधियाँ और प्रक्रियामें-म कुछका दृष्टान्त दिग्गान कराने हैं। शब्दके अन्तरी अन्तःस्थि एवं प्रकारके पाण्डित्यके साथ उपरिष्ठ गणको पारिभाषिक बना लिया है। उन्होंने उक्त गण काय्य धर्म न चुनकर बहना चित्रकलाके क्षेत्रमें चुन है। यह एक अनिश्चित लाण्डिय धर्मा विनिष्टता है। किन्तु वेदना कालिदासकी कृतियोंके माध्यममें ही पल्लवित हानक कारण यहाँ उनकी सर्वोत्तम लाण्डिय-न्तव मीमामा निदान्त सोमित भी है गयी है।

लेखकने माध्यमके उपादानकी दृष्टिको अनुसार ही 'कारागर की धारणाका सवत किया है। कई निम्नी उपादानकी प्रकृतिके अच्छे पाता होनेके बावजूद अपनी कमजोर इच्छाकृतिके कारण, उपादानका निर्देश नहीं कर पाते। अतः व कारीगरकी मयागमें ऊपर नहीं उठ पाते। श्रेष्ठ कलाकार अपना सर्वोत्तम सज्जतकालके साथ माध्यमका गमा प्रयान्नाध्य निर्देश करन है कि कलाकृति श्रेष्ठ

¹ कालिदासका लातिव व जना १००३, और ऐरिक यूटन हउ 'दा म निग अँव शूरी' १००६ १००१।

बन जाती है। ऐसी कलाकृतिम कलाकारकी इच्छा शक्ति रचनाएँमें सहज एवं यत्नसाध्य प्रचेष्टाओंकी 'द्विसंध्या प्रीति' अर्थात् उभयनिष्ठा प्रीति प्राप्त करता है (उदात्तुव त प्रविदिश्य लाला द्विसंध्या प्रीतिमवाप लक्ष्मी)। ऐसी द्विसंध्या प्रीतिका भाजन बननवाली रचनाम कलाकारको सामग्री सग्रह करनी पडती है, उनकी प्रकृतिका अध्ययन करना पडता है वहाँ किने ग्वना ठोक होगा इसका विचार करना पडता है, अम्यास निपुण चित्तम प्रयत्न करना पडता है और तब जाकर वह श्रेष्ठ कृति बन पडती है। यह सार बलाकम यथाप्रदेशविनिर्देश' कहे गये है (सर्वोपमाद्रयसमुच्चयेन यथाप्रदेश विनिर्वागतम् । सा निर्मिता विदय सुजा प्रयत्नादकम्यमौत्थयित्थयेव ॥ कु० १/४९)।

माध्यमोपयोगकी एक दूसरी प्रक्रिया अयथाकरण (distortion) है। वस्तुतः यह उपानयके उपयोगम कलाकारकी वह स्वकीयता (तेरिजिनलिटी) है जिसके द्वारा वह बाह्यजगत्की वस्तुओंकी मानसी मूर्ति इस प्रकार बनाता है जिस प्रकार वह उनका अनुभव करता है, जिस प्रकार व उसकी इच्छा गति और स्वकीयताके अनुरूप होनी चाहिए जिस प्रकार व लौकिकमे अनुपम एवं अपूर्व एवं अलौकिक हो जायें। अतः वह बाह्यजगत्का ज्याका-न्या नहीं लेता बल्कि तथ्यात्मक बाह्यजगत्को यत्नता है अयथा बनाता है। अयथाकरण अर्थात् जाँसा है उस वसा ही न रहने देना (अयथाकरणकी यह धारणा सम्भवतः गाम्भीर्य का जाट ऐंड इयूनि नामक पुस्तकमे भी प्रभावित हुई है)।

अयथाकरणके द्वारा बाह्य जगत् ज्याका-न्या नहीं आता बल्कि उत्तम कान्तिका चित्रकार उमम कुछ और जोड़ता है—विचित्र अन्वितम् । यत्तस्यु न चित्र स्थान क्रियते तत्तयथा । तथापि तस्या एवम्य रमया विचिद्विचित्रम् ॥ (गु०) । अतः अन्वयन का तात्पर्य है वास्तविकतासे अधिक भाव परम्पराका उपानयन । अन्वयन कलाकारकी रचनात्मक शक्तिका परिणाम है जहाँ यह है-वह-हूँ की जपना कुछ अधिक देता है। जिस तरह बीणाक तास्का हल्का-न्या आघात कर देनेपर दर तक अनुरणन होता है जिस तरह अथकी व्यजना शक्तिका प्रसार भा 'अनुरणन-द्वारा होता है, वही तरह चित्र या मूर्तिकी भाव-परम्पराका दाघ फाल तक उत्पन्न करनेकी क्षमता अन्वयन है।

सांगणम अयथाकरण एवं अन्वयन रचना-योग है जो बाह्य जगत्क ममाज स्वीकृत रूपाना मानसी मूर्तिक अनुरूप बनाकर उन्हें अपूर्व, अनुपम,

बलौकिक, ललित और उदात्त भावना दत्त है। दोनों ही मायमक उपयोगका कौशल सन्निहित है। इनका सम्बन्ध मूलतः चित्र और गल्पमे, तथा सापक्षतया काव्यमे है।

कालिदासके चित्रकला-सद्वर्णने ही हजारप्रसाद द्विवेदीने दो अर्थ शब्द पारिभाषिक बनाये हैं—'भावानुप्रवेश एव 'यथालिखितानुभाव'। मानसी-भूतिकाके पद्यलुकीभावके द्वारा संचालित कलाकारकी तन्मयामदन-योग्यताके प्रभावका यह सबैत अत्यन्त महत्त्वका है। इसका सम्बन्ध कलाकार और पात्र या चित्रितव्यके बीचके स-हृदय व्यापारमे है। पात्र या चित्रितव्यने भावको ऐश और रगाम फिरमे प्रवेश करा देना चित्रकारका आत्मज्ञानपरक भावानुप्रवेश है। नतकके प्रसंगमें श्रेष्ठ कहते हैं कि 'नृत्यमजिम भावको प्रदर्शित करना है उसी भावमें नतकका निलान होना 'भावानुप्रवेश' है। वहाँ नतक नतितव्य विषयके साथ एकमेव हो जाता है।' इसके अभावमें अभिनय असफल हो जाता है। इसे स्पष्ट करनेके लिए लेखकने विक्रमावशीष नाटकके तीसरे अंकमें उद्योगीके अभिनयम प्रमादकी चर्चा की है। इस तरह 'भावानुप्रवेश, यत्तव्य विषयके साथ कलाकारका 'तन्मय' होना है। साधारणमें कलाकारके मानसिक माध्यममें 'भावानुप्रवेश' तथा कृतिके भौतिक माध्यममें 'यथाप्रदर्शविनिवेश' ही मिलकर कलाकृतिमें द्विसंश्रयाप्रौतिकी भाविता भरते हैं।

भावानुप्रवेशकी सफलताके बाद कलाकृतिकी पूर्णता सिद्ध प्राय है। इसके उपरांत आशंसा (एप्रिगियेशन) का भेद गुरु होता है। यह सहृदय हृदयलोक है। कला रचनाके उपरांत कलाकार भी एक सहृदय-आशंसक हो सकता है। गुरुत्वका चित्र बनाने समय दुष्यन्त गुरुत्वके भावमें भावानुप्रवेश कर गया, किन्तु इसके बाद वह तुरन्त 'यथालिखितानुभाव' की अवस्थामें पहुँच गया अर्थात् जमा निवा उम मत्स्य समझकर अनुभव करनेके कारण उममें चित्तगत प्रियार और उससे उत्पन्न स्वद रामावादि अनुभव उत्पन्न होने लगे। स्वयं निर्मित चित्रम उत्पन्न अनुभाव अपनिर्मित चित्रमे भी उत्पन्न हो सक्ते हैं। अतः चित्र या कलाकृतिका सफलताकी दो कमीटियाँ छटती हैं—कलाकारकी और-स भावानुप्रवेश तथा सहृदयकी वारम यथालिखितानुभाव या मात्र लिखितानुभाव। सहृदयपक्षका दूसरी अवस्था 'करणनिगम' का है। इसका निरूपण हम ग-क्षणेन कर चुके हैं। इस भाँति सजग एव आशंसाका एकान्त व्यापार परिपूर्ण हो जाता है।

अब हम विषय तत्त्वका निरूपण करेंगे।

यदि गौरसे दखा जाये ता हजारपसाद दिवदीकी लालिय मीमासाके मूल आधार मिथके (Myths), मिथकालेखन (Mythography) तथा मिथका लोचन (mythic vision) है । चिमय शिवकी सिसृग्भा, शिवका शिव शक्तिम द्विधा विभक्त होकर चिरतन आकषणसे व्याकुल रहता, शिवकी लीला-सखी ललिता, ब्रह्मके अग रूप जीवात्मामें इच्छा शक्ति एव क्रिया शक्तिवा द्वन्द्व, विश्वव्यापक छदाधारा चतय (शिव) और जडता (माया) का सघष आदि लेखनकी सृजनात्मक लालित्यधारणाके नाभिबिन्दु (फोकस) है जिनसे ही कालिदासके लालिय तत्त्वाके अन्वेषणकी विरणाका, तथा स्वयं उनकी स्थापनाओं की रग्नाओंका विकिरण हुआ ह । उनको लालित्य-मीमासावा तत्त्व और दशन इही मिथकोकी रहस्या-यात्मवादी बरवक धारणाआसे आच्छादित ह ।

किन्तु शैवदष्टिके साथ-साथ उहोने अनस्ट बेसारर, मुशाने लगर, मवसमूलर आदिकी दष्टियाका भी भारतीयकरण करके मिथक और भाषा, भाषा और वाक् आदिके सौदयतत्त्वाना अन्वेषण किया ह ।

मिथक मानवताके पूर्वतिहास (प्रि हिस्टरी) ह, मावजातिके सामूहिक अनुभव है पूवताकिक (प्रि लाजिकल) ह, अबचेतन अनुभूतियाँ ह, और देशवालयहिभूत मिथकीय चेतनाकी वाहक है । वसीररकी तरह द्विगनीजीका भा यही मत ह कि वाक (Speech) या भाषा और मिथक-तत्त्व परस्पर पूरक ह । वाकके साथ-साथ अब मिथक तत्त्वका आविर्भाव हुआ हागा तो अत्य शक्तियाकी रूप वरूपना की गयी होगी जिनका बेद्र करके उत्पन्न ध्यजन नृत्य चले हाने । ऐत्यक आदिमानवकी आरम्भिक मूल मानसी वरूपनाकी गवी एव शक्तिकी इच्छा-शक्तिम, तथा परवर्ती मिथक एव वाकम उस सम्मूर्तित करनके पयत्नाका क्रिया शक्तिज जोडते ह । इस भाँति व मिथकस सौधे धमका एकतान कर देते ह और अपने लालित्य तत्त्वदानकी नाब डालते ह । इसी क्रममें वे शिवगी मिथकीय विश्वव्यापिनो सजनात्मक शक्ति अर्थात् लीला-सखा 'ललिता' की धारणाकी व्याख्या करत है । अत ललित्याकी ब्रीडा एक रचना अर्थात् गृष्टि ह एव ललिताके ध्यष्टिगत (मानवीय) रूपकी रचना कृति' है । ललिता व सखा चिमय शिव है, ता कलाका सजक समाधिस्थ कलाकार । गृष्टि भी आनन्दमय ह तथा मानवीय गृष्टि अर्थात् कला भी । इसक वा तागरे सापान अर्थात् मोत्यके स्वभावक विषयमें नी व इसी मिथक तत्त्वका विस्तार करतै ह । किन्तु अब कालिदासकी जीवन-दृष्टिक साध्यमे । उनके अनुसार ('कुमार

सम्भव' में) "कविने यह घोषणा की है कि दवाधिदेव गिवन हा पुर्य और स्त्रीके रूपमें अपने-आपका द्विधाविभक्त किया है। इस पुर्य तत्व और स्त्री तत्वमें जो पारस्परिक आकर्षण है वह भगवान् शिवजी आदि सिमृधाका ही विलाम है। एक-दूसरेकी ओर आकृष्ट होकर वे उभ प्रथम शिवत्वकी अवस्था को ही प्राप्त करना चाहते हैं। विगुद्ध प्रेममें जो अद्वैत भावना आती है वह शिवत्वकी ही अनुभूतिका एक रूप है। इसी महान् उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर महाशिवने शिव और पावतीका सनातन पुर्यय और स्त्रीत्वका प्रतीक बनाया है।"

निष्कप रूपमें कहा जा सकता है कि शिवमियक और गैवयमके कालि दासीय परिवारके द्वारा हजारेप्रसाद द्विवेगाने लालित्य (=मानववृत्त सौन्द्य-मत्त्व) को आनन्द तथा मगल (शिवत्व) और प्रेमाकर्षण (शृगार) के चिरन्तन मण्डित किया है। अतः उनक 'लालित्य' को उस सौन्द्यका रूप माना जा सकता है जो मनुष्यके लक्ष्मिनावाकी अभिव्यक्ति करता है।

मनुष्यकी सिमृधा और सृष्टिको वे विश्वात्मा शिवजी सिमृधाका ही व्यष्टिगत अरूप मानते हैं और उसकी मन्त्रिमाकरणके लिए पुनः नाट्यशास्त्रकी एक मियकरा महारा लते हैं जिसमें बताया गया है कि भागयोनि हानक कारण देवता नाटकका अभिनय नहीं कर सकते। अतः केवल मुनि (मनुष्य) ही अपनी इच्छा शक्तिके बलपर दूसरेका अनुकरण कर सकते हैं। अतः मनुष्य की इच्छा शक्ति-द्वारा चाञ्चित लालित्य रचना सब प्रकारसे अपूर्व है। मनुष्य की कला रचनाकी प्रक्रियाको भी वे विधाताको महाभूत समाधि एव कलाकारकी पूज्यमाधिक मान्यपरक रूपके द्वारा करते हैं। नाट्यशास्त्रकी एक मियकराका द्वारा वे आगे भा नृत्य एव नाटकने ऐतिहासिक विकासकी अनूठी व्याख्या करते हैं "नाट्यशास्त्रमें अयत्र बताया गया है कि देवता नृत्य कर सकते हैं। ताण्डवके मूल प्रवर्तक शिव हैं, लास्यकी प्रवर्तिका पावती हैं। परन्तु देवता नाटकका अभिनय नहीं कर सकते। नय और नाटकका अन्तर स्पष्ट है। नृत्यमें बाह्य उपकरणकी आवश्यकता नहीं होती, नाटकमें हाता है। नाटक अनुकरण है, पर नय नहीं। इस बातका ऐतिहासिक विनाम-क्रमकी दृष्टि देखा जाये तो इसका अर्थ यह होगा कि नाटक मनुष्यके मानाभिनयकर वास तत्त्वक पयात आयत्ताकरणके बादकी कला है। यह उस समय विवसित हुआ होगा जब धर्म और पन्थका निष्क पूज्य हो गया होगा।

१ कालिगसकी लालित्य-वाग्ना, १० १४।

पर नृत्य उसने पूवकी कला ह। कदाचित वह मानवपूव ह। वह उस समयकी कला ह जब वाकतत्त्वका पूण उभेप नहीं हुआ था अथात जब पूं और पदाय विविक्त नहीं थे।^१ यहाँ लेखक मिथकसे इतिहासकी ओर अपसर होते हैं। तथा कला इतिहास सम्बन्धी अपनी दिशाका प्रथम उल्घाटन करते हैं। सिसभासे सृष्टि, मष्टिसे मिशक और मिथकसे इतिहास यही उनका विश्लेषण रेखा ह। सारासम, उनकी लात्तिय तत्त्व सम्बन्धी प्रत्येक स्थापना किसी मिथककी व्याख्यामे नि सृत ह या फिर कालिदामके किसी सौदयावयनसे। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टियाम वे अपनी स्थापनाआना अनुमोचन करते ह।

वाक, उच्चरित वाक् और भाषाकी तत्त्वभोमासामें परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरीकी धारणाआकी अपना कसोरर, लैगर आदिस पयाग अभिभूत ह। वाक् चयामें वे शुरुआत तो अपनी मिथकाध्यात्मिक लात्तिय ंष्टि स ही करते ह, किन्तु समापन आधुनिक वाक्यम। उहाने लिखा ह कि "अन्स्ट कसोररका कहना ह कि किसी वस्तुको प्रत्येक इन्द्रियके द्वारा सश्लिष्ट रूपमें ग्रहण करना आदिम मनुष्यक लिए सम्भव ह। यह सश्लिष्ट रूप किसी एक धाणकी रचना नहीं हागी। धीर धीरे इसके सस्कार सचित हुए होग और अन्तम ममस्त ऐन्द्रिय अनुभूतियाने सश्लिष्ट रूपने उच्चरित वाक्के रूपम अपनको अभियक्त किया होगा। 'गति में रूपान्तरित हानपर उभने उल्लासके रूपम और 'शब्द म उल्लसित होकर सगीतात्मक नामें अभिव्यक्ति पायो होगी। धीर धीरे भेष्का विवेक स्पष्ट हान लगा होगा और भाषाका बनाव क्रमश जातिमे व्यक्तिकी आर हुआ होगा। इसका मतलब यह हुआ कि वाक् का प्रथम स्फोट या प्रास्टप बहुत-कुछ भारतीय आचार्योंका बताया हुई उस पश्यती वृत्तिर रूपम जिममें पद और पदाय एकमेव हाकर रह हाग, दूसरा स्पाट मध्यमा वृत्तिके रूपम जिमम पं और पनाय अलग हाकर भी भाव (Notion) के रूपम प्रकट हुए हागे और तीसरा बहुत-कुछ वयग वृत्तिके रूपमें जहाँ पं और पनाय एकदम अलग हा गय हाते हैं, हुआ हागा।'^२ इस तरह लेखने आधुनिक पण्डितकी बात ग्याख्या एक भारतीय तत्त्वचिन्तनके उगकी समानधर्मिताका साराणीकरण कर लिया ह। वाक् और मिथक इस

१ लात्तिय पृष्ठ १० १६ तथा नाटयशास्त्रकी भारतीय परम्परा और दरास्वरका भूमिका और 'परिषद् परिभा'में प्रकाशित लेखका पद-पदाय विवेचना।

२ लात्तिय पृष्ठ १० १२।

एकमेक धारणे विषयमें वे कहते हैं कि "मिथक-कल्पनाओंको आजका मानव-विज्ञानी आमवचनता नहीं मानता। वह भी वाक्-तत्त्वकी भाँति मनुष्यकी महज साना गतिका ही निष्क रूप है। वाक्-तत्त्वकी भाँति मिथक तत्त्व भी मनुष्यका मजना गतिका कहानी बताता है और उसने पूरके रूपमें युगपत् उत्पन्न होता है। भाषा वस्तुतः विचारके ऊपर काली छाया डालती है जो तबतक दूर नहीं होगी जबतक भाषा विचारके साथ एकमेक नहीं हो जाती। मिथक तत्त्व भी भाषाकी भाँति है मनुष्यका निश्चित मजना गतिका विलास है। अगर वह आमवचनता है तो वाक्-तत्त्व भी ऐसा ही है। अन्ट समीरकी इन रापोक्तिमें सार है।^१ हम जानते हैं कि जात्र बट्टेण रमल विटगोम्यादन कानाय आदि भी भाषाके अथ (प्रायः), तत्त्व (पत्र) अनुभूति और साथकी समम्याजसि इमी तत्र उच्ये है। कवि वागीका मस्वाग्गर्ना होता है। कालि-दाम मनीषाता बहुत उत्तम गुण मानते हैं और मस्वारवनी वागीका प्रशंसा करते हैं। एक जगत् ता उसे पावत्री और गगामे तुर्नीय मानते हैं (कुमार० १-२८)।

किन्तु भाषाकी सीमा है (जिम 'आमवचनता या पण्डितराज जगन्नाथ सम्मत 'अनिवचनीयता' या सम्मत सम्मत 'जायात्तिनातिरेव वा कटा गया है) "पद-पत्रपर मानव चित्तक अपार औसुक्यकी प्रकट करनेवाली च्छा गति भाषाकी सीमासे टकगती है। अपना अनुभूतिको जब भाषा द्वारा सीधे नहीं प्रकट कर पाती तो उपमाका सन्नाह लेती है। क्या लाल ? जमी कि जमुज वस्तु हाती है, वैसा। उसमें भी काम नहीं चरता तो उत्प्रेक्षाका महारा लनी है। यदि अमुक वस्तु अमुक वस्तुसे युक्त होती तो जसा हाता वैसा। पर काम क्या चरता है।" लम्क गन गन 'बाव्यभाषाक अन्वार-विधान और वक्राति गीकी धार उभुग हाता जाता है। भाषाकी यह चित्र निमाण-गति दस्तुत मिथक-कल्पनाओंसे बनती है। लेकिन उपमा और रूपक धरा चित्रवि सहाते उन मारो दानाका चरनेमें अममय गते हैं। भाषाका चित्रधम अलदाममें व्यक्त गता है—अधातुवागमें। परन्तु यमें गति के आनेका काम संगीत काय करता है ना छत्रम, पत्रगुम्फने यमवमे, अनुप्राससे चित्रका गतिमय बनाता है। ये गीना तत्त्व अयमें गरिमा भरते हैं गति देते हैं उपनोग्यता और अयमें यथापता गते हैं। इहाक द्वारा साधारण प्रयय 'यथाय' बनता है। अदतन्व और संगीत-दृष्टका पृण सामजस्य

१ नाभिय तरु, पृ० १३

२ वही, पृ० १४।

'कलाभावा' का काव्यभाव ही ध्यान में परिणत है।
 अतः काव्यकी शक्ति प्रजापतिवाद द्विवेदी का नान्य कृत है।
 परिष्कृतमान जगतकी सचाई व्यक्तियुक्त नहीं बल्कि सन्निध्य सचाई।
 किन्तु अत्रार्थान् जो दा स्युक्त नहीं हैं यद्यपि अन्तःप्रकाश अनुभूतिप्राप्त सच
 नी गमात्रचिन्तकी सचाई है। मूल समया अन्वितिकी और अथका है। भा
 अथामि (गजाम) नादके लिए नहीं बनता। वह समाजचित्ता अनुभूति
 शान्त है। अन्तःप्रकाशकी अनुभूतिप्राप्ति लिए जो भाषा बनो है उससे व्यक्तित्व
 पूरा-पूरा कभी मनुष्य नहीं होता और अन्वितिकी व्यक्तियामें अन्तःप्रकाश बना रह
 है। गमात्रचिन्तकी परिवर्तित करना इस क्षेत्रमें कठिन कार्य है। कलाकारका य
 कता पता है। वास्तव तथ्यात्मक जगत् मनु जगत् जगत् व्यक्तित्वचित्रता क्या है
 नी दयता जगत् समाजचिन्तना बना जाता है। अन्वितिकी निर्माणामुक्त
 प्रशिक्षण वास्तवगत समाजस्वीकृत रूपोंको जानकर सही अर्थोंमें उपलब्ध कराती
 है। मनुष्यका तन्मात्र भाषाको दा है। अतः अनुभूति जैसी भाषापर
 अवस्थान विरूपेणमें वह अन्वितिकी है। अन्वितिकी का कारण यही है।

कान्यभाषाके विरूपेणके उपरान्त हजारप्रमाद द्विवेदी 'कलाभावा'के
 विरूपेणकी महत्त्वपूर्ण लिगाएँ खोजत है। इनके हेतु वे काव्यभाषाक भाव में
 वारम्भ करते हैं। इसका दलान परिणाम यह होता है कि कान्यके अलावा चिन्त
 मति नात्य नत्य आदि सभीके लालिभानुभवको रसानुभव माना जाता है।
 ऐतन्नाका मत है कि पुत्र-पुत्रके लालिभानुभव में लालिभानुभव उपलब्धिमें
 योग्य ही है। धारें हीर भेदका विवेक स्पष्ट हान लगा हाया और भाषाकी
 क्रमशः जातिम व्यक्तिकी भार हुआ होगा। इसका मतलब यह हुआ कि वान
 का प्रथम स्फोट या प्राकट्य बहुत-कुछ भारतीय आचार्योंकी बनायी हुई उम
 पदयन्त्री यृत्तिरे रूपमें जिममें पद और पदाय एवमर हाकर रहे हाग, दूसरा
 स्फोट स्फुटमा यृत्तिरे रूपमें जिसमें पद और पदाय अलग हाकर भी भाव
 पदायके विवरण पूरि मियकमे और इन दोगाकी पूरि लालिभानुभवका आशय लिया। प
 अतः सूत्रम जगतकी मानसोमत्तिकी रचाका सम्बन्ध भावागतके है। मानस
 जगत्का अथ भावागतका अथ है। किन्तु वाक्याय तो रसानुभव तत्र जाकर
 विश्रान्त होता है। और मय अथ एव अनुभूतिवा विषय न होकर स्वय अनुभूति
 है। अतः भाव और रूपके सम्बन्ध भाषाकी सामारो लान जाते है। इसीलिए
 काव्यभाषाकी अथभा अन्वितिकी हो जाता है यद्यपि भावरूपमें ग्रहण कराता
 (इच्छा) और गृहीत भारो पुन अभिव्यक्त करना (प्रिया) अपने आपमें अत
 नी है। मनुष्यके अन्वितिकी बनानी मोमाहीन अभिव्यक्तिकी ध्यानुक्तता

१ अन्वितिकी लालिभानुभवको पृ० ११५।
 २ कालिदास और लालिभानुभव १० ८।

एकमेक श्लोकके विषयमें वे कहते हैं कि "मित्रक-नल्पनाश्रया आज्ञा मानव-
 विधानो आमवचना नहीं मानता । वह भी वाक्य तत्त्वकी भाँति मनुष्यकी सहज
 सज्जना गतिता ही निदग्ग रूप है । वाक्य तत्त्वकी भाँति मिथक तत्त्व भी
 मनुष्यका मज्जना गतिता कर्तनी वताता है और उसके पूर्वके रूपमें युगपत
 उत्पन्न होता है । भाषा वस्तुतः विचारोंके ऊपर वाली छाया ज्ञानी है जो
 तबतक दूर नहीं होगी जबतक भाषा विचारके माध्य एकमेक नहीं हो जाती ।
 मिथक तत्त्व भी भाषाकी भाँति ही मनुष्यको निश्चित मज्जना गतिता विलास है ।
 अगर वह आमवचना है तो वाक्-नल्प भी ऐसा ही है । अन्तः परमेश्वरकी स्तु-
 रापात्रिमें मार है ।" हम जानते हैं कि आज बड़े-बड़े रमल, विद्वान्, आदर
 काताप आदि भी भाषाके अर्थ (पदार्थ) तत्त्व (पर), अनुभूति और सत्यकी
 समझावमें इसी तरह उलझे हैं । कवि वाणीका सम्बन्धही होता है । कालि-
 गम मनीषाका बन्ध उत्तम गुण मानते हैं और सम्भारवती वाणीकी प्रशंसा
 करते हैं । एक जगह तो उस पावनी और गणायें तुम्होप मानते हैं (कुमार०
 १-२८) ।

किन्तु भाषाकी सीमा है (जिसे आमवचना या पण्डितराज ज्ञानाथ सम्मत
 'अनिवचनीयता, या मम्मट सम्मत 'वाक्यान्वितातिरेक वा क्त' गया है) पद
 पत्र मानव-चित्तके अपार औसुक्यकी प्रकट करनेवाली चट्टा गति भाषाका
 सीमायें टकराती है । अपना अनुभूतिका जब भाषा द्वारा सीधे नहीं प्रकट कर
 पाती तो न्यमाका सहारा लेती है । क्या लाज ? क्या निःशुभक वस्तु होती है,
 वैसा । उसमें भी काल-मिथक-एक रक्षाकोशिका सहारा लेती है । यदि अमुक वस्तु
 अमक कर्तनापात्री भी परिकल्पना करते हैं ।

छ

मानव-तत्त्व, गति-तत्त्व और मिथक-तत्त्व माध्य लेखने लाक-नल्पका
 सयोग कराने चतुरस्र लालित्य विधातना आन्तरिक परिणाम (सुपरन्युक्चर) वडा
 विधा है । अमोक्तक लालित्य-तत्त्वके अतगन यह तत्त्व समाहित नहीं ही पाया
 है किन्तु गिनी साहित्यका भूमिका में सतारे लाकानुभव एवं लाकमदके
 अतगन प्रावण भारतके कर्णामर विना में वीणाशक्ति अन्तः, 'वागमदकी
 आमकथा में उत्पत्ता, उगसों आयाजना आधिक अतगत, 'वागचन्द्र लेख
 में दिवकतियों एव मौनिक परम्पराओंकी व्याख्याओंके अन्तः परने अपने

१ कानिदासकी लालित्य-संज्ञा, पृ० ६१ ।

२ कानिदासकी लालित्य-संज्ञा पृ० १०४ ।

लोकतत्त्वकी मानवतावादी और उदारतावादी दृष्टिको प्रकाशित किया है। लोकतत्त्वके अनुशीलनमें हम पाते हैं कि "आचार, रीति रिवाजमें लेकर धर्म, दशन, गित्य सौंदर्य तकमें सबत्र नये सिरसे साननकी आवश्यकता है। कोई नतिक मूल्य अन्तिम नहीं है। कोई गित्य विधि सर्वोत्तम नहीं कही जा सकती, कोई अभिव्यक्ति-पद्धति सबश्रेष्ठ नहीं हो सकती। इस तरह लोकवादी साहित्यन अभिजात साहित्यको यथाय परिप्रेक्ष्यमें देखनेकी दृष्टि है।" ^१ लखने लोकतत्त्वका उपयोग मूलत इतिहास लेखन—हिंदी साहित्यके इतिहास तथा उपयोगमें कलात्मक इतिहास लेखन—में किया है। इतिहास और गीतके अन्त मन्व-धोकी विवचनानामें लोक अथवा लोक वातार्तत्व (Folklore element) अनिश्चय हाता है। लालियमें इस तत्त्वके समावेशकी हम प्रतीक्षा करेंगे क्योंकि इसमें उनके मिथवाध्यात्मिकमें एक एकनकारो परिवर्तन भी सम्भव है। मिथकस इतिहासमें आनेपर और सामाजिक इतिहासका लालियमूलक धारण करनेपर लोकतत्त्वकी समाहित करना ही पगा। यह हजारप्रसाद द्विवेदीका स्वभाव भी है और यही उनकी जीवन-दृष्टिका सर्वोत्तम अद्भुत भा है।

ज

हजारप्रसाद द्विवेदी स्फुटत कुछ सृजनात्मक कथाआपर विचार किया है। लालिय तत्व में नृत्य और गायकपर कालिगमकी लालिय याजना में विशेष परिपक्ष्यके वाले तत्वमें कायपर मुख्यरूपमें विचार किया गया है। इसके पूर्व वे मनाविनायक प्रयाजनवा लेकर 'प्राचिन भारतके कथात्मक विनायक पुस्तकमें वात्स्यायन प्रणीत कलाओं एवं विद्याओंका व्यावहारिक निरूपण कर चुके थे तथा वाणभट्टकी आत्मन्या म भी उनके ललित कलाओंका मामला कर चुके थे। इन प्रसंगमें उन्होंने लालिय के अन्तगत भाषण आनन्द और मन्वय प्रयाजनाको लेकर कुछ सृजनात्मक कथाआपर विचार किया है। इन विचारमें उनकी दो दृष्टियाँ प्रकट हुई हैं— १ गति और स्थिति अर्थात् दृष्टा गति और त्रिया गति अर्थात् घन और जलक डडम ही रूप माता है छन्द बना है गीत बनना है, नृत्य बनना है। इनका सामर्थ्य मात्र गीतयका दूतारूप है जो भाषाम छन्दमें मिथक रूपमें नृत्यम गानमें मूर्तिमें चित्रमें सगाचारम कथन-आपको प्रकट करता है। और २ गायककी भिन्नताके कारण कीर्तना निपता हुई और दोनों भेदोंके विवेकसे विभिन्न कलारूपाका उद्भव हुआ। कलाआनन्द उनके प्रकृतिके मूल कारण य ही दो हैं।

१ 'साहित्य' पृष्ठ १०३४।

मबस पहल नृत्यका लें । नृत्यक प्रागतिहासिकमूलक और सभी आदि जातियामें मण्डलावत नृत्यके पाय जानेकी खोजसे सहमत होकर लेखक कहत कि नृत्यका मूल प्रेरक मनोभाव उल्लास ह और विविध प्रकारकी चारियोंसे बलवित ताल-द्वारा नियंत्रित धारावाहिक मण्डलावत नृत्य जीवनके किसी अनात रहस्यमय कदसे उल्लसित ह । निश्चित रूपम वे इस अनात रहस्यमय क्षेत्रकी खोज गैव और गान् मिथकाम ही करते ह । व बताने ह कि त्रिपुर नियनके बाद शिवका उल्लास-नतन ताण्डवका मूल ह । ताण्डवम गिव उमत्त हा उठ ये निरदृश्य निर्वाधि । अत उन्हें सयन करना आवश्यक समयकर पावतीने लास्य नृत्य किया । इस नृत्यका प्रयोजन था अथ था । अर्थात् लास्यम रस और भाव दोना ये । इस तरह ताण्डव आदिम नृत्य ह जो रस भाव विवजित ह तथा लास्य मनुष्यकी सजनेच्छा-द्वारा चालित रस भाव समचित ह । अनात एव रहस्यमय कदसे संचालित होनेके कारण ताण्डवका अथ मात्र मागल्य' ह जिसे आधुनिक मानव विनानियाकी भाषाम 'मजिकल ट्रिप्टान' कहा जाता ह । इस तरह लास्य एव मानवीय सजनात्मक कला ह, उसकी सजनात्मक वृत्ति द्वारा सँवारा हुआ एक ललित रूप ह ।

नाटकपर विचार करते समय भी व 'नाट्यशास्त्र' म वर्णित एव मिथकका सहारा लत ह । उस कथाम बताया गया ह कि दवता नृत्य तो कर सकत ह किन्तु नाटकका अभिनय नहीं क्याकि व भोगयानिक ह । नाटकमें फणगम तक पहुँचनेके लिए नायकको धीरावात हाना पडता है जब कि दवता धीराद्धत हात ह । अत नाटकके क्षेत्रमें मनुष्यकी महिमा सर्वोपरि ह । इसके अलावा नाटकधने पूणाग रूपकामें दो ही पूणाग रस—वार और शृगार—माने गय ह जिनम उत्तम शृगार हा ह । यह भा मानवकी इच्छा शक्ति ही भावलाय ह । नाटक अनुकरण ह और मानवीय सामर्थ्यक अन्तगत आता ह । नृत्य और नाटकका तुलना करव लग्य कहत ह कि नृत्यम वाह्य उपकरणाकी आवश्यकता नहीं हाती, नाटकम हाती ह । नाटक अनुकरण ह पर नृत्य नहीं । परवर्ती नृत्यामें आगे चलकर मुम्बवास और विविध प्रकारक वस्त्राभरणका उपकल्पन हुआ हागा जिसमें नृत्यम नाटकीय समावग हुआ हागा ।

चित्रकलापर विचार करनम व मिथकीय वाचका अबलम्ब छाट पाय ह । प्रागतिगामिक युगमें दोवारा और गुफाआम विभिन्न आत्मानवकी रूप-मूर्ष्टि का समाजशास्त्रीय कारणो—? हरिणक चित्रणत हरिणाका वडिमें विन्वाए तथा २ चित्रको वास्तविक वस्तुका प्रतिनिधि माननमें विस्वाम—का व भा स्वाकार करने ह । व क्रोवरणा यह निष्कप भी स्वीकार करत ह कि आत्मानव सन्तुलित दृष्टि

की रूपरचना मागल्य मूलक थी भयमूलक नहीं। उन दिना इस प्रकारकी मागल्य मूलक रूपरचनाको तांत्रिक सृष्टि या मजिकल क्रिएशन कहा जाता था। अतः द्विवेदीजी सहजतापूर्वक अपने लालित्य तत्त्वमें मिथकाध्यात्मिक स्रोतसे आये हुए 'आनन्द एव मगल के मूल्य प्रयोजनको आधुनिक अनुगामिता भी प्रदान कर देते हैं। वे शिवकी आदि सिसृग्ना अर्थात् ललितकालिका मनुष्यकी प्रथम रूप मूर्ष्टिकी आनन्दहेतुक सिद्धिके समान एव समानान्तर स्थापित कर देते हैं। इसके साथ ही कालिदासकी 'लालित्य योजना' और 'बाणभट्टकी आत्मकथा म आय चित्र कला प्रसंगाके माध्यममें वे चित्ररम तथा चित्रकलाका रचना प्रक्रियाका भी अन्वेषण करते हैं। 'अवयवकरण', 'यथालिखितानुभाव', 'अवयव' आदि लालित्यमूलक पारिभाषिक शब्दाका वे चित्रकलाकी रचना प्रक्रियाके द्वारा ही गढ़ते हैं। लेकिन वे सद्म मूल चित्रकलाके न हाकर भट्टकविकी कृतियामें वर्णित चित्ररचनाके हैं। अलवत्ता वे कालिदासकी कृतियामें वर्णित चित्रकलाके प्रसंगाके आधारपर 'विद्धचित्र' 'भावचित्र' एव 'रसचित्र' नामक तीन भेदका विरूपण कर डालते हैं जिसके लिए 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' 'चित्रसूत्रम्', 'अवनीन्द्रनाथ ठाकुर कृत पद्म मीमांसा' न० ४० मेहता कृत 'चित्रमीमांसा आदिका भी सत्यायता ला गयी है। सा, जिस चित्रम यथा प्रदेशविनिवेश हा अर्थात् जिनमें कलाकार हृदय-हृ चित्रण पर वह विद्धचित्र है। इसमें चित्रकार यथासम्भव असम्पूक्त रहकर सफल हाता है। कालिदास विद्ध चित्रको श्रेष्ठ कला नहीं मानते जान पड़ते। भावचित्रमें किंचित अवयव हाता है तथा चित्रके दशनाय स्थलमें मानसिक भावोंका भावानुप्रवेश हो जाता है। इस दशामें दशकमें यथालिखिता नुभाविता की मिथति होती है। रसचित्रमें समूचे वातावरणका याचना हाती है। वातावरणके कारण ही जो सबीह हाता है वही रसचित्र बन जाता है।

द्विवेदीजी कालिदासके आधारपर भी नृत्य और चित्रका अभिन्नताका दिग्दर्शन कराते हैं। चित्रसूत्रमें चित्रको श्रेष्ठ नृत्य कहा गया है क्योंकि उसमें भावभंगीकी गति हाता है। य यह भी स्पष्ट करत है कि वस्तुतः चित्रकार रगाव माध्यमसे ही चित्रको जादूत (भावचित्र) तथा रसयुक्त (रसचित्र) बनाता है। इसीलिए भारतीय कलाके आचार्य रगाका बहुत अधिक महत्त्व देते हैं।

अतः मूल चित्रकी व्यावहारिक जम्हा-टवादा समाधार लिए और माध्यम के अनुगाम्यता तथा इच्छाके निर्देशके लिए वे कालिदास रिक्रमिके चित्रकार धाट्टिकेला कृत 'समुद्र तटमें बहकर आई वावसा शीपक चित्रकी व्याख्या भी करत हैं जो एलिन्स कृत 'एस्थेटिक्स एण्ड जेस्टाल्ट' शीपक पुस्तकपर आधृत है। एतन्ना यह विषयना 'आलोचना में प्रकाशित विगुणा और मृगगा

स्वरूप' शीघ्र लक्ष्य दृश्य है।

वाच्य सम्बन्धी उनके विचार इसी मानायाफक च-गण्डम विवचित मियक तत्त्वके अन्तगत वाककी मीमामामे प्रस्तुत कर दिये जा चुके हैं।

अनेकानेक सुट्टुमार (नारी-) कलाआ, गोष्ठी कलाआ, विद्याआ, गह कलाआ, आदि जसी लघु कलाआके निरूपणके लिए उनकी 'प्राचान भारतके कलात्मक विनोद नामक पुस्तक पठनीय है। इसमें वात्स्यायन कृत कलाआन वर्गीकरण, तथा ससृष्टक रमात्मक साहित्यका उपजीव्य बनाया गया है।

इस तरह हम देखते हैं कि लेखकने कला प्रकारका एक क्रमिक एवं पूण निरूपण नहीं किया है जो उनके 'लालित्यशास्त्र की कमी है।

३

सबसे अन्तमें हम हजारप्रसाद द्विवेदीके 'कला-इतिहास' एवं 'कला-इतिहासलक्षण' पर विचार करेंगे। यहाँ भा लेखककी इतस्तत तथा विचररी हुई मायताएँ मिलती हैं, क्योंकि उन्होंने लालित्य तत्त्वपर अपन पूर प्रथका प्रणयन अभी तक नहीं किया है।

उनके इतिहास' नामकी यथार्थोभूत आदसवाणी झाँकी तो 'चारुचन्द्रलख में मिलती है जिसे हमने आलाचना (१९६४) के एक लेखमें निरूपित किया है। लकिन कला इतिहासदानकी शलक मुख्यत लालित्य तत्त्व 'गोपय गोप पत्रमें ही पायी जाता है। इसके मुकाबले कला-इतिहासलक्षण सूत्र हिन्दी साहित्यकी 'भूमिका' (पुस्तक) और 'लालित्य तत्त्व' में विखरे है।

उनके कला-इतिहासदानका दो धाराएँ हैं 'मियकीय और 'आध्यात्मिक'। मियकाय दृष्टिस के मानत है कि नृत्य और नाटकमें, इनमें-म विगपत नृत्यमें मानक-पुत्र तत्त्व अधिक है। ताण्डव एक उत्लास नतन है जिससे शिव उमत्त हो उठे थे। ताण्डवका लयीभूत मानस-संस्कार अस्पष्ट है, अयक्त है और यह आदिम है। किन्तु यह मागय मूलक है। अत आदिम मानव कलाएँ आनन्द एवं मगलक प्रमाजना या मून्याने पूण है। किन्तु शिवक नृत्यका पावतीक लाम्य नृत्यने अश्रिय सँवारा। अत यह ललित प्रयत्न है। इस तरह कला-इतिहास' आदिम स्वच्छतासे ललित मानवीय बाधकी ओर उमत्त होता है क्योंकि इनमें मानवीय क्रियाशक्ति भी सम्मिलित है। लेखकने इस सजनात्मक गतिकी तुलना पावती अथवा अय्यस्त श्रद्धा (शिव) की सिमुगा रूप बनना सामय्य ननवाला शक्ति तमानस का है। चिमय शिवकी लालित्यकी नाम ललित है और ललितकी प्रिया-शीलता ही मानवचित्तमें सौन्दर्यका आवरण है सौन्दर्य रचनाकी

सन्तुलित दृष्टि

प्रवृत्ति है सौन्दर्यास्वादनका रस है। इस तरह कला मनुष्यके लालित भावाकी अभिव्यक्ति है। अतः वे मिथकीय चेतनाकी सामूहिकता आनन्दामुखता, तथा मागल्यकी कला इतिहासदशनके तत्त्वाने रूपम प्रतिष्ठित करते हैं। लेकिन मिथकीय चेतना भाषा पूर्व अवस्थावाली होनी है। अतएव लेखक कोई अज्ञात, रहस्यपूर्ण, विश्वव्यापक विशुद्ध कर्त्रीय शक्तिके अवचेता (अनकाशित) बोधको वाक् तत्त्वके साथ जोड़कर कला इतिहासदानके आध्यात्मिक आयामके उन्मीलनकी अपनी सहज वक्तिका भी प्रकाशित करते हैं।

मिथक-कल्पनाएँ ही कला और धर्ममें सस्कारित होकर ऐतिहासिक चेतनाका आयत्तीकरण करती हैं। लेखक लालित्य तत्त्वमें मिथकीय चेतनाका, तथा मानव तत्त्वमें धार्मिक चेतनाका सामञ्जस्य करते हैं। फलतः वे मानते हैं कि इस विश्व-व्यवस्थाके मूलमें एक व्यापक छद्म है जो समष्टिगत चितशक्तिकी सिसृक्षा है। विश्वमूर्ति शिवकी सिसृक्षाने ही उसे स्त्री और पुरुषमें द्विधा विभक्त हानेकी प्रवृत्त किया था। यह परस्पर आकषण ही शिवकी आदि सिसृक्षाका विलास है जिससे वे उस प्रथम शिवत्वकी अवस्थाको ही प्राप्त करना चाहते हैं। यही आकषण सौन्दर्य और लालित्य है।

अनादि या मूल चतुस्रधारा (?) शिवकी इच्छा शक्तिज्ञा ही रूप है। वह गति मात्र है। क्रियाशक्ति स्थितिमात्र है। गति और स्थितिका यह द्वन्द्व निरन्तर चलता रहता है। इसीमें रूप बनता है, छत्र बनता है, सगात बनता है, नृत्य बनता है अर्थात् कलाआनन्द सजन होता है। काल और देश जयति इतिहास और भूगोलके साथ भी क्रमशः इच्छा और क्रिया सम्पन्न है। अतः देवकालके द्वन्द्वसं जायन रूप लेता है, प्रवाहके रूपम। इसीमें धर्माचरण बनता है, नतिकता बनती है। इस भाँति लेखकने दो द्वन्द्वके माध्यमसं जीवा और रूपनी रचनाका विव्याम किया है। और, इन गन्तवा अभिभूत एवं अन्तर्प्रयित करके जो सामग्र्य भाव है वह सौन्दर्यका दूसरा रूप है। अर्थात् वह मानवनिर्मित या उसका इच्छा शक्तिका अनुपम विलास है जिस 'लालित्य' कहा गया है।

साराममें शिवशक्ति द्विधाविभक्ता हानेके फलस्वरूप परस्पर आकषणकी वृत्तिका वे कामव उत्पत्तीकरणमें अन्तर्प्रयित कर दते हैं जिसमें रमणीय सौन्दर्य प्रेम तपस्या और मगलम मण्डित हाकर कामाध्यात्मका उन्मेष करता है। वे इच्छा शक्ति और क्रिया शक्तिक परस्पर सम्बन्धमें ही कलाका रचनाका दान पाते हैं जिसके अनुसार चित्रमय शिव संगम है। और ललितता उनकी लीलातन्त्री। मनुष्यका इच्छा शक्ति एवं क्रियाशक्तिक द्वारा रचित कलागुण्टि भी उसा विश्व-व्यापक लीलाका ही अंगरूप है। इस भाँति कला इतिहास विश्वव्यापक है,

चिरत्न ह, और एउ समष्टि-मानवचित्तका ही परिणाम है। सारागमें कला इतिहास विश्व मानवकी सजनामक इच्छा शक्तिका अनुपम ललित विलास एव अभिन्नकित है जो इच्छा क्रियाकी, गति स्थितिकी, देग-कालकी द्वन्द्वप्रयास सचालित होकर कला-मज्जामें फलवित्त-मुष्पित हाती ह।

उक्त द्वन्द्वप्रयोगके अलावा जड चेतनके द्वन्द्वको भी रखकने कला इतिहास दगनका आधार बनाया ह। क्रिया शक्ति जड है। इच्छा शक्ति चेतन। इच्छा गति ह, और गति चित्तत्व है। क्रिया स्थिति ह और स्थिति अचित्ततत्व ह। अतएव हर कला प्रयासमें कलाकार जड सामग्रीक सम्बन्धमपर विजय पानेका प्रयत्न करता है। लेखकक मतानुसार "मनुष्यके कलाप्रयत्नाका अर्थ हा ह जडताम सघष। हम किसी मूर्ति या चित्रको देखकर या कविताको सुनकर फूँक उठने है ता वस्तुत हम जडके गुणवाक्यपणस मुक्त होनेका अनुभव करते ह।" इसी मन्त्रमें वे प्राक शीमकी उस धारणाको बताते हैं कि नृप्य वस्तुत जडक गुणवाक्यपणपर चेतनका विजयेच्छाका प्रयास है। लेखकने यह बात इच्छा-शक्ति एव क्रिया शक्तिक द्वन्द्वक फलस्वरूप कला-जन्म मदी स्थापना का है। सारागमें हजागप्रसाद द्विवेदीक कला इतिहासग्रन्थामें काल विगन्तन (काल) सम्क्रमिक (मास-मन्टनियम) अपरिवर्तमान (unchanging) तथा विगुद्ध चेतना हा जाता ह। फलके इस महाकाल कहते थे, कालवना कहते थे, इतिहास दवना कहते थे। किन्तु इस मन्दभमें वे इसे 'विश्वव्यापक छायाधारा' क रूपमें प्रतिष्ठित करते ह। यह छायाधारा ही शिवकी माननामक इच्छा शक्ति ह गति है और चेतनघम ह। और, यह छायाधारा मानवचित्तमें भी प्रवाहित ह। यहा छायाधारा भाषामें मिथकमें धर्ममें काव्यमें मूर्तिमें चित्रमें बहूधा मानवीय इच्छा शक्तिका अनुपम ललित विरास ह। अत यह मौल्य है।

इसके बाद हम लेखकके कला इतिहास लेखनका मर्मोपग कर सकते ह। कला इतिहास लेखनमें वे बहुधा मानव विज्ञानका महारा लते ह विशेषत कलाका के उन्ममके कालक्रम निवारणमें। जिस प्रकार कला इतिहास ग्रन्थामें उहाने विचारत्मक गिर और अग्ररूप मानवक सम्बन्धमें यह आध्यात्मिक मध्य पाया था कि मानवचित्त एउ ह उसा तरह कला इतिहास लेखनमें व नूतत्व विज्ञान एव आत्मि-मानवकी कला-रचनाके आधारपर यह तथ्य स्वीकार करते ह कि मनुष्य एक हा जीवधेणी (species) का प्राणी ह। यह बहुत मन्त्रवपुण उप-शक्ति ह जो वाक्य कला इतिहास दगनक ममान ही वैचक कला इतिहास लेखन

का बोध प्रदान करती है ।

सम्भवतः बनीररमे प्रभावित लेखकनी भी यही भावता है कि मिथक तत्व और वाक्य तत्त्वना साथ ही-माय आविर्भाव हुआ था । आदिम मनुष्यके लिए किसी वस्तुको प्रत्येक इन्द्रियके द्वारा सश्लिष्ट रूपमें ग्रहण करना सम्भव था । यह सश्लिष्ट रूप किसी एक क्षणकी रचना न होकर सचित संस्कारकी रचना होगी । इस सश्लिष्ट रूपने ही उच्चरित वाक्यके रूपम अपनेका अभिव्यक्त किया होगा । अतः भाषा-पूर्व अवस्था तक-पूर्व अवस्था भी है ।

वे भाषावेगको अभिव्यक्तिका प्रथम मानवीय प्रयत्न नृत्यके माध्यमसे हुआ मानते हैं । उनसे अनुमान संगीत और भाषाके साथ नृत्य मानवाय अभिव्यक्ति प्रयत्नाम सवपुरातन है । वे यह सांस्कृतिक-नृत्य सार भी स्वीकार करते हैं कि मनुष्यकी प्रथम रूप-सृष्टि आनन्दहेतुक और मागत्यमूलक थी, भयमूलक नहीं । तक बुद्धिके विकासके बाद ही भयजनक रूप-वर्तनाएँ हुईं होंगी । इससे पता वे प्रागतिहासिक चित्ररूप सृष्टिका प्रमाण देते हैं । इसीलिए वे नृत्यके प्रागतिहासिक मूलका स्वीकार करते हैं । वे कहते हैं कि मानवी वर्तनाका मूल या परिणय रूप दाके लिए नृत्यमें आगे चलकर मुखवास और विविध प्रकारके वस्त्राभरणका उपवर्तन हुआ होगा जिससे नृत्यमें नाटकीयका समावेश हुआ होगा । अतएव सम्प्रति अग्रसर होकर अद्य नाटकाके विनासके साथ-साथ क्रमशः मध्यवर्ती जड उपादान बढ़ते गये और चतुर्था विजयके प्रथम क्रमशः जटिल होते गये । बौगलोंने कलाके मूलरूपको आच्छन्न कर लिया ।^१ इस तरह तकनीकके विनासम ही लक्षकन कलाकी विविधता और विभक्तिके इतिहासका सूत्र गुम्फित किया है । यह एक बहुत बड़ी बात है । इस आधारपर वे ऐतिहासिक विकास-क्रमकी दृष्टिसे दक्षिण निर्दिष्ट करते हैं कि नाट्य मनुष्यके भाषाभिव्यक्तिके वाक्-तत्त्वके पर्याप्त आपत्तीकरणके चारकी कला है तथा नृत्य मानव-पूर्व कला है ।

अन्तम धे यह स्थापित करते हैं कि मनुष्यकी इच्छा-शक्ति एवं क्रिया शक्ति (अर्थात् सामाजिक चेतना और तकनीकी शक्ति) नाद और विन्दु पद और पञ्चमके पूर्ण उभेपके बाद उत्पन्न हुईं कलाका वाच्य चित्र, मूर्ति आदि भी यही कहानी है ।^२ इस तरह वे कलाके उद्गम और कलाप्रति आरम्भके इतिहास क्रमका ही तत्त्वावगणन करते हैं । नृत्य और नाटकके विषयमें उनका निरूपण मन्त्रपूर्ण है ।

१ 'साहित्य दर्पण' १० ६ ।

२ 'साहित्य दर्पण', १० १६ ।

उपसहारमें हम यही सिद्धि पाने हैं कि हजारों प्रसाद द्विवर्ती पुरातन आदर्शों-मुख मानवतावादी जीवन-दृष्टिके कृती ह। उन्होंने अपनी अग्ररूपण लालित्य तत्त्वमीमासामें शवान-दवादी अभिनवगुप्तकी ही परम्पराम अपना आपुनिक पुनर्वास प्राप्त किया ह। यह ऐतिहासिक तथ्य रत्नावन योग्य ह। हम उनके लालित्यतत्त्वके उपसिद्धान्तको निम्नरूपमें 'मिथका-यात्मवादी लालित्य सिद्धान्त' का नाम दे सकते ह। इसके प्रमाणके लिए हमने अबतक उनक मानव तत्त्व, लालित्यतत्त्व, मिथकतत्त्व और वाक्यतत्त्वकी चतुर्मुखी गवेषणा की ही है।

आधुनिक भारतीय सौन्दर्यबोधशास्त्रियामें वे आनन्दकुमार स्वामी, कान्ति चन्द्र पाण्डेय और प्रवाम जीवन चौधुरीसे भी भिन्न ह क्योंकि उन्होंने सब प्रथम एक लालित्य सिद्धान्तकी सर्वोत्तम अवित्तके रूपभग सारे उपागन ढँड निकाले हैं। किन्ना अचने अभीतक ऐसा नहीं किया। उनके आधारवादि शिवगणिकी विभक्ति, इच्छागति एव क्रियागणिका सामजस्य, गति और स्थितिका द्वन्द्व देश और कालका द्वन्द्व जन् और चेतनका सधप आदि रहे ह। उन्होंने बारह सूत्र लिखे ह १ मानव चित्त एक ह। समष्टि मानसमें ही समान वाक्यके मान रहते हैं जो नम (norm) कहे जान ह २ मनुष्यके उल्लासकी अवस्थामें प्रथम आमाभिव्यक्ति की धी जिम्का अतर्निहित उद्देश्य जड वाधाओपर चतयके विजयी होनेका प्रयास था, ३ मण्डलावत नृत्यके रूपमें यह अभिव्यक्ति पूव माव कालमें ही हो चुकी होगी ४ वाक्यतत्त्वका प्रथम उभेप मनुष्यकी इच्छा गणिका प्रथम स्पष्ट विस्फोट ह जो गुम्न पद और पण्यके सम्पत्कूपमें रहा हागा, ५ वाक्य तत्त्व वाह्य वस्तुके नामकरणका नहीं, अन्त करणके उल्लास-चचल आदचयका साधन था जो यामें उल्लास वाक्य तत्त्वका वाचक हो गया, ६ वाक्यतत्त्वका स्फोट जहाँ पन् और पण्यके विवेकका कारण बना, वहाँ उच्चरित शब्द सीमाबोधका जान लेकर भी आया। इसलिए पण्यविवेक साथ ही मिथक तत्त्व भी साथ ही साथ पूरकके रूपमें आविभूत हुआ ७ पन्-पदायक विवरने अनुभूत तत्त्वकी पूण उपरनि में वाधा दी। इसीलिए मनुष्यकी इच्छा-शक्तिने लालित्य तत्त्वका आश्रय लिया ८ पन्-पण्यक विवेककी पूर्ति मिथकन और इन दोनोंकी पूर्ति लालित्य-तत्त्वम की गयी ९ वाह्य पदायकी भावरूपमें ग्रहण करना और गृहीत भावकी अभिव्यक्ति करना मनुष्यकी विगैपता ह १० माव रूपमें ग्रहण करना (इच्छा) और गृहीत भावकी पुन अभिव्यक्त करना (क्रिया)

सन्तुलित दृष्टि

अपने आपमें अत नही है । ये मनुष्यके अतिनिहित विगुद्ध चतयके सहायक ह, ११ चतयकी सीमाहीन अभिव्यक्तिकी व्याकुलता लालित्यनत्वका मूल उत्स है और १२ व्याकुलता बयो ह यह प्रश्न उचित और समाधेय ह ।

हाँ, उनका अतिम सूत्र ही उनके लालित्य वितन, आधुनिक बाध और यथायवादी समान दशनकी सच्ची कसौटी बनेगा । इसका समाधानका हमें इन्तजार ह यथाकि अवतक व 'याकुलता' को रहस्य, धम अध्यात्म, मियक आदिमें ही गूढ गोपन बनान रहे ह । इन अतिम सूत्रका महान उत्तर कवल तभी सम्भव ह जब आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी गतिस्थितिकी जड-चतय की, काल देाकी अपनी दृढ़ योजनाको आधुनिक दृढात्मक भातिनवादी विश्वदानकी ओर मिद्ध कर लेंग ।

■

राजन् भाषा यकी रहस्यमय देकी है । वह नयी सृष्टि करती रहती है । अदिहाय विधाताके किये करायेपर वह ऐसा परदा डाल देती ह कि कभी-कभी दुनिया ही बन जाती है । महामायाका सबसे परिष्कृत रूप भाषा है सत्त्वोन्मरगी होकर वह प्रकाश देती है वि-तु तमोगुणकी ओर उन्मुख होनेपर वह केषल मोहकी सृष्टि करती है केवन आवरण उत्पन्न करती है केवन बुद्धेतिवाका जाना छाना करती है ।"

— चारुचन्द्रलेख

१ 'साहित्य टरर', पृ० १८ १६ ।

द्विवेदी-साहित्य सस्कृतकी पीठिका

रामसुरेश त्रिपाठी

आचार्य हजाराप्रसाद द्विवेदी आरम्भ से ही सस्कृतक छात्र रहे ह। सम्स्कृत वाङ्मयमें ग्रथित उपनिषद इतिहास-पुराण ज्यातिष, धर्मशास्त्र तत्र आदि विविध विद्या भेदोंका उद्धाने परिशीलन किया है काय नाटक क्या आख्यायिका आदि रूपम उपलब्ध सस्कृत-साहित्यधाराम यथेष्ट अवगाहन किया ह ललित कलाओंमें रस लिया ह प्राचान इतिहास और पुरातत्वक आलोचन भारतीय सस्कृतिके गौरवको दया ह बार उस रोचक गैलीमें लिखानेका प्रयान किया ह। वस्तुतः सस्कृत-साहित्यमें जा कुछ उगार ह, स्पष्टणीय ह, अस्मृत ह, प्रजा और प्रतिमाने आलाकित ह उन सबपर द्विवेदीजीकी दृष्टि पड़ी ह और अपनी कृतियोंमें उन सबक समावेसके प्रयान उद्धान किया ह।

द्विवेदीजीकी रचनाक्रम कुछ प्रथम पणत अथवा अधिकांश रूपम सस्कृत साहित्यपर अवलम्बित ह। उनमें 'प्राचीन भारतक कलात्मक विनाश' भारतीय नाट्यशास्त्रकी परम्परा और दार्शनिक कालिदासकी ललित्य याचना आदि उल्लेखनीय ह। उनके रचनामें 'काव्यकला-जम लय सस्कृत साहित्यकी सामग्री आख्यायिका और उपयास' काव्यकला-जम लय सस्कृत साहित्यकी सामग्री पर गठित ह। अपने निबन्धोंमें भा द्विवेदीजी सस्कृत-साहित्यका अनाला अथवा मनारम वस्तुका आनन्दन करत चलत ह। उनक निबन्धोंमें सस्कृतका आधार प्रायः निम्नलिखित रूपम दृष्टिगावर हाता ह —

१ गान्धीक व्युत्पत्तिक रूपमें,

२ सम्स्कृत-मन्त्र-या किसी अनुभवानका सामन लानक रूपम

३ सस्कृतक उद्धारणक रूपमें

४ विद्या सास्कृतिक विषयपर प्रकाशक रूपमें

५ क्या आख्यायिकाक उल्लेखक रूपमें।

द्विवेदीजी अपनी अद्यावधि प्रकाशित कृतियोंमें अनेक गान्धीके निबन्धनपर विचार किया ह। गान्धीकिके अवधारणक उनका दृष्टि धानु अथवा प्रथम सानुलित दृष्टि

आदिपर उतनी नहीं जाती जितनी उस शब्दके इतिहास, उसका ध्वनिगत अथवा अर्थगत परिवर्तन और सांस्कृतिक रहस्यके उभो-उतपर रहता है। 'गर्घया' शब्दके 'गर्घया' शब्दका सम्बन्ध उहाने कातवीय शब्दसे जोड़ा है— कातवीय > गदभिज्ज > गदभिल्ल > गर्घया। शब्दविचारके अवसरपर द्विवेदीजी कुछ इधर उधर भी साँक लेते हैं। कुटज शब्दकी व्युत्पत्तिने षपटमें घूट, कुटहारिका कुटकारिका, कुटिया, कुटीर, कुटनी, कुट्टनी आदि आ जाते हैं उसकी जातिक परलमें कमल कुडमल, कम्बु, कम्बल, ताम्बूल आदि आनय अथवा कोलपरिवारके शब्दकी चर्चा हो जाती है उसके नामके प्रसंगमें सुस्मिता, गिरिकाता, वनप्रभा, गुधकिरीटिनी, मदादना, विजितातपा, अलकावतसा अथवा अजुताभय, गिरिगौरव कूटाल्लास, अपराजितक साय धरतीधवल पहान्फाड पातालभेद भी सामने लाये गये हैं और उसके जीवन दशनक सम्बन्धमें, सस्कृतकवियोंकी शैलीमें, कहा गया है—

“चारा और कुपित यमराजके दारुण निदवासक समान धधकती लूम यह हरा भी है और भरा भी दुजनके चित्तसे भी अधिक कठार पापाणका वारामें रद्ध अनात जलसानसे बरबम रम खाचकर सरस बना हुआ है और मूयक मस्तिष्कस भी अधिक सूने गिरिकातारभ भी ऐसा मस्त बना है कि ईष्या होती है।”

द्विवेदीजीके निरुध अनुसंधान विरहित नहीं है। विभिन्न निष्कर्षों और अनुसंधानोंके वे कोणलस एक ही निबन्धमें पिरो दते हैं। उपयुक्त आधार प्रचार भी एक साथ एक ही निबन्धमें देते जा सकते हैं। 'आम फिर बोरा गये उनका एक सुन्दर निबन्ध है। इस लघुकाय निबन्धमें सस्कृतक सम्बद्ध निम्नलिखित अनुसंधानोंका समावेश हुआ है—

- १ अन्न शब्द अम्बका रूपांतर है। अमृत शब्दका भी सम्बन्ध अन्न से जान पड़ता है जो मूल रूपमें सम्भवतः सोमरसक लिए था।
- २ वसन्तके जमिनका मन्महासव मनाया जाता था।
- ३ शम्बर शब्द किसी विष्णुकी भाषाका है।
- ४ मानु और जादू शब्द एक ही शब्दके भिन्न भिन्न रूप हैं।
- ५ गुण शब्द स्वधा शब्दका भाई है।
- ६ नमात्र शब्द सस्कृतक मन्महासव शब्दका सगा सम्बन्धी है।
- ७ शावरो मन्महासवमें अदलोल गान्धी और वारवनिनाआका प्रामुख्य हाता था।

१ कुटज, पृ. ६।

८ मदनलक्षवक तुल्य अमुराका भी काई उत्सव रहा हागा ।

९ कालिदास आम्रमुकुलाको मदन देवताके पांच बाणामें नही गिन
थे । आम्रमजरीसे बे विसोप उल्लमित नही होते थे ।

१० अमुराकी आखिरी हार अनिरुद्ध और उपाक विवाहके अवसरपर
हुई थी ।

११ अरविन्द, असोक, नवमालिका और नीलोत्पल अप्सरा जातिके
फूल ह ।

१२ आम प्रारम्भम पवतीय यम था । उसक फल छाटे और खट्टे होत थे ।

१३ गौधूम लता (गैहू) किसी दिन गायके लगनेवाले मच्छरोको भगानके
लिएधुँआ पैदा करनेके काम आती थी ।

१४ कल्प जीर गधवम केवल उच्चारणभेद ह ।

१५ नवाम्रवाटनिका नामका उत्सव प्राचीन भारतम प्रचलित था ।

१६ आम और माधवीलताका विवाहोत्सव नागरिकोका एक विनोद था ।

१७ सुयस तक नामका उत्सव बस तावतारके दिन मगाया जाता था ।

१८ काम गायत्री ही श्रीकृष्ण गायत्री ह ।

१९ आम्रमजरीके हथेलीम रगडनस विच्छृ टक नही भारत—इस जन
प्रवादके पीछ प्रद्युम्न और शिवके युद्धकी कहानी छिपी ह ।

स सरस्वतीकण्ठाभरण, मात्स्यसूक्त हरिभक्तिविलास भागवत पुराण
कालिका पुराण, औचित्यविचारचर्चा ।

ग उसी निबन्धमें ससृत्तके य उद्धरण ह—१ शडके सहरति
स्मराऽपि । २ आत्ममहूरियपाडुर । ३ क्षणदिट्ट घूसरत्यणि ।

४ इमसुलभवस्तु प्रायना । ५ सहकारधुसुमकेसर ।
घ उमी निबन्धमें निम्नलिखित कथाएँ दी गयी ह—१ दुष्पत-द्वारा
यस-तोत्सवनिषेवकी कथा, २ प्रद्युम्नकी कहानी ।

आम फिर बीरा गय' इस छाटे-स निबन्धमें इतने अधिक और इतन विभिन्न
विषयोका विवचन द्विवेदीजीकी विरापता ह । बाणभट्टन भट्टार

हरिचन्द्रके उज्ज्वल और हृद्य गद्यकथकी प्रशंसा की ह । स्वयं बाणक दम्बध
रमणीय ह । किन्तु द्विवेदी-बन् दोनासे पयक बच ह । ससृत्तक गद्य निमाता
वणक्रम, पदयोजना जाति, इत्य, विषट्कारवियास, उक्तिवचिभ्य आदिमें ही
बध मानत थ । किन्तु द्विवेदीजीकी बधगली इनस पूयक ह । इसमें बला,
गान और विज्ञानक अन्वपणाका एकर गुम्फन ह । इनमें सन्दह नही कि
सन्तुलित दृष्टि

'आम फिर बीरा गये' का प्रेरणा अभिज्ञानशाकुंतलके एक दलाकत मिला है। किन्तु कालिदासक भर्म सोलनेके व्याजसे उपर्युक्त अनेक अनुसंधानका अनुसंधान निरघकी एवतानतामें बाधक नहीं हुआ ह।

द्विवेदीजीने सस्कृतक जिन ग्रन्थकाराकी कृतियासे अपनी रचनाओका पल्लवित किया ह उनम विशेष उल्लेखनीय भरत, वात्स्यायन, वराहमिहिर, कालिदास और वाणभट्ट हैं। प्राचीन भारतके काल्पनिक विनोद और 'भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा'म नाट्यशास्त्र और कामसूत्रकी चुनी हुई सामग्रीका चयन कर दिया गया है। काल्पनिक विनोदके छोटे कलेवरमें अपार सामग्री एकत्र कर दी गयी ह और उसक कुछ परिच्छेदके उपर हणसे कई अनुसंधान प्रबंध तयार हो सक्ते ह। कालके सम्बन्धम 'मच्छकटिक के एक पात्रकी एक उक्तिकी आर द्विवेदीजीने सहृदयजनोका ध्यान आकृष्ट किया है और स्वयं भी निष्कप निवाला ह कि 'जीविकाके साधन घन जानेपर कला अपने ऊँचे आसनसे गिर जाती ह।'^१ कामशास्त्रीय ग्रन्थमें द्विवेदीजीने काल और नगरवृत्तसे सम्बन्ध कुछ व्यापारके उमीलन किया ह। कामशास्त्रीय अर्थ विषयाकी चर्चामें जहाँ-तहाँ कुछ इगित करनेके अतिरिक्त वे प्राय मोन ह जा आत्मनियन्त्रण अथवा त्रिमी कुण्डाका प्रतीक ह। अवश्य हा कविताकी चर्चा करते समय वे सदा अरगिक नहीं बन रहते। फलतः सस्कृतके कवियाकी तरह कभी-कभी अभिनवयोजना विचारियाकी आँसामें मत्स्यधर्मिताक दगन कर लते ह। इधर इस दिनमें उनके बटार आम समयमें कुछ गिगिलता दिवाई दन लगा ह। नायिकाभदापर उनक विचार कुछ मुगुरित हान लग ह। 'चारुचन्द्रलम में पद्यनी नायिकाकी व्याख्या बलीग लक्षणके आधारपर, पद्यगधि वासके आधारपर रजकप्रदत्त वस्त्रपर भौरोक मन्त्रानेके आधारपर तथा कुछ एस ही अर्थ सूत्रके आधारपर की गयी ह। भर विचारमें विचारक क्षमम सिद्धक नहीं हाना चाहिए। यणिक गिल्लेपत्र और कविकी निरनुगतताक मध्यमें स्थित साहित्यकारकी दृष्टि असाभन नहीं माना जायगी। वस्तुपरवर्षट्टिय कालकार और चितल सदा खबधाही रहे हैं।

शिवशास्त्रितम वराहमिहिरक साम्प्रतिक अर्थक ह। यद्यपि द्विवेदीजी न ज्यातिप शास्त्रका विधिबन अध्ययन किया ह किन्तु उनकी आरम्भिक कृतियाम पल्लित ज्यातिपमें उनकी विगप आस्था नहीं क्षररती। इधरकी दर नाआमें माया और प्रहारी चवा कुछ बढ़ गयो ह और मूल्यत्रय रवाद्र में

१. 'चारुचन्द्रलम', पृ० १२२।

२. 'कविकाकी चर्चा करते समय मुममे रचना टूँठ होनेकी आशा आप नहीं कर सक्ते'— साहित्यका मर्म', निरन्ध-समक, पृ० १२०।

रवीन्द्रनाथ टगोरकी जन्मकुण्डश्रीको—उनकी जीवनसीमाको व एक पक्के ज्यातिपीकी भाँति निहारते जान पडते ह । बहतमहिताने जाघारपर रत्न आभूषण आदिनी चचा द्विवेदीजीने की ह । जाम्बून, गगतकीम्भ हाटक वणव शृंगी, गुबिनज, जातरूप, रसविद्ध आकर उन्गत आत्ति रूपमें स्वणके भेदोपर विचार किये गये ह । डॉ० वामुदेवसारण अग्रवालने वारह वानी सानका विवरण प्रस्तुत किया था । द्विवेदीजीन सोल्ट वानीवाले सोनेकी नी रोज की है । वराहमिहिर जस ज्योतिषमें अद्वितीय हैं वैन ही नारीके प्रति सरस श्रद्धा रखनमें भी अप्रतिम ह । वराहमिहिरकी भाँति द्विवेदीजीने भी नारीको श्रेष्ठ रत्न माना ह और उसके कर्ण विमुख हृदयपर अपनी कलाकी निछावर कर दिया ह ।

द्विवेदीजीके सबम प्रिय कवि कालिदास जान पडते हैं । कालिदासने साहित्यका उठोन पर्याप्त आलोचन किया ह और अनेक सूत्र अनुसंधान किये हैं । भारतीय धर्म, दशन गिन्य और साधनामें जो कुछ उदात्त ह जो कुछ दस ह, जो कुछ महनीय ह, और जो कुछ सलित और महान ह उमका प्रयत्नपूर्वक सजाया-सँवारा रूप कालिदासना काय ह । कालिदासके कान्यम जो कुछ मधुर ह उदार ह सबध ह निष्कम्प ह और स्नेहमय ह उन सबका समाजन द्विवेदी-साहित्यकी एक कला ह । कालिदासकी चतनामे तात्काम्य करनमें, उनको साद्र अनुभूतिपूर्वक पहचाननेम और उनके चतनाके अन्तर्निहित रहस्योंके उन्घाटनमें द्विवेदीजी अद्वितीय हैं । साय ही कालिदासकी भावराशि और शाल-सम्पत्तिसे क्विन् साहित्य उजागर और चमत्कृत ह । कालिदासके निवात निष्कम्प प्रतीप-जमे कुछ शब्द द्विवेदीजीके अवातनमें उतर आये ह और वार-वार उनक चितनमें चलक जाने हैं । यद्यपि द्विवेदीजीने यथावसर कालिदासके गद्यों और भावोका अनुगमन किया ह किन्तु ऐसे स्थलोपर उनका उद्देश्य सहस्य पाठकोक मनमें कालिदासकी स्मति जगा रना होना है अथवा कालिदासक किमी रम्य चित्रको सलका देना हाता ह ।

“उज्जयिनाके सौध वातायनोने धाकित हुए चन्द्रवदनोके अलकापित रत्न शान और श्रवणस्त कणिकार अब भी भूले नहीं ह सिन्नाफी चटुल-नुवलय प्रेक्षि दष्टिनी मोहिनी अब भी मद्योदुष्ट स्वप्नका भाँति मन्मत्त कर रही ह निमालय क कुजर किन्तु गण भूजत्वक अब भी विन्नर-वधुओंने अनगलेषासा यात् रिला देत ह ।”

१ 'कालिदासकी साहित्य-वीरणा', पृ० ३ ।

२ 'विचार और चित्र' पृ० ११६ ।

कालिदासके भावचिह्न, भावानुप्रवेश, यथालिखितानुभाव, अबोधपूर्वा स्मृति आदि शब्दोंकी रसात्मक व्याख्या महानयिके स्नह-दान और द्विवदीजीके सूक्ष्म दशनका एक साथ निदर्शक है। कालिदासके सांस्कृतिक अध्ययनमें जिन जिन विषयका ग्रहण हो सकता है उन सबको धीन-धीनकर द्विवदीजाने अपने साहित्यके बीच बीचमें सन्तुष्ट कर दिया है। कालिदासको मयूरवह्वेश, मेघमे चक्रवर्णी, कुन्दानुविद्ध अलकें प्रिय थी। द्विवदीजीने इनपर न्यू लिखा है। कालिदासके लिए नृत्य मोहक था। द्विवदीजीने अपनी कल्पनामें नृत्यादि अनेक आयाजन किये हैं। मालविकाकी नृत्य भंगिमा, उसकी अराल उगलियाँ नृत्यके लिए ही रची गयीं—उसकी शरीर यष्टि, द्विवदीजीकी भावधारामें रह रहकर उछल पड़ती है। कालिदासके 'छन्दो नतयितुम की प्रेरणाम उद्बुद्ध द्विवदीजीका एष नृत्यमय शब्दचित्र द्रष्टव्य है—

'उमका सारा शरीर छदास बना जान पटता था। मानो अनुप्राससे कमकर, सगीतम ढालकर यमकसे सँवारकर उपमातसे निष्ठाकर, तान्त्रिकसे बाँधकर, यतियासे शाशित कर इस मनोरम आवपक शरीरको स्वयं छन्दो देवतान बनाया हो।'

कालिदासके रूप, प्रभा और शब्दप्रयुक्त अनेक जगमगाने चित्र हैं। द्विवदीजी ने उन सबको देखा है परन्तु है और किसी-न किसी रूपमें अक्षिप्त किया है। कालिदासने उठते मोक्षका मूर्धाङ्गुल ईपन भिन्न अरविदम तूलिकामें ईपत उमीलित चित्रमें देखा था। हवाके हिलोरमें हिलती लतामें कुमुमस्तम्बमें उहे लोभनीय रूप दिमाई देता था। सचारिणी दापणियामें और प्रभा-तरण ज्योतिमें उन्हें सुगमाम दशन होते थे। द्विवदीजीन इन सबका आकलन प्राय कालिदासके शक्ति ही अपने साहित्यमें किया है। कही-कही उपालम्भक रूपमें द्विवदीजीन कालिदासके रूपवर्णनकी समाशा भी की है। आतपकलान्त माधवी लता की कामलत शरीरको शोभा और प्रियदग्ना शाभापर कालिदासकी दृष्टि अवश्य गया है किन्तु मुख्य रूपमें वह मधुर रूपमें निर्माण ग्राहती रहा है। शक्य-शक्य सौन्दर्यकी शक्ति कालिदासमें कम है। इसपर द्विवदीजीने या लिया है—

हाय महारवि तुमने हँसो-शुनीमें ही खिन्नी बात दी। तुमने एसा कदम-माहक स्मित दगा होगा, तो दुनियाको बता गरन कि वह शीत था। पायनाम शोभा श्मिताको तुमने अमर कर दिया है किमल्य विनिहित पुष्पमें जो

पवित्रता है और निर्मल विद्रुमपात्रमें रखे हुए मुक्तानामें जा आभिजाय है वह तुमने लय किया था पर इनको स्वमन्त्रिणीकी धारामें लुक्के-मुट्कते बहते-उतराते तुमने नहीं दया। यह वह पुण्य था जिसके विकासका धारा भर वा ही धारानार वर्षा हो गयी यह वह तारिका थी, जिसके उदय होते ही कुञ्जटिकासे दिग्म घूमर हो गया यह वह इन्द्रधनुष था जिसके उदय ही पक्षाने आकाशको घूर्णित बना दिया।

द्विजातीय कालियसक लयमान सौन्दर्यके लय पार किसी एक गावउ सत्ताको स्वीकार किया है ना मंगलका जार से जानेका सकल्य रचती है। किन्तु द्विजातीयका अपना व्याख्या समझनी चाहिए।

द्विजातीय-साहित्यका एक अग कालियस-सम्बन्धी अनुमानाने सम्बन्ध रचता है। चारुचन्द्रके में विद्यातमाकी उपस्था सुरस्वती और विद्रुमान्तिय-सम्बन्धी उनके मौलिक अन्वयण विचारणाय हैं। जान पड़ता है द्विजातीय चारुचन्द्रके में कालियसके जीवनको ही चित्रित करना चाहते थे। किन्तु ११ १२वीं गतायी तक तत्र-साहित्यका सममें समीट लेनेकी इच्छासे उन्हें मूल विचारका छोड़ना पडा। फिर भी गध्या तारके बहाने कालियसका क्या जा गयी है। चारुचन्द्रके क आरम्भमें 'अभिमान गाकुञ्जल' और कुमारसम्भव की सम्मि लिन छाप है और प्रकृति अथवा स्वभाव प्रधान स्पर्शमें कालियसका वाच्य अोनप्रोत है।

कालियसका सावित्र याजना में प्राकृतिक सौन्दर्यमें भिन्न किन्तु उसक समानान्तर चरनवाला मानवरचित सौन्दर्यका उमोलन है। माय हा द्विजातीय न याग और भागमें कला और विज्ञानमें, गलीमें जावनमें, सबत्र कालियसकी सन्तुलित लक्ष्मि प्रकार डाला है और कुञ्जल दूर तक इस जपन साहित्यन उतारने की चष्टा की है।

कालियसक मन्त्र वागमट्टक साहित्यस भी द्विजातीयसाहित्यका गहरा सम्बन्ध है। वागमट्टक अवाय गणाय प्रवाहमें आमूलबूल दूमकर, उतराकर बहकर तत्रत्र द्विजातीय जितना दत्ता-मुना है उतना शायद हा कोई दूसरा व्यक्ति जान सता हो। 'वागमट्टका आत्मकथा में वाग्मवरा और ह्यचरितक सभा रमणाय अग अलन्ति कर लिये गये हैं। गला वागमट्टीय है। उत्प्रेणा और रूप मौल्यका भरमार वागमट्टक साथ आत्मनिचीनी खलती जान पड़ता है। अय

१ 'वागमट्टकी आत्मकथा', पृ० १३५।

कवियोंकी जैंगलियाँ भी जब-तब पकड़में आ गया ह । पर द्विवेदाजी सबत्र कोई न कोई नतन अस्पष्ट छवि बलका देने ह । यह विदोपता पाण्डितिक-वर्णन और रूप-वर्णन दाना स्थलोपर है । नीचे लिखा गयास वाणमट्टकी छाया लेकर भा अपना महत्त्व रक्ता है—

सूयमण्डल अपने किरण जालको ऊपरकी आर समेट रहा था । एसा लग रहा था, माना दिवसलक्ष्मी आवागक पश्चिमप्रान्तस नीचे की ओर चने जा रही ह और उनके द्रुत-मचारित चरणोंमें पधराग मणिक नूपुर गिसवकर पीछे छूट गय है । सूयत्रिम्बन सारा त्रिन करपुटोंमें जो कमल पराग सग्रह किया था, मह माना अचानक ढरक गया और सारा आवाग पधरागके रसमें पिजर ही गया ।'

नारा रूप वर्णनमें वाणमट्ट और कालिदासना तरह द्विवेदाजीकी नष्ट उत्कृष्ट कपास, धपायित कपास, वाटरगामिनी आँखें आँसुपर धाण भर ठहर जाती ह किन्तु नीचे नहीं उतरती । जिन अगोंके नाम लिये बिना सम्भूतके कवियोंकी सौन्दर्यका उभार दिताई नहीं देता उनक विषयमें द्विवेदाजी स्पष्ट मोन साध लेते ह । इना जा मन्मन रिगी युगके साहित्यकारमें मिलना दुष्कर ह । इतनी उन्नत अब व इन धनमें भी कुछ नग हो रहे ह और अत्र त्रियने उगे हैं—

उल्लास चबल साडा जत्र मण्डलिन हो उठती थी ता नीलरवी नीली जैमिया गत गत बलियोमें तरंगित-व्याकुलिन हारर उन पछानका प्रयत्न करती था, परन्तु कठोर वाधाका बन्नाग करल पाममात्र रह जाना थी ।'

रूपवर्णनमें द्विवेदाजीन करण-भाद्रक चित्र वाणवी अपेक्षा अधिक स्थि ह । निराध रूपायित जपापुष्प शपा विलासिन बननार धूलिपत्रिणि अगाध पुष्पुम जैम मनाहर धूमर चित्र वाणमट्टकी आभकषा और चारुपत्र' दानाम बिसार पड ह । शीम कोणैय हर्षविहित दुबूल कपाल कदुर अगुतात-जम मान्दृतिव महत्त्वके गण कालिदास और वाणमट्टमें ज्योने यो स्थि गय ह ।

द्विवेदाजीन गान्धिममें तत्र गान्धिम नी धार धोर अग्रार हा रण ह । ईगावा पौरवी गता-गीम लेहर बारदवी मता-गी तरक गमुष तत्र मार्गीता अपना वृत्तियाम व स्थान द चुक ह । एर विर-उपेयित साहित्यरा पुा काता मन्मिज पद्विनि प्रकाशमें एतना शय द्विवेदाजीरा मित्रना चाटिण । उनीं तत्र साहित्यर गान्धिम पारिभाषिक गान्धिम दिनामै महज रूपम उताग स्थि ह ।

१ 'वाणमट्टकी आभकषा' पृ० १५२ ।

२ 'बाकव-सेस' पृ० १५३ ।

जहाँ तहाँ नवीन मनाविज्ञानक प्रकाशम तत्र मायनाशका नवीन याख्या की गयी है। आगमोके इच्छा पान और क्रियाक आधारपर जीवन-मूल्याका सबधा नूतन व्याख्याकी ओर द्विविजी अग्रसर हो रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी कुछ महत्वपूर्ण रचनाओंका उपजीव्य सस्कृतका तत्र साहित्य है।

इतना कुछ होते हुए भी यह कहना कठिन है कि द्विविजी सस्कृत साहित्यसे प्रभावित है। मेरे विचारमें, उन्होंने सस्कृत साहित्यसे जो कुछ लिया है उसपर अनुसन्धान कर उसका ऋण चुका दिया है। द्विविजीकी दक्षिण सस्कृत भागतीय मस्तिष्कके सर्वोत्तमका प्रकाशित करनेवाली अतुलनीय भाषा है।^१ साथ ही वह भी स्वीकार करते हैं कि हमारी भाषापर हमारे विचारापर और हमारे साहित्यपर सस्कृतके उत्कृष्ट साहित्यका प्रभाव पड़ना कोई लज्जाकी बात नहीं है नहीं पड़ना जरूर लज्जाकी बात है।^२ मेरे मतमें, विचारके क्षेत्र द्विविजी सस्कृत साहित्यसे प्रभावित नहीं है। इससे वस्तुका ग्रहण प्रभाव नहीं है, उस ग्रहणसे अभिभूत हो जाना प्रभाव है। इसमें प्रभाव नहीं है किन्तु इससे दक्षिण सस्कृत साहित्यमें चनना आलाक कहा अव्यय मिला है सम्भवतः आधुनिक पान विज्ञानसे। कालिदास और बाणभट्टका भाति द्विविजीका अपना जन्मभूमिसे अनुराग है। बाणभट्टकी आत्मकथा में बलिया जिलेके सुरदा शैलका नहीं भूलें और चाणक्यकी कहानी तो उनके गाँवके आस पास ही आरम्भ होता है। किन्तु पूर्व समुद्रसे लकर पश्चिम समुद्र तक, नर लानसे लकर किन्नर लोक तक सबमें एक ही रागात्मक सत्ताकी जाधामें प्रयोग गारा प्रत्यक्ष करने-करानकी भावना अपना आधुनिक है। सस्कृतके लगभग साहित्यकी रचना और जयमे बहुत दूर नहीं ल जा पाते थे। द्विविजीका दक्षिण सस्कृत साहित्यसे सशुभ और महनीय माधना है उमीका प्रकाश साहित्य है।^३ सस्कृत साहित्य गौणपरक है। द्विविजी इमने पापक नहीं जान पड़ते। द्विविजीका अपना स्वप्न जाग्रत-ज्ञान है। द्विविजी-साहित्यकी पाठिका एक सामित रूपमें है और वह भी बरत पाठिका रूपमें ही। उसमें रंग विधात बहुत-कुछ द्विविजीके हैं और प्राण तो उनका ही है। अपने प्राणोंमें कुछ अंग जगता सबन्नाके कुछ बग द्विविजीने सस्कृतके लिए भा उत्तम किया है। उन्होंने कई रचनाएँ

१ 'विचार और विश्व' पृ० ७३।

२ 'विचार और विश्व', पृ० ७४।

३ 'साहित्यका मर्म' निबंध समूह, पृ० १६०।

जो संस्कृत साहित्यक लिए उनकी मौलिक दन ह । उनका एक श्लोक यहाँ
पूत किया जा रहा ह—

भित्वा पायाणपिठर छित्वा प्राभञ्जनी ध्ययाम ।
पीत्वा पातालपानीय कुटजश्चुम्बते नम ॥

■

नयीन रचनाओंमें जो प्राण है उस कोई इनकार नहीं कर सकता।
परन्तु मेरा अनुमान है कि यदि किसी दिन इस देशमें इन कवि
ताया (नदी कविता) ने गहरे तक जड़ जमायी तो दो शतों के
किसी-न किसी रूपमें अवश्य मान लेंगे । वे ज्ञान सौंदर्य
और कथापद्यके अस्थायी रूपके साथ स्थायी शाश्वत रूपको
अस्वीकार नहीं कर पायेंगी और न यही आरोकार कर पायेंगी
कि उनका काम सदृश्यके हृदयमें स्थायी रूपस विद्यमान भाषों-
न उद्बोध है ।

—साहित्य सचर

१ फुटन, १० ८ ।

२१२

शान्तिनिवेतनमे शिवाङ्क

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीकी समीक्षा दृष्टि

• •

रामदरश मिश्र

लोग कभी-कभी किसी ब्यक्ति को उसी ब्यक्ति का टना चाहत ह । उसाके एक गुणको समूद्ध बताकर दूसर गुणको उमम परामभूत करना चाहते ह । लकिन प्राय होता एमा ह कि उस "यक्ति" एक गुण दूसरका पूरक बनकर उसे और भी प्रदीप्त कर देता ह । लाग किसी विशेष अभिप्रायम इस पूरकताको लुप्त कर उन्हें खण्णित रूपम दखना चाहत ह । मने प्राय कुछ आलोचकाको यह कहते मुना ह कि श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी सजक ता बहुत बड है किन्तु आलोचकक रूपमें उतने "गक्तिमान्" नही । कुछ लोग तो सलाह भी देते पाय गय ह कि वे निबन्ध (ब्यक्ति ब्यजक निबन्ध) और उपयास ही लिखें आलोचनाके चक्करमें क्या पडते ह ? यानी वे यह कहत ह कि द्विवेदीजी अपना सर्वोत्तम रचनात्मक गतिरिये माध्यमम ही दे सकत ह आलोचनाके फेरमें पत्रकर व अपनी सर्वोत्तम गतिरिका सदुपयाग नही करते ।

वास्तवम एम बयनक पाछे यह धारणा छिपी हुई ह कि आलाचना एक बौद्धिक व्यापार ह । आगचक विश्लेषण शक्तिसे सम्पन्न एक तटस्थ "यायाधारा" ह जो गम्भीरताका भारी चर्रा पहने हुए आलोच्य कृतियापर निर्लिप्त व्याख्या और निणय प्रस्तुत करता ह जिसमें बौद्धिकताका एक आतक और भाराब्रान्तता होता ह गिम सजनात्मकतासे कुछ लना-लना नही हाता । क्या सचमुच आलाचन वह "यायाधीन" ह जो घटनाम्यल और घटनाकी प्रत्रियाजाम दूर बटा हुआ बकालोनी बहमापर फमला दना ह । वह फमला मानवाय ह या अमानवीय इमका चिन्ता उमे कम होती ह नियम पात्रकी चिन्ता अधिक । आलाचनाम सजनात्मकताका रम दमनर एम ही आगेचक चौक उठत ह और यह कहना गुरू करत ह कि इम आगेचकका ता रचना-शक्तिमें रहना चाटिग था जम कि आलाचनाका मजनात्मकतान काइ सम्बन्ध नही । साय एम ही आलोचकाको ध्यानम रतकर कहा गया ह कि असपत्र बकि आलोचन बन जाता ह ।

सन्तुलित दृष्टि

मैं सर्जनात्मकता और आलाचनाम इस आत्यंतिक अलगावका पक्षपात नहीं। सर्जनात्मक प्रतिभावाला ही आलोचक सर्जनकी वास्तविक प्रक्रियाको पहचान सकता है वह अनुभव कर सकता है कि कला-व्युत्पत्ति सर्जनका समस्या कितनी गहरी और सश्लिष्ट होती है, कलाकी मूल प्रकृति क्या है? सर्जनात्मक प्रतिभा-सम्पन्न आलोचक शुष्क सिद्धांतोकी बात नहीं करता, सिद्धांतों या कृतियोंकी निर्लिप्त बौद्धिक विवेचना मात्र नहीं करता, वह अपनी रचनात्मक प्रतिभास भावावेगका समग्रानेका प्रयास करता है, कवि-द्वारा अनुभूत और अभिव्यक्त सत्य-चेतनाका अनुभव करानेकी चेष्टा करता है और इस तरह वह अपनी कल्पनाम रचनात्मक सौंदर्यकी सृष्टि करता हुआ पाठकोको सौंदर्यके माध्यमसे सौंदर्य तक ले जाता है। इन सारी रचनात्मक क्रियाआवे साथ उसकी विश्लेषणपरक बौद्धिकता और चिन्तनशीलता साथ लयी रहती है।

जबतक सहृदयता व्यक्ति-व्यक्ति के साथ एकाकार नहीं हो जाता तबतक रसका अनुभव नहीं हो सकता। समाजक जबतक अपना अहंकार लेकर बसा रहेगा तबतक रस नहीं पा सकेगा। स्वयं गुकलजीने कहा है कि काल्यका जा चरम लक्ष्य स्रष्टृकी आमभूत करके अनुभव कराना है उसके साथतम भी अहंकारका त्याग है।¹

सर्जनात्मकताम सव्यापीन आलोचना कथ्या आलाचना है जो केवल सिद्धांतोकी बात करता है किन्तु यह नहीं देखती कि इन सिद्धांतोंका यहस सजिन मानवान् साहित्यका पथ कितना प्रशस्त होता है या कि उनका मूल्यांकन कितना सही हो पाता है। द्वितीयजीने आलाचनामें सर्जनात्मकताका सौन्दर्य इन बातका परिचाया नहीं है कि उन्हें सर्जन-साहित्यमें ही रस राना चाहिए था किन्तु उल्ट यह सिद्ध करता है कि उद्ये स्पष्ट आलोचना साहित्य कितना गौरवान्वित हो जाता है। सर्जनात्मकताका रंग हृदय ही द्विदशाजीने समाशास्त्रिम एक एका रचातापन है कि वे एक साथ ही पदक रगवान् और पश्चिमका द्वैत, सामास्यवादी प्राचान साहित्य और इस उद्देश्य नवान साहित्य—सुबरा आम्बाद ल सकेने और इन साहित्यका समसतव लिए उह प्रभावित करनसा टट्वा—परम्परा मृग समाज सर्जकका व्यक्तित्व सप यागन कृतिराराक व्यक्तित्व—का विश्लेषण करने है।

कहा जा सकता है कि द्विदशाजीने समाशास्त्रिम मूलतः रचनाम है। इनका लक्ष्य रानाव मूल मौल्य और उमक विधायन कृत्याना समसतव प्रयत्न करनसा है। अर्थात् यह इन मानने समथक है कि साहित्यक सौन्दर्यका

१ 'साहित्यका सार्थक' : भाषाव्यवहारप्रसाद दिनेरी।

आस्वाद और परोक्षण साहि यक ही मानदण्डोमे होना चाहिए । किन्तु साहित्य
 क्या ह ? इसी बिदुपर विचागेम अनगाव लभिन होने लग्ता ह । जब यह
 कहा जाता ह कि साहित्यमें सामाजिकता नही है, मानवता नही ह सांस्कृतिक
 मूल्य नही ह तो क्या धमका यह अप हाता ह कि साहित्यको साहित्येतर क्षेत्रमें
 घसीटा जा रहा ह या इन सबका साहित्यने मजन और मूल्यके साथ अपरिहाय
 सम्भव जोगा जा रहा ह । दाना बातें करी जा सतती ह । बहून ने विचारक
 इस मनके ह कि साहित्य अपन भीतरमे सामाजिक और मानवतावादी स्वरा-
 को मुपर कर यानी वह एक निगैप प्रकारके सामाजिक उद्देश्यसे प्रेरित हो ।
 साहित्यकी साहित्यिकताका आग्रह करनवाले इस प्रकारकी उद्देश्यपरकताका
 विराध करने ह । किन्तु साहित्यम सामाजिकता और मानवतावादका समाविष्ट
 करनको एक दूसरा भी गष्टि ह जो मूल्य रचनात्मक ह । अर्थात् जा मानती
 ह कि स्वस्थ और सार्थ साहित्यक सजनके मूल्य ही सामाजिकता और
 मानववाप्ति हाती ह । यह सामाजिकता साहित्यपर आरापित नही ह बल्कि
 उनका मूल सान ह । उन मूल स्रोतम विच्छिन हानपर या क्षीण रूपस
 सम्बद्ध हानपर साहित्य अपनी गक्ति सो बछता ह । उनमें सौम्य जय उप-
 करणोमे भी आता ह । परन्तु वह सौदय उपरा और प्रभाव हीन हाता ह ।
 द्विवदीजान सामाजिकता और मानवतावात्क इसी सजनात्मक पहलूका साहित्यने
 साथ सम्बद्ध निया ह । यह बना स्पष्ट ह कि ब मानवतावात् आर सामाजिकताक
 स्वरको बहन करनेवाल साहित्यका हा उच्च साहित्य कहत हैं किन्तु उनकी
 सामाजिकता और मानवतावादी आत्मा साहित्यपर आरापित नही किया गया
 ह बल्कि साहित्य-सजनकी मूल गक्तिक रूपम पाया गया ह । प्रत्येक व्यक्ति
 अपना पानेद्वियाके सहार स्मरण करता ह । इन्ही उपलब्धिया और स्मृतियाके तान
 बाने व्यक्तिनी दुनिया बनती ह । परन्तु यह दुनिया दल्लती रहता ह ।
 ब्यक्तिक तथ्य जगत निरन्तर दूमर लगाक उपलब्ध तथ्य-जगतम टकरात रहत
 ह और सामाज्य तत्त्व कट-छँटेकर हमारा ज्ञानरागिके रूपम परिगत हाने रहत
 ह । एतन दो बातें गिद्ध होती ह—एक तो यह कि ब्यक्तिक अत करणस
 गृहीत तथ्यामज पान रागि मन्मूण रूपमे ब्यक्तिक नये होता । यह दूसराकी
 उपलब्धि और स्मृतिम बना तथ्यामक ज्ञान रागिमे टकरा-टकराकर बना हुआ
 एक एसा पन्थ ह जिसे हम अतर्वैयक्तिक तथ्य जगत कह सकत ह । दूमरी
 बान यत् मातूम होता ह कि यह अन्तर्वैयक्तिक तथ्य जगत निरन्तर परिवधमान
 और परिवनतमान पन्थ ह—वह गातगील ह । बन्ताना ब्यक्तिक तथ्य

मन्तुग्नि दृष्टि

होनी, केवल अन्तरकी चेतनापर मृदुल आघात करके विलीन हो जाती है। रीति कविकी अज्ञातयौवना नायिकाने जब अपनी दामीका रंगरी दतुअन ल आनेके अपराधमें शिष्टका या तो उसकी सरलताने ऐसी ही एक क्षणिक ज्योति उत्पन्न की थी। अधरके माधुर्यमें दतुअन कही भी मीठी होकर उम्र-सी नहीं लगने लाती। इसलिए इस दोहेमें मृदु कम्पन उत्पन्न करनेकी शक्ति होते हुए भी वह उतना अनुभूति प्रेरक नहीं हो पाया क्योंकि इस कम्पनका हेतु बाह्य सत्तासे असपक्ष होनेके कारण स्थायी नहीं होता और न अनुभूतिको गाढ़ रंग ही देता है। दोहा न्य प्रकार है—

अधर परम भीटा भई, दई हाथ सा डारि ।

लावति दतुअनि ऊत्र की नोखा खिअमति गारि ॥

लेकिन प्रश्न यही समाप्त नहीं हो जाता। यह कविता भी एक श्रेणीके लोकाका आनन्द लेती है इसलिए इस उपेक्षाकी नृष्टिसे नहीं देना जा सकता।

सामाजिकताके आग्रही ऐसी कविताका तुच्छ मानकर या तो इन्हें छोड़ देते हैं या इनका मजाक करते हैं किन्तु द्विवदीजी अनुभव करते हैं कि कलाकी दृष्टिसे इनकी भी विवेचना हानी चाहिए, इनके भीतर जो रस और आनन्द देनेवाला सौन्दर्य है उसे प्रकाशित करना चाहिए। बाह्य सत्ता बला नहीं है बल्कि तो कलाकी उस है कलामें वह ज्याकी त्या नहीं गृहीत हानी। क्या एक सश्लिष्ट व्यापार है उभय पन्थ एक विशेष प्रक्रियामें मिल-जुगकर रमायत तयार करते हैं। इसलिए साहित्य और कलाकी चर्चा रूढ़ या दलवादी सामाजिक दृष्टिसे नहीं हो सकती। शिबरीजा कहते हैं— कविताकी चर्चा करने समय मुणसे इतना डेँठ होनकी जागा जाय नहीं कर सकते पर मेरी आपत्ति उभी व्यक्तिगत दगुअनिक भीटा लगापर है जो स्वयं उस माधुर्यका धनी है। फिर भी यह रस प्रवारकी उक्तिवक्ति प्रयागने मूठ कारणारी खोज करने हुए इनकी गायबता प्रमाणित करते हैं— कवितात निरधर गयी जाती, बरल गाय प्रवाहमें गुठवने आनेके कारण उमरे मूठ अथ पिगजर अन्दर है गये रहने है। इन रुष्टियामे शत्रुका अर्धोत्त और आचाराना एक ऐसा मूल्य मिलना है जो एक कल्पित और अमान्य होता है। अधर सम्पत्तसे दतुअनना मीठी हो जाना इसी प्रकारका कल्पित और अमान्य अथ है पर क्या भा एक श्रेणीके सहृदयके वित्तम जायग कम्पा उत्पन्न करता ही है।

बाह्य सत्ताके स्वयं गार्ष्टियरा सज्ज गम्बय है यह बात सिद्ध हो जानपर भी यह जानना योग्य रहता है कि बाह्य सत्ता क्या है? बाह्य सत्ता सतहपर शिष्टा पन्नसानी गता मान गयी है। इतना अथ उग सत्ताग है जो शिष्टो

व्यक्ति तक सामित न हा बल्कि समष्टिमें व्याप्त हा। किन्तु क्या बाहर फकी
 हुई समस्त सत्ताका सब कुछ समेटना कलाकारके लिए आवश्यक है? क्या बाहर
 सिवाई पडनवाला सब कुछ सत्य है? इस सन्दर्भमें विचार करते हुए द्विविनीजीने
 कहा है कि—पान दामुहा पन्था है और उसके एक आर तथ्य है दूसरी ओर
 सत्य। सभी तथ्य सत्य नहीं हाते। एसा कह सकने है कि तथ्याक भीतर सत्य
 आनप्राप्त हाकर बतमान रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पानद्विवाये सहार
 कुछ तथ्याकी उपलब्धि करता है और कुछ वाताका उपलब्धिवाये सहारे स्मरण
 करता है। इन्ही उपलब्धिया और स्मृतियाके तान-वानम व्यक्तिकी दुनिया बननी
 है परन्तु यह दुनिया बालनी रन्ती है। ब्यक्तिक तथ्य जगन निरन्तर दूसरे
 हागोंके उपलब्ध तथ्य जगनस टकराते रहते हैं और सामाय तत्त्व छट-छटकर
 हमारी पानराशिक रूपमें परिणत हाते रहते हैं। इस प्रकार निय हमारे ब्यक्तिक
 उपलब्ध पानम परिवर्तन और परिवर्धन हाते रहते हैं। हमस एा वाते मिद्ध
 होना है—एक ता यह कि ब्यक्तिक अन्त करणम गृहीत तथ्यात्मक पान रागि
 सम्पूर्ण रूपम ब्यक्तिक नहीं हाती। वह दूसराकी उपलब्धि और स्मृतिम बनी
 तथ्यात्मक पान रागि टकरा-टकराकर बना हुआ एसा पन्था है जिम हम
 अन्तर्व्यक्तिक तथ्य जगन कह सकने हैं। दूसरी बात यह मालूम हाती है कि
 यह अन्तर्व्यक्तिक तथ्य जगन निरन्तर परिवर्धमान और परिवर्धमान पन्था है—
 यह गतिगोल है। [विचार प्रवाह प० १३३-१३४]

इसस मिद्ध हांना है कि सत्य वह नहीं है जिम व्यक्ति अपनी इन्द्रियाये उप-
 लब्ध करता है। सत्य वह है जा अन्त हागाकी उपलब्धियाका सामाय रूप
 हाता है। सत्य बदलता रहता है वह स्थिर नहीं रन्ता। इस प्रकार हम यदि
 मानव समष्टिको देखें ता पायेंगे कि अपना सीमाआम जूमत हुए उनम निबन्धन
 की अन्ध इच्छा और अनवरत गति मानवका मजम बढा नय है। जम हम
 ब्यक्तिगत दृष्टिमे अलग-अलग ब्यक्तियाका दखत है या जावनन उपरल स्तरोंको
 दखत है ता हमें एसा लगता है कि मानव बमजार है एान है स्वार्थी है पशु-
 बृत्तिवा गिफार है। हमें य एा सत्य मालूम पन्ता है। किन्तु जब हम मानव
 जीवनक मामूहिक प्रवाहको दखन है मन्वक नाचैकी धाराका दखन है ता एसा
 प्रतीत हाता है कि समष्टि मानव अपना सीमाआम जीर अनिनाआके वात्रजू बग
 ही समय सगन और बग है। उमें उच्चतम उपलब्धियाँ भन् ही प्राप्त न ही
 सकी है। किन्तु उपलब्धियोंके लिए उनका अगण्ड मामूहिक यात्रा अपने आपमें
 बम मटत्वपूर्ण और बम सत्य नहीं है। समूह मानवको इय अगण्ड यात्राका
 ही परिणाम है। उन सम्पनाआ और सस्ट्रियाता जम और विनाय जो अपन
 सन्तुलित दृष्टि

सारे बाह्य जगतका अमुन्तर छाँवर सौंदर्यका सृष्टि नहीं कर सकते। सुंदरता सामंजस्यका नाम है। जिस दुनियामें छाटाई-बडाईमें, घना बीर नियम, पानी और अनानीमें जाकास-पातालका जन्तर हो वह दुनिया सामंजस्यकी नहीं बढी जा सकती और इसलिए वह सुंदर भी नहीं है। इस बाह्य अमुन्तरताके दृष्टपर सड होकर आन्तरिक सौंदर्यका उपासना नहीं हो सकती। हम उस बाह्य असौल्यको दबना ही पडगा। निवन निवगन जनताके बीच सड होकर आप परियाने सौंदर्य लोककी कल्पना नहीं कर सकते। साहित्य मुन्तरका उपासक है। इसलिए साहित्यिकका अमामन्स्यको दूर करना प्रयत्न पहले करना होगा। सौन्दर्य और असौल्यका काइ समन्वयता नहीं हो सकता। सत्य अपना पूरा मूल्य चाहता है। उस पानेका सोबा और एकमात्र रास्ता उसकी कीमत चुका दना ही है। इसमें अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं है। हमारे देका बाह्य रूप न तो आँखाको प्रीति देन लायक है न कानाको न मनका न बुद्धिका। यह सच्चाई है। (अमानक पूठ प० १९८-१९९) इस उद्धरणका तात्पर्य यह है कि वही साहित्यिक सौंदर्यका निर्माण कर सकता है जो अपने सामाजिक दायित्वका समझता है और कई प्रकारके तत्वाको परस्पर अनुस्यून करता है। जब वह परम्परा और आधुनिकता आत्म आर बाह्यका परस्पर गुँथता है तब उसमें मुन्तरताके मात्र-हीमाय सामाजिक अनुदरताका वाय तथा उस दूर करनेकी तत्प हाती है जब उसमें सामाजिक चेतना मूर्तिमान हा जती है तभी वह जीवन-भवत्नाको गड सकता है। अमुन्तरताको मिटानेवाला विद्रोही स्वर भी मुन्तर है और सामाजिक पीडाके बीच चुपचाप बठकर माल प्रवचन करनेवाले आमा-मुया कलाकारोंके अमन गग अमुन्तर है।

कहा जा चुका है कि द्विवर्गीयकी समागा-अष्टि मूलत मजनामक है। वह समग्र जीवन रचनाके लिए हर प्रकारके तत्ववादका स्वीकार करना चाहती है और साहित्य भी समग्र तथा हागा जब वह समग्र जीवन-अष्टिम उच्च होगा। इस अष्टिक सामने मूल प्रश्न यह नहीं होता कि क्या क्या छाडा जाये बल्कि यह हागा है कि कहाँ-कहाँमें क्या-क्या लिया जाय ? इस तत्व-अग्रहा वृत्तिक साथ अतत्व-वागी वृत्ति अत-आप लगी हुई है किन्तु त्याग करनेवाली वृत्तिमें कभी-कभी किसी पूर्वग्रहके कारण तत्वाना भा त्याग हो जाता है। वह कभी कभी दृष्टि-निगमन ग्रन्थ हानक कारण अथ सुंदर चीझोंका भी त्याग कर देता है किन्तु नत्व-वागी वृत्ति सत्मान्वयीका वृत्ति डाती है। वह उदार हाता है। जहाँ-कहाँ उस जातना गन्तवाले तत्व निसाई पात हैं उन्हें ल लती है। इसी दृष्टिमें प्रेरित हाकर विवग्जान जीवन और साहित्यिक भिन्न भिन्न क्षत्रामें निसाई

शान्तिनिकेतनस शिवाङ्क

पन्नेवाले तत्त्वको एक साथ स्वीकार किया है। समीक्षाके क्षेत्रमें निणयामक, व्याख्यामक, प्रभाववाणी समीक्षा-दृष्टियाँ एक-दूसरेमें भिन्न और कुछ अंगोंमें एक दूसरेकी विरोधिनी दिखाई पड़ती है, किन्तु द्विवेदीजी इन तीनों समीक्षा-दृष्टियोंके भीतर निहित मूल मर्मोंका एक साथ अनुस्यूत वर एकको दूसरेका पूरक बना दते हैं। निणयामक समीक्षा उत्तम, मध्यम, निष्ठेष्ट श्रेणियाका भेद स्वीकार करती है किन्तु व्याख्यामक समीक्षा केवल प्रकार भेद स्वीकार करती है। व्याख्यात्मक समीक्षा वार्तनिक समीक्षा है जो व्याख्या करती है निणय नहीं देती। द्विवेदीजी इन दोनों समीक्षाकाकी उपरिधियाना स्वीकार करते हुए कहते हैं—'एक दिन वनस्पति शास्त्रक बबल और गुलाबका जाति भेद बतानके बाद भी एक ऐसी शास्त्रकी आवश्यकता रह जाती है जो बतावे कि इन दोनोंमें-से किसका नियोग मानव-जातिके बल्याणम किया जा सकता है। इसी प्रकार समाजक नहीं तो, कोई और ही बताव कि इस किस समाजको क्या लाभ या हानि है—जयान समाजके लिए कौन कितना उत्कृष्ट या अपकृष्ट है।' (साहित्यका सायाँ प० १४७) इसी प्रकार वे प्रभाववाणी समीक्षाके भीतर निहित उमक सौम्यका समीक्षाके लिए हितकारा मानते हैं। आचार्य गुक प्रभाववाणी समीक्षाका कोई ठीक ज्ञानका वस्तु नहीं मानते। उमका न जानक क्षत्रमें न भायक क्षेत्रमें कोई मूय है। किन्तु, द्विवेदीजी गुकजीमे दूर तक सहमत हात हुए भी प्रभाववादी समीक्षाके सुन्दर तत्त्वको स्वीकार करते हैं। गुकजी समीक्षामें बुद्धि मूलक चिन्तनका प्रधान मानत है। यह ठीक है किन्तु मूल जान है, कि वायका समीक्षा कितना भी बुद्धि मूलक क्या न हो वह भाग्ययोगका समानेका प्रयत्न करती है। द्विवेदीजीका दृष्टिमें यह वाय प्रभाववाणी समीक्षाकी कुशाग्रतामे करती है। चिन्तन और गवेषणान साथ प्रभाववाणी समीक्षाकी रचनामकता मित्र जाये तो समीक्षा नयी छविमें दात हा उठे। द्विवेदीजी अपनी अनेक याव हारिक समीक्षाओंमें इस सन्तुष्टि पद्धतिको अपनाकर चले हैं। कर्तार-मूलकी आलोचना करते समय द्विवेदीजीने उसके वाच्य-भाष्यका विच्छेप-बुद्धि और रचनात्मक हृष्य, दानमि समझनेका बड़ा सुन्दर प्रयास किया है। उनके बहूतमे अय निबन्ध भी (जसे ममालाचक्रकी टाक गान गाविन्दकी विरहिणा राधा आदि) द्रम काविकी आलोचनाका स्वस्य स्वम्प प्रस्तुत करने हैं।

परम्परा और प्रगतिका सम्बन्ध अविच्छिन्न है। द्विवेदीजीकी मनुएनवाणी दृष्टि इन दोनोंमें भा सामजस्य स्थापित करता है। यह बला स्पष्ट है कि द्विवेदीजी वत्तमान जीवाको बहूत महत्त्व दते हैं। वे मानव-समूहके विकासमें धोर आस्था रखते हैं। जो भी कुछ नय रूपमें सामने आ रहा है वह हमारे एतिहासिक

विकासका परिणाम है, उसे भला-बुरा कहकर हम छुड़ी नहीं पा सकते। उसकी नयी छत्रियाँ, गतिवाँकी स्वीकार करना है उसको बुरूपताअभि जूषना है प्रश्नको समझना है, समस्याओंको हल करना है। वर्तमान जीवन प्रवाहसे कट कर हम जीवनको नहीं देख सकते। इसे ही हम सुन्दर बनाना है। द्विवेदीजी आधुनिक जीवन चेतना-सम्पन्न साहित्यको इसीलिए अच्छा साहित्य मानते हैं। परम्पराकी आर पीछे लौटनावाँ जीवन और साहित्य अपने दायिब और सौम्य दानोंम चुक जाता है। परम्पराको वर्तमानकी ओर उमुख करना है, न कि वर्तमानका परम्पराकी आर। वर्तमानको समझनेके लिए परम्पराको समझना आवश्यक होता है, क्योंकि जो वर्तमान हमारे सम्मुख आया है वह एकाएक नहीं आया है वह न जान कितने घाता प्रतिघाताका परिणाम है। न जान उसका साथ कितने कारण जुड़ हुए हैं जो अतातक गभमें अदृश्य हैं। उन कारणोंका समझना वर्तमानके समझनेमें सहायक होता है। दूसरे अतीतमें जो विचार-सम्पदा और भाव-सम्पदा सुरक्षित हैं वह हमारी मन्त्र करती हैं। इस प्रकार परम्परा या इतिहास वर्तमानके सहायकके रूपमें ही स्वीकार किये जा सकते हैं। हमारे वर्तमान जीवन लक्ष्यके रूपमें नहीं।—'यह गलत बात है कि मनुष्य कभी पीछे लौटकर ठीक हुआ है उसी विचारोंको अपनायेगा जो पहले थे। जो लोग मध्य युगकी भाँति भाचनकी आदतसे इस भयकर वात्स्यायनकी उत्पन्नस वच निरालनका साधा समझते हैं, व गलती करते हैं। इतिहास चाहे और किसी क्षेत्रमें अपनेका दुहरा लेता है। विचारोंके क्षेत्रमें जो गया सो गया। पर इतिहास हमारा मदद अवश्य करता है। रहे रहकर प्राचीन कालके मानवीय अनुभव हमारे साहित्यकारोंके चित्तका चञ्चल और वाणीको मुखर बनाते अवश्य हैं पर वे व्यक्ति साहित्यकारोंकी विशेषता-रूपमें ही जा सकते हैं।' (विचार प्रवाह पृ० १९०)

इसलिए द्विवेदीजी मानते हैं कि भारतीय अक्षर गान्धेय उपयोगी हैं यदि वे प्रेरणा-स्रोतके रूपमें काम करें। यदि वे संस्कार बनकर पाठकोंको देश और राष्ट्रके चान्द जानने वाधा दें तो उनकी उपयोगिता नहीं रहेगी— भारतीय मनीषाके सर्वोत्तम अग्राम-से एका प्रतिनिधित्व करनेवाले इन श्रयाज्ञा या ही नहीं छात्र दना चाहिए। नयी समीक्षा इहे प्रेरणा-स्रोत मानकर चरिताय होगा। (विचार प्रवाह, पृ० १३२)

इस सम्बन्धमें भारतीय रसवाँकी चर्चा भी जा सकती है। रसवाँ भारतीय साहित्य-समाधाकी श्रेष्ठ उपलब्धि कहा जा सकता है। किन्तु उस रसवाँका निर्माण और आम्वादन करनेके लिए एक विशेष प्रकारकी समझसवाँकी मनोवृत्ति

आवश्यक होती है। प्राचीन भारतीय व्यवस्था समजसवादी थी, यानी, भारतीय जनमानस समस्त मानवीय व्यापार और सम्बन्धोंकी ईश्वरीय व्यवस्था-द्वारा निर्मित और संचालित मानता था। अमृतोप और विपमताके भाव नहीं पदा होते थे। रसवाद इसमें समजसवादी मनावृत्तिकी उपज है। रसबोधपर विचार करते समय इन पण्डिताने स्वीकार किया है कि वा प्रकृतिक भाव एक ही आवश्यक भोग आ सकते हैं। यह अवश्य है कि जिसे वे रसवाच कहते हैं—जो सामाजिक सहृदयके मानसिक संस्कारकी उपमा परसे नहीं टिक सकता—उसके लिए ऐसी दो तुल्यबल सब घातके सिद्ध होते हैं।

अतमें कहा जा सकता है कि द्विबन्धकी समीक्षा-दृष्टि बड़े व्यापक घरातल पर बनी है। वे साहित्यके सदृष्ट स्वरूपको निर्मित और प्रभावित करनेवाले सभी तत्त्वोंको पहचानते हैं उनकी परीक्षा करते हैं, उनका आस्वाद लेते हैं। वे प्राचीनके पण्डित हैं, नवीनके व्याख्याता हैं बुद्धिके धना है सहृदयताके पुत्र है सामाजिक शक्तिके आकाशी है सौंदर्यके उपासक हैं, भावा और विचारका समृद्धि साहित्यमें दर्शना चाहते हैं किन्तु शब्दाके भी भ्रम और गिल्पी है, सृष्टिके व्यक्तित्वके अद्यता है और उसके समूचे परिवर्तके सत्या (जिनके बीच वह मग्न करता है) का जाननेके आग्रही है। इस प्रकार द्विबन्धकी साहित्यका परस्पर समय, उसके समस्त सौंदर्य और असौंदर्य तथा वह प्रभावित करनेवाले तत्त्वोंका अध्ययन करते हैं। वे आस्वाद सबका लेते हैं (क्योंकि वे अपने विनी न किसी गुणके कारण साहित्य है), किन्तु मूल्यांकनके समय उनका अपना स्पष्ट मानक सामने रहना है—वाय केवल कीर्ति नहीं है। वह मनुष्यको सामान्य पणु घरातलसे ऊपर उठाकर उच्चासनपर बसनेका सामन भी है।

■

प्रेमचन्दका अरना मत है जिसपर वे पहाड़के समान अविच्छिन्न रहते हैं। इस एक महागुण (निश्चित मत) के कारण नाना विरोधोंके होते हुए भी जैनेन्द्र कुमारका साहित्यमें अपना स्थान बना लेनेमें कोई राक न सका। वह उपवासकार है ही नहीं यदि उसमें अपनी विशेष दृष्टि न हो और उस विशेष दृष्टिपर उसका ही विश्वास न हो।

—साहित्य साहचर

मानवतावादी दृष्टि

• •

शरमुनाथ सिंह

हिन्दी-साहित्यके रगमचपर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने जिस समय अपनी ऐतिहासिक 'भूमिवा वा लेकर प्रवण किया उस समय साहित्यके इतिहास और समीक्षाके क्षेत्रमें दो प्रकारकी विचार धाराएँ एक दूसरीसे टकरा रही थीं। पहली विचार धारावा प्रतिनिधित्व आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कर रहे थे, जो साहित्यका युग-सापेक्ष मानल हुए भी सम्कारगत वर्णव नतिकताक मान-ण्डसे ही सब प्रकारक साहित्यका मूल्यांकन करनभ विद्वान् रघत थे दूसरी ओर व नये आलोचक थे जो छायावादी काव्य धाराके मूल मोतसि प्रेरणा ग्रहण करने थे तथा नवान मनाविना और सौन्दर्य शास्त्रका दृष्टिकोण अपनाकर समीक्षा लिखते थे। इस विचार धाराका प्रतिनिधित्व आचार्य नन्ददुलार वाजपयी, टी० नगेन्द्र आदि कर रहे थे। माधी युगसे बहुत कुछ प्रभाव ग्रहण करने हुए भी आचार्य शुक्लने मूलतः सामन्त आदर्शवाद अथवा सुधारवादी नतिक दृष्टिकाणका ही अपनी समीक्षा और मूल्यांकनका मान-ण्ड स्वीकार किया था। इसक विपरीत दूसरी विचार धाराके समीक्षानापर पैजोवाद-जनित व्यक्तिवाद जावन-मूल्या और व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी प्रेरणासे उद्भूत सौन्दर्य भावना और जीवनादर्शिका पुरा प्रभाव था। इन दाना ही मतवादानें यद्यपि काफी गहराई और व्यापकता थी, किन्तु दानाही एक बहुत बड़ी कमी यह थी कि उसके पास इतिहासका गति विधिको पहचानने और साहित्यके साथ उसका सम्बन्ध जाडनेका कोई वैधानिक साधन नहीं था। इमा कारण दाना ही अपने-अपने ढगने आमपरक (Subjective) समीक्षामें लगे रहे। एकमें लोक मगलकी भावना टिडू राष्ट्रीयता और पुनरुत्थानवाद धनकर रह गयी था ता दूसरम व्यक्तिक सौन्दर्य-चनना ही 'कला कलाके लिए क सिद्धान्तकी सीमा तक पहुँच गयी थी। पहला मतवाद महत्तावादी दृष्टिकोण (Classical outlook) से अनुप्राणित था ता दूसरा रामानी और प्रभाववादी दृष्टिकोण (Romantic and impressionist

outlook) स। किन्तु यह तनाव अधिक दिन नहीं रह सकता था। यह वह काल (१९३०-४०) था जब दशमें राष्ट्रीयता नवीन अन्तराष्ट्रीयता भावनाओंसे शक्ति ग्रहण करके नया बल और नयी प्रेरणा लेकर नव-जीवन धारण कर रही थी और पूँजीवादी तथा सामन्तवादी भ्रमका कुहरा फट रहा था। अतः उपर्युक्त दाना दृष्टिकाणांसी सीमाएँ भी स्पष्ट होने लगी। इसी समय हिंदा-साहित्यके इतिहास और समीक्षाके क्षेत्रमें दो नये दृष्टिकाण सामने आये। पहला ऐतिहासिक सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकाण अथवा मानवतावादी समान गाम्भीर्य दृष्टिकाण था और दूसरा था माक्सवादी समान गाम्भीर्य दृष्टिकाण। पहलेका प्रारम्भ आचार्य हजाराप्रसाद द्विवेदाने किया और दूसरेका डॉ० रामविलास दामा तथा शिवदानसिंह चौहान आदिने।

आचार्य हजाराप्रसाद द्विवेदाकी हिन्दी-साहित्यका सदस्य बनीं दिन यह है कि उन्होंने हिंदी-समीक्षाका एक नयी उचार और वैज्ञानिक दृष्टि दी है। इनके पूर्व डॉ० पाताम्बरदत्त बन्ध्याल-जम श्याजियाने इस दिशामें वाद्यारम्भ अवश्य किया था, किन्तु उनके पास वह मानवतावादी उदार दृष्टिकाण नहीं था जो परम्परा और शास्त्रकी विवचना और निष्कर्षोंका वर्तमान जीवनमें सजाजित करता और इस प्रकार आगवक्त्रको साहित्यका ही नहीं मानव समाजका भी पथ प्रदर्शन करता है। द्विवेदाजीके पास वह दृष्टिकाण है जो उन्हें उनका विद्यालय भारतीय वाग्मयके अध्ययन-अधन, वर्तमान विश्व-समाजका समस्याओं और प्रश्नोंके चिन्तन-मनन तथा गति-निवृत्तनका वातावरण और रवि बाबू तथा आचार्य शिबिनाहन मन जम उदार व्यक्तित्ववाला मनोपियाके सम्पन्न निमित्त हुआ है। यन्तुत द्विवेदाजी हिंदाके क्षेत्रमें भारतीय वाग्मयके क्षेत्रका आरम्भ गये = वरिष्ठ भारतीय वाग्मयके भीतरमें गुजरते हुए हिन्दीके क्षेत्रमें आये = और उसमें अपने विद्यालय गानकी मुविधाओंके साथ उन्होंने अपना एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है। यही कारण है कि पूर्ववर्ती आगवक्त्रोंकी उनकी दृष्टि भिन्न है। द्विवेदाजीने उक्त ऐतिहासिक और समाज गाम्भीर्य समीक्षा-पद्धति का नींव डाली है जो साहित्यका अपने-आपमें स्वतंत्र मानकर नहीं चलता बल्कि उक्त मस्तिष्की जीवन धाराका एक महत्वपूर्ण अंग मानती है। सांस्कृतिक के साधन या एकांगीय यन्तु नहीं मानते उनके अनुसार वह प्रगतिवादी, परिश्रम-शील और परम्परा-निरतयम युक्त है। इन तर्क अनिश्चित साहित्य भी मस्तिष्की अंग हानक कारण, परिश्रमशील किन्तु प्रातिगोत्र =। इस सम्बन्धमें उनका कथना है कि 'मनुष्यका जीवन गति बही निमित्त है। यह सत्यता और सांस्कृतिके ब्यापारको रेंदनी चली आ रही है। दश और जातिकी

विगुद्ध सम्प्रति केवल वातना वात ह । गुड ह केवल मनुष्यका दुदम जिजीविषा । वह गंगाकी अवाधित-अनाहत धाराक समान सब-कुछका हजम करनेक बाद नी पवित्र है ।”^१

इस तरह तत्कालीन सामाजिक परिस्थितिमें सांस्कृतिक गति विधि, साक जीवन, राजनातिज हलचल आदिके बीच रखर ही साहित्यका परागण करना साहित्य समीक्षारी समाज शास्त्रीय पद्धति ह । कहना नहीं होगा कि हिंदी समीक्षाके क्षेत्रमें इस दिशाम पहला बरम उठानवाल आचार्य द्विवेदी ही ह । आचार्य रामचन्द्र गुक्लने साहित्यके इतिहास और आत्माचनाव सम्बन्धमें जा मानदण्ड स्थिर किया था, उसमें द्विवेदीका मानदण्ड बिलकुल भिन्न ह वस्तुत य दोना आचार्य साहित्यका दा दिगाआ और दा भिन्न दृष्टियुक्त दखत ह । गुक्ल जीने अपनी एक शैलीकी निपुणता, विचारोंकी अचिन्ति और दृढता तथा मूढम साहित्यिक दृष्टिक बावजूद उन तमाम सातो और प्रभावाकी उपमा का ह जिनका सम्बन्ध उदघाटन और विवचन द्विवेदीजान किया है । गुक्लजान यदि हिंदी साहित्यको उसका इतिहास दिया ह तो द्विवेदीजीने सचमुच उस साहित्यकी भूमिका प्रस्तुत की ह और इस तरह उनके अगूरे कायका पूरा किया ह । वस्तुत ये दानों व्यक्तित्व एक दूसरेके पूरक ह प्रतिद्वंद्वी नहीं ।

इस सम्बन्धमें ध्यान देनेका एक बात यह ह कि गुक्लजीने अपने इतिहासमें सामाजिक ऐतिहासिक धार्मिक और अन्य सांस्कृतिक पष्ठभूमियाका अपनाकृत कम महत्व ता दिया ही ह, विभिन्न कालके साहित्यिक मूल्यांकनमें उहान तटस्थता भी नहीं बरती ह । उदाहरणार्थ भक्ति-कालमें उहान सगुण-भागकी राम-भक्ति-शाळा और निगुण भागका प्रेमाश्रयी शास्तात्र विवचनमें जितना रस णिया और उनकी जितनी बिगद विवचना की ह, उतनी जानाश्रयी शाळा और कृष्ण भक्ति शाळाकी नहीं इसका कारण उनका वह बलव सस्कार और दार्शनिक विचारधारा ह जिसकी अभिव्यक्ति उनक विभिन्न ग्रन्थों और निवन्धाम हुई ह । साथ ही व लाल मगलवाण और रमबादी आलाचक भी थे । इन दाना कारणों साहित्यके प्रति उनकी विशेष धारणा था जिसका आदग रूप उन्हें तुलनामें प्राप्त हुआ था । इसा पूर्वग्रन्थ साथ उहान प्रत्येक कवि और प्रत्येक गुणक साहित्यपर विचार किया ह । अत यह निश्चित था कि वे कबल आत्ति सत्त कवियाक प्रति तटस्थ और उत्तरा णि नहीं अपना सकत थे । अपभ्रंशके कवियाक सम्बन्धमें भी

१ 'भसोके फूल' पृष्ठ ८ ।

उनकी यही धारणा थी। उनके अनुसार निगुण सून और सिद्ध ऋषि सामान्यदिक और घमचालिन अधिक थे, उनमें सामाजिक सम्भारना और सहृदयताका बर्मी थी जोर उनको "बानीमें लोक धर्मकी अवहेलना ठिपी हुई थी।" साहित्यके इतिहासकार और मर्मोपकके लिए जिस तटस्थता और उदारताकी आवश्यकता हानी है और जिसकी गुणधर्मों अपेक्षाकृत बर्मी है वह द्विवेदीयैय पृथक् स्वयं निरवगड पत्नी है। द्विवेदीयैय समूचे साहित्यमें पबग्रह जैमी थोड वही नहीं निरवलाई पत्नी है। 'मूर-साहित्य और मध्यकालीन घम-साधना म षण मन्ति गायने सम्बन्धमें उन्हां उमी विगन्ता और तमयतासे विचार रिया है जिस तरह 'कबीर और हिन्दी-साहित्यकी भूमिवा में सुन्ताका निगुण-वागपर। एमी प्रकार रीति-कालके सम्बन्धमें भी उन्हांने अपना पदतिष्ठ सम्पक विचार किया है और उस प्राचीन भारतीय साहित्यकी परम्पराके मन्में रचकर दया है।

गुणधर्म मध्यकालक जिस लोक धर्मकी बात कही है वस्तुतः वह लोक धर्म नहीं हिन्दू-मयाजके युवा वगक विगिष्ट गगारा धर्म था। वस्तुतः लोक-धर्म ता उस विगाल जन-समुदायका वह आचार-विचार जोर विश्वास था जा गिगित और विगिष्ट हिन्दू-जनताक धर्म-आचारस बहुत-कुड भिन्न था। दूसरे गन्धमें पन्ना समुदाय ब्राह्मण-सम्कृतिम प्रभावित था और दूसरा विगाल दूजक-मयाज समग्र सम्कृतिकी परंपराक्रमे आरुद्ध था। अतः अपन्नाके सिद्ध कविता जैन-कविता और वाक् मन्तान जिस घम विवादाका अभिव्यक्ति का है वही तकागीन लोक-धर्म और लोक-विश्वासाका सच्चा रूप है। एस दृष्टि उकागीन सम्कृतिके स्वरूप, उस कालकी सामाजिक गीन परिस्थितिपाका पना उगानेके लिए निगुण धाराके कविताय विगैय रूपस विचार होना चाहिए था। यह काम द्विवेदीयैयन अथत सरलतापूर्वक किया है। जिस कविताका गुणधर्म 'जन-धर्मक उपन्ना विषयक' या 'लोक धर्म विगारा या साम्प्रदायिक और गुण धारोपन्ना का है उमाके सम्बन्धमें द्विवेदीयैय कते है उनमें कई रचनाए एमी हैं जो धार्मिक ता हैं किन्तु उनमें साहित्यिक सरलता बनाये रनेका पूरा प्रयास है। धर्म वही कविता का प्रेरणा दे रहा है। इनर कुछ ऐसी मनोभावना दिग्गार परन लगी है कि धार्मिक रचनाए साहित्यमें विवक्ष्य नहीं हैं। बर्मी-कभी गुणधर्मके मतका भी एस सम्बन्धमें उद्धृत किया जाता है। मुझ य कात बहुत उचित नहीं मालूम दता। धार्मिक प्रेरणा या आध्यात्मिक उपन्ना हता बान्धयता वापक नहीं समता जाना चाहिए। धार्मिक साहित्य इन मात्रम काई रचना साहित्यकी कोटिअ अलग नहीं का जा उकता। यदि एसा समता जाने लगे तो गुणधर्मका 'धर्मवर्गि माग ना साहित्य गन्धमें अविवक्ष्य

हो जायगा और जायसीका 'पमानत' भी साहित्य सामाजिक भीतर नहीं घुस सकेगा।" सा वात तो यह ह अगर केवल गुल्जीवे रसवाकी दृष्टिमे ही साहित्यको देला जायगा तो साहित्यकी सीमा बहुत सवाण हो जायगी।

द्विवर्णीजी की जीवन-दृष्टि उनके समीक्षा-साहित्यमें प्रत्यक्ष रूपम सबत्र अभि व्यक्त हुई ह। वे साहित्यको सामाजिक जनताके जीवनसे विच्छिन्न कोई अलग वस्तु नहीं मानते। मनुष्यका जीवनके क्षेत्रमें प्रतिष्ठित करने ही उहोंने समूचे साहित्यको दग्गनेका प्रयत्न किया ह। यह मनुष्य समग्र और मुक्त एक इकाईके रूपम ह विभिन्न वर्णों-वर्गों धर्मों-सम्प्रदाया, जातिया राष्ट्री जातिकी सीमाओं में बँटा और बँधा मनुष्य नहीं। उहान प्रमाणों और उदाहरणा-द्वारा बराबर यह सिद्ध करनका प्रयत्न किया ह कि विभिन्न जातिया और देशोंके बीच आदि वाक्स सांस्कृतिक तत्त्वाका आदान प्रदान होता आया ह क्याकि सत्य एकत्वीय या एकजातीय नहीं हाता। साहित्य और कला भी ऐस ही सत्य ह जिनके सम्बन्धमें द्विवर्णीजी कहते ह 'मनुष्यके सभी विराट प्रयत्नाके मूलमें कुछ व्यक्तिगत या समूहगत विश्वास हात ह परन्तु जब व उस सस्कारजय प्रयोजन की सीमाना अतिक्रम कर जाते ह तो उसम मनुष्यकी विराट एतता और अपार जिजीविषाका एश्य प्रवट हाता है। फिर वह किसी समूहम आबद्ध न हाकर मनुष्य मानकी सम्पत्ति हो जाता ह। इस कथनसे यह स्पष्ट ह कि वे मानव मान की एकताम विश्वास करते ह और पारचात्य सस्कृति तथा पौरात्य या भारतीय सस्कृतिक भेत्का कृत्रिम मानते ह। कुछ प्रतिक्रियाजानी आलोचक सकीण राष्ट्रीयताके जागम महानक कहते लगते ह कि ससारका सब पान सकीण भारतम हा बाहर गया ह अत हमें भारतीय सस्कृतिको दृढतापूर्वक पक रहना चाहिए ऐस लोगके सम्बन्धम द्विवर्णीजी कहते है कि इस प्रतिक्रियाकारण इन दशम उन जत्यत उल्हाह-परायण समालोचकाका आविर्भाव हुआ ह जा सब समस्याओंका समाधान एक ही कसौटीपर कसकर करने लग ह हमारा यहाँ एसा माना ह या हमारा यहाँ एसा नहीं माना ह। हमारा यहाँ उनका बमोघ ब्रह्माहण ह जिससे किसीका भी घरागायी बनाया जा सकता ह। पारचात्य विचारका प्रभान उनका ऐसा बहूधा विधापित निम्न वाक्य ह कि जिस किना विचारका परास्त करनके लिए यह एक वाक्यास बहुत काफी समया जा सकता ह। कानकी आवश्यकता नहीं कि शिवजीका सवेत 'गुल्जी तथा उनका-जमे इतर विचारकोरी जोर ह।

१ 'हिंसा साहित्यका भ्रांतिकाल', पृ० ११।
 २ 'साहित्यका मन' पृ० ३६।

मनुष्यता या मनुष्यकी एकताके सम्बन्धमें 'साहित्यका मम' शीपक अपने
 भाषणमें द्विवर्गीजने बहुत ही वनानिक ढगन विचार किया ह। मानवतावाद
 निश्चय ही एक आत्मावा है जिसका प्रतिपादन आदि कालमें बल-बल महात्मा
 और महापुरुष करते आये ह। किन्तु द्विवर्गीजका मानवतावाद यथाथोमत्व
 मानवतावाद है जा इतिहास और विज्ञानमें मुँह मोकर चलनेवाला नही ह।
 इस मानवतावादकी अभिव्यक्ति उहोंने हिंदी-साहित्यकी भूमिका और
 कबीर में इतिहासका आशय लेकर का ह तो 'साहित्यका मम'म य अभि
 व्यक्ति गान और विज्ञानके विविध स्वस्पाक उद्घाटनके माध्यमसे हुई ह।
 मममें उहान स्पष्ट गानोंमें कहा है कि काव्य और विज्ञान एक ही मानवाय
 चतनाके दो किनारारी उपज है वे परस्पर विच्छिन्न नहीं ह परस्पर विरुद्ध तो
 नही ही ह। साध्य शास्त्रका आलोचक इसा परस्पर असम्बद्ध और विच्छिन्न-भी
 लगनेवाली रम प्रेरणाक सातोम सामजस्य साजता ह। अथान साहित्यके
 आलोचकको विज्ञान और राजनीति आदि शास्त्रात्म सहायता लेना ही पनी
 क्षयया वह साहित्यक मम तक नगी पहुँच सकता ह। द्विवर्गीजान आलाचनाके
 क्षममें साहित्यपूर्ण मम उठाकर इतिहास धम विज्ञान पुराण विज्ञान प्राच्य
 विद्या जीव विज्ञान मनाविज्ञान प्रजनन शास्त्र नरर शास्त्र पुरातत्व विज्ञान
 नीति शास्त्र कानून अथशास्त्र राजनीति शास्त्र आदि सबस भरपूर लाभ
 उठाया ह। भारतक लिए यह काम नही जान नहा ह। यहाँ काय शास्त्रको
 ब्रान मीमांसा याय धम शास्त्र काम शास्त्र आदि विम सामा तक प्रमा
 वित किया ह यह साहित्यके माधवोंमें छिपा नहा ह। अत आजके युगम जान
 विज्ञानक उन अगाका जा पश्चिममें आय है समादाक क्षममें उपयोग करनेमें
 क्या बुराई ह ? उहान जाव विज्ञानक अध्ययनका निष्प और साहित्यक लिए
 उमकी उपयोगिताकी चचा करत हुए मनुष्यताकी परिभाषा इस प्रकार का है
 जा जमा ह उस बसा हा मान लेना मनुष्य-पूरा जाना लक्षण था पर जो
 जसा ह बसा नही बन्कि जसा हाता चाँहिए बसा करनेका प्रयत्न मनुष्यकी
 अपनी विशेषता ह। इसम प्रयत्नकी आवश्यकता जानी है प्रयत्न करना मनुष्य-
 का स्वाभाविक धम ह लाभ सत्तात मनावृत्ति ह बह पानु और मनुष्यमें ममान
 ह। पर औगय पशु-म-मवत्न उसमें नही हात यह मनुष्यका अपना विशेषता
 ह इसी प्रकार आहार, निद्रा आदि पशुनामाय धगतलम जो उपाकी खाद्य
 ह जा समयमें तपन औगयमें और त्यागन प्राप्त होता ह वह मनुष्यका अपनी
 विशेषता ह यही मनुष्यकी मनुष्यता ह। फिर मनुष्य प्रवृत्तिने नियमाका विरलक्षण
 करता ह और इस प्रकार उनका उपयोग करता ह कि जिगस वह नयी सृष्टि कर

मनुलित दृष्टि

सबे । वियेक कपना, ओगय और सयम मनुष्यता ह और इसके विरुद्ध जानेगाले मनोभाय मनुष्यता नही ह ।’

मनुष्य-मात्रकी माल भावना ओग जीवनके प्रति सुप्रतिष्ठित दृष्टिस द्विवेदीजा ना तात्पर्य यह ह कि साहित्यकारका लक्ष्य मनुष्यका हितसाधन करना ह और उस कला कलाक लिए निरुद्देश्य और कल्पनाश्रित सिद्धांतम प्रेरणा ननी ग्रहण करना चाहिए । स्पष्ट ही यह श्रष्टिकोण उदार और सृष्टिष्णुतापूण होते हुए भी सर्वोदयवाणी नही ह । द्विवेदीजीकी सामाजिक चेतना विद्रोहपर आधारित ह । पर यह विद्रोह मानव-मात्रका उसके अथक प्रयत्नाक रूपम, सहज विद्रोह ह जिसका विधाता स्वयं ‘इतिहास देवता’ ह । अत द्विवेदीजीन राजनीतिक नही बकि सामाजिक क्रांतिका शक्तिज्ञान-सम्मत विचार भागका विशेष रूपम वाणी दी ह । यह क्रांति मनुष्य अपन परिवशके अनुरूप विभिन्न प्रकारस करता आ रहा ह भक्ति और सन्न-साहित्य उसी क्रांतिकी वाणी ह । रवीन्द्र और छाया वादी कथियावे साहित्यमें भी उसी विद्रोहका स्वर फूटा ह और द्विवेदीजीने उन स्वरवाका सुनकर युगकी आवश्यकताके अनुरूप उनका मूल्यांकन किया ह । किन्तु वे अत्र क्रांतिकी बात नही करत थे सहज क्रांति चाहते हैं । क्रांतिका अथ व अतीतकी परम्परास बतमानको तोड़ लेना नही मानत और न यही मानते हैं कि राष्ट्रा और जानियाका अपना विशेषताए कभी नष्ट न जायेंगी और सब एक सौचम ढङ्ग जायेंगे यह तो जादूवाणी या काल्पनिक क्रांति ह । इस सम्बन्धम उनका स्पष्ट मत ह मरी अल्प बुद्धिम तो यज्ञा सूझता ह कि समाज क नाना स्तराके लिए अलग-अलग ढगकी भाषा हाणी नाना उद्देश्मोंना सिद्धिके लिए नाना भांतिके प्रयत्न करने हाये । मारे प्राचीय मान विरोधाका सामजस्य एक ही वातम होगा मनुष्यका हित । हमारे समस्त प्रयत्नाका लक्ष्य एक भाग वही मनुष्य है । उनकी बतानन दुगतिने बचानर मनुष्यके आत्यन्तिक कल्याणकी ओग उमुख करता ही हमारा लक्ष्य ह यही सत्य ह यही धर्म ह सत्य बह नही जा मुखम बालने ह सत्य बह ह जा मनुष्यक आत्यन्तिक कल्याण के लिए किया जाता ह ।’ इम प्रकार द्विवेदीजीकी विचार धारा क्रांतिकारी हने हए भी उदार सृष्टिष्णु और सामजस्यपण ह । व मनुष्यके धरम हिनका कामना करने हए भी उस मनुष्य रूपम ही देखना चाहते ह अतिमानव या देवताक रूपमें ननी । श्लोत्रिए उहान विनायके बढते हुए कुप्रभावो यदों और राजनीतिक हठमावितारा भी जगह-जगह विरोध किया ह ।

१ ‘साहित्यका मम’, १४ ६८ ।

२ ‘मरुकेके पूज’, साहित्यकारोका दाखिल ।

पहले कहा जा चुका है कि द्विवेदीजीका दृष्टिकोण ऐतिहासिक, वैज्ञानिक और समाजशास्त्राय है। उनकी इतिहास-सम्बन्धी भावना साहित्यके पूर्ववर्ती इतिहासकारों अथवा इतिहासशास्त्रके अध्यापकोंकी भावनासे बिल्कुल भिन्न है। इतिहासको बग़ैर मुराया या विगत तथ्याणा ब्यौरा नहीं मानते, बल्कि उसे एक जावत शक्ति मानते हैं जिसे वे इतिहास विधाता या इतिहास दबता कहते हैं। अतः उनके अनुसार मनुष्य ही इतिहासका नहीं बनाता बल्कि इतिहास भी मनुष्यको बनाता है। इस प्रकार इतिहास सामाजिक जीवनधाराका प्रवाह है, जो एक आर व्यक्तियों समष्टिमें डुबोता रहता है। दूसरे शब्दोंमें इतिहास केवल व्यक्ति मनुष्यका नहीं बल्कि समाज और उसके परिवेशका होता है अथवा किसी युगविशेषके मानव-समाज और उसके परिवेशके सपथका नाम ही इतिहास है अथवा मानव प्रयत्ना और परिवेशकी प्रतिक्रियाओंकी अटूट परम्परा ही इतिहास है। वह एक अखण्ड धाराक समान है जिनके प्रवाहमें बाल्यतरमें संस्कृतियाक अनावश्यक मूल तत्त्व नष्ट हो जाते हैं और आवश्यक, उपयोगी और जावन तत्त्व प्रवाहित होते रहते हैं। इस प्रकार इतिहासने द्विवेदीजीका सांस्कृतिक नरतयका वह अमाप अस्त्र प्रदान किया है जिनके कारण आदिवासी और मध्यकालीन हिन्दी साहित्यमें उाका प्रवेश सहज और सुकर हो सका है। साहित्यके इतिहासक सम्बन्धमें उनकी धारणा है कि वह ग्रन्थ और ग्रन्थकारके उद्भव और विलयकी कहानी है 'वह काल-श्रोतमें वह आत हुए जीवत समाजकी विशाल-कथा है। ग्रन्थकार और ग्रन्थ उम प्राण-धाराकी आर सिफ़ इसारा करते हैं। वे ही मुख्य नहीं हैं। मुख्य है वह प्राण धारा जो माना परिस्थितियोंमें गुजरती है आज हमारे भीतर अपने आपको प्रकाशित कर रहा है। साहित्यक इतिहासमें हम अपने-आपका ही पन्नेका सूत्र पाते हैं।' इस दृष्टिमें द्विवेदीजीने हिन्दी-साहित्यक इतिहासने पुनर्निर्माणका काय सफलता पूर्वक किया है गुण-ज्ञानके इतिहासकी सामाजिक दृष्टि उपर किया जा चुका है। द्विवेदीजीने गुण-ज्ञान द्वारा उपरान्त युगा और कवियोंके सम्बन्धमें का काय किया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्यका भूमिका, 'कथार' हिन्दी साहित्यका आर्थिक, नाय-सम्प्रदाय मध्यकालीन धर्मशास्त्रों और मूल साहित्य' द्वारा उन्होंने अपना इतिहास-सम्बन्धी भावनाको स्पष्ट प्रदान किया है। हिन्दी साहित्यके आर्थिक अर्थ जयधन और वीरगाथा काटकी गुण-ज्ञान अपने इतिहासमें जो उभारा का था उमके सम्बन्धमें द्विवेदीजीने लिखा है 'लेखी जान है उम दृष्टि प्रविष्टा जा गुण घटनाओं और विधियोंका ही

१ बल्लभता', १४, १७५।

इतिहास समझती है, उसीका यह परिणाम हुआ है कि दशकी अथ महत्वपूर्ण परिस्थितियाँ उपेक्षित रह गयी हैं। यदि इतिहासका अथ मनुष्य-जीवनके असण्ड प्रवाहका अध्ययन हो तो हिन्दी-साहित्यके आदिवाल्का इतिहास एकदम उपेक्षणीय नहीं है, पर दुर्भाग्यवश वह सचमुच ही उपेक्षित रह गया है।^१ इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहासके प्रति द्विवेदीजीका दृष्टिकोण आत्मगत नहीं वस्तुगत है इतिहास और समाज शास्त्रकी यही वास्तविक दृष्टि है। द्विवेदीजीने अपने समूचे साहित्यम इसका पूरा उपयोग किया है।

द्विवेदीजीका आलोचनात्मक साहित्य माट तौरपर दो भागमें बाटा जा सकता है १—इतिहास सम्बन्धी, २—समीक्षा-सम्बन्धी। साहित्यके इतिहासके सम्बन्धमें उनको जो दृष्टि है उसका विवचन उपर किया जा चुका है। उस दृष्टिमें उन्होंने हिन्दी साहित्यके आदि और मध्यकालका मूल्यांकन और पुनर्विवेचन किया है। इन कालमें उन्होंने ऐसी अनेक विचारधारायाँ और कवियोंकी विशेषतायाँ उदघाटन किया है जो या तो शास्त्री शाखाका परिणाम है या जिनकी परम्पराके मूल स्रोतोंका वैदिक साहित्यसे लेकर अपभ्रंश साहित्य तकका आलोचन करके लक्ष्यके स्वयं पता लगाया है और इस तरह हिन्दी-साहित्यके इतिहासके लिए विपुल सामग्री प्रस्तुत की है। हिन्दी साहित्यका आदिवाल्का और 'हिन्दी साहित्यकी भूमिका उनके साहित्यके इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ है। इनमें उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियोंका विस्तृत विवचन किया है जिसमें उम कालके अपभ्रंश और पुरानी हिन्दीका साहित्य विकसित हुआ था। हिन्दीके भक्ति-साहित्यके सम्बन्धमें आपका मत है कि वह एक हतदप पराजित हिन्दू-जातिकी सम्पत्ति नहीं है और न एक निरन्तर पतनशील जातिकी विरासतका मूल प्रतीक है। इस सम्बन्धमें वे कहते हैं कि अगर इस्लाम नहीं जाता तो भी इस साहित्यका रूप बरह आना वसा ही होता जसा आज है।' अपने मतकी पुष्टि के लिए द्विवेदीजीने ईसाकी पहली शताब्दीसे लेकर १५वीं शताब्दी तककी सामाजिक परिस्थितियोंका विश्लेषण किया है और यह सिद्ध किया है कि सन् ई० के हजार वर्ष बाद यहाँ सभी सम्प्रदाय शास्त्र और मत धीरे धीरे लोप मिलकर लुप्त हो गये जिनकी स्वाभाविक परिस्थितियोंका मूल प्रतीक हिन्दी-साहित्य है।' इन प्रकार द्विवेदीजी हिन्दीके आदिवाल्का और भक्तिवाल्काके साहित्यको मुसलमानों आक्रमणकी

१ यही, पृष्ठ १६४।

प्रतिक्रिया नहीं मानते और न वे मतों, आचार्यों, सम्प्रदायों और दार्शनिक चिन्ताओंके मानदण्डसे लोक चिन्ताकी माप ही करना चाहते हैं। इसके विपरीत वे लोक चिन्ताकी अपक्षाम उन्हें देखनेकी सिफारिश करते हैं और इस निष्कपपर पहुँचते हैं कि “भारतीय पाण्डित्य ईसाकी एक सहस्राब्दी बाद आचार विचार और भाषाके क्षेत्रमें स्वभावतः ही लोककी ओर मुक्त गया था। यदि अगली शताब्दियाम भारतीय इतिहासकी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटना अर्थात् इस्लामका प्रमुख विस्तार—न भी घटी होती तो भी वह इसी रास्ते जाता। उसके भीतर की शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विकासकी धार ठेले लिये जा रही थी उसका वक्तव्य विषय कथमपि विद्वशी न था।” इस प्रकार द्विदलीजीन हिन्दी-साहित्यको भारतीय साहित्य-परम्पराका स्वाभाविक विकास और लोक चेतनाका प्रतीक माना है। यह मत पूर्ववर्ती इतिहासकारोंने मतमे सवथा भिन्न है।

इस दृष्टिसे देवनागरी हिन्दी-साहित्यके अध्येताके लिए उन तमाम स्रोतोंका अध्ययन करना भी आवश्यक है। जिनके द्वारा पिछले हजार वर्षोंमें हिन्दी भाषाभाषी जनताकी चेतनाका निर्माण और विकास हुआ। द्विदलीजीने अपने विद्यालय अध्ययनके द्वारा यह कार्य आसान कर दिया है। उन्होंने भारतीय समाजम विभिन्न कालोंमें आकर घुल मिल जानेवाली विभिन्न जातियाँ और उनके धर्म साहित्य, रीति-नाति आदिका समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया है और इस तरह तत्सम्बन्धी पूर्वप्रबलित अनेक भ्रमाका निवारण किया है। उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों धर्मों और शास्त्रोंके एक तत्त्वाका भी विश्लेषण किया है जिनकी अमिट छाप लोक चेतनाके माध्यमसे हिन्दी-साहित्यपर पड़ी है। उनकी ‘कबीर’, ‘नाथसम्प्रदाय’, ‘मध्यकालीन धर्म-साधना’ और ‘प्राचीन भारतके पलामक विनोद नामक पुस्तकाम अनेक इस प्रकारके गोचर और अध्ययन सम्बन्धी कार्योंकी विवृति दीजलाई पत्ती है। इतिहास-सम्बन्धा उनका यह कार्य उनकी प्रस्तावनाके बिल्कुल अनुष्प है ‘मेरा अनुमान है कि हिन्दी साहित्यका इतिहास लिखनेके पहले निम्नलिखित साहित्याका जांच कर लेना बचा उपयोगी होगा, जिनका अच्छी जानकारोंके बिना हम न ता भक्तिशास्त्र साहित्यको समझ सकेंगे और न बार-भाषा या रीति बालका। १—जन और बौद्ध अपभ्रंशका साहित्य २—काश्मीरके गवा और दक्षिण तथा पवन तांत्रिकारा साहित्य, ३—उत्तर और उत्तर-पश्चिमके नाथका साहित्य ४—वज्रव आगम, ५—पुराण, ६—निबन्ध-ग्रन्थ, ७—पूर्व प्रच्छन्न बौद्ध धर्मारा साहित्य,

१ ‘हिन्दी साहित्यकी भूमिका’, पृष्ठ १५।

विकास नहीं हो रहा है और जिसमें पिछले प्रचार और मार्क्सवादकी मनमानो व्याख्याके अतिरिक्त और कुछ नहीं रहना। द्विवेदीजीने आलोचनामें जिस विद्वत्तापूर्ण विस्तृत सहज, वैज्ञानिक तथा तटस्थ विस्तृत सोवैश्य मागणी और अगुलि निर्देश किया है वह सबया नवीन होने हुए भी कठिन है, उसपर चलनेके लिए पाण्डित्य और शक्तिकी आवश्यकता है। उसे पार करना किसी एक व्यक्तिके बृतेवा नाम नहीं है। अनेकानेक योजियोंके सम्मिलित प्रयत्न, उनकी शक्ति, योग्यता और ईमानदारीपर द्विवेदीजी-द्वारा निर्दिष्ट रण्यकी प्राप्ति निर्भर करती है।

□

साहित्य सृष्टिकी मूल शक्तिका नाम सश्लेषणी है विश्लेषणी नहीं। स्थायी साहित्यकी रचनाके लिए आवश्यक है एक अत्यंत दृढ़ समुन्नत भूमि। वह एक तरफ जहाँ मानव चित्तके अत्यंत निकट नहीं होना चाहिए वहाँ उसमें सामयिकताकी ऐसी निकम्ता भा नहीं होनी चाहिए जो चित्तको तत्पर समस्याओंमें उलझा दे। वर्तमान साहित्य इस रास्तेपर नहीं चल रहा है। उसमें विश्लेषणकी प्रधानता है सश्लेष या सघातका नहीं वह किसी दृढ़ समुन्नत भित्तिपर अवस्थित नहीं है अथवा उसमें सामयिकताकी मात्रा पर्याप्त है।

—सुर साहित्य

शान्तिनिवेदनसे शिवालिख

अतीत कथा

*

यह इन उपन्यासोंको अत्यन्त आधुनिक मानना है। उपन्यासके सामान्य गुणोंके अन्तर्गत ही न बँटती हुई भी ये कृतियाँ महान् सकेतोस उद्गासित हैं। नवीन समस्याओंके बीच रास्ता है बनेराले नये लोग जिस रविविध दृष्टि देनाकी समस्याओंका निराकरण कर रहे हैं उनके परिष्कार और विरतारके लिए इन दो प्रयोगोंका परिणाम समझना आवश्यक होगा।

—आर. स. सिंह

द्विदेदीजीका परकाय प्रवेश

• •

ठाकुरप्रसाद सिंह

बाणभट्टकी आत्मकथा तथा 'चारुचंद्रलेख' के प्रकाशनके बीच लगभग सोलह-सत्रह वर्षोंका अन्तराल है। दाना रचनाअर्थात् समाजोंमें भी तान चार सौ वर्षोंका अन्तर है लेकिन 'बाणभट्टकी आत्मकथा' के साथ 'चारुचंद्रलेख' का सम्बन्ध अत्यन्त ब्रूमित है। दोनों उपन्यास मूल समस्याओं तथा अभिप्रायों दृष्टिमें लगभग एक-उपन्यासके दो अंगों-जन्म ही लगते हैं। बाणभट्टकी प्रसिद्ध रचना 'बादम्बरी' के पूर्व और उत्तर भागोंकी तरह इनमें घोर-बहुत अंतर यदि है तो गैलाकी निविडताकी मात्रा भरका ही है अथवा दाना रचनाओंमें लगभग एक-जैसी स्थिति और मन स्थिति है। आजसे लगभग १८-१९ वर्ष पहले आत्मकथा पढ़ी थी पर आज नवान प्रसंगमें उस पढ़नेपर वितने ही नये सवेत इस रचनामें मिलते हैं। वही ही चारुचंद्रलेखका भी आत्मकथाके क्रममें पढ़नेपर वही मूत्र जुटते हैं और एक प्रकार दाना रचनाएँ मिलकर मेरे ऊपर एक सम्मिलित प्रभाव डालता है।

वहीं पता है कि बड़ी रचनाएँ बालको क्षेत्रपर जीवित रहती हैं। उनके जीवित रहनेकी भवने बनी गत है उनकी हर नये परिवर्तनपर लिए नवीन नवीन अवयवता। प्रारम्भमें रचनाएँ एक विंगिट अथ ग्रहण करती हैं लेकिन बादके वर्ष उन्हें नये अथ देने हैं और ज्यों ही वही रचना यह गन्ति खो दती है उसकी अमरता चुन जाती है। हर बड़ी रचनामें रचनाकारके अथक अलावा इतनी जगहें बचा रहता है कि आनेवाला पीछा उसमें आसानीसे नये अथ भर सकें। द्वितीयजीवक य दाना ग्रन्थ जिन्में मुविभाव लिए एक ही ग्रन्थ का हिम्न बन रहा है इस दृष्टिमें आज नये सिग्म पत्रपर नये अथ ग्रहण करनेमें समय लगने है।

उपन्यासक गिल्पीकी दृष्टिमें इन ग्रन्थोंका दमनेका स्थितिमें मैं नहीं हूँ। हा सक्ता है आजके आंगचकावा य दाना कृतिमें नवान अर्थोंमें उपन्यास रमें भी नहीं इनका गारा गठन और इनकी बुनावट जिन ताना-बानाये हुई हैं, व आजक बाजारामें घायल मिलेंगे नहीं। महाकवि बाणभट्टक युगमें जीवनक बाद तथा नाय-

अतीत कथा

सिद्ध-युगवा पूरी तरहम आत्मसात करनेके बाद लिखी गयी ये कृतियाँ नये उप-यासकी परिभाषाके प्रेममें किसी भी तरह अपनेको अँटा नहीं पायेंगी, यह तय है। नये पाठकोंके लिए इन प्रयोगका छद्म अनजाना है वैसे ही लेखकके निर्वि-मनोलोककी गहराईया भी उससे लिए कौतूहलमें अधिक रोमांचवद्धक है। अत्यन्त आधुनिकताके वातावरणमें इन रचनाओंके संदेशको यथावत ग्रहण न कर पानेकी लाचारी भी आजके पाठकोंके सामने है। फिर भी इन रचनाओंके पूरे विस्तारमें फरे हुए बहुत-सारे वणता नैतिक उपपत्तियाँ और वातावरण उत्पन्न करनेके नाना प्रयत्नका छाटनेके बाद एक सीधी-साधी कथा बचती अवश्य है। सामान्य दृष्टिसे देखनेपर यह कथाश भी ऐसा नहीं लगता कि उसे आधुनिक कथानक कहा जा सके। सीधी आँखसे देखनेपर इतना ही लगता है कि एक पुरुष का स्त्रियाँके सम्पर्कमें आता है और नाना परिस्थितियाँ और घटनाक्रमोंके बीच वह कभी एकके पास तो कभी दूसरेके पास होता हटता, भटकता रहता है। इतिहासकी घटनाएँ पात्रों घटनाओंको केवल नाम भर देती हैं अथवा कथा-विकास बँते ही हुआ है जम अथ उप-यासमें मनोविश्लेषणके नये स्तर साठनके लिए होता है। धाणभट्टकी रचनाओंका आभास देनेवागी य नाना पुस्तकें पाठकोंपर अधूरी होना जमर छोड़ती हैं जबकि वे अधूरी हैं नहीं। हर बड़े उपन्यासकी तरह ये रचनाएँ जहाँ समाप्त होती हैं वहाँ प्रारम्भ होनेका आभास देती हैं क्योंकि वे समाप्त होनेके बाद भी पाठकोंके मनमें बनी रहती हैं।

उप-यासकी दृष्टिसे इसलिए इन रचनाओंका न देखा जाय तो बड़े बाधाएँ अपने-आपें सुझा जायेंगी। बड़ी रचनाओंमें कतनी शक्ति होती है कि वे अपने लिए नयी परिभाषा बनवा लें। आनेवाला समय ही बतायेगा कि ये दोनों रचनाएँ अपने लिए नयी परिभाषा बनवा सकेनेमें समर्थ हूँ या नहीं। तहाँतक पात्रोंका प्रश्न है कि उप-यास देखनेमें पात्र-संकुल लगते हुए भी पात्र प्रधान बिल्कुल नहीं हैं। सब पृष्ठों पर इन दोनों प्रयोगों में नायक यदि कोई है तो वह इतिहासका वह विशिष्ट 'काल' ही है। सामान्य पात्रोंकी जगह कालका नायक बनाकर रची गयी कृतियाँ बहुत अधिक नहीं हैं विशेषकर ऐसे 'काल'को नायक बनानेका साहस तो सम्भवतः साहित्यमें किसी लेखकने आज तक किया ही नहीं। महाराज हनुमानके उत्तराधिकारी अशोकके हनुमानके समकालीन लेखक मुसलमानोंके इस दृष्टिमें आने तककी घटनाओंका मार-तकड़ निचाड़कर उससे न केवल इतिहास रस प्रस्तुत किया गया है बल्कि नाना दृष्टियों, मत-मतांतरों तथा सम्प्रदायोंके परस्पर विरोधी आचरणोंके बीच समकालीनताकी भाँच-पाँच की गयी है।

स्वतंत्रताके अभियानका लगभग एक ऐतिहासिक चक्र अभी-जमा पूरा हुआ है। चतुर्थ आम चुनावके समय तथा बादमें राष्ट्रीय चंचल मन और क्षुब्ध मस्तिष्कका जैसा आभास हम मिला है उस देखते हुए फिल्हाल हम इन दो प्रथमों में व्याप्त श्रावकों नवीन सन्दर्भमें रखकर देख सकते हैं। यह बात पहले भी दली जा सकती थी लेकिन आज जैसी स्थिति है उसमें विराधाभास और अधिक उभरकर सामने आये हैं जिनके कारण इतिहासको नये अर्थ देनेकी आवश्यकता महसूस होने लगी है। महाराज हृदयके बाद भी लगभग तीन-चार सौ वर्षों तक उत्तरामयपर प्रतिहार, पाल तथा गृहद्वार राजाका प्रभुत्व रहा लेकिन गहरी त्रिपाह रक्षनेवालाका कार्यकुञ्ज प्रदेशका क्षेत्र बनाकर चार बार खनी होनेवाली राज-मत्तार्ण धोखेम नहीं डाल सकती। भारतीय समाजकी चूलें जिन तरह हिल रही थी और जैसे आस्था और विश्वासकी दीवारें खण्डित हो रही थी उसे देखते हुए उस ढाँचेके बलपर बोर्ड दीपजावी रचना नहीं की जा सकती थी। जैसे महाराज हृदय अन्तिम सबसे बड़े राजा थे वही सम्भवतः बाणभट्ट भी सत्कृतक महानवियाना परम्पराके अन्तिम सबसे बड़े कवि थे। आशा और निराशाके जा खेल उस वातावरणमें खेल जा रहे थे उनका जितना पता बाणभट्टका था उतना शायद ही विज्ञात रहा हो। द्विवेदीजीने बाणभट्टका क्षेत्र बनाकर इसीलिए उस युगकी देखनेका प्रयत्न किया है। युगका स्वरूपी या कान सत्यका परस्परकी जिम्मेदारी सही मानमें यदि किसीका सापेक्ष जा सकती है तो वह साहित्यकार ही होगा। दोनों प्रथाका पूरा आभासकेषण बाणभट्ट सिद्ध और नाय दार्शनिक साहित्यकार तथा जलहण जस दसज भाषाके कवियोंके निष्कर्षोंका ही परिणाम है। द्विवेदीजीने गहरे पठकर इन दोनों युगों महान् रचनाकारके सत्याका आमसान करनेका प्रयत्न किया है। विला इस परकायाप्रवेशके इतिहास रख पाया नहीं जा सकता। इसमें दा मत नहीं हो सकता कि द्विवेदीजीने इन दोनों प्रथाके पूरे का-खण्डका अपने भीतर पूरी तरह जाकर हाँ इन प्रथाका लिखा है। जो कुछ प्रत्यक्ष दिग्दर्शित करता है उनका साथ न मानन हुए लखन अन्तरमें प्रविष्ट हाकर घटनाओंका मूल अर्थ पकड़नेकी कागिरी की है। 'मैं प्रत्यक्ष दृष्टक्य सत्य नहीं होते। इसमें केवल एक बात साथ है जो अकार प्रत्यक्ष नहीं दीवती। एकाएक नहीं बरता जा सकता कि हमने जो कुछ दना है वह किस हृदय सत्य है।' वस हा व्यक्तिगत सत्य अलग प्रला भा होने है। उन सत्याका राष्ट्रीय सत्यम अविराधी वग समजा जाय यह भी एक समस्या आयन्नि सामने आती है।' बाणभट्टका आत्म-वचन छोटे और बड़े सत्यका मयादाएँ निधारित करते

दिवाई पड़नी है। इस दुनिवार भटवावमे इन शक्तियोंको विरत करना तत्कालीन शासकावे गिण सम्भव नहीं था और न तो तत्कालीन समाज ही उन्हें रास्तेपर लगा सकता था। यही कारण है कि लेखन उन सारी शक्तियोंमें निराग होकर मुँह फेर लेता है जो ऊपरी तौरसे तत्कालीन इतिहास और समाजको निगायन शक्तियाँ मालूम पड़ती हैं। ऐसी स्थिति भी आती है जब परिवर्तन, सुधार या स्थितिको व्यवस्थित करनेके सारे प्रयत्न एकाग्रगी ही घ्यय हो जाते हैं। निर्णायक शक्तियाँ अनुभव करती हैं कि उनके हाथमें ऐसी कोई भी शक्ति बची नहीं रह गयी है जिनमे वे समाज और जीवनके नाना स्तरमें हो रहे विपरायको रोक सकनेमें समर्थ हो सकें। द्वितीयजोके मतमें मध्यकालीन समाजमें मृत्योके विघटन और सैकड़ों वर्षोंमें घली आनी हुई परम्पराओंके विपरायका जसा विगट स्वरूप सम्मुख आ रहा था उसे कायबुब्ब या उस जसे ही दस बीस राज्य गामन रोक सकनेमें समर्थ नहीं हो सकते थे।

हर स्तरपर मृत्योमें टहराव आ गया था और रीति नानिके प्रेरणा मूलक असा मत प्रायः हा गये थे। माराका मारा भारतीय समाज में एक लयते हुए भी छोटे छोटे स्तरों वगैरे और सम्प्रदायोंका समूह मात्र होकर रह गया था। इन कोणिकाओंमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित होनेकी जगह विभेद और विभाजनी सृष्टि हा रही है और इनके चलते परा जन मास भाग्यके समुन्नी तरह बीच और बाष्प बन्दबुदामे भरा हुआ-सा लगने लगा था। इस कीचड़के बीचसे दामन बचाने गुजरा नहीं जा सकता था। लग चाहकर भी जगह जगह फस हुए हाथ पाँव मार रहे थे और सम्प्रदाय विद्वामाकी रितना ही नावें यत्र-तत्र कीचड़के बीच जलाभासके भुलावेमें पड़ी हुई पड़ी थी। इस प्रपच जागसे समाजको सक्ति दिलानेके लिए आवश्यक था एक शक्तिशाली जगार ऐसा जगार जा न केवल सारा कीचड़ बहा ल जाय बकि सम्भव हो ता कपार भी तोड द और जगह-जगह जाके अभावमें फँसी नावाय धाराका सयाग बरा दे।

त्रितीयजोके इतिहासकारकी निम्न तटस्थताके साथ साहित्यकारकी गंधकार भद्रिनी सृष्टि पायी है इसलिए वे अपने स्वयके सामावत्तामें ऊपर उठकर वर ही दुरी मनग यह स्वीकार करते हैं दवा महाराज पश्चिमनी जागसे जो महान इस्लाम आ रहा है उसे ठीक ठीक समझो। उसके एक हाथमें अमलका भाण्ड है दूसरेमें नान कृपाण। वह समानताका भक्त लेकर आया है मर गले आचारा को चुनौती देनेका अपार साहस लेकर उदभूत हुआ और रास्तेमें जो भी राघड हो उस साफ कर देनेका विघट स्वरूप लेकर निकला है। उसके लाबा-कराडोंको पैरों नड दबाकर उनका मास-मज्जाके तहपर धाराद खडा करनेकी श्रुति

नदी दिखायी है। विविध है उसकी प्रागदायिनी गति, अपूर्व है उसका दलितोत्थापन सक्त्प। सहसा दलितोंको उसने तलवारकी नोकपर उठाकर ऊँचा आसन दे दिया, भक्तों जगती जातियाको उसने एक झटकमें ऋत्नियों और परम्पराओंके मलबेमें दूर फेंक दिया। इसके महामन्त्रके प्रभावमें कल तक बबर समझी जानेवाली जातिया विश्व-नेतृत्वकी लालमासे मत्त हो उठनी ह। हमारा यह समाज लाखों-बराडाकी अपमानित करनेमें गव-बा अनुभव करता है, अपमानका फल अपमान ही होगा। जिन्ह हमने पैरो तले दबा रखा ह वे ही एक दिन नाचन हमारा पर पकड़कर हमें चलनेमें अममय बना देंग, बना द रहे ह। सबन्न धुन लगा हुआ ह। क्षुद्रताके अहंकारसे यहाँकी प्रत्येक जाति जबर ह। प्रत्येक सम्प्रदाय अन्तर्दिग्गण ह। लोटेपनका अन्कार अपनेको ही सन्तुष्ट करता रहता ह। भारतवर्षकी अमक्ष्य छाटी स्वार्थी अपनेका खण्ड विन्गण करती जा रही ह। अन्तर्विदागी शक्ति स्तनी तीव्र हो गया ह कि यह आगा करनी ही व्यय ह कि यह मन्ग ग कभी किसी एक महान आदर्शके लिए सीना तानकर खन्ग हा सकेगा। सार पुराने चिन्तन और तत्त्वज्ञान इन सौ छेनावाड पापमें व्यय हो रहे ह। कोई बडा आन्ग, अन्गन बना आदर्श ही इनका क्षुद्रताको शाड सक्ता ह। अस्त्र युद्धकी व्ययता ग ममन्न गया ह। अणिक जय-यराज्यकी दुहलिकावा रहस्य जान गया ह। द्विषेनाजीन स्थितिका विचचन करते हुए जा नित्रय निकाला ह उमके पीछे स्वतन्त्रताका विन्गाल आन्गेन तथा उसका प्रचास्ति करनेवा म्हान् राष्ट्रीयता की बन्पना काम कर रही ह। वे वागभट्ट जल्गणना कायामें प्रथम ता करते हैं लकिन उनका मन अन्गन आधुनिक है और व सनी मानमें एक ऐम व्यक्ति भी ह जिसने भारतीय राष्ट्रीय आन्गेनने उन दौरका भागा ह जिसके चलते खण्ड-अण्ड हो गया राष्ट्र न केवल एक हा गया था बकि राष्ट्रीयताक महान अ्वाग्ने चिन्तन-सारे सन्तिन सय सामानून तथा क्षुद्र बधन एक झटकेमें घटा दाले थे। उन्हान बीसवी गनाके प्रारम्भमें जागकर उठ बठ राष्ट्रका रूप दखा था और इस प्रकार उनके भानर वाग और जल्गणका कुण्डित आमान नया जन्म प्राप्त किया था। इन्तिनासके कष्टकर निगयामे गिशा लेकर हम द्वाके जागृत तन्गान जिम मवान घम और सास्त्रिय-मम्कृत्निकी प्रनिष्ठा इस देशमें की था उमक गगन केवल दशमें पुनरुत्थानका गवान आन्गेन बना बकि साहित्यकी तथा सम्भावनामें ना व्यक्त ह। शिवजीजाक वे दाता उपयास र्मी लिए एक आर जहाँ अपने कलेवर और चिन्तन प्रत्रियाम ऐतिहासिक ग्गने हैं कर्ने शूरी और व नवीनतम वैचारिक उपन्धिपयानि सद्गुन ह। व मध्ययुगीन

समाजको एक नये समाजमे जोडते है और विचार ससृष्टिको आधुनिक मोड देते ह ।

आत्मव्यापने अन्तम जिम छोटे और बने सत्यके परस्पर अविरोधी होनेकी बात उठायी गयी है वह आज नये सिरेमे विचारणीय हो उठो एक समस्या बन गयी है । हय या जयचन्द्र इतिहासकी बात हो चुक है वैसे ही मकडा वपोंका इस्लामी शासन भी हमारे लिए एक बीती हुई कहानी-मान रह गया है । द्विवेदी जीकी कल्पनाको सहज ज्वारमे भर देनेवाला राष्ट्रीयताका महाभिमान भी इस बीच धार धीरे उतारपर आना गया है और स्वतन्त्रता प्राप्तिके २० वर्षों बाद हम फिर अधकारमें भटकने लग गये ह । छोटे सत्य बड़े सत्यक न केवल विराधी बन गये ह बल्कि कई छोटे सत्य मिलकर आकार प्रकारमें बढे बन गये है और वे बड़े सत्यकी उपाया करनेको अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि मान रहे है । हजारों वर्ष पुराने भारतीय समाजको इस बार सबसे गहरी चोट लगी ह और पश्चिमने आये भयकर और दुनियावर प्रवाहमें हमारे पैर जडसे उठवा गये ह । वे सारी बातें लगभग प्रथम ही हो गयी ह जिनमे कभी स्थायी मूल्योंकी हम स्थापनाका काम लिया करते थे । विघटित हो रहे मूल्यापने धुंधल नवीन प्रकाश कहीं टियलाई नहीं पता । विभिन्न बात ह कि द्विवेदीजीने अपनी इतिहासभेदिनी दृष्टि जिस एक अनिश्चय और अनास्था भरे युगका साक्षात्कार किया था वह युग (थोड़ी दूरके लिए) राष्ट्रीयताके महान प्रशाशने चलते आक्सि ओगल हा गया था किंगाल प्रवाणके निर्वापित होत ही पुन अब वह हमें धारा तेरसे लपेटकर खा जा हो गया ।

द्विवेदीजी ६० वर्षके हा गये ह लेकिन उनका उम्र केवल ६० हा वर्षकी नहीं ह । गहन इतिहास ज्ञान और वाक्भेदिनी दृष्टिने उतना उन्नत उन सभी कवियों और विचारकाकी उम्र जोड दी है जिन्हें पिछले सहस्रों वर्षोंके बाल प्रवाहमें बड़े ही सतस मनने कथापर समयका दीप उठाय चलते रहना पडा ह । वे एक साथ ही उन सभी कष्टों, चिन्तनों और उपलब्धियाके पुजीभूत प्रतीक है जो चिन्तनकी लौ लेकर अधकारमें सरता डढती घूमती रही ह । वे सौ या हजार वर्षों तक ही जीवित नहीं रहने क्योकि भविष्यम भी सत्यकी सहनका महान उत्तरदायित्व देनेवाली बाणभट्ट और जलहणका परम्पराए आयोगी । द्विवेदीजी इस विशाल दीप-वक्त्र अत्रिच्छिन्न आ बन गये ह इसलिए यदि उहान अपनी आँखों सामने ही एक राष्ट्रको दुस्ताह आवेगम उठते और आत्महीनताके कारण सन्मयकर गिरते देखा ह तो इससे उन्हें निराग होनेकी आवश्यकता नहीं ह ।

पिछले दिना वाराणसीकी गोष्ठीमें साहित्यमें मूल्यांकन विषयकी समस्यापर विचार करते हुए दिवंगतजीने कहा था कि ऐसा लगता है कि एक बार सब-कुछ चल-चलट-मुलट दिये बिना काम चलनेका नहीं। य अर्थ भी अपने भीतर उस मूल दृष्टिका आलोचन अनुभव करने ह जिसके चलते उन्हें इस्लामके हाया समानताका अमृत माण्ड दीसता है और पैरा तले कुचली जातियाँ उभरनेका हर्ष उन्हें अनुभव होता है। आजके धुन भारत राष्ट्रके सामने मध्ययुगीन सक्रान्तिने कहीं अधिक बडी स्रान्ति उपस्थित ह। एसी स्थितिमें म इन उपयासोंको अत्यन्त आधुनिक उपयाम मानना है। उपयासके सामान्य गुणाने फेममें टाकसे न बटती हुई भी ये कृतियाँ महान मकेतामें उदमानित है। नवीन समस्याओंके बीच राम्ता हूँनेरात्रे नये लग जिस सण्डित ऋष्टिसे दशका समस्याआका निराकरण कर रहे है उसके परिष्कार और विस्तारके लिए इन दो प्रयासका फलिदाय समझना आवश्यक होगा। अच्छा होगा कि दिवंगतजीका साठवा बपगाँठके अवसरपर उनके द्वारा दिये गये इन निष्कर्षोंपर आधुनिक समस्याआके सम्भमें नये सिरसे विचार किया जाय।

■

समारका यह एक विचित्र रहस्य है कि प्रमकी छात्रोंमें देवनेम जो बात जितनी हो आवश्यक होती है। गुणकी नन्तराम दायनन यह उतना ही गहिर। प्राय दया गया है कि धार्मिक आक्षेप करत-बान वहाँ बातमें अधिक दोष देसते हैं जिनमें एय धमक अनु-यायी अधिक प्रम करते हैं। ईसाके नपदान रूपमें कहणाका जो याद घूट पदा है ईसाके धमक आलोचकोंमें उसीमें भक्षिया धमन दिताह पदा है।

—सुरसाहित्य

सुन्दर और असुन्दर

• •

प्रभाकर मार्चडे

आत्मकथा और सा भी पञ्चबाणस्तु बाण की। जिसकी प्रलम्बायमान वानयावली शैलीके लिए ख्याति हो उसकी 'डापरी' की सक्षित आलाचना सर्वांगीण सम्भव नहीं। अत एक ही वानाको लेकर ही हजारप्रसादजीके इस उपयासकी चर्चा करना चाहूँगा। 'आजकल' के बाणिकाकर्म चन्द्रगुप्त विशालकारने इस पुस्तकपर एक स्वतंत्र लेख लिखा है। जिसमें इस उपयासके दो दोष बताये हैं एक तो कथानकका 'सस्पेंस' रहित होना और दूसरा भाषाका बोझिलपन। प्रश्न यह उठता है कि उपयासका उद्देश्य क्या है? उसीकी अपेक्षाम गुण-रूप विवेचनाका कोई अर्थ है अथवा नहीं। चन्द्रगुप्तजीके अनुसार हृदयकालीन समाज स्थिति चित्रित करना प्रधान तथा बाणका 'यन्त्रिक मूढा करना और उनकी शैलीका हिंदा में परीक्षण (?) करना' इत्यादि महत्त्वके उद्देश्य इस उपयानम है। मेरे मतमें, चन्द्रगुप्तजी उपयासकी मूल भित्तिको नहीं पकड़ पाये हैं अथवा एक बार बाणकी शैलीकी प्रशंसा करके अन्त में भाषाके बोझिलपन प्रलम्बायमान रूपको अनीचित्य न बतलाते। जहाँतक इस उपयासका सही समय पाया है, लेखने अपनेको बाणकी आत्मा में पठाने का प्रयत्न किया है। इसमें वह कहाँतक सफल है यह सिद्ध करनेके लिए हृदयचरित के प्रथम ढाँड़े उच्छ्वास, बादम्बरी और अय बाणकी रचना का आभार लेना होगा। बाणभट्टके अंतरगवी यह उच्छ्वासमयी भाषा के प्रयुक्त करनेके लिए ऐतिहासिक यातावरण तथा बाण शैलीका प्रथम उपादान प्रदान किया गया है। मूलतः यह बाणकी समस्या उतनी ही है न ही हजारप्रसादजीके निर्मित बाणका अवश्य है क्योंकि अतः यह हजारप्रसादजीके निर्मित बाणकी समस्या है। इस उपयासमें वही हजारप्रसादजीका पण्डित ने उतनी स्वयंकी सौन्दर्यदर्शी कलाकारपर हावी हो जाता है—वे स्थल धाड़ हैं निराजनके मूख अथवा सबत्र कलाकार और पण्डितता समन्वय (या वहें

शांतिनिवेदन
निकतनसे शिवात्मिक

चलता रहता है। उसी बौद्धिक और हार्दिक आनन्दकी सृष्टिमें इस कलाकृतिकी महानता निहित है।

परन्तु इस आनन्दका एक पक्ष और भी है यह उपयास हृषिकालान्तक जजरित सामन्ता विलासमयी सामाजिक मनाशाका भी इस उपयासक कथानक प्रवाहका शिथिलतामें याग है। हाथिया शिविकाका और विट चटाने भर उत्सव कालीन जुलुसाका जा चित्र पृष्ठ १२ १३ पर है वह इस उपयासका प्रतीक चित्र है। रंग है रूप है चलमलाष्ट है अलंकार प्रसाधन है—पर यह सब किसलिए ? क्याकि ऐसी विलानवतियाने विषयम बाणभट्टकी आत्मकथाम पृष्ठ २५४ ५५ अपट्टरण और विद्रयका व्यवसाय क्या नहीं चल रहा है ? क्या निगह प्रजाकी बटियाँ जाकी नयनतारा नहीं हुआ बरती ? क्या राजा और सनापतिकी बटियाका सा जाना ही ससाग्वा बना दुषटनाए है ? कौन नहीं जानता कि इन घणित व्यवसायक प्रदान तथ्य सामन्ता और राजाका अंत पुर है ? आपमें-म किस नया मालूम कि महाराजाधिराजना चामरधारिणिया और बरकवाहिनियाँ इस प्रसार भगायी और खरादी हुई क्याएँ हैं ? जीर पृष्ठ २६१ पर वह महाराजो राज्यश्रीकी मोन है। मैं जस मानमें जगा, चौंकर पूछा— सीत / धावकन डाटा— चित्लाते क्यों हां टय नगरम रानियाकी सीताका विशाल जगल है— जगल ! और इस सारी मछी गली समान-पयम्हामें सुना-करागी और स्त्रीका षाघवस्तुना तरह पण्य माननर मूलम था सामतवाए । उजयिनान मपुर कामल क्यामें बाणक मूल गणैम त्रिकचक्रुवयनान्तरकुल्लकमयवलात्तररनिमिप द्वातरमागीयरावण्डल्लाचनरिब सहस्रसह्यरुद्रासिता सरामिरविरलकलीकन कनिताभिरमृतकनपुञ्जपापुनरानिदिगिनिगिन्तवलभिकाभियवलवृता यीजनमन्म- त्तमालतीपुचवलात्तितमलिल्या भगवना महानालन्य गिरसि सुरमरितमालान्य समुपजातेव्ययव सतनसमापदतरलाभ्रुकुटिल्लया रसिब शाल्यत्यासिप्रया परिगिता सकलमुयनन्दातयसासा हरतटाचत्रणव कोटिसागण । यह उदरण कुछ लम्बा इमलिए दिया कि कान्धरी म उज्जयिनी बगनवाए तीन पृष्ठ तक चलनवाए एक बाधवका कुछ अदाड मिल । तो इन कान्धिसार सामन्ताक प्रति, उपयास पट्टकर निरन्कार ता कुछ मात्रामें उत्पन्न होता है परन्तु राप नहीं । सतनर आत्मवधाका माध्यम घुननरे काग्य जग बालकी विनाम-जजर समाज- न्वितिमें बाग कुछ अटकता मटकता माह-मुग्ध हुना है । और ममूची पुस्तक पत्रनपर जस कालक सौन्दर्य दष्टि टिक्ती है । माधारण पाठक उघ्रा कालका सोदानका इच्छा कर सकता है मही एक बड़ा भय इन पुस्तकमें है । 'लिया' या अतीत कथा

'जय यौघेय'म भी करीब-करीब उसी कालका चित्रण है परन्तु यह भय वहाँ नहीं है। हजारीप्रसादजीकी पुस्तकका सबसे बड़ा गुण या दोष कहिए, उस कालके प्रति उनकी दृष्टि हुई सहानुभूति है, सहृदय सौ-दय-आही समदृष्टि है। इस बातपर दो मत हो सकते हैं कि क्या इतिहासक काल विशेषका ऐसा चित्रण इष्ट है कि जिससे पाठक निराश-सौ-दय-रु-द्व्य बनकर आत्मविस्मृत हो जाये, परन्तु यह सौ-दयशास्त्री आलोचकानी चिरंतन समस्या है, सौ-दयमग्न शायद उससे असम्पन्न ही रहता है, कि मोनालिसाने आकषक स्मितके पीछे साज्जर्वागिया वशकी ऐयाशी और पापाका परा अम्बार था परन्तु चित्रकारने उस कदमका नहीं दसा, बमल ही बना दिया। प्रगतिशील दृष्टिवाल मुख-जमे आलोचककी हजारीप्रसादजीके उप-यासस इतनी ही गिकायत है कि काश वे समग्र सत्यका चित्रण करते, और केवल सु-दर सत्य तक ही सामित न रहते।

परन्तु वह काल ही क्या था जब—

उद्वेगमहावर्ते पातयति पयोधरानमनकाले ।

सरिदिव तटमनुवप विवधमाना सुता पितरम ॥

जसी आर्याएँ प्रकृतिवर्णनप्रसंगम भी रची जाता थी और हृषीके अपने पिताक मृत्युकालके समय भी रणके कमरके पास आनेपर यही सुनाइ दता था—
दाहा महान । आहा हारान हरिणि, मणिदपणामे देहे दहि वपेहि, हिमलधलिम्प ललाट लीलावति, धनसारधूलि निधहि धवलाक्षि, कपाल कलय कुवलय कलावति, चन्दनवचा रचम चारुमते, पाटय पटमारत पानलिक म-दय दाह इन्दुमति थरवि- जनय जलाद्रया मुद मदिरावति उपनय मृणालानि मालति, तरलय तालवन आवतित्व । और जब गालियाकी बौडार भी लग जाती तो वहा भी क्या ही शब्द बाहुल्य होता, यथा—ज पाप क्रोधापहत, दुरात्मन जन अनात्मन ब्रह्म-वा मुनिखेट अपसद, निराकृत, आत्मस्खलित विल्थ कथ । इस कारण शब्द बहुलताके लिए वाणकी दापी ठहराना यथ है । और कथानककी घटना विरलनाक विषयमें कुमारी काम्पटन बनेटका यह कथन बहुत सत्य है कि— 'जहातक कथानकका सम्बन्ध है मुझे यथाथ जीवन किमा काम का नहीं जान पडता । यथाथ जीवनम कथानक कहां है ? और चूंकि कथानक म अत्यन्त इष्ट और आवश्यक समझती हूँ, जीवनके प्रति मेरी यहा शिकायत है । परन्तु कुछ लक्षण इस बातके भी चिह्नित हात रूते है कि विचित्र घटनाएँ घटित अवश्य हाती रहती है, यद्यपि वे निर्मित नहीं की जा सकती ।

(हेनरी रीड, नावल सिन्स १९३९, पृ० १८)

इधर एक और निवघ में आथर मैल्विल कल्कके 'स्टडीज इन लिटररी मोडस' में पढ रहा था जो कि 'ऐतिहासिक उपयाम' पर ही है। उममे उहोने प्रत्यक्ष अतीत और प्रत्यक्ष अतीतके इतिहासमे सूत्रम अन्तर करते हुए बतलाया ह कि उम इतिहासपर आधारित नत्रिका (गुजरातीमें 'रामास' के लिए शब्द) तो और भी तीसरी अगम्य वस्तु ह। जमे सिनॉर बोके कायकी आलोचनाको पूर्वकी आलोचनाकी आलोचना मात्र मानते ह उसी प्रकार इतिहासका लेखन, पुराने इतिहासका आलोचनाकी आलोचना मात्र ह। इस प्रकार अरस्तूका यह कथन कि हेरोडोटसकी रचनाका छदोबद्ध कर देनेसे कथा-काव्य नहीं बन जाता, बल्कि इतिहास जहाँ अतीत कथाका वणन दता ह ऐतिहासिक कथा अतीत सम्भावनाका चित्रित करती ह। हृषिकालीन जीवनको बाण और सम्भवतः रचना कारान अपनी आँखोंसे देखा, अपनी उबर चित्तस सौदममय बनाकर प्रस्तुत किया उसके कितने सदिया बाद शक्तिनिकेतनके इन अनाशरण संसृत पण्डित और ममग्राही पण्डितने उसी बाणक हृदयमें प्रवेश कर इस पुस्तारूपी मणि को खोज निकाला। उसमें ऐतिहासिक मत्स्यकी खोज व्यर्थ ह, उसका मूय कलाकृतिके नाते ह। ई० एम० पास्टरने अपने 'आस्पेक्टम आफ नावेल' म स्काटकी खूब खबर ली ह कि उसके पागोम केवल दो ही लिंगा प्रमाण हैं तीन नहीं, वे पाय फ्रैट' ह। वह दोप हम हनारीप्रसादजीपर कतापि नहीं लगा सकते— निपुणिका जा इम उपयामका सर्वोत्तम पाथ ह एज सजाय और सवथा प्रिय रचना ह। कारणवावण' नामक ऐतिहासिक गुजराती उपयामकी आलोचनामें वि० ए० भट्टने 'साहित्यसमीक्षा' म पृष्ठ २०५ पर जो दोप अविब ऐतिहासिक विवरण दनके सम्बन्धमें बताया है, वह भी यहाँ नहीं। मराठीम ऐतिहासिक उपयाम बहुत लिप्ये गये ह—पर वे भी अधिकतर घटना बहुल ह, चरित्र प्रधान नहीं जमे बाणभट्टनी आत्मबया। रामाल्बाबूके उपयाममे यह उपयाम इस दृष्टिसे कई सौ कदम आगेकी कृति ह। अर ऐसी साहित्यकी गौरववर्द्धनी कृतिको पाकर हिन्दीके डॉक्टर लामाको यह लिपनेका साहस न रहेगा कि— हिन्दीक अधिकांश ऐतिहासिक उपयाम केवल नाममात्रक ऐतिहासिक ह क्योंकि उनमें लेखवान इतिहासका ओम्में मिल्लम, अय्यार और प्रेमप्रमगोरी हा अवतारणा की ह।' (डॉ० लाल आधुनिक हिन्दी साहित्यका विकास प० ३०२-३)



अतीतका पुनर्निर्माण

देवराज उपाध्याय

हिन्दीम इधर कुछ वर्षोंमें क्या-साहित्यकी प्रगतिमें पर्याप्त निप्रता रही है और वह साहित्यिक श्रीवृद्धिका कारण रही है। प्रायःके मनोविद्वलेषण शास्त्र, मार्क्सके साम्यवादी सिद्धांताने तथा धाजकी उत्तरोत्तर प्रवृद्ध रहते रहनेवाले धार्मिक और सामाजिक वैषम्यने लेखकोंके हृदयको बाधपूर्वक मक्थोर दिया है और उन्होंने इनका सत्कार पाकर अपना हृदय पथको क्याके रूपमें मानो साकार रूप देनेकी चेष्टा की है। परन्तुना सब होते भी हिन्दी साहित्यमें ऐतिहासिक उपन्यास नहीं-भे है। साहित्यका यह जग आजतक उपभित ही रहा है। बाणभट्ट की आत्मनया में द्विवेत्ताजीका ध्यान साहित्यके इसी उपनिन भगवी आर गया है और उन्होंने अपनी मगन कपनाका इस ओर प्रवृत्त किया है।

बाणभट्टकी 'आत्मकथा' प्रधान रूपमें उस श्रेणीमें आती है जिसे आलोचना के क्षेत्रमें ऐतिहासिक उपन्यासक नागने अभिहित किया जाता है। जसा कि नामसे ही पना चरना है कि इसमें दो तत्त्वाका समावेश रहना है इतिहासक और कथाका। और ये दोनों तत्त्व पारस्परिक विरोधी हैं। इतिहास है एक दम वस्तु जगतकी वास्तविकता और कथा है कल्पनाजगती उडान एकमें इसी जगतके सीधे माथे ठोस, इन्द्रिय गोचर जीव रहने है और दूररेमें बस जाय जा लैगकी कल्पनास जम ग्रहण करते हैं। सब इन दो पारस्परिक विरोधी तत्त्वा की लैगक किन तरह एकत्र गगटिका करे और इनके समन्वयमें कथाको अपन रूपकी ओर अग्रसर करे यह एक बड़ा विचित्र समस्या है। इसी तरकी विराधा वानोका सामान्य ऐतिहासिक उपन्यासकारका करना पडता है जिम द्विवेदीने कर लिखलानेकी कोशिश की है।

ऐतिहासिक उपन्यासकी सफलताकी कठिनताका अन्तज इसी बातन लगाया जा सकता है कि अगरेजी साहित्यमें इस श्रेणीकी क्याअने वास्तवके बावजूद भी उच्चकाटिक सफल औपन्यासिकोंमें स्वाट और घेकर-अम महानुभावों का ही नाम लिया जाता है। हिन्दीकी तो वान ही छोडियेगा। किशोरीलाज

शान्तिनिवेतनसे शिवालिख

गोस्वामी, मिश्रबच्चू तथा वृंदावनगण वमाका नाम अवश्य इस क्षेत्रके लिए किया जाना है परन्तु हमें तमिलीके लिए गुल्का मरीदा म कुठ अधिक मूल्य नहीं दिया जा सकता। ऐतिहासिक उपयामाके लिए ऐतिहासिकी सङ्ग्रह प्रतिमा तथा कदित्व मय कल्पना इन दानाके काचनपत्रमर्मा सङ्योगकी अपणा है। वह वान इन लोगों में नहीं थी। हीं वंदावनगण वर्मा इस अगमें औरोंने कुठ अधिक सफल अवश्य है परन्तु याने मानो वान ह नि जिस तरकी तरकी और कल्पनामय भाषाकी आविष्कारना एक सफल औपयामिकको ह वह उन्हें प्राप्त न थी। यह उनके उपयामाका मन्त्रम टुम् अग ह। द्विवेदीजीके पास ऐतिहासिक प्रतिमा कल्पना तथा भाषा भी ह। इन तरकी वे ऐतिहासिक उपयामाकी प्रगतिकी ओर एक स्पष्ट कदम उठाते दाय पन्ते है एक अभावकी पूर्ति करते हैं और मन्त्रमे बड़ी वान कि वे नविष्कारके लेखक लिए भाग निर्रोग करते ह और प्रतिभाके प्रमाणके लिए एक अपरिचित क्षेत्रका उद्घाटन करते ह।

मन्त्रम पहले आत्मकथाकी बाहरी रूप रूपापर विचार किया जाय। किसी व्यक्ति मन्त्रमे आने हा अथवा—अथवा आगच्छक बुद्धिवा—ध्यान मन्त्रमन उमकी वेप मया साज-मन्त्रा तथा वाह्य गरीर-मौष्टकी आर ही जाना ह। उमकी दायक मन्त्रम कुठ साधारण-मा धारणा बना लेते है और यदि वह धारणा अनुकूल हुई ना बागेरा माम प्राप्त हा जाना ह। साहित्यके लक्ष्यका मन्त्रम यह हाता ह नि वह जपना रचनाके र्द गिद एक इन तरकी वानावर्णकी मृष्टि करे कि उमकी म यनाकी छाप गणापर बट जाय। पाठक लक्ष जानना यह कि क्या मन्त्री नगी अथवा मन्त्राकी उपन ह फिर भी ऐश्वर्यकी तादृकी छगे कुछ इस सपार्दन गाय करे नि उमकी मृष्ट-मन्त्रका पन्त्र करनेवाली आला चक बुद्धि गो जाय। दतो आर अथवाकी मारी प्रमृष्टिवा उमन्त्र रन्नी है। द्विवेदाने म ध्यमकी प्राप्ति लिए क्या नगी किया ह? सम्प्रत साहित्यका ऋण ता ह ना औरान भी वम नहीं किया गया ह, यहीजक कि विचारी साहित्यकी ना दन द्विवेदानाकी शापमें वम नगी। वे एक सनक और जागृक वन्त्राकार है। और बनी मनत्रवाद गाय ऐतार्की एक एक टोकाम उहोंन अपन मन्त्रासकी मन्त्रिकी रचना की ह।

सबसे प्रथम आत्मकथाकी ही बात लाजिग। इसमें नायक वागमृष्ट अपने जीवनतः साहित्यिक बापों का निरग्रण स्वय ही करना चला गया ह। इसके वाग्य मन्त्रामें वाग्यनिश्चिताका स्वाद जा चला ह। आत्मकथाके रूपमें साहित्यमें और उपयाम नहीं ह मा वान नहीं। एसाउद जागृता पन्त्रका रानों, जनद्रवा 'त्याग पत्र रविवागका 'धर और बाहुर (धरे वागिर) पन्त्र ह। पर इन सब

प्रयोगों के पात्र उत्पाद्य हैं इनका जन्म लेखक की कल्पना में हुआ है। पर द्विवेदीजी के पात्र सम्बन्ध-गद्य के सम्राट, महाराज हृषिकेश राजकवि बाणभट्ट हैं। यह द्विवेदी जीकी मौलिकता है कि इस आत्मकथावाली प्रवृत्तिका उन्होंने एक ऐतिहासिक यात्रास सम्बद्ध किया है और पुस्तकका नामकरण किया है 'बाणभट्टकी आत्मकथा'।

द्विवेदीजी खूब जानते हैं कि आलोचक और समान-युग्मकर चलनेवाली बुद्धिकी भुलावा देनेके लिए स्पष्टिगित शवावृत्ति, (सस्पेंशन ऑफ डिस्त्रिब्यूशन) की सूत्र पत्ता कर देनेके लिए यह पर्याप्त नहीं है। अतः वे आत्मकथाकी अतीति प्रायः दीदीकी अनुसंधान प्रियताकी भाव सामने लाते हैं और यों कहते हैं कि मातृम हाता है कि मानो इस कथाकी पाण्डुलिपि उन्हें शोण नदीके तटपर भ्रमण करने मिली थी जिमका सम्पादन भर करके उन्होंने प्रकाशित कर दिया है। योंपर एक बात कही जा सकती है यदि वह छाटा मुँह और बड़ी बान जसी न लगे तो। इस टेक्नीकके लिए द्विवेदीजी धरकर प्रसिद्ध उपन्यास 'हेनरी एममंड' से नहीं तो जने द्रव्य त्यागपत्र के अवश्य ऋणी हैं। द्विवेदीजीके जरा आगे बढ़कर सीटी पर सतपत्ता पुक्क दबी हँसीके द्वारा यह कह दिया है कि यह तो मञ्जक भर है। पर इसमें तत्पत्ताका भ्रम कितना पैदा हो जाता इस हँसीके आवरणका चीरकर देचना कितना बठिन हो जाता है। यह इतन भरम ही पता चल सकता है कि मेरे विद्वान मित्र श्रीगणितकुमार नानूराम व्यासने अपनी पुस्तक 'संस्कृत साहित्यका इतिहास' में यहाँ तक लिख दिया है कि बाणभट्टकी जीवनीकी एक नयी सामग्री द्विवेदीजीके हाथ लगी है और उसके प्रकाशनमें बाणभट्टकी जीवनीपर नया प्रकाश पड़ेगा। द्विवेदीजी जन-द्रव्ये इस वाक्यमें बड़े हैं कि अन्तम दीदीके पत्रका उत्सव कर पाठककी भूल पर हँसते हैं भी है। जवान उनके दिमागमें अधिक पेचीदगी है। बाणभट्टकी कोई भी रचना पूरी नहीं है। हृषिकेश और तरुमें अधूरा ही है और वादम्बरी भी। यह 'आत्मकथा' भी पूरी बरम होती। यह बाणभट्ट की जो है। यदि पूरा हाता तो पाठकको शक न होती कि यह पूरा बरम हो गयी जब और सब रचना अधूरी है। अतः इस भी अपूण ही रहना चाहिए। प्रायः यह दया जाना है कि एक लेखक एकाधिक पुस्तकें लिखता है तो प्रायः एक पुस्तककी बातें दूसरी पुस्तकमें ज्यादा रीत्या आ जाता है। इस आत्मकथामें भी 'वादम्बरी और हृषिकेश' की बातें बरम न पायी जायें, यह तो स्वाभाविक ही है समानताके ही नहीं मिश्रणमें आत्मकथाकी मत्पत्ताम गवाकी गुत्राया हो सकती है। कितनी सतपत्ताम पाठकके लिए जाल बिछाया जा रहा है और शान्तिनिवेदनसे दिवालिङ्क

किन्ती पैरैबाउअ उये घेरनेकी बदिग बायी जा रही ह । और भाग ? वह तो बाणभट्टकी ह न, हिंदी भले हा हो, पर उमती ह तो मानो जलो है "नये नापने धरती" । हाँ इतना अवश्य ह कि 'हर्षचरित और 'कादम्बरी' के रूप गभत्व और विराधाभास गभत्वको कयी अवश्य ह पर वह है बाणभट्टकी ही यही पाठक समपता ह । यही ह साहित्यमें युग भावनाका प्रतिबिम्ब । बाण भट्ट भल हा हा उयी गतामके पर उनकी आत्मकथा है २०वीं शताब्दीकी और उसम इसी युगका काण्डम्बर है ।

उपर वह जाये ह कि एनिहासिक उपयाममें इतिहास आर कल्पनाका समानुपातिक सम्बन्ध होना चाहिए । औरैकी साहित्यके प्रसिद्ध इतिहास-लेखक फ्रांस्सर मण्ड्वरीने एनिहासिक-लेखक लिए कुछ गुणाका हाना आसक्य बतगाया ह । उसने यह भी बतगाया ह कि ऐस लयकामें किन किन बाधाका अभाव हाना चाहिए । पहला अभावामक गुण तो यह ह कि क्या प्रवाहमें इतिहासी चट्टानाकी यय टूँस-टासम बचा गाय । द्वितीयजीमें इसम बचनेका लक्ष्य ता परिष्कित अवश्य हाना ह पर हयके साथ तुवरमिच्छिका लयोजना और उयग हयकी मयी करानेका प्रयत्न काय विरुध तो हो ही जाता ह साथ ही साथ पाठकाकी विश्वास भावनापर आसक्यका अतिक श्वाभ्या डालना दोष पन्ना ह । माना कि तुवरमिच्छिका समय-निष्पण एक समस्या ह उसा कि द्वितीयजीने स्वीकार किया ह पर हयक समजागेन हानकी कल्पना किमीने नयी की ह । एक उपयाममें भी उन गताका मान ले घाँटना कहातक मगी चीन = में कसर कुछ निश्चयक साथ गता क सत्ता । उन घटनाक समावेगक पगमें कुछ मत ता शिया ही जा मरता ह महागाय हय बना बाणभट्टका 'भुजग (उपट) समपते ये और उनसे अरुणिक अक्षयन ये हउता एक मयक कारण उपस्थित करना था बाणभट्टका चट्टाघिनि मिच्छिकी कयाने उडार करने जन कायमे कम मण्डक कामों पउ नियुक्त किया जा सता था । इतिहासका रूप भी बनाय गया था इयादि । पर विरुध भावनाकी एक हय हित्ती नये शक्तो क्या ? और स्थगित गतामूतिपर औरैसासिक साँपकि कल्प्य नही है क्या ? दूगगे बात—त्रिन दूगम बचनेक, गत—२१० नण्डवरा कयते ह शिया तथा वातामपरी अपस एनिहासिक घटनाका विवरण मशिय स्थान देनेका लाम ह य एक तेना बाय ग जिउका येन मकरण करता कय घड एनिहासिक उपयामकारक गिा बटिन हा जाता ह । विरुधका क्या आसिक अत तक नायकोय मूर्तिया और सासिक कायोंप पूग ह तथा शता-लाकी मुडर यात्रनाभान उपयाममें गतिमपताका मृषि कय ही ह । उगाहणक

लिए उम स्थलकी आर सकेत किया जा सकता है (पृष्ठ २१८) जहाँ सुगतभद्र महाराजके इस स्थल प्रशनका उत्तर दिया है कि 'बुद्ध निर्वाण प्राप्त करनके बाद भी पूजा करने ग्रहण करते हैं ।' और एमे वस्तु से स्वयं यत्र-तत्र त्रिग्वर पडे ह ।

हाँ, काल्पनिक अशम द्विवेदीजी पण रूपसे सफल ह । उनकी कल्पनाने उस समयके वातावरणके पुनर्निर्माणमें सहायता ही दी है । द्विवेदीजीके बाणभट्ट, शीलभद्र, वसुभूति इत्यादि ऐतिहासिक व्यक्तियासे अधिक् सत्य ह क्योकि वे व्यक्ति न रहकर टाइप हो गये ह वे एक जातिका प्रतिनिधित्व करन लग गय ह । उनका व्यक्तित्व व्यष्टिगत न रहकर समष्टिगत हा गया ह और वे उस समयकी युग भावनाके शरीर हो गये ह । उन समयके लागक बीच किम तरह तांत्रिक सिद्धियामें विश्वास था यह तो गायद कितनी स्पष्टताम यहाँ व्यक्त किया गया ह वह गायद ही कही दूसरी जगह मिल । कही कही ता देवकानन्दन धर्मकी 'चन्द्रकान्त सतति' एय 'आश्चर्य वस्तात-जसी पुस्तकके पढनेका आनन्द मिलने लगता ह ।

सबसे बडी बात इस पुस्तकम ह नारी तत्त्वकी गाय्या और समाजकी स्थिरताके लिए उसकी उद्भावनाका जोर । नारा-तत्त्व मतलय आत्म-समपणकी भावना, दूसरे शब्दामें अहिंसाकी नीयपर समाजका निर्माण । यह पूर उपयास प्रबन्धका मुख्य ध्यय ह । सारी पुस्तक भारतीय प्राचीन सभ्यताका विजय घोषा करती ह और भारतीय जीवनम समयका जो स्थान ह उसको आधुनिक सभ्यताकी आधारशिला बनानेकी अपील करती ह । यवनाकी सभ्यता जो समाज के उच्च-नीचका विभेद नही मानती उसको प्रशंसा अवश्य ह पर उनकी श्रुटिका ओर भी ध्यान दिलाया गया ह 'उनम समयका अभाव ह आत्मनियन्त्रणकी कमी ह । उन्ह यही चाहिए । भारतीय समाजने बचनको सत्य मानकर रामारको बहुत बडी चीज दी ह ।' प्रकारातरमे आधुनिक समाजके निर्मायिकाका यही चाहिए यही बात नारी पुस्तककी ध्वनि ह । सब मिला-गुलातर इस पुस्तकका महत्त्व इसमें गती ह कि यह पूणरूपण सफल ऐतिहासिक उपयास है पर इसमें अधिक् है कि यह भविष्यके औपयासिकके लिए एक विशाल क्षत्रका उन्घाटन करती ह ।



साहित्यिक परकाय प्रवेश

• •

जलिनविलोचन शर्मा

“मिस बैररान नामक एक आम्ब्रियन मन्त्रिणों बागमट्टकी आमकथापर एक स्वतंत्र ग्रन्थकी पाण्डुलिपि सोन नदीके किनारे उपलब्ध हुई है (विंगारु-भारत जनवरी १९४३) । बागम अथ ग्रन्थकी भाँति यह आमकथा भी अगूना है । इसका हजाराप्रमाद द्विवेणी कृत हिन्दी अनुवाद विंगारु भारत में प्रकाशित हो रहा है । मूल संस्कृत आमकथाका प्रकाशन संस्कृत-साहित्यका एक अगूना बन्तु होगा ।

हिन्दामें लिये गये जिन मामूली तरहमें नामबलाऊ संस्कृत साहित्यक श्रुतिसु-मय पत्रिका उद्घृत की गयी है उसका पत्रा ठिकाना नहीं हैना उसके साथ अन्वय करना नहीं होगा । द्विवेणीजीकी लेखनीका जादू उल्लिखित पुस्तकके अन्वयके सरपर चक्कर बाँट गया है । मैं एक तरह द्विवेणीजीकी मूल विंगारुगृहकी बात मानता हूँ और दूसरी तरह उद्घृत पत्रिकाके अन्वयका किना माननाक नितात अभावकी और आज फिर इस आशयका लिखत समय मन-हा-मन उस तरह मिलविता रहा हूँ जिन तरह पत्नी बार इत बन्तका पत्रपर मिलविला पडा था ।

रत्निक सम्भारतागूवक विचार करनेपर इस धान्तिव गिण आमकथाका लक्ष्य ही उत्तरदायी ठहरता है । उनमें अपनी विनागूना भूमिगत गिणना भ्रम नहीं पलाया है उनका ता अपना लेखन गैलीस जा पुस्तकका अन्वय प्रसार विवासात्प्राक बना दनी है । द्विवेणीजीने यह प्राम परिणाम नहीं किया हाता ता गीत प्रेमी यह सन्तुष्ट कर सकत थ इन मन्त्रिणका कथकित कोई प्राचीन पाण्डुलिपि मिल गयी है । बागमट्टकी आमकथा साहित्यिक परकाय प्रवेश का उन्मुक्त उदाहरण है द्विवेणीजीका बागमट्ट वन जानम पूरी सरलता सिनी है ।

विंगारुजीका मन्त्रिणका रम्य आमानाम समामें जा जानता बात है । उनमें और बागमट्टक स्थितिकमें एकस अधिक समान सरव है । दानाम हा

अतीत कथा

२६१

शास्त्रके ज्ञान और जीवनके अनुभव पाण्डित्य और विनोद, समय और सहृदयता, गाम्भाय और परिहास प्रेमका दुलभ सयाग ह । काई आश्चय नहीं, द्विवदोजीका लिखा वाणभट्टकी जावनी वाणभट्टकी आमकया ही बन गयी ह ।

आत्मकथा लिखना सबके बूतेकी बात नहीं, पर कुछ लोगको दूसराकी जीवनी लिखनेमें ऐसा सफलता मिल गकतो हैं कि वह आत्मकथा ही मानूम पड । दूसरी कोटिक लेखकाके लिए इतिहासके सूक्ष्म अध्ययनके साथ कविता शक्ति और उपन्यासकारकी स्थापत्य-शुश्रूषा भी आवश्यक ह । लम्बे और उसके चरित-नायकके व्यक्तिकी समानता ता जीवन लिखने लिए अनिवार्य ह । और जहाँतक इस अन्तिम तत्त्वका प्रश्न ह, मन सुरत पहले इसका निर्देश किया ह ।

वाणभट्टके इतिहासके विषयमें भी सौभाग्यसे लेखकको पर्याप्त सामग्री मुलभ थी । सौभाग्यसे इसलिए कहा गयाकि ममृतके प्राचीन लेखकारों इतिहास इतिहास नहीं, अनुमान मात्र ह । वाणभट्ट उन अपवादोंमें हैं जिनके विस्तृत और प्रमाणित जीवन वृत्त उपलब्ध हैं । इसमें भी उदादा तो यह कि वाणका जीवन-वृत्त उहीके द्वारा लिखा गया ह । 'कादम्बरी और हृषिकेशि' में वाणने अपने वारस जितना और जा कुछ लिखा ह वह क्या कम ह ? वाणभट्टके बाल निष्पन्न जमे नीरस शास्त्रीय प्रश्नोंपर भेजे ही उनको आत्मकथान प्रकाश नहीं पडता हो किन्तु उससे उनके व्यक्तिके अन्तर्दशन सम्भव हो जाता ह जा उनकी जीवनी लिखनेके प्रयासको काफी सरल बना देता ह ।

आत्मकथा लिखनेवाला अपनी कँचुलासे बाहर निकलकर अपना विश्लेषण करता ह इसलिए ईमानदारीसे लिखी गया आत्मकथा जीवनी ही लगती ह । इसके विपरीत जीवनी लिख वष्य व्यक्तिमें अभिन्न होकर उसके शक्तिवका सश्लेषण करता ह फलतः सफल जावनी आत्मकथा बन जाती ह । वाणभट्टने बिना भावुक हुए और निमग्न सदृशताके साथ लिखा ह कि एक अभिजात ब्राह्मण बशम जन्म लेनेके बावजूद वे, मौजमें, सदहास्य चरित्रवाले समयवस्त्राके साथ आचारागर्णों करत रहै फिर सभले और घर गिरस्ताकी जार ध्यान लिया थार साहित्य रचनामें जुटे राजाके यहाँ पहुँचनेपर पटले तो उपागी हो हुईं क्याकि जवाक बाराणसीकी 'प्रसिद्धि' रागाके पास तक पहुँच चुकी थी पर बादमें उसी प्रतिभाके कारण उनका यथाचित चार भी हुआ । इतनी सी बात, लखन वाणभट्टका लिखी हुई कवित्वपूर्ण होनपर भी कही असत्य नहीं अपने वारस हात हुर भा की लीपा पाती नहा । शक्तिके जीवनके इतिहासके लिए इतनी सामग्री है तो काजी ह । द्विविज्ञान इस सामग्रीको

सम्भावनाओं का दया और उनका सफाई साथ उपयोग किया। वाग्ने आत्म
 क्या लिखने हुए भी वस्तुतः जीवन लिखी। द्विवेदीजीने जीवनी लिखी और
 उम आत्मन्या कहा और हमने उसे ऐसा पाया भी—बुद्ध लोगने तो गच्छ।

परिमाणम सीमित इतिहासके आवागपर परिपूर्ण जीवनी—जैसी वाग्ने
 की आत्मन्या है—लिखनेके लिए कवित्र गति बहुत आवश्यक है। एक कवि
 ही में ऐसा मानता हूँ, जीवनी लिख सकना है। वाग्ने बादम्बरा और
 'दृष्यचरित' का उपयोग लिखे है। 'दृष्यचरित' एक ऐतिहासिक उपन्यास है।
 यह इतिहास कम और ज्यादा उपयोग ही है और हमने ज्यादा जीवनी।
 वाग्नेका कवित्व तब देखनेको मिलता है जब वे गहरे रंगारी विविध पद्यभूमियाँके
 सहारे इसके व्यक्तित्व और स्वभावका, उनके मधुर तथा सरलता बोधलता
 और बहोरताके साथ अभिप्रेत कर्तव्य चल जाते हैं। द्विवेदीजीने वाग्नेकी तरह
 बहुत गहरे रंगका ता प्रयोग नहीं किया है फिर भी गहर रंगका प्रयोग उद्धान
 भी अत्यन्त ही किया है। गहर रंगोंकी पद्यभूमिमें यह धनरा बना रटना है कि
 वहाँ तमसोर ओठी न पड़ जाये। वाग्ने कहीं-कहीं अपना चित्राको उनकी
 पद्यभूमिमें पश्यरूप, हल्का ही छोड़ देना बाध्य हो गये। द्विवेदीजीने अपने
 चरित नामकी सुगमता और अमफरता दोनों ही सीख ली है।
 वाग्नेका आत्मन्यामें गायद ही ऐसा कहा हुआ है कि पद्यभूमि प्रगत और
 वित्र गीत न गया है। लेकिन द्विवेदीजीने तमसोरों भी नायक पद्यभूमिपर ही
 उभरी है। और नायक पद्यभूमिमें लिखे कवित्व गतिकी ही अपेक्षा होती है।
 पुस्तकके आरम्भमें ही वाग्नेके जा विवाद चित्र उपस्थित किये गये हैं उनकी
 परिपूर्णताके पीछे लक्ष्यकी कवित्व गति ही काम करती है। वाग्नेकी
 आत्मन्या निम्नलिखित एक कवि चित्रकारकी रचना है।

वाग्नेके उपन्यासके समान ही उनका हम जीवनमें भी कवि-वर्णन करना
 का एक विशेष प्रभावको उत्पन्न करनेके लिए विद्यमान पाया जाता है। विस्तृत
 एक मजीब बगलारी सहायता, गुण मित्रावरण वत् वातावरण तयार कर लिया
 गया है जो चरित्र निर्माणको विदग्ध बना पाता है। वाग्नेके पद्यन-वाग्ने
 सम्बद्ध दया, तत्कालीन आचार-व्यवहार आदिके जा वर्णन साथ है व अन्तमें ही
 सम्बन्धन नहीं है किन्तु वाग्ने अमदादिन जीवनके अनिवाय वातावरणको
 सृष्टि करने है। वाग्नेकी आत्मन्या पद्य हुए हम मद्यन्त पद्यन-वर्णन समयके
 भाग्यवपमें पद्य जान हैं। इतिहासका पुस्तक पढ़नेपर भी पाठकका ऐसा
 अनुभव करता पाठिका। लेकिन इतिहासकार कवि नहीं जान हुए भी इतिहास
 लिख सकता है जब कि जावनी अथवा कवि हुए बिना इतिहास ही लिख सकना

है, जोवनी नहीं।

आत्मकथाके स्थापत्यमें ये सभी तत्त्व आनुपगित और आनुपातिक रूपमें नियोजित हैं। वास्तुशैलीकारका स्थापत्य-शैली अपने समयकी दृष्टिसे अद्वितीय और आज भी असाधारण है। जोवनी केवल अवश्य ही स्थापत्य सम्बन्धी एक जटिल प्रयाग नहीं कर सकता। लेकिन स्थापत्यकी मरलता उसकी कम महत्वपूर्ण विशेषता नहीं। घटना-वचिन्म, स्वतन्त्र कल्पना आदिके अभावम भी 'वाणभट्टकी आत्मकथा' एक महान ऐतिहासिक उपयास बन पड़ा है। आत्मकथा-जसी लगनवाली यह जोवनी वस्तुतः एक उपयाम ही है और द्विवेदीजी सभी एक कुशल कलाकारक रूपमें प्रकट भी होते हैं। उहान केवल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि या केवल ऐतिहासिक पात्रको ही नहीं चुना है बल्कि दानोकी सकीण परिधिमें अपनाको जोड़ रखा है। फिर भी आत्मकथामें आद्यन्त औपयामिकताका अदृशिम निर्वाह हुआ है। द्विवेदीजीने ऐतिहासिक यथातथ्य और सूक्ष्म वास्तु यणनके साथ वाणभट्टके अत्यन्त दृढ़ और सघनके विस्लेषणका जिस विलक्षणता के साथ सम्पन्न किया है वह उनके निर्माण शैलीका परिचामक है।

आधुनिक और प्राचीन प्रणालियोंका यही सम्बन्ध आत्मकथाकी शक्ति और भावना भी दीप्त करता है। वाणकी अत्यन्त कृत्रिम और आलंकारिक गद्य शैली के बदले आधुनिक शैलीके अनुसृत गद्यके सहार ही लेखक बराबर वाणकी याद दिलाने रचनेमें सफल हुआ है। स्वयं वाण अपने साथ पाण्डित्य प्रदानके रहते हुए भी भावानुरूप पवित्रतन्त्रम तथा लयनून गद्य लिख सकते थे। कई-कई पद्यों तक फरे हुए वाक्यांके बदले जब दादा, चार चार शब्दोंके लघु, सरल वाक्य आन लगते हैं और फिर कुछ दूर बाद पटलेका क्रम चल निकलता है तो पाठक इन शैलीगत विस्तार और सकोचकी लयम वह चलता है। गद्यकी यह लय पूर्णता द्विवेदीजीकी शैलीकी वाणप्रेरित विशेषता है।

प्राचीनताके उपयक्त वातावरणका सृष्टिके लिए द्विवेदीजीने जिन अप्रचलित शैलीका प्रयाग किया है वह बड़ी सावधानीके साथ हिंदीकी प्रकृतिके अनुकूल वाक्याम पिराय गया है। यह बहुत कठिन वाक्य है और बहुधा साधारणतः सफल लेखक भी इसका निर्वाह नहीं कर पाते। यों भी, गद्यपद्य और अध्यापन जैसे निर्जैविक कामाम जैसे रहनेपर भी द्विवेदीजी स्पन्दनशील गद्य लिखते हैं और उनका यह सामान्य विशेषता तो आत्मकथामें है ही।

अगर मुख्य शैलीके दानोन्त उल्लेख ऐतिहासिक उपयासोंके नाम लनको कहा जाय तो 'वाणभट्टकी आत्मकथा' उनमें-में एक उल्लेख होगी।

■

निरन्ध्र इतिहास कथा

महावतशरण उपाट्याय

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी विश्वकोश आलोचक है, आगेचकामें अग्रणो ह । परन्तु इस 'आत्म-कथा'स प्रमाणित ह कि द्विवेदीको केवल साहित्य कालेपरु ही नही, उसके मौलिक निर्माता भी हैं । और प्रस्तुत प्रमासमें उन्हाने केवल मौलिक प्रयत्न हा नहीं किया है, एक प्राचीन सबल सजकने लोहा भी लिया ह । बाणभट्ट अपने कालके साहित्य-सजकके नेता था । उसकी शैली अनुकरणयोग्य ह यद्यपि हमारी आजकी साहित्यिक अभिरुचिने वह सबथा विरुद्ध ह—अत्यन्त दुरुह अप्रिय भी, वसे तो बाण कवि कह गया है और आलोचकाने ही मही कहा है कि कवित्व 'चण्णोगतक' मात्र तक सीमित नही है । उनके 'दृष्यचरित' और 'कादम्बरी' में भी यह कवित्व सबत्र प्रवाहित ह ।

सही, परन्तु उम कवित्वकी रूप रेखा निश्चय बठोर है । भाव गायकी दृष्टतामें छिप जाते हैं गली समस्तपन्थाय होनेके कारण नितान्त अग्राह्य है और इसी कारण अनुकरणयोग्य भी—बाणभट्टकी मन्वा अपनी । उममें यद्यपि एक प्रकारका आवरण ह परन्तु प्रसादका उसमें घेरी ममत्तम मन्वा अभाव ह । आजक युगमें उसकी गली ग्राह्य न हो सकेगी और इस दृष्टिकोणमें सम्भवतः मैं अकला गही हूँ ।

परन्तु प्राचीन कालमें यह शैली कभी स्तुय नही हुई थी और 'कादम्बरी' तो जान भी पाठक हृदयमें एक विचित्र पुष्पुनी उत्पन्न करती है । सुदूर अतीतमें तो उसका आवरण अपनी एकान्त अमाधारणताय बाण भी था । मुबबुबे अतिरिक्त 'रोमांस' क क्षेत्रमें किमी औरने लेखनी भी ता नहीं उदायी । था द्विवेदीजीकी 'बाणभट्टकी कथा' भी बाणकी 'कादम्बरी' की ही भाँति एक रोमांस ह । परन्तु दोनोंको समताका यह निरूपण उनको कथा-श्रम्युके सुध्व-ममें विकसुत नहीं ह कादम्बरी की कथा-श्रम्यु मन्वा अलौकिक और कायनिक ह 'आत्म-कथा' की ऐतिहासिक और सामाजिक । आत्मकथा की घटनाएँ ऐतिहासिक नहीं हैं परन्तु उनकी पृष्ठभूमि सबथा ऐतिहासिक ह उसका सामाजिक-तथ्य

है जीवनी नहीं।

आत्मकथाके स्थापयमें ये सभी तत्त्व आनुपगिन और आनुपातिक रूपमें नियोजित हैं। कादम्बरीकारका स्थापत्य कौशल अपने समयकी दक्षिण अश्वितीय और आज भी अमाधारण है। जीवनी लेखक अवश्य ही स्थापत्य सम्बन्धी ऐसे जटिल प्रयोग नहीं कर सकता। लेकिन स्थापत्यकी सरलता उसकी कम महत्त्वपूर्ण विशेषता नहीं। घटना-वचिन्ध स्वतंत्र कल्पना आदिके अभावमें भी 'वाणभट्टकी आत्मकथा' एक महान ऐतिहासिक उपयाम बन पडा है। आत्मकथा-जसो रंगनवाली यह जीवनी वस्तुतः एक उपयाम ही है और द्विवेदीजी यही एक कुशल रचनाकारके रूपमें प्रकट भी होते हैं। उन्होंने केवल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि या केवल ऐतिहासिक पात्रको ही नहीं चुना है बल्कि दोनोंकी सखीय परिधिमें अपनको आच्छादित रखा है। फिर भी आत्मकथामें आच्छादित औपयामिकताका अत्यन्त निर्वाह हुआ है। द्विवेदीजीने ऐतिहासिक यथातथ्य और सूक्ष्म बाह्य वचनके साथ वाणभट्टके अन्तर्गत द्वन्द्व और सघटके विस्फुरणका जिन विलक्षणता के साथ गुम्फित किया है वह उनके निर्माण कौशलका परिचायक है।

आधुनिक और प्राचीन प्रणालियोंका यही समन्वय आत्मकथाकी गौरी और भाषामें भी दीप्त पडता है। वाणकी अत्यन्त कृत्रिम और आलंकारिक गद्य गौरी के वरुण आधुनिक आदर्शके अनुसृत्य गद्यके सहारे ही लेखक द्वारा वाणकी यात्रा रिलीते रचनेमें सफल हुआ है। स्वयं वाण, अपने सारे पाण्डित्य प्रदानक रहते हुए भी भाषानुसृत्य परिवर्तनशून्य तथा लयमूलक गद्य लिख सकते थे। कर्क-कई पद्यों तक फरे हुए वाक्यांक बन्दे जब दाश, चार चार गान्धेके लघु सरल वाक्य जाने लगते हैं और फिर कुछ दूर बाद पहलके क्रम चल निकलता है तो पाठक इस गौरीगत विस्तार और सवाचकी लयमें वह चलता है। गद्यकी यह लय पूषणा द्विवेदीजीकी गौरीकी वाणप्रेरित विशेषता है।

प्राचीनताके उपयुक्त वातावरणकी सृष्टिके लिए द्विवेदीजीने जिन अप्रचलित शब्दोंका प्रयोग किया है वह बड़ा सावधानीके साथ हिन्दीकी प्रकृतिके अनुकूल वाक्याम पिराय गये हैं। यह बहुत कठिन वाक्य है और बहुधा साधारणतः सफर लेखक भी इसका निर्वाह नहीं कर पाते। यो भी, गवेषणा और अध्यापन जिन निर्जोष कामाम लय रहनपर भी द्विवेदीजी स्पन्दगौरीके गद्य लिखन है और उनका यह मामाय विशेषता है आत्मकथामें ही है।

अगर मुगल हिन्दीके दो-तीन उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपयामोंके नाम लेनकी कहा जाय तो वाणभट्टकी 'आत्मकथा' उनमेंसे एक जरूर होगी।



निरन्ध्र इतिहास कथा

• •

मगवतशरण उपाध्याय

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदीके यशस्वी आलोचक ह, आलोचनामें अग्रणी है। परन्तु इन 'आत्म-कथा' स प्रमाणित ह कि द्विवेदीकी केवल साहित्य विशेषक हो नहीं, उसके मौलिक निमाता भी ह। और प्रस्तुत प्रयासमें उहोन केवल मौलिक प्रयत्न ही नहीं किया है एक प्राचीन सबल सजकसे लोग भी लिया ह। बाणभट्ट अपने कालके साहित्य-सजकोंका नेता था। उसकी शैली अनुकरणीय ह यद्यपि हमारी आजकी साहित्यिक अभिवृद्धि के वह सबथा विरुद्ध ह—अत्यंत दुरूह अप्रिय भी, बने तो बाण कवि कह गया ह और आलोचकोंने ही सही कहा ह कि कवित्व 'वर्णीगतक' मात्र तब सीमित नहीं ह। उनके 'हृषिकेश और 'काम्बरी' में भी यह कवित्व सबत्र प्रवाहित ह।

सही परन्तु उस कवित्वकी रूप रेखा निश्चय कठोर है। भाव भाषाकी दुरुहतामें छिन्न जाते ह गली समस्तपनीय होनेके कारण नितान्त अग्राह्य ह और इसी कारण अनुकरणीय भी—बाणभट्टकी सबथा अपनी। उसमें यद्यपि एक प्रकारका आकर्षण ह परन्तु प्रसादका उमममेरा समयमें सबथा अभाव ह। आजके युगमें उसकी शैली ग्राह्य न हो सकेगी और इस दृष्टिकोणमें सम्भवतः म अकेला नहीं ह।

परन्तु प्राचीन कालमें यह गली कभी स्तुय नहीं हुई थी और 'काम्बरी' तो आज भी पाठकके हृदयमें एक विचित्र मुग्धुनी उत्पन्न करती ह। सुदूर अतीतमें ता उसका आकर्षण अपनी एकान्त अमाधारणताके कारण भी था। मुग़लके अतिरिक्त 'रोमान के क्षेत्रमें किसी औरने लेखनी भी ता नहीं उठायी। श्री द्विवेदीजीकी 'बाणभट्टकी कथा' भी बाणकी 'काम्बरी' की ही भाँति एक रोमांस ह। परन्तु दोनोंकी समताका यह निरूपण उनका कथा-वस्तुके सम्बन्धमें बिलकुल नहीं ह। काम्बरी का कथा-वस्तु सबथा अलौकिक और कापतिक ह 'आत्म कथा' की ऐतिहासिक और सामाजिक। 'आत्मकथा' की घटनाएँ ऐतिहासिक नहीं ह, परन्तु उनकी पृष्ठभूमि सबथा ऐतिहासिक ह, उसका सामाजिक-तथ्य

अतीत कथा

दर्पणकी भाँति सातवीं सदीके भारतीय समाजको प्रतिबिम्बित करता है—
 निपुणिका भट्टके नटी-सूत्रधारके सम्बन्ध लेकर आधार भैरव—महामाया भरवी
 की तत्र प्रतिपदा तब । बोद्ध महायानमे मन्त्रयानका जन्म हुआ, मन्त्रयानमे वज्र
 यानका और तन्त्री स्वतन्त्रभक्तिविम्बित आगम-तन्त्रका शाक्त पथ उमसे आ मिला ।
 निम्न जन्मत्कारोंने इह परस्पर एकत्र कर दिया यह कहना तो बठिन है परन्तु
 दानाक सयागमे वाप्यालिक-ओषडपथकी परम्परा विकसित हुई, यह सम्भवत
 अनेक स्वीकार करेंगे ।

श्री द्विवेदीजीकी पुस्तकमें सिद्ध तन्त्रकी गहरी छायाम समाजने आचरण
 का बहुमुखी निदान है सबथा स्पष्ट । ऐतिहासिक पद्यभूमिक विचारसे भी यह
 पुस्तक नितांत निर्णय है । इतिहासका विद्यार्थी जब ऐतिहासिक पद्यभूमिपर
 ग्रन्थकी आलोचना अथवा अध्ययन करता है तो उसमे और ग्रन्थकारमे एक प्रकार
 की हाड लग जाती है—रुक्ना छिपीकी । मुझ सताप है कि अनवरत रभा
 'वेपथके बाप भी म श्री द्विवेदीजीके ऐतिहासिक निरूपणमे कही बाई छिद्र न पा
 सका, मिबाय इनके कि हपका समकालीन हाकर भी लोरिकदवने जैसा पृ०
 ३१४ पर लिखा है समुत्पत्तिका गह्वज सिधु और कुम्भाक उस पार तब
 फहराया था । ममुद्रगुप्त और हपक समय मोटी दष्टिसे भा लारिकदव केवल
 साठ सालका है । कुम्भा अर्थात् वावुल नदाके उग पार गह्वज फलाना
 सबथा ऐतिहासिक न होकर भी दष्टिसे हानेके कारण क्षम्य हो सकता है ।

समय साहित्यिक द्विवेदीजी ही बाणकी गैलीकी पुनरुज्जीवित कर सकत
 मे । सस्कृत भाषा काव्य-अलंकार आगम-नन्त्रादिका उनका गहरा ज्ञान इस
 'आत्मकथा में फूट पया है और यदि उनकी शैलीकी दुरुहताका दाप हम खले
 ता उमका आरोप हम श्री द्विवेदीजीके ऊपर न कर बाणपर करेंगे यद्यपि प्रश्न
 यह हा सकता है कि यह प्रश्न क्या ? यह प्रश्न हम साहित्यकी सायकताके
 समर्थता खडा करेगा और साहित्य किमके लिए ? 'कस्में दवाय हविषा विधेम
 के बठिन प्रश्नवा उत्तर देनेकी बाध्य करेगा । हम प्रश्नवा उत्तर देते हुए हम
 जितना ही बाणकी दापी उहगमेंगे उतना ही श्री द्विवेदीजीका भी क्योंकि दोनों
 प्रस्तुत प्रश्न समें बौद्धिक अभिजात परम्पराके पायक है । बाणभट्ट अपनी सस्कृति
 गैली जटिल अभिजातीयतामे नावारण जनतासे जितने दूर थे श्री द्विवेदीजी भी
 इस प्रश्नमे संधारण जनतासे उतने ही दूर हैं । परन्तु ही पूजनाका दाप बाणोंके
 मत्थे नहीं मडा जा सकता । बाणभट्टका मौलिक आधार चाहे दूषित हो उसक
 आधुनिक प्रतिनिधि कलाकारकी कलासा निवारण उज्ज्वल है ।

श्री द्विवेदीजीने अज्ञानके निवारण करना चाहा है उसमें व सबथा सफ

हुए ह। प्राचीन अथवा वर्तमानको खोलकर रख देना साहित्यिक प्रगतिका एक रूप ह और इसी कारण मार्क्स तथा लेनिन दोनाने बालजककी बलाफा सराहा था। हाँ हम जानते हैं कि केवल उसे खाल देना ही पर्याप्त नहीं है, उससे प्रयास निष्प्राण हो जाता ह आनन्दकता होनी है इस बातकी कि उस अतीतके साथ हमारे वर्तमानमें बहते दिखाये जा सकें जिससे उस अतीतके प्रवाहके मोतङ्गसे हमारे भविष्य तरु विच्छिन्न न हो सके। इन सबथा सुन्दर कृतिका जिस 'हपचरित', 'बादम्बरी', 'नागानन्द', 'रत्नावली', 'चण्डीशानक' आदि अनेक उपकरणसे द्विवेदीजाने निर्मित किया ह हम दूसर कुछ विस्मयके साथ देखते ह और उमम अस्तापा किसी प्रकार नहीं जाड पाते। आरम्भमें ही समथ साहित्यिकने रामास की पद्यभूमि एक आधुनिक आस्ट्रियन महिलाकी खाजम निर्मित की है। श्रीमती बयारानने उसे इस 'आत्मकथा' की पाण्डुलिपि शाण तटके गाँवसे खाज कर दी ह। श्री राहु साह्यायनने भी अपने 'सिंह सनापति'में इस प्रकारकी एक पद्यभूमि दी थी जिसने अनेक पाठकाका विस्मयम डाल दिया था। इस पद्धतिका आरम्भ वास्तवमें उस प्रेच महिलाने किया था जिसकी सुन्दर कृति द मोगल प्रिसज इतिहासकी रामाचक प्रसूनि है। था द्विवेदीजी द्वारा विरचित यह 'वाणभट्टकी आत्मकथा' वाणके दोष-गुणाना दपण ह और इनकी यया-तथ्यताकी मात्रामें लेखक वाणवन ही सफल हुआ ह।

■

बड़े लाल कितना भीरस और भौंडा हाडा हागा जहाँ पिरह वेदना
 क आँसू निकलने ही नहीं और प्रिय बियागकी कल्पनासे
 जहाँ इन्धमें ऐसी टोस पैदा ही नहीं होती जिन दारुमं ध्यक्त
 १ किया जा सक। आँसूमें जीवन तरुनि हावा रहना है।
 पीदारुमं पेन पनथा करता है। असकामें यदि आँसू नहीं है तो मल्लके
 इन्धकी सारी पीड़ा मृगमरीचिकामे अधिक मून्य नहीं रखती।

—मैघदूत एक पुरानी कहानी

वाणभट्टकी आत्मकथा स्पन्दचेतनाकी काव्यानुभूति

• •

वचनसिंह

वाणभट्टकी आत्मकथा एक क्लासिकल रामण्टिक उपन्यास है। अर्थात् अपने वचन चित्रण, वणन, शिल्प शैलीमें यह क्लासिकल है और प्राणगत उष्णामें रोमण्टिक। ये दोनों तत्त्व एक-दूसरेसे मिलकर एक अविभाज्य टैक्सचर बन जाते हैं। इस क्लासिकल विन्यासमें अपभ्रित रामण्टिक सूत्राकी कमी नहीं है और रामण्टिक आवगको क्लासिकल समय बाधे हुए है। क्लासिकम एक ओर औदात्त्य होता है तो दूसरी ओर जडता। ऐलकने औदात्त्य तत्त्वको लेते हुए रोमासके सन्निवेश-द्वारा जडत्वका सहज ही परिहार कर लिया है। एक जडत्व जीवन और परिवेशके स्तरपर भी है। ऐलक उसपर गहरा प्रहार करता है और समस्त उपन्यासमें स्पन्दचेतनाका नवोन्मेष पट पटता है।

इस स्पन्द चेतनाको जिस काव्यात्मक पैटनपर प्रस्तुत किया गया है वह अद्वितीय है। यह अद्वितीयता वस्तु रूप दोनोंमें है क्योंकि जो वस्तु है वही रूप है, जो व्यक्ति है वही परिवेश है। इस प्रकारकी अवयवगत सम्पूर्णता कायमें ही सम्भव है। इसीलिए इसके पैटर्नको मने काव्यात्मक कहा है। कायका अनुवाद नहीं हो सकता, इसलिए वाणभट्टकी आत्मकथाका भी अनुवाद नहीं हो सकता। इसके एक तारके छू देनेपर समस्त तार एक साथ झट्ट हो उठते हैं। झट्टि ही स्पन्द चेतना है।

महावराह इस स्पन्दचेतनाके प्रतीक है। इस पौराणिक मिथका दुहरा उपयोग है। एक ओर तो यह उस अटूट आस्थाका प्रतीक है जो 'जलौघमग्ना सचराचराधरा' का उद्धार करनेमें समर्थ है दूसरी ओर यह मनुष्यकी निमित्तता और अकिञ्चनताका बोध करता है। महावराहके दातापर उठी हुई धरित्रीके मुखमण्डलपर जो जल्लास और दाप्तिका भाव था, वह दखते ही बनता था। महावराहके दोनों हाथ कटिदेशपर इस प्रगल्भताके साथ टिके हुए थे और बाहुमूलकी पनियाँ इस दृढताके साथ निजाली गयी थी कि दखकर मनमें एक अपूर्व विश्वास उद्विक्त हो उठता था। विश्वास ही वह वस्तु है जो मनुष्यकी

यदासे बडा खतरा उठानेके लिए उप्रेरित करता है। इस विश्वास विप्रश्नके आगे बाणभट्ट अपनका नगण्य महसूस करने लगा।

सञ्चराचर धरा जलन मग्न ह। सारा समाज एक प्रकारके अवरोधमें ह। भट्टिनी महामाया, निपुणिका, सुचरिता यहाँतक कि बाणभट्ट भी अवमूढ़ ह। सम्पूर्ण मध्यनागमें एक गतिशून्यता भरी हुई ह। राजनीति, सभृति, धर्म आदि बड़े घाटोंके जलकी तरह आविर्भूत है। सोचनेका बीजा दृशा तरीका ह, धर्मकी एक बँधी बँधायी परिपाटी है, सब रस्सोंके फँसोर ह। बाणभट्टकी लगा था— न जाने क्या मुझ ऐसा लग रहा था कि नाचेग ऊपर तक सारी प्रकृतिम एक अलग अवसादकी जडिमा छापी हुई है।' इस उपयासमें इस जटिमाकी तानेका रचनात्मक प्रयास ह।

यह एक एतिहासिक उपयास ह। ऐतिहासिक उपयासम एक ओर तो ऐतिहासिक प्रामाणिकता होना चाहिए और दूसरी ओर उसकी गत्यात्मकताका बोध। द्विबदीशाया ऐतिहासिक चेतना आधुनिक ह, इसमें दा मत नहीं ह। यह चेतना गतिक दूसरा नाम है जा स्थितिका विच्छिन्न करनेवाली स्फूर्तिके रूपमें एक विगेष सबटके कारण, इतिहासकी अनिश्चय मार्गक रूपम आविर्भूत होता ह।

इतिहासकी प्रामाणिकताके रूपमें धर्म, दगा उपामना, राजतन्त्र मूर्ति चित्र आदिके व्यापक सन्भोंका जो अपन मूर्तम सन्निष्ट तथा उन विशेषताश्रके साथ जा उन धुगका नितान्त अपनी है कलात्मक वणनमें उकरित ह पैग किया जा मरता ह। इस परिवर्तनमें हा व परिम्पितिया उगती ह जिनके सधानोंमें पन्धर पात्र स्वयमेव क्रियात्मक हा उठते हैं। इस क्रियात्मकताके कई स्तर ह— अन्तर्व्यक्ति सम्बन्धका स्तर, सांस्कृतिक, जातीय स्तर, राजनीतिक स्तर। ये मभा स्तर अलग होकर भी एक हैं। इत समूचे परिवर्तन और क्रियात्मकताकी इतिहासका गया मरता परिवर्तित करती ह।

सम्पूर्ण उत्तरापथ निर्णय राजतन्त्र और उच्छमल सामन्ताय व्यवस्थामें जनता हुआ था। कुछ लोगका इसका एहसास था पर वे जकड खडे थे। इस जनताकी ताउनका काम मूरतन स्थिया करती ह। हेनरा मिलखा विश्वास ह कि पुण्य मूरदा हो जानेपर उगे जिलानेका काम स्थिया करेगा। ये गति ह व त्रिपुर मुन्ना ह। निपुणिका, महामाया, भट्टिनी और सुचरिताने अपने-अपनी दमय स्पंद धतनाका आविर्भूत किया ह।

निपुणिका भट्टन पूछती ह— तुम अमुर-गूढमें आरुद्ध लंगाना उडार करने का माहा रमत हो ? मरिखामें हूँ ही हुई कामधेनुको उगारना चाटो हो ?'

आगे चलकर उसन पुन कहा था— भट्ट यह अज्ञान बनका साता ह तुन इसी उदार करके अपना जीवन साधय करा ।' भट्टिनीना उदार ता निमित्त ह । यपाकि इसक उदारक साय देगना उदार भी लाग हुआ ह । मोचरियाँ अकराध अनुरगूह हँ जो मध्यकालीन सामन्तानी उच्चा मल्लाको मत्तर बनाता हँ । महामाया भी अपनी इच्छाके विरुद्ध इसी अमुरगूहमें आयद था । उहाँने कहा था कि उनका अकराधम रहना अमगलकारी ह । अकराधसे बाहर आकर उहाँन राजतत्रम जवदे हुए जन-जीवनका शकशोर दिया । गिरिवत्सक पाप राकी म्लेच्छाकी सनाक विरुद्ध उ हान आवाज लगायी— अमृतके पुत्री, मृत्युना भय माया ह, राजासे भय दुबल चित्तका विकल्प ह । प्रजाने राजाकी सृष्टि का ह । सपटित होकर म्लेच्छवाहिनाका सामना करो । दबपुत्रा और महाराजा घिराजाकी आगा छोडा । समस्त उत्तरापथकी लाज तुम्हार हाथाम ह । यह पहला अयाय नही ह । यह हुबह सम्पत्तिमदका घिराचरित रूप ह । इसके लिए 'यायकी प्राथना यय ह । अमृतके पुत्री धमकी रक्षा अनुनय विनयसे नही होती शास्त्रवाक्यानी सगति लगानसे नही हाती बह होती ह अपनेका मिटा देनेसे ।'

महामायाक कथनका कायात्मक वक्तव्यका रूप देनेक लिए उस गत्यात्मक अविति इनक लिए रहटारिकका प्रभावशाली प्रयोग किया गया ह— एक सहस्र कण्ठोने दीघ दीर्घायित स्वरमें प्रतिबनि की मृत्युका भय माया ह । उस महाबनिन स्थाणीस्वरके दुर्भेद्य प्रस्थर भित्तियाकी चीरकर पर प्रात तक हलचल मचा दी । भीड बढ़ने लगी और रह रहकर आकाशका विदीण करके एव ही स्वर गूँज उठा— मृत्युका भय माया ह । विराट पट मण्डप उस स्फं जन-भग्मदका धारण करनेम असमथ हो गया । भीड रामागों गवाशा वध और ध्वज लण्डाका आच्छन्न करने लगी ।'

यह वचन महामायाके वक्तव्यको विस्तारित करन अथवा उसकी प्रभावा वितिको धनीभूत बनानके लिए महत्त्वपूर्ण नही ह । इसक माध्यमक लेखक पाठोके बोधको काव्यात्मक अनुभूतिके रूपमें परिणत कर दता ह । भावकी ध्वमपलके चर्च अपने जातीय जीवनका एक स्वर गूँजता रहता ह । अनुगूँज देर तक छापी रहता ह । सत्य मालूम दता ह । वह नरलाकसे दसती ह । इह म्लेच्छ हती ह जा और उम सिग

ध्वमपलके चर्च
ह—मृत्युका
पर भट्टिनी
विनरलाक तक
नही
सबदनस

हृदय-परिवर्तनमें विश्वास है। भट्टिनीको भट्टकी सरस्वतीमें इतना गहन विश्वास है कि उसके द्वारा निन्द्य जातियोंमें भी सर्वेदनाका संचार किया जा सकता है। किन्तु मुद्द भट्टको वायकी इस शक्तिमें आस्था नहीं है। जब कालिदासके काव्य में वह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ तो और किसके काव्यमें होगा? भट्टकी दृष्टि अधिक यथायथानी है। इनके देखके सर्वेदनात्मक साहित्यमें मनुष्यमें क्या परिवर्तन किया? अब तो यह है कि साहित्य धीरे-धीरे लोकाका ही सर्वेदनागी बन पाता है। हृदय-परिवर्तनके ममोहाजाका क्या हुआ? बुद्धको विष दिया गया, ईसाको बोलामें ठाक दिया गया और गाँवोंको गोली मार दी गयी। क्या दास्लेवस्कीका कहना ही तो सच नहीं है कि मनुष्य मूलतः बबर है। वास्तविकता यह है कि वह पशु और मनुष्य दोनों है। न उसकी पशुता दूर वा जा सकती है न मनुष्यता। उसकी बबरताको दूर करनेकी कल्पना महज कल्पना है। किन्तु इस दिगामें त्रियागील होना बुरा नहीं है। किन्तु इस बबरताको दूर करनेका उपाय महा मायाके पास है भट्टिनीके पास नहीं। भट्टिनीके मूटापियाई सत्यको सत्य मान कर अपन भोपेपनके कारण, हम अपनी भूमि और प्रतिष्ठा दोनों खो चुके हैं। भट्टिनीके सत्यमें जटिमाक प्रादुर्भावका खतरा लगा रहेगा। अन्तर्लिये मगमाया और निपुणिवाका सत्य चाहें सम्पूर्ण सत्य न है। पर वह वास्तविक सत्य है। वास्तविक सत्यका अर्थ है कि वह यथायथ है। उसमें कोई छत्रावमें नहीं पड़ सकता।

और सत्य क्या है? जिससे लोकका आत्मतत्त्व कल्याण हो। बाणभट्टने अघोर भरवकी गान्धालामें इस प्रस्तुत किया है—'देवी, विरति सय अविभाज्य है। तुम्हारे बौद्ध दानिकाने सबूति-सत्य (ध्यावहारिक सय) और परमाय सय कहकर उसे विभक्त करनेका दम्भ फैलाया है। माना ये दोनों परस्पर विरुद्ध हो। जो मेरा सत्य है तो वह सारे जगतका सय है, व्यवहारका सय है, परमायका सत्य है, त्रिवालका सत्य है।' लेकिन आजके सन्दर्भमें जब कि व्यक्ति और समाजके सत्यामें इतना गहरी खा हो गयी है अघोरभरवका सत्य सत्यम दूर प्रतीत होता है। मानवका सत्य सत्य है मा अग्निवधादिया या सत्य सत्य है अथवा दोनोंका सत्य सत्य है। बौद्धका सत्यविभाजन अधिक यथायथ गता है। अपने अपने छत्रों पर छत्र छाय निरुद्ध करके लिए सत्तारमें लड़ाई होती रही और हा रही है। क्या निपुणिवाका सत्य समाजका सत्य है या सय या सय सय? सत्यकी नियता सत्य है। हाँ, व्यक्ति सत्य और सामाजिक सयका मध्य अवयव नियत है। निरुनिवाके सन्दर्भमें बाणभट्टन कहा है— निरुचय ही कोई बना असत्य समाजमें सयव नामपर घर बना बना अनीत क्या

है।' वस्तुतः व्यक्ति इसी असत्यके बिनाफ लडता है।

यह लडाईं जिद्दगी है, गति है, इतिहास है। बापजाने अपनी डायरीमें कही लिखा है—'एक विन्दु हो, प्यार हो, आत्मी लड जायेगा।' बाणभट्ट, भट्टिनी, निपुणिबा, महामाया, सुचरिताकी शक्ति प्यारकी शक्ति है। भट्टकी जडिमा भट्टिनी तोडती है उससे वह क्रियाशील हो उठता है। भट्टिनीकी सौ स्य-से बाणभट्ट अभिभूत है। बाणभट्टकी दृष्टिमें उसका स्मितसे सौ-सौ आरात्रिक प्रदीप जल उठते हैं। उसकी चारता सम्पत्ति भट्टका काय है, उसका पराक्रम है, उसकी जीवन्तमयता है। बाण अनुण्डभावसे भट्टिनीको देता है और अकुण्ड भावसे पाता भी है। लेकिन इसके आधारपर यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि जा जितना देता है उतना ही पाता भी है।

भट्ट भट्टिनीका प्रेम रोमैण्टिक है—आत्यंतिक रूपके मोटोपीय रोमण्टिक। कुछ लोग इसे यथाशक्ती मेलमें न देखकर भट्टपर बापुत्पत्ताका आरोप भी करते हैं। किन्तु यह प्रश्न इतना सरल नहीं है कि डाटसे इसपर राय जाहिर कर दी जाये। रामासक सम्बन्धमें एव बार मन दिव्यजोस पूछा था। उन्होंने विनाद पूर्वक कहा था कि वह स्वास्थ्यप्रदक है लेकिन सहज सुपाच्य नहीं है। अर्थात् वह पच जापर ही लाभप्रद होता है। भट्ट पा नही था, इस अघार भरवन कहा था। प्रेम शरीरसे सम्बद्ध होकर भी मानस जगतमें ही जीवित हो सकता है। इसके अनगिनत आयाम हैं, अगणित स्थितियाँ हैं। नारीको उसका सौ-स्य को, केवल गालाइयोम दफना आयातित चित्तनका फल है उस स्वतन्त्रताकी मागका फल है जो कही प्रतिबद्ध नहीं है। भट्टने निजनियासे कहा है—यह बंधन ही चारता है, समय है सुखि है। भट्ट भारतीय संस्कृतिका व्याख्याता ही नहीं उस अपन आचार-व्यवहारमें उतारनेवाला भी है। आज बंधन समय सुखिका मजाक किया जाता है। वह मजाक इस हद तक बढ़ गया है कि रोमण्टिक हो गया है। भट्ट माधुम और लावण्यका दखता है किन्वाक और हेलाकी नहीं, जब कि आत्मा समाजगास्त्रीय गद्दावलीकी गोली मारकर भी उन्हीको पसंद करता है।

भट्टके प्रेमको उसका जन्तद्वन्द्व मानवीय स्तरपर ला लडा करता है। प्रेमका बंधन कभी-कभी इतना कस जाता है कि मनुष्य उसमें मुक्त होनेके लिए विवकल हो उठता है। मैं कहनाका ता उनकी रक्षाके लिए साय है। पर हा गया हूँ परम आश्रित। इस अवस्थासे मुक्ति मिलनी चाहिए। आजसे अधिक पराधीन कभी नहीं था। कभी इस पराधीनताका वह म्यागत करता है और उसका हृदय नवगातक समान डरक जाना चाहता है। वह भट्टिनीके अधराट्टोकी लीला,

कपोत्पागीकी विभ्रम-बोचियाँ, बड़ी-बनी आवाकी ललाई दखकर अपने जीवन को अय देता है। क्या आदमीको जीवनके लिए इतना पर्याप्त नहीं है? लेकिन भट्ट अपने जीवनको अधिक फनवान बनाना चाहता है। वह अपने सौभाग्यको अपने ही हाथों खुपौ दना चाहता है—'म उनका उनके पिताके पास पहुँचाकर छुट्टी लूंगा। म अधिक माहप्रस्त होना पसन्द नहीं करता।' पर क्या बट्ट मोह-मुक्त हो पाया?

प्रेम दो प्रेमियानो अनेक प्रकारसे समृद्ध बनाना है। केवल प्रेममें ही अपने को निःशेष भावसे लिया जा सकता है। बगान्ने वैष्णवाने इमे अच्छी तरह समया था। प्रेम और सौन्दर्यकी सायकता उसके रचनात्मक होनेमें है। भट्टिनी का सौन्दर्य और प्रेम पूणत रचनात्मक था। प्रेमक प्रभावसे भट्ट उस समयसे राजनीतिक चक्रमें उलथना है और उत्तगपयके उद्धारमें निमित्त बनता है। किन्तु इस प्रकारके प्रेममें एक उत्तग लगा रहता है। व्यक्ति अपना स्वतंत्र विचार कोई मूल्य नहीं रखता। भट्ट भट्टिनीका इतना अनुगत है कि उसका अपना व्यक्तित्व पराश्रित होता गया है इसकी अनुभूति भट्टको भी थी। जो भी हाँ पर भट्टकी अनुगतता मत्व है। लेकिन उनकी व्यक्ति सायकतापर बल दत हुए लोककी मार्यकनाने साथ अविच्छेद्य रूपसे सम्बद्ध कर लिया है।

निउनिया साधारण नारी है भट्टिनी अमाधारण। भट्टिनीका एक विशेष परिस्थितिमें एहसास हुआ था कि वह लाख-लाख क्याथोंकी भीति एक क्या है। वहीरी भीति मुग्ध-रुतवा पाके वह भी है। उसका अन्तार मरकर भी उठता रहता है क्योंकि वह मर नहीं सकता। उसका आभिजात्य जीवित रहता है। उसे जीवित रखनेके लिए उस समयकी परिस्थिति मात्रूर करती है। बाणभट्ट कृष्णवधन, शेरिकरुव उसे जीवित रखनेमें अपने-अपने ढगम मदन करने हैं। उसका अनिन्द्य सौन्दर्य तुविरमिलितके नयनतारा हानके गौरवके माय मिलकर और भा प्रभावगाली हो उठता है। तुविरमिलितदरी असाधारणता क्याका भी अमाधारणता हो जाती है। किन्तु निउनिया अभिजात बगकी नारी है। उस अभिजातकी आशमें निरन्तर मुग्धकी वरदान मिला है। वह अपने विचारका दबा नहीं सकी क्योंकि वह मय थे। भट्टकी पाकर (देकर कहना अधिक सगत है) वह अपने विचारोंको मिडि-सापान मान लती है। इस प्रतीति से उसकी जडिमा निराहित हो जाती है। इस जन्माकी जेठे दूर तक गयी है। हमके लिए बन्त कुछ निर्णय राजतंत्र दाय है। इस तंत्रक विरुद्ध निउनियाने तत्रवेनी स्त्रा ही आनाज बुन्द कर सकती है—बडा दुःख है आया! इस विरुद्ध हमने अत्र स्पन्दनीन डरपर यह माप्रा-रुकी नयनहारी क्या बनी जा

अनीत क्या

रही ह । मैं इस ढङ्गकी एक नगण्य कणिका मात्र हूँ । मुझे इस योग्य बना दो कि आप अपनी अग्निसे घबककर समूचे जगलको भस्म कर दें । मैं तुम्हारा करावलम्ब चाहती हूँ । नारीका जन्म पाकर केवल लाछन पाना ही सार नहीं ह । तुमने ही मुझे जानदकी ज्यातिष्णिका दी थी । तुम्हीं मुझे तेजकी चिनगारी दो आय ।' तेजरा चिनगारी उपयामक काव्य-वक्तयका ऐसा प्रतीक है जो समय-समयपर जन जीवनका ज्यातिमय बना देती है । जबतक स्पन्दनहीनता मौजूद रहेगी साम्राज्यवाद और पूँजीवायका नयनहारी यात्रा नही रहेगी । ज्या ही इस ढङ्गमें स्पन्द चेतना आयो साम्राज्यवाद पूँजीवादको बहते देर रही लगेगी ।

महामाया ता मूर्तिमान् स्पन्दचतना हैं । उनका सारा जाया स्पन्दनपूण है । गिरिवत्सने पास रखी लुटेराकी सनाक विरुद्ध जन-मनाका आयोजन उनकी ऊजस्त्रिताका प्रमाण है । और भेरबिया गान ! वह तो आजपूण काय ह अमृतके पुत्रो आधीनी भाँति बहो तिनकेनी भाँति म्लेच्छवाहिनीको उडा ले जाओ । भरटके भयम कातर होता तर्पणाईका पपमान ह । जवानो, प्रत्यत दस्यु बा रहे ह । इस भरवगानम अत्रल ओज नही ह इसक पीछे वह सासृतिक विरामन ह जो हमार वलमानक लिए उपादेय ह ।

फिर भी महामाया और निपुणिकाक सम्बन्धम यह कहा गया ह कि उनके जीवनको पूण सायकता नही मिल पायी । सायकताकी दष्टिसे भट्टिनी और सुपरिताका जीवन ही पूण सायक कहा गया है । सायकताकी बात इस उपयास में बार-बार उठायी गयी ह । इसस लगता ह कि एक स्तरपर सारे उपयासका केन्द्रीय वक्तय यही ह । भट्टिनी और महामायाकी बातचीतसे सायकताके स्वरूप का पता लगता ह । भट्टके सम्पकम अनेपर भट्टिनीका अनुभूत हुआ कि उसके भीतर एव दबता ह जो आराधकके अभावमें मुख्याया हुआ था । नारीके रूपम वह धय हो गयी । महामाया पराजित-सी हा गयी । अवधूतपादकी साधना अचूरी रह गयी कयाकि उसे विगुद्ध नारीका सहयोग नही मिला और निपुणिना को किसी पुरपका सारा नही प्राप्त हुआ । विगुद्ध नारीस द्विवदीजीका क्या अभिप्राय ह पता नही लगता । भट्टिनीके अथम महामाया और निपुणिकाकी सायकता पूण नही ह । उन्हें उनो देवताका आराधक नही मिला । इस आराधकक अभावमें गहरे मनोवज्ञानिक अथम नारीके जीवनका सायक नहीं कहा जा सरता । किंतु क्या गम्भीर मानवीय स्तरपर निपुणिकाकी सायकता कम ह ? वाणभट्टकी उपमा उत्पेगाओमें अभिमण्डित भट्टिनीकी निजी सायकता चाहे जो रही हो पर मनुष्यकी दष्टिमें गहरे दैजिक जीवनको दष्टिमें अपने विचारोंमें वह अथम मनोय और अविस्मरणीय हो उठी ह । ऐतिहासिक

चेतनाके लिहाजसे महामायाकी अपनी सायकता है। भट्टिनी और सुचरिताकी सायकता भागवत धर्मकी सायकता अर्थात् है मानवीयताका कम।

पहले ही कहा जा चुका है कि इतिहासकी प्रामाणिकताके लिए इसमें बहुविध सद्भावोंका गुंथा गया है। बाणभट्टकी आत्मकथाके लिए जरूरी था कि बाणभट्टकी शैलीका पैटन भी अपनाया जाता, इसके अभावमें प्रामाणिकता सदिग्ध हो जाती। लेकिन यह पैटन अनुकृतिके रूपमें न हाकर लेखकके सहायकके रूपमें अपनाया गया है। बहुविध सद्भावों और पैटन विशेषके माध्यम से जिस विनाल सांस्कृतिक पटका निर्माण किया गया है वह स्वयं ही क्या है। इसकी बनावट और विभावमें अदभुत सतकता दिखाई देती है। इसका फल यह हुआ कि इसकी आंतरिक परिपक्वताका माप अभूतपूर्व पिनिस का सौंदर्य भी आ गया है। इसके बहिरंतरकी सतक सघटना फलाचरेके 'मादाम बावरी' उपन्यास की याद दिलाती है। इसके गिल्पकी कुट्टिम गिल्प कहा जा सकता है। आधुनिक गिल्पकीमें यह 'माजेष्क' शैली है। इसके लिए जिस रियाज और तराशकी आवश्यकता होती है वह भी यहीं मौजूद है। इस तराशके कारण इसकी गत्यात्मकताम कहा कमी नहीं आती बल्कि उसका चमक बढ़ जाती है। गिल्पकी पूणता ऐसकका लक्ष्य नहीं है क्याकि वह कथ्यके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

बाणभट्टकी भाँति मूर्धन्यसदिल्लट वणनामें सार्द्धभित पाणित्यपूण ससृष्टिके साथ ऊर्ध्वोन्मुख श्रिष्टिवाणका कही लाप नहीं होता। कुमार कृष्णवर्धनद्वारा भट्टिनीकी भेंट दी जानेवाली मूर्तिका एक चित्र है जो एक अद्वितीय नयनके अन्तर भ्रूलताएँ धारायत्रकी ऊर्ध्व विभक्ति पयोरग्गाआकी वक्रता लिये हुए नगरी थीं, बल्कि इस प्रकार छाये हुई थी कि वे नासावशके छत्रका नाम दे रही थीं। हाथकी अगुलियाँ स्वामाविक थीं। गुप्ताकी मूर्तिकाके साथ उनका दूरका सम्बन्ध भी नहीं था। समाधि और निद्रामें एक भेद होता है। अधिकांश कुदाण मूर्तियाँ उस भेदका स्मरण भी नहीं होने देती, पर यह मूर्ति ऐसा ओज लिये हुए थी कि उसका राम राम जागरणका प्रवृत्त हो रही थी।' इस मूर्तिमें वह मुरयल आज और जागरणका दृश्यता है। उसकी कुट्टिम गिल्पमें इस मूर्तिका जो प्रतीकात्मक महत्त्व है उसका उल्लेख किया जा चुका है।

शास्त्रिणाका नृप नागरक अभिरक्षिका दानक है तो आभीर युवतियाका नृप शेरका प्राण चेतनाका। शास्त्रिणाक मयूर और पक्ष नृपयाम जगका रवि नहीं है क्याकि वे चित्र प्रयण कला है। पायतुत्रके कारणकीणामें रवि लेनकी भी यह टोक नहीं समगता। उगवे मनमें उल्लेख्य थी ता शास्त्रिणाक टाल्लय समदिन पक्ष-मचार देगनेरी। आभार युवतियति नृपकी आवगमयता अद्भुत

ह—'स्त्रियाँ तरगायित उपान्तवाली लाल शाटिकाएँ पहने हुए थी और नाल वचुकने ऊपर हारिद्र उत्तरीय धारण किये हुए थी। वे उमत्त भावसे नाच रही थी। उनके वाघूणन-वेगसे तरगायित शाटिकात इस प्रकार भ्रमित हो उठता, मानो, अनुरागके समुद्रमें वात्याचक्र चचल हो उठा हो। उनकी चारियाँ तालानुग नहीं थी, किन्तु इतनी उद्दाम थी कि उनके हारिद्र उत्तरीय और नील वचुकका एक घूणमान चक्रवाल तयार हो जाता था। दौघ वणियाँ मटकन-झटकनके वेगसे धरती और आनाशको बाली मगूण ख्वाअमि पूण कर दती थी। बार-बार उपर नीचे आनेवाले लाल करतल आकाश रूपी नील सरोवरमें अधोमुख स्वण कमलाकी शामा भर दते थे और क्षीण कटिप्रात अथाम बार-बार झटका खाती हुई पवतीय शतावरी लताकी भाँति दर्शकको चिंतापरामण बना दत य न जाने कब कौन-सा घटका उन्हें मरोड दे।

इस वणनमें ताल ख्यके समन्वयपर नही जावगकी उद्यामतापर जोर दिया गया ह जा कायकी सबदनात्मक सम्पदासे पूण ह। इस आवग, और प्राणवत्ता को वह अपने रूहेदारि-द्वारा निमित्त करता ह। अथवा या कहिए कि अपने आवेग स्पन्द-चतनाको अवपित करते हुए वह इस विशिष्ट शली शिल्पको अवपित कर लाता ह।

मध्यकालान राजसभाका यथाय चित्र प्रस्तुत करते हुए वह उस समयक बुद्धिजीवीकी विस्मृत नही करता। राज सभाआकी उच्छ खलता, चाटुकारिता खोतलेपनके बीच बुद्धिजीवीकी विचित्र स्थिति था। हृदयबधन-द्वारा वह लम्पट कहा जाता है उसे आसन भा नही दिया जाता और न ताम्बूल बोटक-द्वारा सम्मानित किया जाता ह। वह आक्राशसे आगबबूला हो उठा पर मन्त्रबद्ध पददलित सपकी भाँति फुछ कर नही सक्ता। कर भी क्या सक्ता था? यह सब होनेपर जब वह राजसभाका सम्य बन जाता ह तो गौरवका अनुभव करता है। बाणभट्टकी यह न्यति आजक बुद्धिजीवियोना तक्षा उभारती ह। आजका बडासे बडा साहित्यकार किसी-न किसी सेठ साहूकार, मन्त्री सामन्तका आश्रित है। उनके विरोधमें उसकी आवाज या तो बन्द रहती है या खुलती ह तो अपनी अथहीनताका जाहिर कर दती ह। बाणभट्ट तक तो गनीमत थी यथाकि सामन्तीय पजा पँजोवादी पजकी तरह आत्मवेद्रित और रक्तपिषासु नही होता।

मह सब हापर भी वणनाके अन्तरालम वह सोचता ह— मेरा मन कहता था कि अबतक राज्य रह्ये, सब सगठा रह्ये पीष्य दपका प्राचुय रह्ये, सबतक यह हाता ही रह्येगा। परंतु क्या कभी यह भी सम्भव ह कि मानव

समाजमें राज्य न हा, सद्य सगळ न हा, सम्पत्ति मोह न हो ?' वह उत्तर खजि नहीं पा रहा था । उसका उत्तर उसका प्रश्न है ।

परस्पर विरोधी चित्रणोंके आधारपर भी उस युगके साथ आजके युगकी समझा जा सकता है । उज्जयिनीके वैभव, प्रशस्त राजमाग, उच्चाट्टाकालिओके आस-पास चोरो, मद्यपा, स्त्रीका शरीर विक्री करनेवाले लम्पटोका अट्टा भी था । राजकुलके पुत्र जन्मके सम्बन्धमें होनेवाले उत्सवके विराधमें उसका अपना सूना जीरा भी उभरता ह ।

एन समस्त वणनाका प्रयाजन जीवनानुभूतिको सशक्त ढंगस अमित करना रहा ह । सारे उपयासमें प्राणाका उच्छल वेग देखते ही बतना ह । मध्यकालकी जडिमातो जिस आधुनिक केन्द्र परिदृश्यमें रखा गया ह वह हमारी वृत्तिको स्पष्टता बनाता ह, आजकी समस्याओको एक विशेष घमभूत जिम्मेदार मन्दभमें रणता ह । भोजूदा हालतमें हमारा दश जिस सांस्कृतिक-आध्यात्मिक सक्क-बोधका अनुभव कर रहा ह उसके सन्दर्भमें इसे देखनेपर इस गतीकेपर पहुचना हागा कि दा दगक पहले लिखा गया यह काय उपयास आजकी केन्द्रभूत दृष्टि और मूल्यहीन विघटित स्थितिमें मूल्यवान याग दे सकता ह । जीवनकी साधकताके साथ-साथ किसी वृत्तिकी भी साधकता होती ह । इस उपयानम जिस साधकताको अवपित किया गया ह वह इस वृत्तिका साधकतासे अन्वित ह क्याकि वृत्तिकी साधकता उसम अवपित जीवनगत साधकतासे अमित होती है ।



सौभाग्यका धून उत्पन्न तो आत्मज्ञानम है । जहाँ अपने आपको दमित द्राक्षन्ती तरह निचोड़कर समर्पित कर देनेकी प्रवृत्ति नहीं है वहाँ कन्धाय देहधाय परिधेय और विनियम जैसे मदन द्रव्योंके निरन्तर प्राग् होते रहनेपर भी आर रूप वण प्रभा राग आभि-प्रात्य वितासिता साधक्य छाया और सौभाग्यके सुलभ होते रहनेपर भी सच्चा सौभाग्य नहीं बन पाता ।

—मैयदूत एक पुरानी कहानी

‘वाणभट्टकी आत्मकथा’ एक प्रतिभ्रिया-धर्मी विश्लेषण

• •

मधुरेश

किसी सुख्यात और सुप्रतिष्ठित कृतिवे, एक लम्बे असें बाद पुनर्मूल्यांकनमें कई दिक्कतें पश आती ह । वे सिगतें और भी बढ़ जाती ह जब वह कृति ‘वाण भट्टकी आत्मकथा’ जसी रचना हो । समय समयपर जिसपर बहुत कुछ लिगा गया हो लिखा जाता रहा हो और जिस हिदाकी एकमात्र एसी कृति होनेका गौरव प्राप्त हो कि सभी दलो और विचारधारागतविे व्यक्तियोने प्राय एव ही स्वरमें, शब्द और भाषा बदल-बदल कर उसको स्तुति प्रशसा की हा । मेर साथ बठिनाई और भी अधिक इसलिये है कि न म सञ्चतया जानकार हूं और न ही इतिहासका । लेकिन इन दोनों चीजाका मेरा अपना कृतिव परीक्षण मूल्यांकनका ऋष्टिमे भले ही मुझमें अपुणता और अपायताकी चेतना पदा करता हो लेकिन उसवे रसास्वादनमें इससे बौड अतर पडा ह कमसे कम म ऐसा समझ पानम असमय रहा हूं ।

‘वाणभट्टकी आत्मकथा’ को लकर बहुत पहले ही ऐसा कहा गया था कि हिन्दीक लिए उसकी उपलब्धियां नितात मौलिक ह यह सचमुच ही हिन्दीका दुर्भाग्य ह कि ऐसी कृतियावे भी परीक्षण मूल्यांकनवे बौई सुनियोजित प्रयान प्राय विरल ही ह । लेकिन निस्संशय हिन्दी कथा समीक्षा कमने कम जागरूक थी कि एस कृतिवा महत्व प्रतिपादन उसन किया—भले ही उसकी उपलब्धियाको सम्पूर्णताम रसांकित कर सकेबाले प्रयासाका अभाव रहा हो ।

आज इनते धर्मवाद ‘वाणभट्टकी आत्मकथा’ का मूल्यांकन करत समय पुरानी कही गयी बातका दोहराये जानका खतरा ही सजस अधिन ह । उसके मूल्यांकनका दूसरा तरीका समाक्षकावे आपसी मतभेदाकी चर्चा करते हुए निरूपत उसकी उपलब्धियाकी स्तुति परक याख्याका हा सकता ह । लेकिन सरल होनेपर भी यह ढग अधिक उपयोगी नहीं ह । इस लयक लिए प्रतिश्रुत हानके बाद मने ‘वाणभट्टकी आत्मकथा’ का तीसरी बार पदा ह और पिछली दो बारकी तरह इस बार भी उसे पढ़नेक बाद एसा लगा ह कि अपनी इस

मानसिक यात्राके दौरान प्रकृतिके कतिपय सुरम्य स्थलसि गुजरा हूँ और उमके जिन पात्रोंकी सगतिवा सुलभ मिला ह उमने मुझे एक नये आलोक और गरिमा से सम्पन्न किया है। उसकी भाषा और उपमाओंपर मैं रह रहकर मुग्ध हुआ हूँ। अत अपनी इन मानसिक यात्राके बीचकी अनुमतिधाको रेखांकित करके वृत्तिकी सामान्य उपलक्ष्याकी आर सवेत्र करना ही मुझे अपेक्षाकृत एक उपयोगी और सरल रास्ता मालूम होता है।

वाणभट्टकी आत्मकथा' का प्रथम पुस्तकाकार प्रकाशन सन् ४६ में हुआ था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका परवर्ती वृत्तिको, जिनमें मृत्युञ्जय खत्री और 'चारुचन्द्रलेख भी शामिल ह दबनेके बाद उनके सृजनके दो स्पष्ट धरातल और स्तर स्पष्ट दिखाई पडते ह। मित्राके बीच यदि कभी इस विषयपर चर्चा हु ह तो मने उनके पूर्ववर्ती लेखनको साधनावस्थाका लेखन और परवर्ती वृत्तिपात्रा सिद्धांतस्थाका लेखन बहुर समझने-समझानेकी वाणिा की है। 'चारुचन्द्रलेख का उकर आरोप प्रत्यारोपाकी वानजो ही अपने बचनके प्रमाण-स्वरूप उपस्थित करनवा आग्रह किसी हद तक समस्याका अर्थानिक और अनिारगत रूप हा मन्ता ह परन्तु वाना हा वृत्तिया—वाणभट्टकी आम क्या और चारुचन्द्रलेख की उपलक्ष्याके गिगर निर्विवाद ही अमाधारण रूपसे उच्च-तीक्ष्ण ह। लेकिन 'वाणभट्टकी आत्मकथा की स्पष्ट दिखाई देनेवाली सफ़ाताई मूग्ध गुठ अधिक टास और वानानिक कारण भी रहे ह जिनके आमका सुयोग सुर्वाचित हानपर भी परवता वृत्तिको नही मिल सता ह। वाण भट्टकी आत्मकथा की वणन-गणे और रूपाकार ही नही, उमके पात्राकी निमित्त और युगकी आतन्विक मत्ताका प्रामाणिक उद्घाटन आदि चीजें गिगर उसरी उपलक्ष्याका एक ऐसा धरातल तैना ह जिनके मानने 'चारुचन्द्रलेख' की उपलक्ष्याका वान माधारण और वीसा मालूम इती ह। जहाँतक वाण भट्टकी आत्मकथा क रूपाकारना गवा ह उमकी योजना सम्पूर्णतया मीरिड न हानपर भा अपने पववनिधासे अतिक विवमनोय फलन सफल रणे ह। जिन आन्दिपन दीनीका माध्यम बनाकर प्रस्तुत किया गया ह उस कथनापर उला म ह जनेत्र कुमारके त्यागपत्र और राहुल साहू-यायाके गिग-गता पत्रि' में उपलक्ष्य हो लेकिन वृत्तिकी गिलगत सफलताकी दष्टिय 'वाणभट्टकी आत्मकथा' अपेक्षाकृत अपिा विद्वानतोष ही नही उस मधुन गिग-गता आपुनिक सादरन जोननेके कारण (इस दष्टिय पुस्तकाका 'उपलक्ष्या' का अा विनोय महत्त्वका ह) अधिक साधकता-गमिन ना है।

वाणभट्टकी आत्मकथा' के निमात्र पीठ वाणभट्ट और ५५ ५५ ५५ ५५

वे आधारकी चर्चा प्राय ही हुई है। पुस्तककी पाठटिप्पणियाँ देखकर संस्कृत की कतिपय अथ वृत्तियाँ और वृत्तिभारके गम्य और उस सम्पूर्ण साहित्यकी विशाल परम्पराकी बातची भी देखनेको मिल जाती है। लेकिन 'वाणभट्टकी आत्मकथा'को पढ़ने और उसने निर्माण-बालको विशेषतया ध्यानमें रसानसे और भी कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य उदघाटित होने हैं। 'प्रकृिगन रूपम मुझे ऐसा लगता है कि जहाँ उसकी आत्मामें संस्कृत साहित्यके तत्व हैं और भारतकी विशाल मानवतानादी सांस्कृतिक परम्पराका योग है वही उसपर, महज उसके बाह्य रूपाकारपर ही नहीं बगला कथा-साहित्यकी भी सुस्पष्ट छाप है। 'वाणभट्टकी आत्मकथा का निर्माणकाल वही है और बगला कथा जगत्में शरत दानू और रवीन्द्रनाथकी विनाय-दुःखि दिगदिगततम व्याप्त थी। जहाँ हिंदीके अथ अथ साहित्यकारोंपर उक्त दोनों रचनाका प्रभाव अनुवादके माध्यमसे आया द्विवेदीजीके बगला भाषाके मौलिक अध्ययनका सुलाभ ही वही रवीन्द्रनाथके निरुद्ध सम्पर्कका सुधा भी प्राप्त था। 'वाणभट्टकी आत्मकथा'को मन जब भी पढ़ा है मुझे रह रहकर 'श्रीवात की याद आयी है—आत्मलाटना आर आत्मप्रताडनाकी भंगिमा ही नहीं उद्गाराभि-यत्तिकी शली नारी विषयक दृष्टिकोण और प्रेम प्रसंगोंकी नीरव मौन अप्रगल्भ अवतारणाकी दृष्टिका साम्य भी मुझे उसमें दिखाई दिया है। भट्टिजी और निपुणिका ही नही सुचरिता और चारुस्मिताके निर्माणके पीछे भी वही दृष्टि और सहृदयता है जिसकी चर्चा 'रत की नायिकाओं'में सम्बन्धम बहुधा हुई है। जाचाय हजारीप्रसाद द्विवेदाने बड़ी सहृदयताने अभिरास और प्रताडित नारी जातिकी समझौसे काशिका की है उसमें उच्छ्वास और भागवेगकी आकुलता भर नहीं है यथायकी मजबूत और गहरी पकड़ भी शामिल है। "बड़े करुणागणव सयागाके बीचसे मने यह अनुभव किया है कि स्त्रीके दुःख इतने गम्भीर होत है कि उसके शत्रु उसका दणमास भी नहीं बता साने। सहानुभूतिके द्वारा ही उस मम-वेदनाका किंचि आभास पाया जा सकता है निपुणिकामें इनने गुण है कि वह समाज और परिवारकी पूजावा पात्र ही राकती थी पर हुई नहीं। " लेकिन स्थितिका उदघाटन मात्रही स्वकी सीमा नहीं है वह स्थितिके लिए उत्तरदाया कारणों की खोज करता है और साथक निष्कर्षोंतक पहुँचता है निश्चय ही कई बड़ा असत्य समाजम सचके नामपर घर बना बठा है ' (वाणभट्टकी आत्मकथा प० २६१) श्री हृष विरचित रत्नावली में वागवत्ताकी भूमिका के अन्तर्पर निपुणिकाने अपनेका निःशेष भावम समर्पित कर दिया। आचाय वाग्ध्वमे उसने गुणा था कि 'अपनेका निःशेष भावस दना ही वागवत्ता है' और

भी होने ह जितना उद्देश्य कुछेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पात्रा या युग विशेषकी पुनरवतारणा मात्र होता है। रागेय रापवका 'मुर्दोना टीला' सम्बन्धित युगकी धूमिल रेगाआको स्पष्ट आकार देनेका प्रयास करना है जबकि 'वाणभट्टकी आत्मकथा वाणके चरित्रके प्रति भी उतना ही आप्रहस्योल ह जितना कि युगकी सम्पूर्ण सत्ताके उदघाटनके प्रति। लेकिन कोई भी उपमासकार क्या न हो यदि अपने वर्तमानके प्रति धानी भी शायित्व चेतना भी उसमें है तो वह मात्र अनीतजीवी होकर हो नहीं रह सकता। ऐतिहासिक उपमासकी सबसे अधिक सफलता ही हम सप्यमें निहित ह कि अतीतके परिवेगमें वनमानको वह कहाँक ममाहित करके चर सका ह। चौबर और अमिता म मुद्धकी विभीषिकासे सत्रस्त्र होकर साति स्थापनाका सफ़र प्रयास किया गया ह। 'यगोधरा जोत गयो' म नारीकी गरिमा और आत्मसम्मानकी भावनाको पुन प्रतिष्ठा मिली है। 'वाणभट्टकी जा मकथा या लेखक अपने नायकके प्रति अतिशय माहाविष्ट है ऐसे सकेत सम्पूर्ण ररगामें बिखरे मिलने ह लेकिन उनकी यक्तिगत और युगकी सामक्षिण दुबलताआको भी उसत स्पष्ट देगा ह।

'वाणभट्टकी आत्मकथा का जाग्रह जसा कि मने अभी निवेदन किया युगकी सत्ताका उदघाटन भी ह और अपने नायकके चरित्रकी पुनरवतारणा भी। उसत कोई भी चीज ऐसी नहीं ह जिसकी ओर उगरी उठाकर तत्काल निर्देश किया जा सके कि वह हमारे वतमानका सौव और प्रत्यक्ष रूपम छूती ह। लेकिन फिर भी वह अनीतकी पुन प्रतिष्ठाको ही अपनी सीमा माननेसे साफ इनकार कर रती ह। वतमानका बहुत-सी ऐसी ममम्पार ह जो उसकी आत्माम इस प्रकार रव-मच गयी ह कि अगससे उनकी ओर संरत करना वृत्तिके प्रति ही जयापको प्रथय देना ही सकता ह। नारीके प्रति कुण्डाहीन सहृदय दृष्टि क्रमग विरल होत हुए मानवीय तत्त्वकी पुन प्रतिष्ठाका आप्रह आक्रा ताओके म प्रहारोमे दुबल होवे हुए राष्ट्रके िग मजीवनी-सदेश आदि बहुत सी ऐसी चीजें है जो वतमानकी होकर भी सचकालिक है। महाभायाके उदबोधोमें बहुत भी ऐसी बातें है कि यदि तुलक चौभी और पाकिस्तानी आक्रमणके बाद िची गयी होती तो उन्हें वडी सरलतासे मामधिव स-दभमे जोत जा सकता था। हर कही लेखककी दृष्टि सादवन महत्वकी चीजाकी और ही अधिन रही ह और वैसी हातमें कुछ समीपकाकी यदि उसमें सापथिक स-दभम अभाव दिखाइ दिया ह या लेखककी दृष्टि मात्र सौदयवादी मालूम हुई है तो यह जाप्यकी बात नहीं है। आपत्य सुगतमद कुमार वृष्णवधन और भट्टिनी नारे ही पात्र घूम फिरकर एक ही बिन्दुको छते-मे मालूम पते है।

भट्टिनीको लेकर, कुमार कृष्णवधमन्त्रे सम्मुख जब बाणभट्ट अलौकिक साहसका प्रदर्शन करता है तो ब्राह्मणके अदर ऐसे विरल तत्त्वाको देखकर कुमारको आश्चर्य होता है। आचार्य सुगतभद्र पुलकित होकर कहते हैं 'क्या ब्राह्मण और क्या श्रमण, मनुष्यता दोनों ही जगह विरल है कुमार।' (प० स० ६३) आचार्यका यह सतिष्ठ वक्तव्य एकसे अधिक कारणोंसे महत्त्वपूर्ण है। यह एक बार जहाँ मानवीय तत्त्वाकी विरलता और स्वल्पताको रेखांकित करता है वहीं दूसरी ओर ऐसा संकेत भी छाँटा है कि यही बाण उसी अनुपलब्ध विरल प्रायः मानवताका निष्ठापूर्ण आवेपक ही नहीं उसका स्वयं एक साक्ष्य प्रतीक भी है।

कुमार कृष्णवधका कहता है "इतिहास सांगी है कि दग्धो-मुनी वातको प्याका त्यो कह देना या मान लेना सत्य नहीं है। सत्य वह है जिससे लोकका आत्यंतिक कल्याण होता है। उपरमे वह जमा भी पठ क्या न दियाई दता हो, वही सत्य है।" (प० स० १०१-१०२) बाणभट्ट स्वयं सोचता है, महा-पुरुषान् कथा और मन्त्रीक उपदेश दिये हैं, भ्रान्तभाव और जीव दयाक बहुत प्रयत्न लिखे हैं, पर उन्हें सफलता नहीं मिली है। क्या ससारकी मनुष्य मूल्यवान् वस्तु इस प्रकार अपमानित हास्य रहेगी? मेरा मन कहता था कि जबतक राज्य रहे, सब सगठन रहें पौरुषदपका प्राच्यु रहेंगा तबतक यही हाता रहेगा" (प० स० ११६)

भट्टिनीको दूसरे दगा और जातियाकी सामाजिक व्यवस्थाका देखनेका अवसर भी मिला है। उसकी दृष्टि अपेक्षाकृत अधिन सुनी और उदार है। सामाजिक जटिलताका और मिथ्या-स्वराक प्रति वह अनिश्चय क्षमत्किणु एव बट्ट है। यह बाणभट्टने कहनी है 'यही दग्धो तुम यदि किसी मनुष्यका कथाय विनाह करा ता दग दग्धमें यह भयकर सामाजिक सिद्धाह माना जायगा। परन्तु यह क्या सत्य नहीं है कि यवन क्या भा मनुष्य है और ब्राह्मण क्या भी मनुष्य है। मनुष्याया जिन्हें मनुष्य कहना है वे भा मनुष्य हैं। क्या भट्ट क्या यह नहीं है। तबना कि ऊँचा नास्तोय मानना उतत पढ़ेबायो जा मन और निरुद्ध सामाजिक जटिलता यहाँस फटाया जा सके। जबतक ये जना बानें साय-माय गीं हो जाना तबतक गास्वत गान्ति क्षमम्भव है। मनुष्याया आया ही दग रही है। बौद्ध मनुष्याया न भा आया हा देना था। भट्ट, तुम यदि दग पूण सत्यका प्रचार करा ता क्या हो।' (प० स० २७८ २७९)

बौद्ध और ब्राह्मणके निरत्यक आपसी सपना देना साधना कर रमा है। बौद्ध राजाको अधिमान प्रता उगक पमका स्वीकार नहीं करती है। मुचकिता निमित्तिवा बडा सतीक और सध्यपूण विरत्यपण करती दृढ़ बहसो है पनसक

गुरु भदत्त वसुभूति बौद्धधर्मको जितान्त्र ही छाड़ेंगे और भवभूतिके प्रतिभट्ट परमस्मात् आचार्य मेधातिथि—जो आजकी सभाके गुप्त सूत्रधार थे—सनातन धर्मको पुन प्रतिष्ठित करके ही दम लेंगे। मनुष्य चाहे चूहे भाडमें जाय इहें अपने धर्ममतका डिण्डिम पीटना ह। एककी पीठपर राज्य गक्ति ह और दूसरकी हथेलीमें प्रजाका विद्राह ह। इस जय पराजयकी प्रतिद्विद्वितामें मनुष्यका चाहे सत्यानास ही क्यों न हो जाये।” (प० स० २२७)

भारतीय और पाश्चात्य सभ्यताओंके मौलिक अन्तरका भी वाणभट्टने समझानेकी कोशिश की है। भारतीय साधनाके महत्त्वको वह किंचित गवमुत्तर वाणीमें इस प्रकार प्रस्तुत करता ह “वधन ही सौंदर्य ह, आत्मदमन ही सुखि ह वाधाएँ ही माधुर्य ह। नही तो यह जीवन व्यथका बोझ हो जाता थ्लेच्छ जानिमें इसी समयका अभाव ह, आत्मनियन्त्रणकी कमी ह। उहें यही चाहिए। भारतीय समाजने वधनका सत्य मानकर मसारकी बहुस बडी चीज दी ह।” (प० स० २१०)

कुछ आलोचकाने ‘वाणभट्टकी आत्मकथा की एकाध नगण्यप्राय ऐतिहासिक असंगतिकी चर्चा भी की ह। डॉ० दवरज उपाध्यायका हृष और तुयुरगिल्ड की समन्वयिता आपत्तिजनक लगती ह। डॉ० भगवन्शरण उपाध्यायको समुद्रगुप्तकी ध्वजा कुम्भाके पार फहरानेवाली बात इतिहास विरुद्ध लगनेपर भी वह उस धमा कर देनेकी उदारता दिताते हैं। इतिहासका आधार लेकर लिखे गये बहुतसे साहित्य ग्रन्थोपर मुझे डॉ० भगवन्शरण उपाध्यायकी समीक्षाएँ पढ़नेका सौभाग्य मिला ह। जोर भर लिए यह सचमुच ही सुखद आश्चर्यकी बात थी कि ‘वाणभट्टकी आत्मकथा’ ही एक मात्र ऐसी पुस्तक ह जिसे लेकर उठाने सतोप व्यक्त किया ह “इतिहासका विद्यार्थी जब ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर ग्रन्थकी आलोचना जयबा अध्ययन करता ह ता उसमें और ग्रन्थकारमें एक प्रकारकी होड लग जाती है—लुम्बाशिपीकी। मुझे सतोप ह कि अनवरत रघ्रावेपणके बाद भी म श्री द्विवेदीजीके ऐतिहासिक निरूपणमें कोई छिद्र न पा सका।” (द्विमासिक ‘प्रतीक’ सख्या १०—हेमन्त)

वाणभट्टकी आत्मकथाकी भाषागत दुर्गता और बोधिलताको स्वर लगाय गये चन्द्रगुप्त विशालकारके आरापान निराकरण ‘प्रतीक’ व उसी अवमें प्रकाशित डॉ० प्रभाकर माचवेने अपनी समीक्षामें किया है। व्यक्तिगत रूपसे रक्षकका विद्यार्थी न होनेपर भी एसी कोई दुर्बोधता मुझे उसमें नही प्रतीत हुई जो उसे पढ़ सकनमें किंचित भी बाधा द। इस मफुताका मूल एक जार जहाँ द्विवेदीजीके विशाल हिदा संस्कृत मानमें ह, क्याकि शब्द-चयन और

भाषाका सेंवारनेक लिए उन्हें काइ अतिरिक्त श्रम नहीं करना पडा ह, वही गिन्य सम्बन्धी उनकी दूरदर्शितामें भी ह। वह भली भाँति जानते थे कि बाणका भाषाका रूप आजक पाठकको अधिक रूचिकर और बाधगम्य नहीं होगा। इसीलिए उन्होंने एक ऐसी शिवालय चुनी जा रचनाको केवल दुर्बोध होनेमें ही नहीं बचाती अपमाहृत उसे अधिक निस्वसनीय भी बनाती ह। उन्हान उस यह कहकर प्रस्तुत किया ह कि एक आस्टियन महिलाको मिली हुई पाषाका वह अनुमात्र मात्र ह। ऐसा करनेसे उन्हें भाषाक क्षेत्रमें स्वतंत्र रह करनेका अधिकार मिल सका ह। यही कारण है कि सस्कृतग्रन्थक गणवलीके बाध उन्होंने दरवाजा, बाजार, गारा, जँचा, मामली, हरान, अनीब, जहरत, कामत, कागवार, अहू, आदि गणना वैदिकक प्रयोग किया ह। इसमें बडे आश्चर्यजनक रूपमें भाषा जटिल हास बची ह और उसमें निप्रता आयी है। इस स्थितिमें 'बाणभट्टकी आत्मकथा का भाषा मुने 'दिव्या'को भाषासे अधिक सुवान ही नहीं सफल भी लगी ह। 'दिव्या'की भाषा अपन युगके मस्कारा और ऐतिहासिक परिवर्तक प्रतिपाद्य न बन सकी हो एसा नहीं ह, लेकिन क्या कर करनेके लिए जा कामत उस चुकानी पनी ह वह उसके श्रममाध्य होनेकी अपावारण क्षतनामें परिलगित हाता ह। 'बाणभट्टकी आत्मकथा में श्रममाध्य होनेका दाप तो नहीं हा ह।

म हाँ० निवप्रसाद सिन्हा आमार मानना हूँ कि उनकी याजनामें सहयोग देनेके बने मुने फिर एक बार इस दुनिया पानेका अवसर मिल सका ह। आज जब वस्तुमें शेषाम भूया पीना और बाट आदानकी चचा व्याप्त ह, अनुभूतिना सचाँ और यथायका साधा पक्के नामपर सब कही निराप, दुःख, अवसाद और प्रयाजन-हीनताका पालना ह, 'बाणभट्टकी आत्मकथा'का वाचन अपनमें एक सुन्दर अनुभव रहा ह। बहुत पहल आचार्य नलिनकिशोरन गणना श्रम बाधमें सिंग सा कि हिन्दू गणतान उत्कृष्ट उपमासामें वह एक ह। उक्त बात गणनाम द्युत-अ अच्छे उपमाय आये ह वा रहे ह, लेकिन निम्बन्त 'बाणभट्टका आत्मकथा का ग्यति अप्रनात्रित ही रहा ह।

वाणभट्टकी आत्मकथा

• •

द्वाराज

'वाणभट्टकी आत्मकथा' श्री हजारीप्रसाद द्विवेदीका पहला उपयास है। हिंदीमें कोई दूसरा व्यक्ति इस तरहके उपयास या कथाको लिख सकता था, ऐसी कल्पना करना कठिन है। प० रामचंद्र गुल शायद संस्कृत साहित्यके उतने सरस-सहृदय पाठक न थे। भारतीय संस्कृतिके अर्थ खामे भी उनका ऐसा गहरा परिचय न था। द्विवेदीजीकी प्रधान विशेषता है—कठोर पाण्डित्यके साथ एक अपव सहज सरलता तथा मस्तीका योग। द्विवेदीजी पूरी डिसिप्लिनके साथ पाण्डित्यपूर्ण प्रयोगका निमाण ही नहीं करते, वे उन्मुक्त निद्रावृत्तासे हँस भी सकते हैं। सम्भवतः इस समय अनेक दृष्टियाँसे वे हिन्दी माध्यमसे बोलनेवाले दो एक श्रेष्ठ वक्ताओंमें हैं।

ता, द्विवेदीजीन 'वाणभट्टकी आत्मकथा' लिख डाली, मानो पाण्डित्यने अपनी गरिमासे ऊँकर उच्चवसित जात्म विनोद धरनेका प्रयत्न किया है। स्वयं वाणभट्ट भी कौरा कलाकार नहीं था, कमसे कम पाण्डित्य प्रदानके प्रति विमुख न था। उसकी अलिखित आत्म-कथा लिखनेका बाइ दूसरा अधिकारी ही हो नहीं सकता था।

जिन्होंने वाणभट्टकी कादम्बरी तथा 'हृषिकेश' नहीं पढ़े हैं वे भीकसे अनुमान नहीं लगा सकते कि कथाके रूपमें द्विवेदीजीने कितनी महत्त्वपूर्ण चीज हिन्दीका दी है। साहित्यके साथ ही द्विवेदीजी यदि 'कलासिखल भारतीय संस्कृतिके गहरा जानकार न होते तो वे हर्षिज इस 'कथा का निमाण न कर पाते।

'कथा में द्विवेदीजीके मुख्य उद्देश्य दो हैं—एक प्रसिद्ध वाणभट्टकी लेखन शैलीकी विडम्बना प्रस्तुत करना और दूसरे हिन्दी पाठकाको संस्कृत साहित्यके विशेषण वाणभट्टके उज्ज्वल सौंदर्य-वाचकी समृद्ध अवगति देना। इन दोनों दृष्टियाँसे वे पूणतया सफल हुए हैं।

किन्तु द्विवेदीजीका कृतित्व यहीतक सीमित नहीं है। एक स्वतंत्र

कथाकार एक कलाकारके रूपमें भी उन्हें आश्चर्यजनक सफलता मिली है। कथा-
में उन्होंने एक क्लासिक गल्पके प्रयत्न किया है जिसकी सफलताका सबूत
उसकी रोचकता है। मानवीय रोचकताको दृष्टिमें हमें 'कथा' का पूर्वाह्न अधिक
प्रिय आया, उत्तराह्नकी रचना करने समय सम्भवतः लेखक कुछ उम्र महसूस करने
लगा था। 'कथा' अपूर्ण रह जाती अपनी परिणतिकी ओर नहीं बढ़ पाती।
इसका एक कारण लेखकका अनावश्यक निरवधि समय अथवा साहित्यिक साम-
हीनता भी है। लेखक मानो अपनी बाणीपर एक विशेष प्रकारका प्रतिबन्ध या
प्रतिरोध लगाकर लिए उठा हो। लेखकने स्वयं इसे स्वीकार किया है— हम
'कथा' में सबसे प्रेमकी व्युत्पत्ति गढ़ और अज्ञान भावमें प्रकट हुई है। ऐसा जान
पड़ता है कि एक स्त्री जनोचित लज्जा सबसे उम्र अभिव्यक्तिमें बाधा दे रही है।
इस बातमें 'आम-कथा' पूर्णतया बाणभट्टके अनुरूप नहीं है।

यस 'कथा' में व मत्र विशेषताएँ हैं जो मस्कृतके, और विशेषतः बाणभट्टके
गद्य-वाक्यमें पायी जाती हैं। जसा कि द्विवेदीजीने उपसंहारमें लिखा है—
कादम्बरी की कलामें आलोका, अर्थात् प्रेक्षण मन्त्र चेतनाका प्राणाय है।
वाल्मीकीका लक्ष्मण चित्र तबे करकेकी कलाम अद्वितीय है, यद्यपि व चित्र मन्त्र
रमादेव नहीं वरन्। उत्तराह्नके लिए बाणभट्टने महास्वतन्त्री गुणवत्ताका चित्र
रचा करकेके लिए कई दर्जन उपनाएँ मन्त्र कर जाली हैं। इस दृष्टिमें मितभाषी
कालियाम और मुरार बाणभट्टके काफी अन्तर है। जोर इस दृष्टिमें 'अनेक के
निर्मित चित्र विधाया तथा बाणभट्टके कथे कथनामें कुछ साम्य है—यद्यपि बाण-
भट्टमें जतने वागीव विदग्धताकी प्रवृत्ति नहीं है। 'कादम्बरी' के कथनाकी भाँति
आत्मकथा व कथन भी कथा प्रवाहमें व्याधान उपस्थित करते हैं। मतलब यह
कि 'आम-कथा' की अधिकांश कथियाँ बाणभट्टकी कथियाँका मकर प्रतिफल
साथ हैं।

बाणभट्टकी मन्त्रे कनी शक्ति और अज्ञानि है—रागात्मक जहरलेने निर-
पेय विदग्ध कविप्रपूर्ण कथनके प्रवाहमें वर जाता। 'कथा' की कथात्मक
उत्पत्ताको मूलापर बाण माना अपनी ही बाणीने प्रबल आवतमें फँसकर रह
जाता है। उसका गढ़ने तक उसने सगीतका अनुराग वसा ही उत्पन्न है जसा
अंगरेजों कवि म्विनसनका। और कविता कथनाका विषय कोई भा वस्तु या
स्थान हो सकता है—एक अन्त या मुरार उतना ही जितने कि नामक-नायिका
अथवा अय पात्र। द्विवेदीजीने बाणभट्टकी मन्त्र विशेषताका पूरा निर्वाह किया
है। एक नमूना देना—

'इसी समय उम रात्रि-याम कागा बजाना शुरू किया। मन इस कम

नीयताकी मूर्तित्री ओर देना । अत्यंत धनल पभा-पुजसे उसका शरीर एक प्रकार डंका हुआ मा ही जा पन्ता था, मानो वह स्फटिक गहमें आवद्ध हो या दुग्ध-सलिलम निमग्न हो, या विमल चीनागुके समावृत हो या दणम प्रतिविम्बित हो या गरत्वालीन मेघपुजमें अंतरित चद्रमला हो । निश्चय ही यह धमके हृदयम निकली हुई ह ! माना त्रिधाताने गखसे खोदकर, मुक्तासे खाचरुर, मृणालसे सँवाकर, चद्रकिरणाके यूचकस प्रशालित कर, सुधा चूर्णसे धोकर, रजत रमसे पाछ, कुटज कुद और सिंधुताग पुष्पोंकी घवग बान्तिसे सजाकर ही इमका निर्माण किया था । अहा, यह कसी अपूव पनिरता ह ! यहाँ क्या मनियाकी ध्यान सम्पत्ति ही पुजाभूत हावर विद्यमा ह या रावणके स्पग भयमे भागी हुई क्तास पवतकी शाभा ही स्त्री विग्रह धारण करक विराज रही ह या वलरामकी दीप्ति ही उनकी मालावस्थामें उन्ह छोडकर भाग जायी ह या महाविनीची धारान ही यह पवित्र रूप ग्रहण किया ह ।' (प० ३९-४१)

भट्टिनीना पट्टी वार पश्चिम पानेपर बाणभट्ट उमके पवित्र यक्ति-दवा इस प्रकार वणन करता ह—

उचित स्थानपर विधाताका पक्षपात हुआ ह । हिमालयके सिवा गगाकी धाराको कौन जम दे सकता ह ? महानमुक्क सिवा कौस्तुभ मणिको कौन उत्पा वर सकता ह ? धरित्रीके सिवा और कौन ह जो सीतारो जम दे सके ? म वडभागी हूँ जो इस महिमागालिनी राजमालाकी सेवाना अवरर पा सका । अहा ! किस पाप-अभिसन्धिने उस कुसुमकलिकाको तोड लिया था ? किस दुवह भोग लिमाने इग पवित्र शरीरको कल्पित करनेका सकप किया था ? किम दुनिवार पाप भाजनाने ज्योत्स्नाको मलिन करना चाहा था ? मेरे हृदयकी भक्ति और वढ गयी ।' (प० ५८)

'आमकथा की एक स्पष्टणीय विशेषता ह उनकी यापक विनोद भावना । बाणभट्ट जगह जगह स्वय अपनको लभ्य करके हँसता ह । गुम्ह ही यह वतलाना ह, किम प्रकार उसे उसके गाँवके लोगाना 'वण्ड' (पूँछ फटे बल) की उपाधि पा था, जिम उसने सम्वृत शब्द 'बाण' द्वारा सम्वार करके अपन नामकी इज्जत बना ली । चौथ उच्छ्वासमें एक पुजारीका बला विवादपूण वणन ह । वणनको विनोद विनाद पण बनायेके लिए पुजारी बाणको बहुत ही विरूप चित्रित किया गया ह—यह कात्म्बरीवारके युगकी कर्गनी स्थूलनाका सबूत ह । या 'आत्म कथा का हारय स्वय द्विधदीजीवी विनोपता ह । छठे उच्छ्वासम एक बाण बाणभट्टसे उसके कहनपर कि मं अमगलस डरता हूँ उमसे इस प्रकार बातें करते ह—

'ब्राह्मण हूँ न ?

'हाँ, आर्य !'

तेरी जाति ही डरपाक हूँ । क्या ते, महायराहपर तेरा विश्वास नहीं हूँ ।
हूँ आर्य !

चूँ ! तेरी जाति ही चूँ हूँ !

पाठक इस सवाबकी विनादात्मकताकी अधिक दाद दे सकेंगे, यदि वे स्मरण करें कि वाणभट्ट ही नहीं, 'आत्मकथा'का लेखक भी स्वयं ब्राह्मण हूँ ।

वाणभट्टकी आत्मकथा पढ़कर मनमें एक प्रश्न उठता हूँ—क्या द्विवेदीजीने अपनी रचनात्मक प्रतिभाका जीर अधिक सदुपयोग नहीं किया ? क्या वे अपना अधिकांश समय रूढ़ि रिमच-नामकी ही दत्त रहे हूँ ? वहीं इसका कारण उस नतिक साहसकी कमी का नहीं हूँ जा 'आत्मकथा'के शृंगारक अंत वनमें बाधक हुई हूँ ?



पागल उमे कहने हैं जिसने हृदयके अभिनाय और उस स्वतंत्र करने
कानी उपरने स्तरकी बैररी बाणीमें सामंजस्यका पना नहीं रहता ।
मैं जानी भी नहीं हूँ क्योंकि जानी उमे कहते हैं जो मरचको
आनाशुन रूपको पकड़ लेनेका दावा करता है । मैं भ्रान्त हूँ ब्याकुल
हूँ कातर हूँ । मुझ मरचक आनाशुन रूपका पता नहीं है परन्तु
उसने हिरण्य आवरण और आठरतरे अनभिधिक जीवन
देवताका सामंजस्य मुझे मान्य है ।

—मेघदूत एक पुरानी कहानी

दृष्टिकेन्द्रका स्वलक्षण

• •

जेमिचन्द्र जैन

परम्परासे, सजनशील सम्पत्तिका एक रूप निस्सन्दह यह ह कि वतमान स्थितियोंको अतीतके सम्भ्रम भी पहचाननेका यत्न किया जाय । अथवा अतीत को किसी आधुनिक दृष्टिकेन्द्रके अन्तर्गत रखा जाय । इस प्रक्रियाम एक ओर अतीत वतमानके लिए अधिक साधक और महत्वपूर्ण बनता ह और दूसरी ओर समकालीन अनुभूतिको कालमें गहराईका और तीव्रताका एक सवधा नया आयाम प्राप्त होता ह । इस भाँति हम अपने-आपको अतीतसे जुटा हुआ ही नहीं एक सवव्यापक साधकताके साथ देख पाते ह । इसीसे प्रायः प्रत्येक प्रकार की बलात्मक अभियक्तिम इतिहास और पुराणकी नये सिरेसे व्याख्या करनेका उह नये रूपमें प्राप्त करनेका प्रयत्न बारम्बार होता रहा ह । दुभाग्यवश हिन्दी कथा साहित्यमें इतिहास पुराणका उपयोग प्रायः इतिवृत्तात्मक अथवा भावुक श्रद्धापूर्ण ही रहा ह उनके सजनात्मक पुनर्निर्माणके प्रयत्न बहुत कम ही मिलते ह । 'वाणभट्टकी आत्मकथा' के बाद हजारीप्रसाद द्विवेदीका दूसरा उपयाम 'चारु चन्द्रलेख' इस दृष्टिके उल्लेखनीय अपवाद ह । उसमें लेखकने आधुनिक स्थितियाँनी चेतनाके साथ १२-१३वीं सदीके आन्तरिक कलहसे जजर और तान्त्रिक साधनाके मोहमें पथभ्रष्ट भारतीय जीवनमें उस युगका अराजकता, विश्रुखलता, नस्तिव हीनता और मूढताके सूत्र और उनकी परिणति साजनेका प्रयास किया ह । उज्जयिनीका राजा सातनाहन, उसकी बत्तीस स्त्री लक्षणसे युक्त रानी चन्द्रलेखा और उसकी सगिनी मैना—त्रिया विभक्त त्रिक तीन आचरूप जान इच्छा और त्रिया—एक-दूसरेम विच्छिन्न ह समुक्त नहीं हो पाते और इसीलिए कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हान्ती । राणी चेतनाका गतिशील पाश्व ह—इच्छा मात्र बना उस पादवका प्रतिनिधित्व करती ह जो केवल त्रिया प्राप्त ह ।

'इच्छा गति मात्र ह त्रिया स्थिति मात्र ह । इच्छा और त्रियाके अनवरत आगत प्रत्याघातने जा तरंगमाला विवसित हो रगी ह वही मेरा इतिहास ह

मरा जीवन है, मरा ससार है। मैं जाता हूँ, मैं द्रष्टा हूँ, मैं साणी हूँ।
(पृष्ठ २९३)

किन्तु इच्छा अप्रतिहत है तुम्हारे वेगस गलत दिशाओं और बगने वाली
जाता है और फिर कुण्ठित हो जाती है त्रिया ऐसी है जिसके मूत्रमें जान नहीं
जिसकी समाप्ति जानम नहीं। इसलिए इच्छारी नाममें आत्मघातक अतिरिक्त
उसकी अर्थ परिणति नहीं। और इच्छा तथा क्रियाम टूटा हुआ यह जाना,
यह चतय, माहप्रस्त है विमूढ है राने भीक्षुनेवांग जपगय कलाय है।
लेखकन शिवाला चाहा है नि भारतीय इतिहासके उभ अत्रका युगके विषयन
और स्वल्पना कारण यही था पर उसन यह भी कहना चाहा है कि क्या
आज भा हमारे जीवनना अराजकता और विश्वकलत्ताना कारण यहा नहीं है
कि बुद्धि इच्छा और कममें कोई सामजस्य नहीं काइ सभ्या नहीं, कोई
मनुष्यन नहीं ? उभ युगका परिस्थितिया और मन स्थिनियाका प्रस्तुत करनेमें
स्थान-स्थानपर लेखकन आधुनिक युगना गुंज पैग का है।

‘राजाआवा युद्ध समाप्त हो गया। अब कही आगा है ता प्रजाकी सगठि
गनिमें है। (पृष्ठ १००)

निद्रिया मनुष्यना कुछ विशेष बल नहीं होती। एक सानारण किसान
जिसमें दया माया है मन्-शुद्धता विरत है और वाह्य नीतर एकारार है वह
भी बन्धन व शिद्धम लैवा है। (पृष्ठ १५६)

दवाके चरणार निर रय कर गाय कर नि नू साध जनताम सम्पन रखगा
क्रियाका छाया और बन्धन मानता घरीकी ज्योती नहीं घराटर समनगा
मामता प्रयावा उच्छद करगा। (पृष्ठ ८०९)।

मम भानि बहुत प्रारस्य लक्षन उभ युगन जनपम जाका स्थितियाकी
समपन और पञ्चाननना प्रयन किया है और म कल्पन लिए उसन पूर युगके
अन्तर्दवा एव उपापनात गरा मून करना चाहा है।

जनका राजा मातवाटन एव नि सौग मीग नामक सिद्धकी राजमें
निकरता है ता सान्धम उसका चदलेता नामक एव परम सुग्य समन्त स्त्री
गुणसे सम्पन स्वास ने राजा है जा स्वय किती तपचोदा नाममें है। राजास्य
वह अपना गानमें सपनाका भाग करती है और उसकी रानी बनारा संसार
हो जाती है। शासनान राजाना लोटवर उभमें निवाट कर लेन है और
साय ही उभ तपस्या नागनापका भी इ निकायन है। तन्वी काटिकरी रखकी
सिद्धिमें लाया है और राजाके चदरपाने इस कल्पमें सहायत हानकी भाग
करता है क्योंकि सबगुण-सम्पन स्वा गरा हा उस राजा सिद्धि सम्भव है।

अतीत क्या

इधर सारा देश तुकाके आक्रमणसे आक्रान्त और भयभीत ह। दशके शासकाके बीच आपसी कलह और कुछ स्वार्थी लोगके विश्वासघातके फलस्वरूप उन्हें सफलता भी मिल रही ह। विशेषकर पृथ्वीराज और जयचन्द्रके वमनस्य तथा ऐसे ही कारणोंसे देश नेतृत्वहीन ह। इस स्थितिमें सातवाहनको मंत्री विद्याधर भट्ट, जो पहले जयचन्द्रके भी मंत्री थे, देशका नेतृत्व सम्हालनके लिए प्रेरित करते हैं। यद्यपि उन्हें यह भी भय ह कि राजा कहीं रानी चन्द्रलेखाके अनिच्छासे सौंदर्यपर लुब्ध और भ्रष्ट होनेसे अपना कर्तव्य न भुला बरें। पर रानी स्वयं देशमें चारों ओर घूमकर जनताको जगानेका व्रत लेती ह और राजाको भी इसीके लिए प्रेरणा देती ह। उनकी प्रेरणासे राजा तो इस कायम लगते हैं, किन्तु रानी स्वयं कुछ समय बाद कोटिवेधी रसकी सिद्धिके लिए तपस्वीके साथ चली जाती है। रस अतत सिद्ध नहीं होता और उसके बाद रानी मानसिक दृष्टिमें लगभग अस्वस्थ-सी हो जाती है।

सातवाहन और उसके मंत्री आदि मिलकर तुकोंको हरानेके लिए तयारी करते हैं। उनका सघष कुछेक तान्त्रिक मठके महतो-यागियामे भी ह जो तुकासे मिल गये हैं। दूसरी ओर रानी चन्द्रलेखाकी प्रेरणासे मालव प्रशके जनसाधारण, नट आदि, जिसमें मना, वाघा प्रधान आदि भी ह राजाकी सहायताके लिए सन्नद्ध हो गये। कई बार शत्रुसे मुठभेड़ हाती ह—कभी जीत कभी हार। एक ऐसे ही सघषमें राजा और रानी दाना आहत होते हैं और एक-दूसरसे बिछुड भी जाते ह। स्वस्थ होनेके बाद सातवाहन शत्रुसे फिर लोहा लेनेके लिए अथ राजाआकी सहायता पानेका प्रयास करते हैं। पर वे लाग सिद्धो और दवा देवताआके चक्करमें पड़े ह और कोई निश्चय करनेमें असमर्थ ह। अतत सातवाहनकी चन्द्रलेखासे भेंट होती ह उस समय जब उनकी प्रिय सहायिका मैना आत्मघात करती ह और वे दोनों भी आश्रय छोडकर अघकारमें भागनेको लाचार होते ह। चेतनाको प्राप्त क्रिया शक्ति नष्ट हो जाती ह, और इच्छा शक्ति दिग्भ्रमित ह।

कथाका मुख्य सूत्र यही ह पर उसके अततगत बहुतन्त्र अथ प्रसंग ह जो उस युगकी धार्मिक और बौद्धिक मायताआपर विश्वासा और क्रिया-कलापपर सामाजिक और नैतिक जीवनपर प्रकाश डालते ह। इनमें चन्द्रलेखाका अपना जीवन-वृत्तांत ह विद्याधर भट्ट द्वारा राजा जयचन्द्रके राज्य और शासन आदि का वर्णन और उसमें जन्मे हुई चन्द्रलेखाके जन्मकी कथा ह चन्द्रलेखाके काटि कधी रसकी सिद्धिसम्बन्धित अनुभवाके तथा विष्णुप्रियाके प्रसंग ह, सीदी मौलाके तिब्बत और मध्य एशियाम भ्रमण तथा विचित्र अनुभवाकी, इतिहास

सानकी कत्रपर पूजाकी तात्रिक और महायानी बौद्ध अभिचारों क्रियावाकों क्या ह नाटी माताक जीवन और उनके नृत्य तथा चंद्र कविक पुत्र जन्तनेके प्रसंगना सविस्तार वणन है व्यास तीथमें ध्यान चल्ल द्वारा गिवा बल्कि अनुष्ठान तथा अनाम्य भरव और भद्रकालाक प्रसंग है मना और बाया प्रधानक प्रेम प्रसंगक साथ-साथ मना और सातवाहनके वाच भी एक कामल सूत्रका उद्घाटन है ।

इस प्रकार मुफ्न क्या-नूत्र अनगिनती छाटी पाठण्डियामें भद्रकाना-उल्लयता बिलरता चलता ह । यहीं तक कि कई स्थलापर प्रासंगिक गौग सूत्र प्रघान हो जाने ह यद्यपि समस्त गिरर हूण सूत्रानो विभिन्न अतनयाआ और उपकथाआनो एक ही पादवपटक रूपमें बुननेना प्रयन भी ययानान्य लखकन किया ह आर वर कौगलव क्याका विचार करनका प्रयास पूर उपयासमें ल्छिगाचर हाता ह । किन्तु कु मिलाकर लता यही ह कि क्याक बहान एक अत्यन्त राचन युकी बहुमुग्ना सांस्कृतिक गायको पूर विस्तारव कर्ननेना लाभ लयन सवराण नही कर सका ह । वर उन युगक जावनका उसर विभिन्न स्तरा-पर विभिन्न रूपा और आयामामें, इनन विस्तारस जानना ह नि उन मनी कुछ मूल्यवान महत्त्वपूण और सायक प्रतीत हाता ह । लाता ह जन उस अगाय विराट् भाण्यारम चुनाव करना उमन लिए कटिन हा गया ह और अत्रिक अत्रिक सामग्रा प्रस्तुत कर दना ही उन सर्वोत्तम उपाय जान पण ह । इन प्रक्रियामें चान्चद्रलय एक उपास्यानकी बजाय क्यामरिउगार-जसा क्तानी किस्साका सजाना वन गया ह जित्तमें एकमें-अ दूसरा आख्यान ता गिनता चला जाता ह पर कुल मिलाकर रचनाका काद क्तमन रूप नहीं उगरना ।

वास्तवमें एव उपयागा रचनामें निजी तौरपर लयनका जा भी उद्ध्य रण हा उसका कायावित्त करनमें बह कलात्मन क्याहृति और सूचनात्मन गानवनक इतिहासक बीच असमजन्में पण गया ह गिसर कल्स्वरन दानामें-अ बाद ना उद्ध्य परी तरह सिद्ध नहीं हाता । निस्सन्दह चान्चद्रलयका सावजनिक गय लयनमें अपुवतम और अनूटा ह । सानवाहननो वनमें चद्रलयास भेट और राजधानामें लौकर उमउ विवाह तकना प्रसंग कुछ इस प्रकार रचा गया ह नि बह अपन मूदन कलावापमें कान्यामक व्यन्तायें भाव और विचारक मुग्मार तागुन और नियाजनमें, अभिव्यक्ति गिगार और समयमें एकत्र बजाण । इय स्थलपर क्यामें आनुनिक उपासना (लेल)क व अत्रिकाग तन्त्र मौजू ह ता उन समकालान क्या रचनाका एक अचरत विगिट और सायक प्रकार दनाउ ह । क्याका यह उटान पाठकन मनमें ऐसी छियाँ मूर्तिमान् करता

अतीत क्या

हैं जो न केवल अपन रूप और अपनाआम नयी ह, बल्कि साथ ही जीवनक नये अर्थोंकी आर ले जानेकी सम्भावनाएँ भी प्रस्तुत करती ह ।

इसके बाद ही लेखक फिरने सीनी मौलाके प्रसंगको ब्रता ह जिसकी खोम निकलनेपर राजाकी चन्द्रलयासे भेंट हुई थी । किन्तु सानी मौलाकी लम्बी कहानी अपने-आपमें पर्याप्त रोचक और तरङ्ग-तरङ्गकी जानकारास भरपूर हानेपर भी, मूलतः अज्ञातर और अनावश्यक जान पडती ह । उसके बाद फिर कुछ देर तक विद्याधरभट्ट द्वारा जयित्रचन्द्रके परिवारके वृत्तान्त और चन्द्रलेखाके जन्मकी कथामें, तथा उसके बाद युद्धके लिए भारतव जनपदके उदवाहनके प्रसंग, लेखक किमी हद तक मूल कथा-सूत्र ही नहीं उसके व्यजना प्रधान रूपकी ओर भी लौटनेका प्रयास करता ह । विशु खल दगको जाग्रत और सगटित करनेके लिए जन सहायगनी आवश्यकताके विचारका समाधान यह यही करता ह । और इस तत्त्वक समावेगन यद्यपि उपयाम अपना प्रारम्भिक नावभूमिसे कुछ उतरता हुआ जान पडता ह फिर भी एक प्रकारकी साधकता बनी रहती ह ।

किन्तु इस स्थलपर गधया तालम मातवाहनरा ही सबस्व नही डूबता बल्कि पूरे उपयासपर ऐसा जनभ्र वजपात हाता है जिमसे 'एहलहाती रता' अचानक हा मुख जाती ह । इसके बाद क्या अनेकानक सम्बद्ध-असम्बद्ध प्रसंग और प्रसंगानरामें भटवने लगती ह । मूल भाववस्तु खो जाती ह और उस कालके जीवनपर उसके दृष्टिपूण तथा दृष्टिहीन विश्वासापर धार्मिक और तान्त्रिक अभिचारापर सामाजिक और राजनतिक परिस्थितियाके विवरणापर आग्रह दढ जाता ह । यह बात जितना दिलचस्प है उतनी ही अनिवाय और रवाभाविक ह कि अब लेखक उन तान्त्रिक प्रक्रियाजा और विद्वानाकी मानव स्थिति आर नियतक साथ मार्तिक रूपम जानक दजाय उनके मनावानिष्ठ आधार प्रस्तुत करने लगता ह । तान्त्रिक माननाजाना किनी जागुतिर वनानिक परिप्रेक्ष्यम दख सकनेकी वजाय देख उनकी व्याख्या और वय ग्राजता ह और लगता ह जस उनका गचक रहस्यमयताम बढ स्वय उब गया हो । पौराणिक अथवा मध्ययुगान कमवाण्ड मस्कार अभिचार जादिना या ता एक कलात्मक रचनामरु आवन-गदति और उमका अनिवाय टेजडी के रूपम दखा जा सकना ह या बौद्धिक स्तरपर उमकी ऐतिहासिक-बानिा समाजशास्त्रीय समीक्षा हो सकती ह । किन्तु उमे एा स्वतंत्र गृह्यमयी मत्ता दसर उसका रामाचकारो वणन विवरण तिलिस्मानी प्रभाज भले ही उत्पन्न करे, काई कलात्मक साधकता नही प्रदान कर सकता । चारुचन्द्रलखमें लेखक इस मायाजाग्मे अपनी रणा नही

कर सका है और उसको भावमस्तु एक मानवीय दस्तानब्रके बजाय प्राय एक रहस्य कथा बनकर रह गयी है। उपयामके परवर्ती अक्षम सातवाहन आर चन्द्राता किसी आधुनिक उपयासके साथक पात्र नहीं, एक रोमांचक कथाक रामण्टिक नायक-नायिका मात्र बने रहते हैं।

भायभूमिका यह स्तलन परिवर्तन एक और रूपमें लिखाई पड़ता है। उपयामक इस अक्षम मना क्रमशः प्रधानता प्राप्त करती है। किन्तु मना सम्बन्धी प्रसगाका अनन्य अपेक्षाकृत मयाधवाणी है। अन लेखन जावनकी अभियोजनाप्रना काव्या-मन रूपकी बजाय अधिर साथे प्रत्यक्ष रूपमें प्रस्तुत करता है और कथाना उदघाटन प्राय विवरणारमक और घटना प्रधान हो जाता है। यदि अब भी उसमें कायात्मकता बची रहती है तो वह मनाने टुर व्यक्तित्वके कारण उसके एक मवधा भिन्न काटिके अतः सपके वारण, व धाक साथ उसके प्रेमन बावजूत राजा सातवाहनक प्रति उसके मनन एक अत्यन्त कोमल भावनूदन कारण। यदि एक स्तरपर मना चतनाक त्रिया-तरककी प्रतीक है तो एक अय स्तरपर वह साधारण, अ विगिए सीवे-सात अकृत्रिम जावकी भा प्रतिनिधि है—एमा जीवन जो मामाय परिचित माना और आवगाके रूपमें दया जाना और समवा ज्ञा सवता है। इस दृष्टिस मैना चन्द्राता और सातवाहनम सवधा भिन्न है और जावनक एक अलग ही स्तरकी सूचित करती है। यदि उपयामक प्रताका मन रूपका छात्र है तो मना और चन्द्राताके बीच यह भिन्नता बिन विनशना (कल्याण) अपन-आपम पर्यात राचन और विगिणनापूण है। चन्द्राता और मना सनमा भिन्न प्रकारका नारियाँ हाकर भी अपन अपन दृगमे अपुय मन्मिमयी हैं और अपना विगिए आवपण बनाय रखती हैं। इसलिए उपयामक इस अगमें यदि उसका प्रतारामन उपाख्यान मूलक रूप टटता है तो एक नया साधकता और प्राणवत्ता उस मनाने रूपमें प्राप्त होती है। मना जग धरवत जीवनकी प्राणनायी बयार इस रूप-तरम आनन्द तथा नाना पत्थयोंक हाम धूमन अवरुद्ध-अवउत्र प्रणामें बटा लती है। उसक व्यक्तित्वम एक प्रकारकी सहजता मधुरता और स्फूर्ति है जो उस पूरे मनने वातावरणम अपुय और अप्रत्यागित लगता है जम अनगिनती छाया-आवृत्तियाँ बाच बटा जीवन हो।

मान इस विगिए रूपका उलेख इसलिए आनन्दक है कि उपयामक इस अगमें लगता है जम लगकरा दृष्टिचन्द्र चन्द्राताम विमककर मापर आ गया है। वास्तवमें उपयासम दृष्टिकेन्द्रका यह परिवर्तन जितना अप्रत्यागित है उतना ही उसके मूत्र कथ्य तथा उसी रूपको तात्त्विकता भी। मनाका व्यक्तित्व अतीत कथा

अपने आपम धाहे जितना मोहक हो, पर वह समस्त रचनाको वेद विच्युत ही करता है क्योंकि वह चद्रलेखाकी प्रतिमाना ताड देता ह। मनाकी तुलनामें अब चद्रलेखा इतनी गिप्राण थीर जगप लगती ह कि उसकी काई विशप सायकता ही नहीं रह जाती। यहातक कि उपयासम मैना जीर चद्रलेखाका जो सम्बन्ध ह मैना उसके प्रति जो भक्तिभाव प्रदर्शित करती ह, वह भी अमगत सा प्रतीत होने लगता ह।

यहा आकर अत्र लेखककी द्विधा एकत्र स्पष्ट हो जाती ह। वह निश्चय नहीं कर सका ह कि चाहता क्या ह। उसना दष्टिका केद्र चद्रलेखा ह या मैना ? दोनोंमेंसे किमके घरातरपर वह अपने बन्धको प्रस्तुत करना चाहता ह ? उसका बन्ध है क्या ? मनाके एक वार सामने आ जाओपर चद्रलेखा वास्तव ही नहीं लगती उसको समस्त असाधारणता कृत्रिम लगने लगती ह। यह भी विश्वसनीय नहीं जान पडता कि मनाकी तुलनामें चद्रलेखाकी अथथायता लिखाना ही लेखकका उद्देश्य ह। क्योंकि उपयासका जसा प्रारम्भ और रूपबन्ध ह, प्रतीकाथकी जैसा प्रतिष्ठा उसम की गयी है उसमें प्रधानता चद्रलेखाकी ही ह। वास्तवमें स्थितिने इस अतिविराधका लेखकके पास काई समाधान नहीं। परिणति मैनाके आत्मघातमें होती है जो अतिनाटकीय और आरापित लगती ह। या इसी बातका दूसरी दष्टिमें कहें तो, उस कृत्रिम अवास्तव लोकम जीवनका अपपात अवश्यम्भावी ही है। इस प्रकार यह विराध जीवन और अ जावनके बीच, यथाय और अ यथाथके बीच हा जाना है जीवनम ही इच्छा और बन्धक बीच, यथाथके ही दा स्तराके बीच नहीं स्थापित हो पाता। क्योंकि चद्रलेखा और मना एन ही चेतनाक दा स्तराकी नहीं बल्कि अतमें चेतन और अचेतन की प्रतीक जसा जान पडती है। दष्टिकेन्द्रकी यह विच्युति इस उपयासका बनी भारी दुःखता ह।

प्रतीकात्मक स्तरपर उपयासमें गायन लेखक यह कहना चाहता ह कि जान इच्छा और क्रियाका अत तक कोई स्थायी निविधन नामजस्य नहीं हो पाता। पहले जान अकेला ह इसलिए असमय ह, यह ह। अजानन इच्छाशक्तिसे उसका मयाग होता ह और चेतना मिडिकी आर बढती जान पडती ह। पर यह सयोग क्षणिक सिद्ध होता है। जल्दी ही इच्छा भटककर पथभ्रष्ट हा जाती है यद्यपि इस बीच वह चेतनाको क्रियाशक्तिमें सम्बद्ध करनेमें सफल हुइ ह। पर इच्छाके अभावमें चेतना आहत ह, क्षत विभत ह। इसलिए क्रियाशक्ति बहुत सफन नहीं हो पाती। चेतना क्रियाशक्तिमें प्रमाधिन होकर भी इच्छाशक्ति की ही योगमें वैचन ह। स्वयं क्रियाशक्ति इच्छाशक्तिव मरुतसे आक्रात ह।

वातमें क्रियाकी साधकता भी चुक जाती है और चेतनाको इच्छाशक्ति प्राप्त हो जानेपर भी, अधकारमें निर्वासनके अतिरिक्त कोई पथ नहीं बचता ।

किन्तु दृष्टिनेत्रके बदल जानेके कारण हम प्रतीवाचनी भी उपयाममें कोई स्पष्ट उपलब्धि मानवीय अनुभूतिके रूपमें नहीं हाते । कयाशा प्रत्येक तत्त्व अपने स्थानसे हटा हुआ, धुँधला और अस्पष्ट जान पड़ता है और पूरा उपयाम अपने समग्र रूपमें कोई समन्वित प्रभाव मनपर नहीं छोड़ता । चारित्र्यत्रैलस न तो सफ़्त रूपक या उपाख्यान है, न किसी युगके मयाय जीवनकी ममदर्शी आधुनिक कथा । वह विभिन्न प्रकारकी संवेदनशीलतावाला स्पष्टहीन सग्रह या प्राणहीन मिथुण मात्र रह गया है । इसीलिए वह आधुनिक जीवनकी कोई सार्थक व्याख्या या गहरा चेतना भी उत्पन्न नहीं करता ।

हमारे गद्यमें इसी बातका या कह सकते हैं कि चारित्र्यत्रैलसमें मानवीय तत्त्वकी बड़ी क्षीणता है । उनमें उत्कट जीवनानुभूतिका अभाव है अपार तथ्य समूहके पानका प्रत्यक्ष अधिक । कणतकी रोचकता और रोमांचन रहस्यमयता-पर इतना धन है कि मानवीय चरित्र या तो जीवन्त नहीं, केवल नाम भर है, या प्रतीक मात्र है, अथवा अपूर्ण और अविकसित रह गये हैं । व अपने-आपमें अथवा कुन मिलाकर, कोई सयाजिन समन्वित प्रभाव तो छोड़ते ही नहीं ।

ऊपर मनके जीवन्त होनेकी बात कही गयी है । इस प्राण-तत्त्वका कुछ-कुछ स्पष्ट बोधा प्रगण और नाटी मातामें भी मिलता है और उस हृद तक मनका छूता भी है । पर वह भी इतना क्षीण और बाल्य है कि किसी साधक स्तर तक नहीं उठता । नाटी माताकी जीवन-कथा उसका सतत भक्तिभाव और आत्मोत्सग, एक प्रकारकी कथानामे परिपूर्ण हैं । किन्तु उसका मारा प्रसंग इतना पक्व और स्वतन्त्र सम्पूर्ण है कि नाटी माताके जीवनका लेखक एक पूरा उपयाम ही लिया जा सकता था । चारित्र्यत्रैलसके अपने विस्तारमें उसका स्थान बड़ा प्रासंगिक है, राचक और सूचना-मक वह चाह जितना कथा न हा । इमन्त्रिण न तो उसकी अपनी पूरी सम्भावनाएँ विकसिक हो पाती हैं न कोई साधक आशाम वह मूक कथा-मूत्र में ही जाता है ।

मानवीय तत्त्वके रूपमें चारित्र्यत्रैलस दो भिन्न स्तरपर अवित है । यदि उसके परवर्ती रूपको एक व्यक्ति-त्रैलसके विघटनक रूपमें देखा जाये, तो वह भी सुचिह्नित और कलात्मक दृष्टिसे मली भौति परिवन्वित नहीं जान पड़ता । प्रारम्भमें वह अभिभूत करती है और उसकी एक विशेष प्रकारकी प्रणिमा हमारे मनपर अविन होती है । किन्तु बादमें लगभग अकारण ही वह इतना निम्नरेज पन जाती है कि उसपर क्या भी नहीं आनी उगमे बाद महानुभूति तक नहीं बचती यद्यपि

राजा तथा अन्य सभी व्यक्ति (और इस प्रकार उनके माध्यमसे स्वयं लक्ष्य) अब भी उसके उसी पुरा रूपका स्मरण करके अपना आदर प्रकट करते रहते हैं । यह अपने-आपमें भी विचित्र और अस्वाभाविक लगता है । साथ ही एक और भी प्रश्न है । क्या इच्छा शक्ति अपने-आपमें इतनी दयनीय और असहाय होती है ? क्या इतनी सारी तेजस्विता इस प्रकार लगभग अकारण ही स्वलित और जजर हो सकती है ? किन्तु उसके जजर होनेका रूपायन भी यदि जीवत और संप्राण हो तो बड़ा तीखा और प्रखर मानवीय वक्तव्य हो सकता है और होगा चाहिए । चन्द्रलेखा-द्रोणमें बस यही नहीं होता । प्रारम्भिक ताव्रताके बाद धीरे धीरे चन्द्रलेखा बुधोन्नी चुपचाप पृष्ठभूमिमें चली जाती है और क्या अन्य अनगिनती तिरथक तथा शून्य प्रदर्शनों भटकती रहती है ।

चन्द्रलेखाके विषयमें देखेकी एक और अक्षमता सामने आती है । मानवीय स्थितिकी दृष्टिमें उसका और मैनाका सम्बन्ध कितने ही स्तरोंपर एक ऐसे गहरे अन्तर्विरोध और सम्बन्धी सम्भावनामें भरपूर है जिससे इस उपयोगको असाधारण गहराई और तीव्रता तथा सायकता प्राप्त हो सकती थी । इच्छा और क्रियाके बीच तीव्र आरूपण और असह्य विवर्षण, उनका अतिवाय द्वन्द्व और तनाव, तो बड़ी गहरी कायात्मक अधवृत्तासे युक्त है । यदि उसे सचमुच उस युगके जीवनमें पहचाना और प्रस्तुत किया जा सकता तो पूरी रचना न केवल उस युगकी एक उत्कट मानवीय स्थितिकी व्यक्त करती बल्कि वह आजके ममकालीन जीवनके लिए भी अत्यधिक सायक और मूल्यवान् हो उठती । दिलचस्प बात यह है कि चन्द्रलेखा और मैना, दोनोंके व्यक्तित्वोंमें इसकी पर्याप्त सम्भावनाएँ मौजूद हैं सातवाहनके साथ जिस प्रकारने दोनोंको सम्बद्ध किया गया है वह उनके गहरे अन्तर्विरोधके लिए बड़ा ही मानवीय और महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है । पर लेखनने उन दोनोंको अपने-अपने स्थानपर आकर्षक और मोहक बनाकर छोड़ दिया है । उनके व्यक्तित्वकी निहित सायक मानवीय सम्भावनाओपर उसकी दृष्टि नहीं जाती । इसके बजाय वह जय रोमाचक और पाना । स्वयं प्रमगामें खो जाता है ।

से उसका नवीय तत्त्वकी इस उपेक्षाका एक अन्य रूप है स्वयं राजा सातवाहन । प्रतीक यह सयोग के नान अथवा चेतनाका प्रतिनिधि है जो इच्छा और क्रियारत्निक है यद्यपि इस और विमूढ़ है । पर उपयोगके प्रारम्भसे ही वह जन्म निरा पर इच्छाके उसका अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं है कोई प्रेरणा नहीं है कोई बन्धन संपन्न है । इतनी प्रधान स्थितिमें ऐसे अभाववात्मक बैंगिण्यहीन, निष्क्रिय की ही गयी करनेका क्या कलात्मक अभिप्राय हो सकता है ? वह प्रारम्भमें अन्त तक

केवल रोता मौकना हा रहता ह । चन्द्रलसाको ओर उसका व्यवहार जसा दीनतापूण ह वह भी कुछ विचित्र और असगत ही लगता ह । सातवाहनको ऐसा चरित्र बनानेकी प्रतीकात्मक आवश्यकता जो भी हो, मानवीय घात-प्रतिघातके स्तरपर, जीवित व्यक्तियोंके बीच सम्बन्धके स्तरपर उसकी कोई साधकता नहीं जान पडती । सजनात्मक लेखनमें व्यक्तियोंका प्रतीकमूलक प्रयोग बढी गहरी मानवीय अनुभूति और दृष्टिको मांग करता ह । रवीन्द्रनाथ टगोरके 'रक्तकरवी' 'मुक्तधारा' या 'राजा' आदि नाटकमें पात्र पूणत प्रतीकमूलक होते हुए भी अपना चरम मानवीय सत्ता बनाये रखते ह । इसी कारण ये नाटक एक्के अधिक स्तरपर सक्रिय और सजीव हो पाते ह । किन्तु सजनात्मक लेखनमें चरित्राकी मानवीय सत्ता किमी भी कारण उपेक्षित नहीं की जा सकती, एक बार चाहे उनका प्रतीकात्मक रूप भले ही अस्पष्ट हा जाये । चार्ल्स ड्रॉलसमें पाशाफा मानवीय रूप प्राय विघटित हो जाता रहा है । कुल मिलाकर उसम मानवाय तत्वके चित्रणम समयता, प्रौडता, जीवन्तता और गहराईका अभाव निसाई पडता ह ।

मानवीय तत्वको यह दुबलता सम्भवत बुद्धिविलासके प्रति उचितस अधिक मोत्क कारण भी है । इसीम रचना किमी समग्र, समन्वित मानवीय अनुभूतिको सम्प्रेषित नहीं करती । जो अनुभूति उसम ह भी, उसमें कोई तीव्रता नहीं ह । उसम भावाभास ह भावानुलता नहीं । एक प्रकारकी कृत्रिमता, यात्रि कताक कारण भावापार अत्यन्त दुबल और अज्ञत लगता ह । यही कारण ह कि उसमें इतना प्रमग विविधता और घटनागुलता ह और विभिन्न घटनाएँ और प्रमग अपने आपमें ही साध्य और लक्ष्य बन गये ह । व अत्यन्त ही रोचक और प्रभावगाली अवस्था है पर स्वत सम्पूण है । उनकी बलात्मक साधकता, सयोजन, परस्पर-सम्पद्धता और आतर्गिक अनुपातका कोई ध्यान नहीं रगा गया ह । उपयामके अनगिनती प्रसंगामें-म किसी एक्पर दृष्टि डाग्त ही यह स्पष्ट प्रकट हो जाता ह ।

यह मान हम उपयासक रूपग्रह और निष्पपर से आती ह । चार्ल्स ड्रॉलस में क्याक विभिन्न आ अर्थ अर्थ सानोंके सकलिन-रगित ह और प्रितर हुए सूत्रोंके द्वारा क्याका उद्घाटन और विकास किया गया ह । क्याका एक साथ हा प्रताकात्मक और सृज मानवीय स्तरावर गतिगो बनानका प्रयाग ह । इस उद्देश्यके अनुष्ण ही क्यामुख यह सूचित करता ह कि किन्ही अधोरनाय नामक साधुको बडा क्याक आ मिले थे, जिन्हें उनके ध्यामका गाल्याके पात्र प्राराराय भेजा ह । समक्षमें क्या सातवाहनक अपन युत्तातके रूपमें लिगा

गयी है। वह मुख्य पात्र ही नहीं बथाका वणनकता भी है। पर कथाके भीतर भी कई वर्णनकर्ता हैं जिनमें स्वयं चन्द्रलेखा प्रमुख है। वह सीधा वणन भी करती है और उसके द्वारा अथ पुस्तकमें अपने ही अनुभवका वणन भी दिया गया है। एक जगह उसका लिखी पोथी भी सातवाहृत पढता है। इनके अतिरिक्त विद्याधर भट्ट, सीदो मौला, घोवा प्रधान, भभल और जल्हन आदि विभिन्न स्थलापर कथाके विभिन्न अंशका वणन करते हैं। एक-दो स्थलोपर विभिन्न व्यक्तियोंके वार्तालाप सुने जानेकी युक्तिवा भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार वणनमें विविधता और रोचकता लानके लिए कई प्रकारकी युक्तियाँ, ऋटियाँ, रीतियाँ प्रयोगमें लायी गयी हैं। उपसंहारमें ५० 'योमकेस शास्त्रीकी टिप्पणीमें रूपसम्बन्धी कुछ विशेषताओंकी चर्चा भी की गयी है

कुछ बातें उनके (अधोरनाथ) के समानस्थ चिन्तन प्रतिफलित हुई थी। ऐतिहासिक दृष्टिसे कथामें असंगति नहीं है। ऐसा लगता है कि किसी ऐतिहासिक तथ्याको सोच विचारकर इसीमें पिराया है। कथा दैनिकी शैली में है। कथामें ऐस विचार मिलते हैं जो आधुनिक युगकी देन हैं। कथामें सांस्कृतिक आर धार्मिक तत्त्व हैं, पर उन्हें आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तिके स्कार से समावृत हाना पडा है। परन्तु कथाका स्वर विश्वसनीय है। अधोरनाथके लिए भी यह असम्भव ही जान पडता है कि इसमेंसे तथ्य और कल्पनाका अलग-अलग करके दिखा दें। वस्तुतः इस दृष्टिसे कथामें एक जीवन्त ऐक्य है।' (४३८)

'योमकेस शास्त्रीकी यह टिप्पणी बडे दिलचस्प ढंगसे इस कथाकी रूप और शिल्पगत समस्याआशा निर्देश करती है। सचाई यह है कि इस उपन्यासमें हर स्तरपर जिवितिका अभाव है चाहे उसके प्रतीकात्मक रूपको लें चाहे मानवीय रूपको। इस उपन्यासमें कलात्मक अन्विति तथ्य और कल्पनामें ऐक्य द्वारा नहीं, दोनो विभिन्न स्तरोंपर उनके अन्त-समन्वित और परस्पर समन्वित होने ही आ सकती थी। तथ्य और कल्पनाके ऐक्यन तो कुछ ऐसी रोचक कौतूहलपूष रहस्य-कथा गढ डाली है जिसमें प्रतीकात्मक अथवा प्रत्यक्ष मानवीय दोनोसे किसी प्रकारकी सम्पूर्ण साथकता नहीं उत्पन्न हो सकती है।

कुल मिलाकर इस रचनाके रूपमें बिसतराव अधिक है। हर प्रसंग अपने आपमें सम्पूर्ण जान पडता है। शायद इसका एक कारण तो यह है कि यह उपन्यास खण्ड-खण्ड करके लिखा गया है। यह कल्पनामें क्रमशः प्रकाशित हुआ था। यह खण्ड खण्ड करके रचे जानेकी छाप इसके पूरे रूपबन्धपर बतमान है। यह समग्रताका प्रभाव उत्पन्न ही नहीं करता। इसकी चरम परिणति है

इसके अन्तर्गत। ऐसा लगता है अमानक लेखकों को किसी-न किसी प्रकार इस समाप्त कर देना आवश्यक जान पड़ा। इसलिए लेखक एक ओर तो बड़े ही नाटकीय बल्कि अति-नाटकीय ढंग से लगभग अकारण ही मनासे आत्मघात करा देता है और दूसरी ओर, उतने ही रहस्यपूर्ण और रामावहारी रूप में रानी और सातवाहनकी बहुत दिना घाद भेंट कराता है, रात्रि के अंधकार में छिपकर एक साथ भाग निकलने के लिए। यह नाटकीय अत पाठकों को चटका देता है और बहुत सुविधित नहीं लगता, और न किसी मूकभूत उद्देश्यकी मिद्धिम सहायक हा जान पड़ता है। यद्यपि यह भी ठाक है कि पूरा क्या जिस प्रकार में चलती रही है, उसे कही भी रोका जा सकता है, कही भी तोड़ा जा सकता है, क्योंकि सम्पूर्ण रूप-रचनीके अन्वितिका कोई प्रश्न ही गायद लेखक के सामने नहीं है। प्रसंग प्रधानताके आधार पर क्या रचनामें अन्वितिका कोई महत्त्व सम्भवतः होता भी नहीं।

सम्पूर्ण-गण्टम लिली जानेका एक अय प्रभाव है स्थितिया भावदगाआ तथा विचाराकी पुनरावृत्ति। तर्कों साथ मुठभडाम विभिन्न अभिचाराके वणनाने उत्पन्न विदुमें, राजा सातवाहनका मानसिक निष्प्रियता और जन्ताके उदघाटनम बार-बार एक ही प्रकारकी युक्तियाका प्रयाग लिखाई पन्ता है। इसी कारण सम्पूर्ण कथाके भातर गतिकी बड़ी भारी विपमता है। उममें महज आन्तरिक लय नहीं दीम पड़ती, उसकी द्रुतता और मद्धताके बीच सघाजन तथा समजन नहीं जान पन्ता। प्रतीकात्मक स्तर पर रची जानेवाली कथाका यह अनिवाय आवश्यकता है। इस आन्तरिक गति और लयके अभावमें कोई प्रतीकात्मक रचना जिसका मूल रूप अपनी व्यञ्जनात्मकताके कारण काव्य जसा हाता है, जावत नहीं हा सकती। चाम्चद्रलेखनी आन्तरिक गति न पूर्णतः कान्यात्मक है न पूर्णतः इतिवृत्तात्मक। कथ्यका आन्तरिक अन्वितिके अभावमें रूप-रच और गिल्प भी सिधिल हाकर गिरर गया है।

इस प्रकार यद्यपि चाम्चद्रलेखन ऐतिहासिक परिवर्णकी नवीनता तथा मूल कथा सूपनी चामत्कारिक मौलिकता है उसमें निहित आधुनिक सम्भाव नाआमें सायकता, और उमका परिवर्णना और रूपमें काव्यात्मकताका आवागमन है फिर भी वह मलात्मन उपार्णिक स्तर पर बडा गहरा अमन्ताप मनम छाड जाता है। कुछ ऐसा अनुभव हाता है जन पात्र कर्ण टगा गया हा। इस दृष्टि घलीनी रहस्यमय राचयता यदि एक ओर पाठकों अन्त तक उलगाये और अट-कामे रगती है ता दूसरा भार अपनी रिक्तता और लयहीनता कारण ही और भी तीव्र असंतोष उत्पन्न करता है। इस दृष्टि चाम्चद्रलेख द्विवेणजोके

अन्तत कथा

पहले उपयास बाणभट्टकी आत्मव्यास कितना भिन्न है, जार इस युगक अय सम्भावनापूर्ण, किंतु अतत उत्कृष्ट कलाकृति होते होते रह जानवाले उपयासा के कितना समान है । उसके पीछे विचाराकी पुष्टता और गम्भीरताकी कमी नहीं, किंतु वे सजनात्मकताके स्तरपर सायक जीवनानुभूति और उसकी समन्वित अभिव्यक्तिके रूपमें नहीं प्रस्तुत है। पाते और अपनी समस्त मौलिकताके बावजूद अपर्याप्त और सतही भावावेगम अपना अस्तित्व सो घटते हैं । चारुचंद्रलेख आधुनिक हिंदी उपयासके धरम सार्थकताके स्तर तब पहुँचते-पहुँचते रह जानेका एक और भव्य उदाहरण है ।



गोरखनाथन कियोसे भी समझाता नहीं किया जाकस भी नहीं वेदसे भी नहीं । परंतु फिर भी उन्होंने समस्त प्रचलित साधना मागसे उचित भाव ग्रहण किया । केवल एक वस्तु वे कहाते न ले सके वह है भक्ति । वे ज्ञानक उपासक थे और लेशमात्र भावुकताको भी बरदास्त नहीं कर सकते थे । और यदि सचमुच ही भाग और विभाग करिषत हैं कल्प और विकल्प मिथ्या हैं ससार मृग मरीचिका है सुतियाँ परम तत्त्वके विषयमें भिन्न भिन्न विचार प्रकट करती हैं आर अखण्ड सच्चिदानंद ही सत्य है सो भावावशका स्थान वहाँ ।

—नाथ सम्प्रदाय

चारुचन्द्रलेख

• •

जवलकिशोर

‘चारुचन्द्रलेख’ अद्भुत उपन्यास है—जो मध्यकालीन भारतकी तांत्रिक साधनाओंका आलेख है, एक प्रेम-कहानी है, १२-१३वीं शताब्दीके भारतकी राजनीतिक दशाका चित्र है अनौतके पुनरन्वेषण तथा वर्तमानके प्रक्षोभण एवं भविष्यके निर्दर्शनका प्रयास है और इन सबके अतिरिक्त एक प्रतीक कथा है। अपार सभ्य समूह और अविरल पाण्डित्यका प्रवाह उपन्यासमें है और है रूप, गोभा और प्रकृतिका विलास। लेखक यन्त्रि वाणभट्टकी आत्मकथा जगता श्रेष्ठ उपन्यास नहीं है पाया तो इसका कारण यह नहीं कि वह अमाध्य भाषणमें प्रवृत्त हुआ है उसकी विफलता इस बातमें है कि एक औपन्यासिक कलाकृति की रचनाके बजाय उसने अपने सचित्र मानने कथात्मक प्रजागतको लक्ष्य बना लिया है। एक श्रेष्ठ उपन्यास न होते हुए भी लिखी-उपन्यासके इतिहासमें चारुचन्द्रलेख महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इतिहास-पुराणक सजनात्मक पुनर्निर्माणकी शिष्टामें यह एक उल्लेखनीय प्रयास है।

‘कथामुख में समस्त स्त्री-गुणसि विभूषित सातवाहनकी एतमात्र रानी चन्द्रलेखाकी सहायतासे नागाजुन-द्वारा कोटि बेधि रसकी सिद्धिका प्रयास, रससिद्ध होने ही नागाजुनकी हत्या और देवताघिष्टित रसके तत्काल तिरागित होनेका आभ्यास किया गया है। प्रबन्ध विन्तामणि की इस कथापर टिप्पणी करते हुए लेखकने कहा है “इसकी कहानीमें यह नहीं बताया गया कि चन्द्रलेखा या उसने पुत्रोपर क्या बातों। हाल ही में अघारनाथ नामक औषड साधुका विचित्र रूपसे इस कथाका बाकी हिस्सा मिल गया है।” स्पष्ट है कि औषड साधु जो आपुनिक विचारोंके पुरानी परिपाटीमें गिगित सिद्ध है हजारोंप्रमाण द्विवेकक व्यक्तिक्रमका तत्पण रूप है और चारुचन्द्रलेख इस कथामें प्रेरित इसक उपन्यासकारकी सृष्टि है।

१२ १३वीं शताब्दी समय प्राग्गत राजनीतिक परम्पराके साथ सांस्कृतिक

है। इस बातको छोड़ भी दें तो कोई अंतर नहीं पड़ता। लेकिन अल्प वचारिक आधारपर ही उपयासमें माधनाओं और मिद्धियाकी माया तोड़ना चाहता ह।

तात्रिक साधनाओंका घणन रहस्य और रोमाचके घरातलपर हुआ ह। इनके चामकारिक प्रभावको कम करनेके लिए लेखकने मनोवचनानिक आधार प्रस्तुत करनका प्रयास किया है। उनका समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य भी उसने नहीं दिया है। यह एक दिलचस्प तथ्य ह कि वण विभक्त समाजमें तत्रिक साधनाएँ वण विभागके अस्वीकारको लेकर चली ह और निम्न जातियोम उनका प्रभाव जविक रहा ह। अत एक पूरी समाज व्यवस्थाको मानव अधिकाराके इतिहासके सदभम रचकर भी दया जा सकता था। उपयासकारका मुख्य प्रयोजन तत्रिक साधनाओंके तत्रिक अध्ययन, प्रकार निरूपण और अनुष्ठान विधियाको बथा निरुद्ध करनेका हो गया ह। उसने अपनी अधीत सामग्रीका इतना खुलकर उपयोग किया ह कि उपयाम तत्रिक साधना पठतियोने लिए एक परिचयात्मक ग्रंथ बन गया ह। मानवीय भाग्यकी कहानीका विषय बनकर ही ये तत्रिक साधनाएँ उपयासको विशिष्टता दे सती थी। चूँकि ऐसा नहीं हुआ, अत सबथा अछूती भूमिपर लिखा जाकर भी 'चारुचंद्रलेख' एक कला-कृति नहीं बन पाया।

उपयासकी राजनीति कया सामन्ती व्यवस्थाकी आलोचनाके लिए और प्रजातन्त्रके जयघोषके लिए प्रयुक्त हुई ह। मातभूमिकी रणाके लिए रानी समस्त प्रजामें आत्मगौरव और प्रतिरोधकी भावना उत्पन्न करनेकी बात कहती ह। विदेशी शत्रुआसे कोई प्रत्यक्ष सघप नहीं होता, मुख्य सघप उन घुड़क माघुआस ही होता ह, जा आक्रांताआके सहायक है। सातवाहन राजाकी अपेक्षा एक छोटे जननायक-जसा चित्रित हुआ ह, जिसका किसी बड़े सघपसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं ह। कथाम राजनीतिक दार्शनिकका कल्पना रिलास अवश्य ह। जक्षाम्य भैरव आविष्ट भावमें सामन्ती प्रथा और सामन्ती-सम-व्यवस्थाकी आलोचना करते ह। कथा स्वयमें न सामन्ती-व्यवस्थाके दापानो प्रत्यक्ष करती ह और न जन चतनाना उत्बुद्ध करनेका विधान। ऊँच नीच, धर्म-सम्प्रदाय कुल मिथ्या भिमानका मिटानेकी बात वचारिक घरातलपर ही होती ह और लेखकना जा तत्रिक मानवशास्त्र अरूप ही रह जाता ह।

'चारुचंद्रलेख'म जये घटनाओंना घटाटोप ह वसे ही पात्राकी बहुलता भी है। उपयाम चरित्र प्रधान है लेकिन एक भी जीवन्त व्यक्ति-वाला पात्र नहीं ह। सभीके चरित्र एकत्र मपाट हैं। चंद्रलेखाके चरित्रहीन अस्तित्वकी कथा

हम कर चुके हैं। राजाका प्रत्येक पात्रका द्रष्टा बना दिया गया है। उसका अपना कोई व्यक्ति-व नहीं है—पतिके रूपमें भी नहीं, प्रेमीके रूपमें भी नहीं और राजाके रूपमें भी नहीं। वह नेत्र है—स्तब्धकी भांति, मुक्तकी भांति। प्रधानपात्रमें केवल एक मैना है, जिसका चरित्र जीवन्त लगता है। मैन सिंह और मैनाके रूपमें उसका दुहरा व्यक्ति-व नाटकीय है और राजासे सम्पर्कमें रोमाण्टिक प्रभाव लिये है। लेकिन घटनाआका अपने हाथमें लेनेकी उसकी व्यग्रता, सबके घँस जानेका साहस, राजाके लिए पूरा आत्मदान आदि वा यथाथ स्थितियामें अवन किया गया है। चंद्रलेखाके स्थानपर क्रमशः बना ही उपयाममें प्रधानता पा लेती है।

राजा-चंद्रलेखा और मैना प्रेम-बन्धुके त्रिकोण त्रिदु बनत है, पर लेखाएँ नहीं मित्रता। मैनाका सातवाहनको प्रथमवार देखनेमें ही एसा लगता है जैसे जन्म जन्मांतरण इसी रूपको खोजती फिर रही थी। अन उसने आत्म-दान कर लिया। रानीके-दीदाके घनपर उस लोभ नहीं है अतः उसके दानमें सत्त्वोद्रेक है, लेकिन नारी प्रियह बाधक है—गगाजलकी धार देनेमें आगे उतरकर फूल भी बह जाना चाहता है। राजाके मनमें भी मोह है लेकिन उसका भी कोई अर्थ नहीं। लेखककी भावुक आदर्शवादी दृष्टि एक रोमाण्टिक प्रमगना लाकर भी उसे पुरा सम्माननाओ तक नहीं ले जाती। यह ऐसा स्थल था जहाँ मानवीय सम्बन्धोंकी जटिलताके अन्वेषणका परा अवसर था।

राजा रानी और मैना एक प्रतीक कथा भी बनाने हैं। राजा ज्ञान-शक्ति है रानी इच्छा-शक्ति और मैना क्रिया-शक्ति। अरेला ज्ञान (राजा) अममय है वह इच्छा-शक्ति (रानी) के सहाय सिद्धिकी आर वृत्ता है, लेकिन इच्छा-शक्ति (मैना) सदा बराबर भटक जाती है। इच्छाके अभावमें ज्ञान निष्क्रिय है, अतः क्रिया भी संपन्न नहीं होती। ज्ञानका जबतक पुनः इच्छा-शक्ति मिलती है तबतक क्रिया-शक्ति समाप्त हो चुकी जाती है (उपयामका अन्त मैनाके अपघातके माप हाता है)। लम्बे त्रिपुरके इस क्षणमें कथामायनोकारकी भांति त्रिमूर्ति ज्ञानि रमाके वापनिक समाधानसे नहीं मिटाना और कथाके युगकी अक्षुब्धताको चित्रित करने हुए वतमानमें भी उस क्षणमें आर गत करता है। लेकिन उपयामकी कथामें जीवन्तता अभावमें इस प्रतीक कथाका कोई अर्थ नहीं रहता।

‘चारुचंद्रलेख’में सम्बद्ध असम्बद्ध, प्रामाणिक-स्वतंत्र उपकथाएँ मुख्य कथाकी धोणताको भर लेती हैं। ऐतिहासिक प्रसंगा और प्रसंगच्युत कथाओंसे लेखक रोचकता लानेका प्रयास करता है। सीदी मीलाकी कथा, कदम्बवास आधिता कारुणटीकी नृत्य-कथा जयित्रचंद्र और सृहवदेवीका प्रसंग, जयित्रचंद्र और परमदिदवकी कथा चंद्रप्रभाका प्रेम प्रसंग और चंद्रलेखाकी जन्मकथा चंद्र-बलहिय हाहुलीगय और जल्हन प्रसंग, मनाकी जन्मकथा, अक्षोभ्य भरव व भद्रकालीकी कथा—ये कथाएँ अपने-आपमें उद्देश्य हो गयी हैं। कथानायकके समान कथाको भी सबको साथ लेकर चलनेकी समस्या हो गयी है। ये कथाएँ अपने-आपमें भले ही रोचक हों, उपयासमें ये एक पूरी सगतिका निर्माण नहीं करती। ये उपयासको यथकी पृथुलता देती हैं।

‘वाणभट्टकी आत्मकथा’ में एक कथा शिल्पको आविष्कृत कर द्विवेदाजीने हिंदी उपयामका एक नया प्रतिमान स्थापित किया था। कल्पित कथाका विस्वस्त बनानेके लिए एक प्राप्त दस्तावेजके रूपमें उस रखनेकी भूमिका उपयासके इतिहासमें बहुत पहले प्रयुक्त हो चुकी है। अतः उस प्रयोगमें कोई नवीनता नहीं थी लेकिन कथा शिल्पकी मौलिक खोज संस्कृत कथा परम्परामें नये अभिनिवेश-द्वारा नयी सृष्टि है। आत्मकथाकी शालीका ऊपरी साम्य कादम्बरीकी शैलीसे है पर वह आधुनिक उपयासके लिए नवीकृत प्रविधि थी। चारुचंद्र लेख में कथाकारकी कथाशिल्पकी खोज नहीं है, आत्मकथाकी शालीको अपना लिया गया है, अतः केवल दोहराव ही हो सकता है। आत्मकथाकी जा माँग थी वही माँग चारुचंद्रलेखकी नहीं है। वहाँ कथा एक सीमित परिधिमें थी, यहाँ लेखक उसे विराट फलकपर प्रस्तुत करता है। सातवाहनका दूसरे पात्रकी मन स्थिति जाननेके लिए चोरीसे बात सुनना होती है। इससे चरित्राके दृश्य रूपमें आनेकी सम्भावना समाप्त हो जाती है। राजाके चोरीसे कथा सुननेकी बातमें मनोवैज्ञानिक अभिप्रायका आरोपण, जसा कि एक समीक्षकने किया है, बेहूदा है। चोरीसे सुननेकी पद्धति यहाँ लेखकका विवशताका परिणाम है (क्योंकि उसके सिवा उसे घटना विकास और चरित्राकनका विकल्प नहीं सुनता),— पात्रकी मनोवैज्ञानिक लाचारी नहीं है। रूप शोभा, प्रकृतिका उसा प्रकारका आलंकारिक घणन है जसा ‘आत्मकथा’में था। पाचीन कविया लेखकोके शांम अपनी आरस घणनकी कोई सगति मुख नहीं दिखाई देती। चंद्रलेखाके रूप घणनमें पद्यावतके कवि (लेखकने कमसे कम इस ऋणको स्वीकार नहीं किया है)के शब्द दकर विन पाठकको मन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। इससे लेखकी स्वयकी

गति अनभिन्न रहती है और पाठकों को बुरा पठितवा पढ़ने का ही आनंद मिल सकता है। 'आमकों' का शैली को दोहराने से 'चारुचंद्रलेख' में अभिव्यक्ति की सीमाएँ निश्चित हो जाती हैं और क्या अपनी अभिव्यक्ति के लिए क्याकारण काई तथा माँग नहीं कर पाती।

उपयाम में चीनी आक्रमण की छाया है और शत्रु प्रतिरोध के लिए जनता में आत्मरक्षण संचार का सदेश है। लेकिन यह बहुत सतह पर आ गया है। ऐतिहासिक उपयाम में बुरा वर्तमान की गूँज होनी चाहिए, द्विवेदीजी यहाँ वर्तमान की अतीत में निमग्न कर देते हैं। इसलिए सामंतवाद की आलोचना और प्रजातन्त्रीय मानववादा का जयघोष वाचकी गहराई में नहीं आता।

'चारुचंद्रलेख' विचारका उपयाम नहीं है, जिसमें किसी विचार-परम्परा को मूल रूप लिये जाने की भाँति का जाता है। वह हिंदी के अधिकांश उपयामों की तरह निरवधारक है जिनमें उपयाम की कायामें अनेक निरवधारक निष्कर्षों का हाथ है। एसे उपयाम शुद्ध और कलात्मक उपयाम के स्तर को नहीं छूँ। आधुनिक उपयाम में लेखक अदृश्य होता है, क्या अपने-आप घोसली है। द्विवेदीजी की औपचारिक धारणा पुरानी है, जिसके अनुसार लेखक को अपनी जीवन-दृष्टि का निष्पन्न आदि अनिवाय है।

द्विवेदीजी इस उपयाम में सचचा नयी भूमि पर इतिहास-पुराण का सजनात्मक उपयोग किया है। तार्किक साधनाओं को लेकर लिखा गया यह पहला उपयाम है और परम्परा का अन्वेषण करते हुए खोजने जनतात्मिक मानववादी दृष्टि का प्रतिष्ठित किया है। एक ऐसी कृति उन्हाने दी है जो कलात्मक श्रेष्ठता को न छूँ न छूँ भा अपना मौखिकता का कारण विविध स्थान का अधिकार पाली है। द्विवेदीजी अपना क्या-कृति-द्वारा 'मनुष्य भीतर जो देवता स्वरुप बसा है जा असाधन सामन नहीं भुक्ता, लाम और माहके प्रहारसे जजर नहीं होता, शताब्दियनि विन्ध्य परिवर्तितियाम भा चारिभ्यको, दयाका, परापदाको कसकर पकडनेमें आनी शक्त हाडा है-उस देवताका उद्बुद्ध करनेका लक्ष्य लेकर चले हैं और अपने-आपमें यह कम दगाधनीय नहीं है।

चारुचन्द्रलेख कुछ थाकाएँ

• •

कुँवर नारायण

'चारुचन्द्रलेख' से ऐसा कोई निश्चित सक्त नहीं मिलता कि उस ऐतिहासिक उपयोग ही माना जाये यद्यपि उस ऐतिहासिक उपयोग मानकर भी चर्चा घुट की जा सकती है। कुछ ऐतिहासिक चरित्रों और घटनाओं के बावजूद उपयोग कल्पना प्रधान ही रहता है तथ्य प्रधान नहीं, कल्पना प्रधान भी सजावट के अर्थ में नहीं वायवीयता के अर्थ में। लेखक का इतिहास-बोध इतिहास-ग्रन्थों पर आधारित न होकर प्राचीन धर्म-ग्रन्थों पर निर्भर करता है। ऐतिहासिक तत्व धर्म-ग्रन्थों से भी लिए जा सकते हैं, लेकिन 'चारुचन्द्रलेख' पर धार्मिक भावों की गली और चिन्तन-मद्धति का अधिक प्रभाव दीप्तता है वह दृष्टि नहीं मिलता जिसका रक्षा मूलतः अतीत के वास्तविक जीवन में है। शायद इसीलिए 'चारुचन्द्रलेख' का जीवन पक्ष चटक नहीं उभर पाना लगता है लेखक खिलौनों की तरह पात्रों में खेल रहा है।

लेखक ने यह जगह आधुनिक समस्याओं की बात उठायी है लेकिन उपयोग का शिल्प इतना सिधिल है कि आधुनिक समस्याओं और ऐतिहासिक कथानकों के बीच सामंजस्य नहीं बढ पाता, जैसे सीदी मौला का चीन पर वक्तव्य ' १२वीं १३वीं सदी के गिजो-कालीन भारत के कई चरित्रों का माध्यम से लेखक ने हिंदू धार्मिक मतावतिका चित्रण किया है जिसे उसने मुख्यतः नाथ सम्प्रदाय—जिसका प्रमुख प्रचारक गणेशनाथ (९वीं १०वीं सदी) माने जाते हैं—के सदस्यों के विचारों हैं। इस धर्म का सिद्धा के लिए जा भी महत्त्व रहा हो, पर जन साधारण के लिए वह हितकर नहीं सिद्ध हुआ—उसने किसी हद तक पलायन का रास्ता दिखाकर सामाजिक चेतना का धुंठिल किया। लेखक ने जगह जगह इस ओर संकेत किया है—(पृ० ९९ पर ' सारा समाज धर्म की बूढ़ी कल्पना के कारण जजर हा गया है, शतधा विच्छिन्न हा गया है आ-मगोरवका भावना से हीन हो गया है। बीरा प्रतापी सातवाहन और उनकी रानी चन्द्रलेखा तुम्हारा नेतृत्व इसलिए नहीं कर रहे हैं कि वे धर्म का युद्ध माननेवाले कुछ विशिष्ट

राजपुत्रोंके प्रतिनिधि है। वे सारी प्रजाके प्रतीक हैं ") लेकिन कर्हातक वह इस प्रकारके विचारोंको उपवासके लिपिमें पूरी तरह खपा पाया है, इसमें शन्दह है। अधिकतर वे एकात्म्य दानात्म्यद्वारा जोशीले बलध्यामें प्रवृत्त हुए हैं, चरित्रा और घटनाओंके अनिर्वाह सघर्षोंद्वारा उपज नहीं होते।

गुड औपवासिक लक्ष्यमें मुझे इस असफलताका मुख्य कारण ऐतिहासिक योजनाका गलत चुनाव लगाता हूँ। जिस ऐतिहासिक सामग्रियोंमें लेखने केयानक और पायाका चुनाव किया है उसमें अधिक प्रामाणिक और विस्तृत सामग्रियोंको उमन अछूता छोड़ दिया है। हिंदूकालीन भाग्यकी दान दूसरी है जबकि अधिकतर सामग्रियोंके तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक पुस्तकाम ही मित्रों ही और विधिवत लिखा गया इतिहास नहींके बराबर है। इसलिए गाय, प्रसादके नामोंमें प्राचीन भारतका वातावरण एक सजावटके रूपमें ही लपा गया है घटनाओं का और सामाजिक यथार्थपर अतिरिक्त जोर नहीं दिया गया। यही प्रवृत्ति हम वास्तुके अधिकांश उन लिखी ऐतिहासिक उपवासामें देखते हैं जिनमें प्राचीन भारतको लिखा गया है। लेकिन मध्यकालीन और आधुनिक भारतका स्थिति भिन्न है। प्रिन्सिपलकीन भारतका इतिहास आपत्कृत अधिक विस्तृत सूत्रोंद्वारा भी उपलब्ध है। समकालीन इतिहासकारोंमें बरनी गिराज अमीर मुमुना कनेवतूना फुगिना एनामी आदि गचक और विस्तृत बनावट मिलते हैं जिनके सहारे उस समय भारतकी मही और जीवत सामाजिक तस्वीर गीची जा सकती था, और जिन मतध्याका लेखन का चरित्रोंमें व्यक्त करना सहा है उन्हें अधिक टास और विस्तृत आधार लिखा जा सकता था। उदाहरणके लिए साने मोग जगलूहीन खिलजीके समयमें या और बादशाह विन्ड पदुपत्रमें गरीब हानक अपराधमें लम हाथोंके पराके तले कुचकाव मरवा डाला गया था। ठागये फोगकालीन का जेस जियाउद्दीन बरना मोग मोगको अच्छा तरह जानता था और उस पुस्तकमें विस्तारमें उसके बारेमें लिखा है। 'फुलूम्सलातीन और ठागये मुबारकशाही में भी साने मोगका जो विवरण आया है वह बरनाके विवरण मगलाना है। मोगों मोगों तक निश्चित ऐतिहासिक व्यक्तित्व है लेकिन चार-चन्द्रोंमें उमरा जो रूप सामने आता है वह सूत्रियोंके अपना हिंदू पराका गायुओंके अधिन निवृत्त पता है। उपवासमें साने मोग यही टागक जगह पर न केवल लिखीका मुस्तान उस हाथों पराके तले कुचकाव डालना था है ता उसके ऐतिहासिक व्यक्तित्वका गाय पञ्चान सुकना ही बरना है। इसी प्रकार उपवासमें नास्तिक विषयका चर्चा है जिस उस समयके

धार्मिक और सांस्कृतिक सद्बोध बड़े ही महत्वपूर्ण ढंगसे लाया जा सकता था। मिनहाज सिराजने 'तबकाने नासिरी' में बख्तियार-द्वारा नालन्दाके विनाशका विस्तृत वर्णन दिया है, किन्तु उपन्यासमें वह किसी लोककथा-मा प्रनीत होता है।

ऐतिहासिक तथ्यांकी यह अवहेलना हो गयी है या किसी विशेष कारणसे-की गयी है, इसकी विचारनेमें पहले उपन्यासमें उपन्यासके नायक सातवाहनकी स्थितिपर थोड़ा विचचन आवश्यक है—आवश्यक इसलिए कि ऐतिहासिक उपन्यासमें सुविख्यात ऐतिहासिक व्यक्तित्वको नायक बगाना कहाँतक उचित है और कहाँतक उपन्यासके बला-पशक लिए घातक इस प्रश्नसे चारुचन्द्रलेखकी दूसरी असफलता जुड़ी हुई है। सातवाहनका चरित्र उपन्यासमें न तो कथाकी दृष्टिसे न इतिहासकी ही दृष्टिसे महत्वपूर्ण बन पाया है। एक बार यदि यह मान भी लिया जाये कि ऐतिहासिक दृष्टिसे सातवाहन एक प्रमुख व्यक्तित्व है, तो तुरन्त ही दूसरे प्रकारकी समस्या सामने यह उठती है कि उभय एक सफल औपन्यासिक नायकके गुण कहाँतक समाविष्ट किये जा सके। प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तित्वपर एक सीमा तक ही कल्पनाका रंग चढाया जा सकता है। वाटर स्काटने कभी भी प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्ति-वाको अपने उपन्यासमें नायक नहीं बगाना उन्हें पष्ठभूमिमें ही रखा। उसने ऐतिहासिक व्यक्ति-वाकी अपेक्षा देश-कालके प्रामाणिक चित्रणपर अधिक जोर दिया। इसीलिए शायद, लेखकका पिछला उपन्यास 'बाणभट्टकी आत्मकथा' भी चारुचन्द्रलेखकी अपेक्षा अधिक सफल रहा। पूरे उपन्यासमें सातवाहन केवल उपस्थित है, सक्रिय नहीं। उपन्यासमें जो कुछ होता है वह सब केवल उसके नामपर। कथानक उसी साथ साथ नहीं उसके साथ-जुड़ चलता है। यहाँ तक कि आगे चलकर कथानकका गतिकेन्द्र सातवाहन न होकर मना या मनसिंह बन जाता है। लेकिन मनाका व्यक्तित्व उपन्यासमें इतना व्याप्त होने में हूण भी विकसित नहीं हो पाता। अतः इसका कारण जगह-जगह वह बचकानी कायापलट भी है जो पाठकका कोई स्थायी सागात्मक सम्बन्ध न बना मना न मनसिंहके साथ बनने देता है। जहाँतक चन्द्रलेखका प्रश्न है उसका चारित्रिक महत्त्व उसी समय रह जाता है जब उसके मानसिक अन्तर्दुर्लभता आभास करा गिया जाता है। लेखकने गनीबे अन्तमनमें घटित होनेवाले घटनाओंको नयी व्याख्या देनेका प्रयत्न किया है, लेकिन उसकी चर्चा अभी बादमें करूँगा।

पीछे कहा जा चुका है कि 'चारुचन्द्रलेखकी कथा-यस्तुके लिए लेखक खिन्नकी कालीन इतिहासकारोंकी अपेक्षा नाथ-साहित्यके अपने विशेष अध्ययनपर

अधिक निभर करता है। इसीलिए एक बार उस ओरसे भी उपयासपर विचार कर लेना उपयुक्त हो सकता है। लेखकने नायक-पात्रियोंके इस विश्वासकी चर्चा की है कि सिद्ध लोग चिरजीवी हैं और काल-दण्डको सण्डित करके आज भी ब्रह्माण्डमें विचर रहे हैं। सम्भवतः इस धारणाने लेखकको उपयासमें कालकी समस्याकी ओर प्रेरित किया। जो कुछ रानी चन्द्रलेखाके अतमनमें अध-विनिष्ठावस्थामें घटित होता है, उसे प्राथमिक महत्त्व देकर उपयासके गिल्फ या गिपहीनताकी, जायज ठहराते हुए कहा जा सकता है कि चन्द्रलेखा उपयासका प्रमुख पात्र है। जो कुछ होता हुआ देखा जाता है वह उसके ही माध्यमसे। बाह्य यथायके यथान्य वषणकी अपेक्षा यदि चेतना विशेषकी साथी बनाकर, घटनाओका विवचन किया जाये तो निश्चय ही एक बहत्तर अनुभव-क्षेत्रका उपयासमें समाग्न जा सकता है—कुछ-कुछ उसी प्रकार जैसे स्वप्नावस्थाम सभयका बोध लगभग मिटना जाता है। मार्सेल प्रूस्त और जेम्स जायसने अपन विश्वप्रसिद्ध उपयासा ए ला रेसाय छू ताम्ब पछू और 'यूनिमि'में इसी प्रकारकी तकनीकको अपनाया है। जेरिन 'चारचन्द्रलेख'में कहाँतक इस तकनीकका सफल उपयोग हा सका, यह मर्दिग्य है।

प्रूस्त और जायसकी मुख्य चिन्ता थी यथायके नये स्तरानी खोज। सामाजिक यथायवाङ्की जो नॉव १९वीं सन्निम पडो और मार्क्सवाद-द्वारा पुष्ट हुई, उसने व्यक्ति यथायको लगभग पृष्ठभूमिमा डाल दिया था। २०वीं सन्निम आरम्भ होते-हात नये दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक निचारात एक बार फिर साहित्यकारोना ध्यान उन व्यक्तिमनपर केंद्रित किया जिसे बगसा फायड आनि इतना महत्त्व द चुक थे। चारचन्द्रलेख का पत्रकर सहज ही यह प्रश्न उठता है कि लेखकने इस तकनीकको किस उद्देश्यसे अपनाया है। क्या वह यथायका बाद नया स्तर खोज सका है? क्या वह मानव अनुभवका आयामका और विस्तृत कर सका है? क्या इस तकनीक-द्वारा इतिहास या घमका विभा नये आलोकमें देखा गया है? कर्णको दृष्टि इतना ही कहा जा सकता है कि यथायकी प्रमुग्धता दनवाते उपयासामें—चाहे वह सामाजिक यथाय हो चाहे ऐतिहासिक यथाय, चाहे मनोवैज्ञानिक यथाय, चाहे धार्मिक यथाय—जिस विभवमनीयताक प्रति कलाकार सतक रक्षता है 'चारचन्द्रलेख'में उसकी सवसा अवहणता हुई है। लोक-क्याएँ, घम प्रय, मिद्ध-याणी, भक्ति-गाहित्य आदिके मृगकराम लेखकने जिस कथा लिख का निमाण किया है और नायक उपलक्षिकाक दग्ने हुए वह अनिवाय नगी मिद्ध हाता। यद्यपि उन सोतारा मनाविज्ञान और सामूहिक-मनाविज्ञानक दूकना नाता है अथय, किन्तु उस सामग्रीका उपयासमें कुशल उपयाग नहीं हो सका।

धार्मिक जीर सास्कृतिज सद्भमें वडे ही महत्त्वपूण ढगसे लाया जा सकता था। मिनहाज सिराजने 'तयकाने नासिरी' मे बख्तियार-द्वारा नाल्दाक विनागका विस्तार वर्णन दिया है किन्तु उपयासमें वह किसी लोक-था-भा प्रदान होता है।

ऐतिहासिक तथ्योकी यह अवहेलना हो गयी है या किमी विशेष कारणम-की गयी है, इसको विचारनेसे पहले उपयासमें उपयासके नायक सातवाहनकी स्थितिपर थोडा विवेचन आवश्यक है—आरश्यक इसलिए कि ऐतिहासिक उपयासोंमें सुविख्यात ऐतिहासिक व्यक्तित्वको नायक बनाना कहाँतक उचित है और कहाँतक उपयासके कला-मन्त्रके लिए घातक इन प्रदनसे 'चारचन्द्रलेखकी दूसरी असफ-ता जुडी हुई है। सातवाहनका चरित्र उपयासम न तो क्याकी दृष्टिसे न इतिहासकी ही दृष्टिसे महत्त्वपूण बन पाया है। एक बार यदि यह मान भी लिया जाये कि ऐतिहासिक दृष्टिसे सातवाहन एक प्रमुख व्यक्ति है, तो तुरत ही दूसरे प्रकारकी समस्या सामने यह उठनी है कि उममें एक सफ-त औपयासिक नायकके गुण कहाँतक समाविष्ट किये जा सके। प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तिपर एक सीमा तक ही कल्पनाया रग चढाया जा सकता है। वाटर स्टाटने कही भी प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तिको अपने उपयासाम नायक नही बनाया उन्हें पटभूमिमें ही रखा। उसने ऐतिहासिक व्यक्तिवाकी अपना पेश कालक प्रामाणिक चित्रणपर अधिक जोर दिया। इसीलिए शायद, लेखकका पिछला उपयास 'वाणभट्टकी आत्मकथा भी चारचन्द्रलेख की अपेक्षा अधिक सफल रहा। पूरे उपयासमें सातवाहन केवल उपस्थित है सक्रिय नही। उपयासमें जो बुद्ध होता है वह सब केवल उसके नामपर। कथानक उमने साथ साथ नही, उमके बाजजूद चलता है। यहा तक कि जागे चलकर कथानकका गतिकेन्द्र सातवाहन न होकर मना या मनमिह बन जाता है। ललित मँताना व्यक्तित्व उपयासमें इतना व्याप्त होते हुए भी विकसित नही हो पाता। अगन इसका कारण जगह जगह वह बचकानी कायापलट भी है जो पाठकका कोई स्थायी रागात्मक सम्बन्ध न ता मना न मनमिहके साथ बनने देता है। 'हाँतक चन्द्रलेखाका प्रदन है, उमका चारित्रिक महत्त्व उसी समय रद हो जाता है जब उमके मानसिक अम-तुलनता आभास करा दिया जाता है। लेखकने रानीके अन्तमनमें घटित होनेवाली घटनाओको नयी व्याख्या देनेका प्रयत्न किया है, लेकिन उसकी चर्चा अभी बादमें करूँगा।

पीछे कहा जा चुका है कि चारचन्द्रलेखकी कथा-अस्तुके लिए लेखक किलजी कालीन इतिहासकारोकी अपेक्षा नाय-माहित्यके अपने विशेष अध्ययनपर

अधिक निभर करता ह। इसीलिए एक बार उम भोरसे भी उपयासपर विचार कर लेना उपयुक्त हो सकता है। लेखकने नायकियोंके इस विस्वासकी चर्चा की है कि सिद्ध लोग चिरजीवी हैं और बाल-शुद्धको मर्णित करते आज भी प्रहाण्डमें विचर रहे हैं। सम्भवत इस घाटणाने लैम्बका उपयासका चर्चाकी समस्याकी ओर प्रेरित किया। जो कुछ रानी चन्द्रलेखाके अतमनमें अर्ध-विगिस्तावस्थामें घटित होता है, उसे प्राथमिक महत्त्व देकर उपयासके शिष्य, या निपहीनताको, जायज ठहराने हुए कहा जा सकता है कि चन्द्रलेखा उपयासका प्रमुख पात्र है। जो कुछ होता हुआ देखा जाता है वह उसके ही माध्यमसे। बाह्य यथाथक यथातथ्य ध्वननकी अपना, यन् चेतना-विशेषको सांगी बनाकर, घटनाओंका विवचन किया जाये ता निश्चय ही एक बहत्तर अनुभव-क्षेत्रका उपयासमें समेटा जा सकता है—कुछकुछ उसी प्रकार जैसे स्वप्नावस्थामें समयका बौर लगभग मिट-सा जाता है। नामें प्रसूत और जैम्स आयम्ने अपन विद्वत्प्रसिद्ध उपयासा 'ए ग रेगाग दू ताप्न पदू' और मूर्लिप्रिय में इसी प्रकारकी तकनाकको अपनाया है। ऐतिहासिक 'चाण्डालेख' में वहीनाक इस तकनीकका सफल उपयाग हो सका, यह मदिग्य है।

प्रसूत और जायसका मुख्य चिन्ता थी यथाथके नये स्तरानी खोज। सामाजिक यथाथवाचकी जो नीव १९वीं शतीमें पनी और मार्क्सवाद-द्वारा पुष्ट हुई, उसने व्यक्ति-यथाथका सम्भव पष्ठभूमिमें डाल दिया था। २०वीं शतीके आरम्भ हाते-हात नये दार्शनिक और मनानानिक निचारान एक बार फिर साहित्यकारोंका ध्यान उन व्यक्तिमनपर केंद्रित किया जिसे बगना, प्रायः आदि इतना मन्त्र द चुके थे। चाण्डालेख का पत्कर यहज ही यह प्रश्न उठता है कि लेखकने इस तकनाकको किस उद्देश्यसे अपनाया है। क्या वह यथाथका अट नया स्तर गोज मचा है? क्या वह मानव अनुभवक आयासका और विस्तृत कर सका है? क्या इस तकनीक-द्वारा इतिहास या धमना जियो नये आगेकमें सफल सफल है? क्याको शक्ति इतना ही कहा जा सकता है कि यथाथका प्रसूतना प्रसूतले उपयासमें—चाहे वह सामाजिक यथाथ या साहित्यिक यथाथ का मनानानिक यथाथ चाहे धार्मिक यथाथ—द्विग विद्वाना-द्वारा ही बनकर सतत रहता है 'चाण्डालेख' में उसकी मुख्यता अत्यन्त स्पष्ट है। यथाथका धम प्राय, मिट-बागा, मनि-साहित्य आदि सृष्टिकोमें अत्यन्त ही सफल रूप का निर्माण किया है और यामिक उदरगिर्गोका सफल रूप ही सृष्टिकोमें सिद्ध होता। यद्यपि उन साठोंका मन-विज्ञान और साहित्यिक-सृष्टिकोमें सफलता नाता है यथाथ किन्तु यथाथका सफलता ही सृष्टिकोमें सफलता ही सफलता ही अनीत क्या

समय 'चारुचंद्रलेख'भ नितांत अ मानवीय मालूम देता है, जिसके सामने मनुष्य और उसका सर्वात्म महत्त्वहीन ठहरते हैं। प्रस्तुत विश्लेषणमें समय माननीय सद्भमें ही महत्त्व पाता है। एकम यथार्थ समयसे आक्रांत है, दूसरेमें वह समयको अथ देता ह। इसीलिए 'चारुचंद्रलेख'का कोई ठोस—महत भी नहीं—आकार नहीं बन पाना, और उसका ढांचा कल्पित कथाओंके सग्रह-सा लगता है जिन्हें किसी प्रवक्ता या वाक्ता पात्रा द्वारा जोड़ दिया गया हो। जहाँ तक पौराणिक विषयाका सवाल है वह कह देना यहाँ प्रासंगिक होगा कि जेम्स जायसके 'यूल्सिस'का पूरा ढांचा ही एक पौराणिक 'थीम'पर खड़ा ह। 'चारुचंद्रलेख'की कमजोरीका मुख्य कारण घने, सौन नहीं, उपयास शिल्पको ठीकने न संभाल पाना ह। जिस सामाजिक चेतना और मिथ्या धम भावनाकी बात लेखकने जगह-जगह उठायी है, वह उपयासका अभिन्न अंग नहीं बन पाता। जोगीले भाषणा, उद्माधनात्मक वक्तव्या, नायकधी पूजा माधनाके साथ साथ, एक ऐतिहासिक कल्पनकका साका घिसटता हुआ चलता ह। सवाल यहा उपयाससे किसी शिल्प या मत्तयको गढ़ निकालना उतना नहीं, जितना उसके ठीक ठीक पहचानमें जा सकनेवा ह। जिसो उपयासके शिल्पविधानका जटिल होना या एक परिचित शिल्प विधानका उसमें न होना असतोषकी बात नहीं लेकिन पाठक उस निरालेपनको किस सद्भम ग्रहण करे, इसका सर्वत स्पष्ट होना चाहिए। 'चारुचंद्रलेख'की धार्मिक-सवेष्णा न तो ऐतिहासिक प्रसंगमें ही पूरी तरह बंध पायी है, न उसका आधुनिक विचारोंके आलोकम ही कोई महत्त्वपूर्ण विवचन हो सका। शुद्ध मनोरजनके लिए तो शायद यह उपयास लिखा ही नहीं गया था।



दूसरोंके दिवाये रास्तेपर चलकर प्रयोग करनेकी जरूरत नहीं है। अपनी आँखोंसे अपने वृद्ध जनर देशको देखना है और हृत् चरित्रताके अमृतमें सौंचकर इले महत्तर बनाना है। साहित्यिक प्रयोग करते समय हमें बार बार यह बात सोच लेनी चाहिए। मुझे रचनात्र भी सदेह नहीं कि तरुण साहित्यकारोंमें यह शक्ति है। जेवन उन्हें अपने उत्तरदायित्वको समझना है।

—सावधानीकी आवश्यकता

साहित्यिके तनसे शिवालिख

चारुचन्द्रलेख पार्श्व छवि

• •

कृष्णनाथ

एक क्षणमें क्या हा गया। यह चित्र बना रहेगा, चित्रमें पत्थरकी लकीर बनकर बना रहेगा, व्याख्याएँ होती रहेंगी, चित्र मुमकयता रहेगा।

'चारुचन्द्रलेख' की एक प्रति कई महीने हुए समीक्षाके लिए आयी। और यह बात यहाँ बनारसमें फट भी गयी। ता मित्र-मण्डली पूछने लगी कि कहीं-तक पढ़ गये हैं? क्या लिख रहे हैं? गुरुके महीनामें तो नह देना कि अभी दस रहा हूँ बहुत बढ़िया चीज है, समय लगता है। लेकिन समयकी भी ता आश्रित सीमा है। मित्राने दूसरे महीने पेरना गुरु किया। जाहिर है उनकी निगाह समीक्षापर नहीं, किताब पर था। और अब यह कहना कि 'नहीं अभी त्रियना गुरु भी नहीं किया, चौदें जमा रहा हूँ', अटपटा लगन लगा। इन भवकं ऊपर यह बात तो थी ही कि समीक्षाके लिए सबमुच देर हो रही है।

इसलिए कठ यह तय किया कि आज तो जरूर ही लिखना गुरु कहेगा। टायरीमें दज किया ताकि अगर भूल-चूक हो ता यह टायरी उमकी सागी रहे। इससे अपनेपर एन अकुण लग जाता है। लेकिन शानका कई एक साधो इकट्ठा हो गये, चाय पी फिर 'अम्माम-नाप सु गाणीया गया। वहीम दगादमधेप तक एकाप चकरार लगाकर कांती थी। लौटते-लौटते रातक सागे दस बज गय। टायरी लिखने बघ तो 'चारुचन्द्रलेख' टंका था। इसलिए टायरी लात्र निभानका घरजगे किताब उठायी। कुछ प्रानाता दिमागमें पलटन लगा। कुछ सिलसिला जमने भा लगा। तभी जान कर नींद आ गयो।

कितनी देर सोया रहा पता नहीं। फिर उगा जम बोई जगा रहा है। आंग गुला तो दगा आचाप हजारीप्रमाद दिवनी सामने यह सूँठा और आंगामें हा मुमकरा रहे हैं।

एक बहने महगा सामो दीगनपर अभिवादनके लिए विस्तरमें जग उछल पडा। आंगकी बहुवाहका दवान, पूरा मोहनकी बाधिया करने, पूछा 'आप

अतीत क्या

चण्डीगढसे कब आये ?”

अब द्विवेदीजी हँसे । वही ठहाकेवाली हँसी जिसकी गूँज अनुगूँज अब याशोंमें कभी-कभी ही सुनाई पड़ती है । बोले “मैं चण्डीगढ गया ही कब था । वहाँ तो आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी रहते हैं न ? म तो अधोरनाथ हूँ ।”

एक पलके लिए तो मैं जैसे सक्तेम आ गया । फिर यह छलना दूर हुई । पण्डित व्योमवेश शास्त्रीकी टिप्पणी काँध गयी “अधोरनाथ आधुनिक विचारों के, पुरानी परिपाटीमें शिक्षित, सिद्ध है । वे भावुक और कल्पनाप्रवण जीव ह ।”

मैंने सिद्ध-साधकवाली बात समझते हुए बठनेके लिए कुरसी बढ़ायी । द्विवेदीजी उफ अधोरनाथजी जमकर बठे तो कुरसी और कमरा भरा-भूरा लगने लगा ।

अब एक अंतराल आ गया, न अधोरनाथ बोले न कृष्णनाथ ।

फिर अधोरनाथजीने ही शुरू किया “आज तो लिखनेका सक्त्प किया था न ? फिर यह स्ललन क्या ? ‘दीदी’ हाती तो डीटती बडे आलसी हा ।”

मैं चुप । दीदीने जिसे बहुत बडा आलसी कहा था, वही अब कहे कि ‘बड आलसी हो’ फिर इसे तो मान ही लेना चाहिए ।

मुझे विनय-मत्त दख, वे बोले ; “इसपर कहातक काम कर डाला ? अब बाधा क्या है ?”

मैंने बताया “एक बार तो काफी अशाम धारावाहिक रूपसे ‘कल्पना में पढा था । समाप्ताके लिए मिलनेपर उसे दुरूस आखिर तक पूरा भड डाला । अब ता जने इसने मुझे छाप लिया, आविष्ट-सा’ रहा । फिर घोरें गीरें - इसमें मुक्त हाते हुए कुछ प्रश्नाको उलट-पुलट रहा हूँ । कुछ तय नहा कर पा रहा हूँ ।”

कुछ शब्दास, कुछ इशारेसे कुछ थहम-थहम कर इतना कहा ही था कि अधोरनाथजी अनायास ही गदगद होकर वाले “म प्रीत हूँ, कृतज्ञ हूँ” कनाउडा है ।”

मैं ता नस्त हो गया । खैर अगर प्रीत ह, कृतज्ञ ह तो चाहे मरे लखे अवारण ही, लेकिन ह तो ह लेकिन यह कनाउडा’ क्या ह ?

फिर मुझे पण्डित व्योमवेश शास्त्रीकी टिप्पणी याद आयी “सबत्र उनपर (अधोरनाथपर) पुराने ढगकी भाषाका आवरण ह ।”

मुझे अस्त दख अधोरनाथजी ठहाका मारकर फिर हँसे । (मेरे मनमें द्विवेदीजीकी हँसी गूँज गयी ।)

वाले "उल्लसनाम हा । वने 'उल्लसना हर ममय बुरा नहा होता ।' लेकिन अगर सुलझाना ही चाहते हो तो पूछो, क्या पूछना चाहते हो ?"

म अपने प्रश्न सरियाने लगा । समझमें न आया कहाँसे शुरू करें । फिर शुरू ही शुरू करनेका तय पाया । पूछा " 'चारुचंद्रलेख' की क्या क्या है ? सशपथ बतानेकी वृत्ता करेंगे ?"

'यह क्या प्रश्न ? सशपथ ही कह सकता तो फिर ४४१ पद्यमें क्यों कहता ?'

"अथवा न समझें—बहुत है समीक्षाम 'वृत्ति क्या है ? इसकी व्याख्यासे शुरू करना अच्छा होता है, इसलिए यह प्रश्न है ।"

"म यह सब कुछ नहीं जानता । यह तो पण्डित ध्योमवेग शास्त्रीसे पूछो । हाँ, मुझसे पूछने हो तो मैं ता यही कहूँगा कि अपने पाठकारों को यह दाँव कि पहले 'चारुचंद्रलेख' पढ़ डालें, तब यह बात पढ़ें, चाहे न पढ़ें ।"

म जब इस बात करनेके लिए बड़ा ता अधारनाथजीन डाँटा "एक समय एक वाम करनेका अभ्यास करो । प्रश्न-परिप्रश्नम यह वाया मुझे सह्य नहीं । यह सब छूट आचार्य हजाराप्रसाद द्विवेदी अपने शोध विद्यार्थियोंको देने होंगे, मैं नहीं ।"

अब इसके आगे म क्या कर सकता था, दीनहीन भावम घटम गया ।

इसपर पसंजकर अधारनाथजीने कहा "सावधानीसे अध्ययनसाम कर तुम अपने गण्येम इस कथाकी सशपथ कह सकते हो । कुछ सूत्र तुम्हें इस कथाम, कुछ टिप्पणीम मिल भी जायेंगे । यह उस समयकी कहानी है जब भारतवर्षके उत्तरी भागपर पूण रूपसे तुर्कोंका राज्य स्थापित हो गया था । विदेशी आक्रमणके प्रतिरोधक समय दगाकी प्राण-दानि ग्रह-गण मन्त्र-सन्त्र, भूत-वताल, डाकिनो गतिकी, ऋद्धि सिद्धि, सुदरी-साधना, मोहन और उच्चात्मन लप हो रहा थी ।"

यह है कथाकी पृष्ठभूमि । इसपर पण्डित ध्योमवेग गाम्भारी टिप्पणी 'एसा लगता है कि कियोंने ऐतिहासिक सध्याकी साव विचारखर इसमें पियेया है ।'

'इतना ता स्पष्ट है न ?' अधारनाथजीने एक कुशल अध्यापककी तरह पूछा ।

मने गिर दिग्या ।

अधोरनाथने दुहराया 'क्या समझे ? यह है इतिहास विधानाकी पाठ-छत्रि । और इतिहासकी इस छत्रिको उबरत है व्यक्ति राजा सातवाहन, राजा

चन्द्रलेखा, मैन सिंह—मना, नाटी माता, बृद्ध मन्त्री विद्याधर, पण्डित धीर शर्मा तरुण तापस सीदी मौला, बोधा प्रधान तथा अन्य । वैसे तो इन नाना चरित्रकी नाना रूप ह, लेकिन इनकी धुरी युद्ध और प्रेमकी ह । राजा सातवाहन इस कथा-सूत्रको इस तरह याद करता ह "रानीका प्रथम साक्षात्कार, फिर उनकी साधना, फिर युद्ध, फिर उनके लेख, फिर मनाना परिचय—एकपर एक इस प्रकार दिखाई देने लगा जैसे किसी निपुण कविका निबद्ध नाटक अभिनीत होना देख रहा हाऊँ ।"

"तो संक्षेपम यह है क्रम । यह ठीक है आयुष्मन ?

मेरी तबीयत हुई कि हाथ जाडकर निवेदन करूँ "ठीक है श्रीमान ।"

लेकिन आजकी पीढीमे यह विनय कहाँ ? इसलिए इतना ही कहकर रह गया "जी हा, ठीक तो है ।"

अधोरनाथजी आधुनिक विचाराने है इसलिए ऐसे खेलत हुए-से बाले "अब और क्या प्रश्न ह ?"

मैन पूछा 'पण्डित व्यामवेश शास्त्रीके अनुसार इस कथाम 'एक जीवन्त ऐक्य है' किन्तु आपकी व्याख्याके अनुसार पूरी कथामें द्वैत ह इतिहास और व्यक्तिका द्वैत, युद्ध और प्रेमका द्वैत । इनके रहते पण्डित व्यामवेश शास्त्री कैसे कह सकते ह कि कथाम एक जीवन्त ऐक्य ह ?

अधोरनाथ मूँछामें मुसकुराते हुए बाले "अधोरनाथ और पण्डित व्योमक्या शास्त्रीम झगडा लगाना चाहते हो । लेकिन यह झगडा है नही । कथाका जीवन्त ऐक्य इसा अनैक्यपर ही ता ह । अनन्यके त्रिना ऐक्यका तथा मूलतः । इस तरह यह एवता इतिहास और व्यक्ति और युद्ध और प्रेमके द्वैतके बीच ह ।

'और ऐसे ही परस्पर विरुद्ध कितने ही जोड वय यौवन, गिणित और अगिणित उत्साह व्याम्य नेतत्व और कलव वगरहके इस कथामें ह । अगलमें ता इही अनेकनामाने माकाआका एक सूत्रम पिरानने ही ता कथाम एक 'जीवन्त ऐक्य' ह, अथवा यह निर्जीव अद्वैत हा जाता सर्वान्य' हा जाता । हन ?"

मुचे लगा कि मने जो द्वैत-अद्वैतकी गाँठ बाँधनी चाही थी वह अनायास ही खुल गयी । लेकिन मनकी गाँठ कहाँ खुलती ह ?

इसलिए थोना प्रेम प्रकरणम गहरा उतरनेका गरजमे पूछा 'यह जा प्रेमका त्रिकोण है सातवाहन चन्द्रलेखा और मनाका इसपर कुछ प्रयोग डालनेका प्रसाह हो ।"

अधोरनाथने फिर झौटा 'फिर वही मूलता । अथयन-अध्यवसायमें अप्रमाण नटा ह न । नही तो क्या मने नहीं लगा ह कि 'न तो प्रेम छिपता ह,

न प्रकाश ।' अब प्रकाशपर क्या प्रकाश डाला जा सकता है ।'

अधोरनाथ आगेमें आकर बालने गये 'तुमने नहीं सुना है कि पानकी तरह प्रेमकी पुत्रिया भी अनमना, अवमना होती है ? अब तुम यह चीना आवरण भा उठा देना चाहते हो ? तुम नये लायाको यह हो क्या गया है ?'

म एव चुप, हजार चुप ।

अधोरनाथजी बड़बड़े गये "मर्यादाकी सीमामें रहते हुए क्यामें यह बिस्ते पाण हुआ ही ह । देगो, प० ११२ १३ "इच्छा शक्ति और क्रिया-शक्तिका द्वन्द्व तेजोम चल् पटा ह । नहीं चाहता कि जो कुछ हा रहा ह उसके विस्तेपणमें समय नष्ट करूँ, पर न जान क्या मन ही नहीं मानना ।

मनाका वह ब्रीडा-मनोहर मुग जा हृदय-रूपपर आया सो चिपफ ही गया । रण डका बज गया ह, उत्तरने शक्ति तब भयकर घमासानमें विजली-का भाति चमक रहा है, पर वह मूर्ति जो चिपसी ह वह जम ही गयो ह । पीना हानी ह, चाहता हूँ बहाने हटा हूँ । न मूर्ति ही हटा पाया हूँ और न पीनाम मूर्ति ही मिली ह । कुछ पीनाएँ बेहिसार मीठा हानी है ।"

मन यहाँ टोक दिया क्याकि अधोरनाथ भी सानी मौलाकी तरह बोलने लगते ह ता लगता ह चुप ही न हाग । चुप होने ह तो ऐमा लगता है कि अब बालेंग ही नही । बड मस्त मौला ह ।

मने क्या 'मन तो इसक भी पल सातवाहन वह चुका ह अब क्षणमें क्या हो गया यह चिब बना रहेगा, चित्तमें पत्थरकी लकीर बनकर बना रहेगा, ध्याम्याएँ होती रेंगी, चिब मुसकराता रहेगा ।'

अधोरनाथको यह क्षण जैसे याद आ गया या जाने क्या हुआ कि व अभि-मून-भ रहे ।

मन मौन नाग 'लकिन यह भात बद्रूप्यापर भी छा गयी ह । सो क्या ।

'इसका उत्तर राना पदरूप्यामें ही सुना म मनाकी तुनामें अत्यन्त नगम हूँ । मुझ बटूत आग शक्ति पर तुमने मेरा क्षुद्रताका बगवा दिया है । महाराज मुझे दासीकी भाँति क्या नही आगा देने ? मना धम ह जो तुमस हरती ह, तुम्हारे ऊपर थडा रमती ह तुम्हारे लिए प्राण देता ह ।"

'मन परिपूष आन-नमपण मनाका शक्ति ह दिवा विभाजन बद्रूप्याकी कमबोरी है । तर्ण-शापस और महाराजके बीच जन शक्ति और तर्ण-शक्तिकी गाथागत बीच बद्रूप्यापारा विप्र शो-शक शक्ति हो गया ह । यह दिवा विभा-जित ध्यनित्वका श्राव हो उसके सन्तु-मने नष्ट हाजका हनु ह । इन ही सम्बा-

धनके माध्यमसे जोड़नेका प्रयत्न करते हुए सातवाहनने स्नेहपूर्ण शब्दोंमें कहा, 'रानी चंद्रलेखे ! प्रिये !

“फिर भी यह खण्डित व्यक्तित्व जुड़ता नहीं । इसलिए रानी चंद्रलेखाका मानसिक विशेष बना रहता । उन्हें वहाँ-कहाँ नहीं भटकता ।

“निद्वन्द्व तो मैना भी नहीं ।” नाटी माता कहती है न “मुझे भय लगता है कि उसकी सेवामें मोह है प्रतिदानकी आवाशा है, इसीलिए उसमें विश्वास है, कुण्ठा है । ब्रीडा तक तो ठीक है, पर कुण्ठा क्या होगी ?”—म चुप । “—ह न महाराज ?”

जवाबमें मैं दुहरा सकता हूँ “यह तो वही कह सकता है अधोरनायजी, जिसमें मोह न हो कुण्ठा न हो, विश्वास न हो ।”

जो भी हो, यह हुआ प्रेम और उसके द्वन्द्व उसकी पीछा और कुण्ठाके बारेमें ।

मैंने एकपर एक जो प्रश्न सरियाये थे उनमें यह युद्धवाले प्रश्न थे । मैंने पूछा “आपकी रायमें, युद्धपर क्या खास बात क्यामें जायी है ?”

अधोरनायजी थोड़ी देर सोचकर, कुछ अटकते हुए-से बोले “प्रियाप वात विशेष तो जो भारतकी राजनीतिके तीन महान्गोप गिनाये गये हैं वे विशेष तो कुछ है नहीं, गायद मामाय ही है । यहाँ एक बात चुपके-से कह दूँ । यह सब देशकी वर्तमान राजनीतिकी, खास तौरपर युद्ध नीतिकी, गहरी टीका है । उदाहरण कोई भी पढ़कर ढूँढ सकता है । हाँ एक नयी बात जरूर है जो आजके मन्दभ्रम भी विचारणीय है । रानी चंद्रलेखा साधारण ग्राम बालिकाके सहसा रानी हुई है । वे आवाहन करती हैं 'बीरो, राजाआका युद्ध समाप्त हो गया । अब वही आशा है तो प्रजाकी सगठित गक्तिम है । मैं तुम्हें उसी गक्तिमो उदबुद्ध करनेके लिए आमन्त्रित करती हूँ । मैं तुम्हारे पीछे प्रजा वगैरों सगठित करनेके लिए प्रयत्न करने जा रही हूँ ।

‘इसपर विद्याधर भट्टको जमे बटना लगा । बाले, 'नया गुन रहा हूँ दवि, अबतक तो युद्ध सनिकोका ही वक्तव्य समझा जाता रहा । निरीह प्रजा इसमें क्या कर सकती है भला !’

“स्यात यह विशेष बात है । स्यात यह भी नहीं है, क्याकि कौटिलीय अर्थशास्त्र गुणनीति और कामद्वयीय नीतिसारम प्रजाके इस विक्रमबलका भी बल माना ही गया है । फिर भी इसपर यहाँ विशेष बल दिया गया है । और फिर राजा रानी दोनों साधारण प्रजाके साथ एकमेव हो जानेका वक्त जो लिया वह गायद एक अमली बात है ।’

“घरती पर विद्वान्” इस वक्त का आशय है। और ‘घरती’ स मनलव केवल इस मिट्टीने नहीं है, किसानों और साधारण लोगोंमें है। मन्सिंह ‘मामूली नेटुएका बाग’ इसी घरतीकी गति का नायाब प्रतीक है। इसी गति बलपर चम्बलक बीहड़में छापामार लडाइ लडा और जीती गयी। यह एक विशेष बात है न ?”

मने हँकारा भरी।

कम अमा क्यावे बारमें बहुत कुछ पूछनेकी रह गया था—जमे तन नृष्टि और साधना पर, जानि, बानावर्ण और कालकी बर्से एक प्रवृत्तियापर, लेकिन आखिर इस वषण विस्फेपणका वही तो अन्त करना ही था। इसलिए इस यकी खतम कर कुछ मूल्यांकनक बागम पूछना शुरू किया।

मने पूछा ‘आपकी सम्मतिमें इस क्यामें कौन-स प्रमुख गुण-गुण है ?’

धधोरनायकीने इन सवालक बचनेकी काशिंग करते हुए कहा ‘इसमें मुझे क्या तेना-देना है ? मैं तो आविष्ट-सा था जब यह क्या शिलागणमें उतरी। प० ध्यामक ग्रास्त्रीने टिप्पणीके साथ इसे छान लिया। अब यह गुण तोय विवर भी क्या न ही करेगा ?”

मने कहा ‘जमे यह क्या छनी आचार्य हनाराप्रसाद द्विवेदीके नाममें है। इसलिए आप निम्नगत तो हा ही सकते है।

अधारनाथ हँसे, बोले ‘बनुर हो, आचार्य ! अब जिजासा करते हा तो सुनो ! मेरी सम्मतिमें अय शानेके साथ-साथ, इस क्याके तीन गुण है एक तो भारतीय इतिहासक इस युगमें तात्पर्य। यह तादात्म्य गायक एवान्तर प्रेमन आता है और जब एक बार सघ जाता है तो इतिहासक अनन्तमें जनकी आन गता है।

‘दूसर, महजता। इसका एक उदाहरण भर दें। राजा सागाहनका पता चलता है कि रानीकी सहेली मीना बहो नेटुएका लोग मनसिंह है। मनसिंह-मना-मनावती। अब मना राजाक पैरपर गिरती है। लेकिन तिन मनाक शानक-बागमें दर दर मरे पैर दबाय से और घोय से, कनी स्त्री-बागमें उन्हें छुनका साहस नहीं कर सकी। परामे दूर हा उसने फिर घरतीपर रन लिया। आखरय यह कि म भी उसकी पीट धावगानेका साहस नहीं कर सका। अमहाय भावस तावता रह गया। ऊपरी आवरण कितना ध्वषधान पदा कर देता है ?

“मन्स्यधान अच्छा है या बुरा, यह अन्त प्रश्न है लेकिन महज तो न न ?”

मन फिर हँकारा भरी।

अधोरनाथजीने तीसरे गुणकी व्याख्या करते हुए कहा, "यह गुण है तारतम्य, नरन्त्य सातत्य। अर्थात् कुछ ऐसा है बारहवीं-तरहवीं गतांशिक भारतके लिए विशेष हात हुए भी सब सहज, सब समय और सब चीजापर लागू है।"

'उदाहरणके लिए,

"उदाहरण चाहे प्रेमसे ले लें मा युद्धमें। बोल्ल दस वण्टसे टांटा और राजा सातवाहनने तीर तरकामें धर लिये। चन्द्रेयाने कहा, रानी बना लो। रानी बना लिया। रामान कहा जमी मेरी इच्छा होगी जमे तुम्हें करना होगा। राजाने कहा, ऐसा ही होगा। अब इसमें जोखिम तो है ही। और यह आज भी बहुत कुछ बसा ही है। और आगे भा शायद ऐसा ही रहेंगा। है न ?

'जा हाँ, है तो। मरे कुछ मिय तो ऐस है। हम उन्हें छोटे मुलाम अल्पे कहते है।"

अधोरनाथ हँसे। फिर कहते गये "एमे ही जो भारतीय राजनीतिके तीन महादोष है वे आज भी है। इसी प्रकार कितने ही उदाहरण इस तारतम्य सातत्य या नैरन्तर्यके दिमे जा सकते है।

"इस तरह मेरी सम्मतिमें अब बाताके अलावा ये तीन गुण है १ सातत्य, २ सृजता, ३ तारतम्य।

अब दोष भी मुझसे ही न पूछो। जो बिलय बातें है वे पण्डित व्योमके ग शास्त्रीने अपनी टिप्पणीमें गिना भी दी है। ऊपर उनसे ही चर्चा कर लेना।'

मेरी आँखामें गका देखकर अधोरनाथने सीनी मौलाकी तरह पछा "तुम्हारी आँखामें शकावा भाव देख रहा हूँ।"

मैने टोककर कहा "गका नही जिनामा।"

'जिनामा भी गका ही है। अच्छा पूछो। क्या पूछना चाहते हो ?'

मैने कहा 'आपने गुणोंकी सूचीमें व्यापकताका जिक्र नहीं किया। आज कर शककी बडो चचा है। इसपर कुछ प्रकाण डालें।"

अधोरनाथजी जमे कुछ परधानीमें पड गये बाके "व्यापकता व्यापकता बहुत बड तब तो है ही। अब प्रश्न है कि यह व्यापकता कितनी व्यापक है ?

इतिहासकी व्यापकताका मतलब व्यापकता मदाभारत-जमे इतिहाससे लें या बा-मोर्षिके रामायण-जमे प्रथमे, तो निश्चय ही इन प्राचीन ग्रन्थानी तुलनामें 'चारुचन्द्रसेत' कम व्यापक है। ऐसे ही गोस्वामी तुलसीदासजीने 'रामचरित मानस' स भी शकका व्यापकता कम ही है। लेकिन ये तो महाकाव्य है। इनकी व्यापकताम इस कथानी तुलना कहीं की जा सकती है ? फिर व्यापकता ही तो अन्तिम कमीनी नहीं है। गहराई भी ता एक चीज है।

अधोरनाथ जम कुठ सोचमें पड गय । थमकर वाले, "एक बात मुन अब सूचती है । इस कथाकी प्रमुख विशेषता 'चास्ता' है व्यापकता नहीं । इसमें शायद गहराई अधिक है, लम्बाई-चौड़ाई कम ही है । वैसे यह परस्पर विरुद्ध नहीं । भेद मात्राका है, गुणका नहीं ।"

मैंने इस बहसको फिल्हाल आगे बढ़ाना अच्छा न समझा ।

फिर, कई एक बातें दिमागमें थीं । जस, पण्डित धीर शर्मा क्षमायाम पाँच सात सप्सुतके दलाव बोल जाते हैं । उनका अर्थ वे जानते हैं, हम तो नहीं जानते, और हमारे-जैसे असह्य पाठक हैं । उनके लिए क्या धीर शर्मा अर्थ बहनेकी आदत भी नहीं लगा सकते ? या पण्डित व्योमनेश शास्त्री टिप्पणीमें इनका अर्थ नहीं दे सकते ? फिर कुछ उद्बोधन-आवाहनवाले वाक्य हैं । 'उठो, जागो, एक हा जाओ ! जसी अपीलें हैं ।

इसके अलावा, एक बात क्यावे अन्तके बारम् । वैसे जा कुछ चमत्कार हुआ था किसी एक या दो पात्रके साथ घटना तो स्वाभाविक लगता । लेकिन घटना चक्र बड़ी तेजीसे चर पडा है । भैरवपादकी भद्रकालीका अपहर्ता मिल गया है, एक ही क्षणमें गह घराशायी हो गया है, भद्रकाली पर-कटे पशुकी तरह गिर गयी है मनाने अपने ही भालेमें अपनाको भोव लिया है, और वह जिसरी गोत्र है वह रानी चढ़लेला है । इनमें-से एकथ तक ता ठीक है लेकिन भद्रका सब एक साथ घटना असह्य है । लगता है जैसे अब अन्त करना है इसलिए सब कुछ एक साथ गड़गड़ कर दिया गया है ।

फिर प्रारम्भमें शीघ्र 'चारुचंद्रलेख' ऐसा है जस कि काई शहर बननेके पहले चहारदीवारी खींच दी गयी हो और बननेपर गहरका अच्छा-भ्रसा हिस्सा उससे पार बसा हो ।

यह सब कुछ बातें मेरे दिमागमें तर भो थी । लेकिन इनपर चर्चा करना एक सा गिष्टाचारक खिलाफ लगा, दूसरे, इनका एक ही पत्रमें जवाब मेरे पास है 'समरपरा नहि दाप गुसाइ ।' और 'चारुचंद्रलेख'के 'समय हानमें दो राय नहीं ।

इसलिए इन दावाको जतीका तहाँ छोड़कर मैंने एक ठोमा प्रश्न पूछा जिसका उत्तर शायद ठीक-ठाक अधोरनाथ ही दे सकते हैं । शायद वह भी नहीं दे सतने ।

मन पूछा 'इस कथाका प्रयोजन क्या है ?'

अधोरनाथने पुडका एसे व्यपके कितने प्रश्न सुन्हार पास है ? क्या पण्डित व्योमनेश शास्त्राने 'कथामुन में नहीं लिख दिया है कि मैं आविष्ट-या बना लिखना गया ।' अब मैं इसका प्रयोजन क्या जानूँ ?"

अधोरनाथजीने तीसरे गुणकी व्याख्या करते हुए कहा, “यह गुण ह तार तम्य, नरतम्य, साततम्य । अर्थात् कुछ ऐसा है वारहवीं-तेरहवीं शताब्दीक भारतके लिए विशेष होते हुए भी, सब सहज, सब समय और सब चीजापर लागू ह ।’

“उदाहरणके लिए, ”

“उदाहरण चाहे प्रेमसे ले लें या युद्धसे । कामल दत्त कण्ठमे दाटा और राजा सातवाहनने तीर तरक्शमें धर लिय । चन्द्रलेखाने कहा, रानी बना लो । रानी बना लिया । रानीने कहा जसी मेरी इच्छा हागी वसे तुम्हे करना होगा । राजाने कहा, ऐसा ही होगा । अब इसमें जोखिम ता है ही । और यह आज भी बहुत कुछ बसा ही ह । और आगे भा शायद ऐसा ही रहेगा । ह न ?’

‘जी हाँ ह तो । मेरे कुछ मित्र तो ऐसे ह । हम उहे छोटे गुलाम अली कहते है । ”

अधोग्नाथ हूँसे । फिर कहते गये “ऐसे ही जो भारतीय राजीतिके तीन महादोष ह वे आज भी ह । इसी प्रकार कितने ही उदाहरण इस तारतम्य, साततम्य या नरतम्यके दिये जा सकते है ।

‘ इस तरह मेरी सम्मतिमें अय बातोके जल्वा ये तीन गुण ह १ तादात्म्य २ सज्जता, ३ तारतम्य ।

अब दोष भी मुझसे ही न पूछा । जो चिन्त्य बातें ह वे पण्डित व्योमकेन शास्त्रीने अपनी टिप्पणामें गिना भी दी ह । उनपर उनसे ही चर्चा कर लेना ।’

मेरी आँखोंमें शका देखकर अधोरनाथने सीनी मौलाकी तरह पछा ‘तुम्हारी आँखोंमें शकाका भाव देय रहा हूँ ।’

मने टोककर कहा “शका नही, जिनासा ।”

जिनासा भी शका हो ह । अच्छा पूछो । क्या पूछना चाहते हो ?’

मने कहा “आपने गुणाकी सूचीमें व्यापकताका ज़िन्न नहीं किया । आज फल इसकी बड़ी चचा ह । इसपर कुछ प्रकाश डालें ।”

अधोरनाथजी जमे कुछ परशानीमें पड गये, बोले ‘व्यापकता व्यापकता बहुत हद तक तो ह ही । अब प्रश्न ह कि यह व्यापकता कितनी व्यापक ह ?

इतिहासकी व्यापकताका मतलब व्यापकके महाभारत-जमे इतिहासने रूँ, या वागीश्वरके रामायण-जमे ग्रथमे, ता निश्चय ही इन प्राचीन ग्रन्थानी तुलनामें चाँच-द्रलेक कम व्यापक ह । ऐसे ही गोस्वामी तुलसीदासजीके ‘रामचरित मानस म भी इसकी व्यापकता कम ही ह । लेकिन ये तो महाकाव्य ह । इनकी व्यापकतामे इस कथाकी तुलना कहाँ की जा सकती ह ? फिर व्यापकता ही तो अंतिम कमीनी नही ह । गहराई भी तो एक चीज ह ।’

अधोरनाथ जम कुठ साचमें पड गय । धमकर बाले, "एक बात मुचे अब सूचती है । इस कथाकी प्रमुख विषयता 'चाल्ता' है 'ध्यापयता' नहीं । इसमें शायद गहराई अधिक ह, लन्गार्द-बौडाइ कम ही है । वैसे यह परस्पर विरुद्ध नहीं । भेद मात्राका है, गुणका नह ।'

मैंने इस बहसका क्रिहा आगे बताना अच्छा न समया ।

फिर, कई एक बातें लिमाग्रमें था । जस, पण्डित धीर शर्मा समाजम पांच सात ससूत्रक इत्याक बात जाते है । उनका अर्थ वे जानते ह, हम तो नहीं जानते और हमारे-जस असम्ब्य पाठक है । उनके लिए क्या धीर गमा अर्थ बहनुकी आसत भी नह । लगा सकते ? या पण्डित व्यामकज गाम्त्री टिप्पणीमें इनका अर्थ नही द सकते ? फिर कुछ उद्वाधन-आवाहनवाले वाक्य ह । 'उदा, जागा, एक हा जाओ !' जसी अपीलें ह ।

इसके अगवा, एक बात क्यासे अन्तके बारेमें । वैसे जो कुछ धनवान् दृग् बह किन्ही एक या दो पात्रके साथ घटना तो स्वाभाविक लगता । लेकिन प्रत्या-चक्र बनी तरंगम चल पडा ह । भद्रपादकी भद्रकागीका अपरुता मित्र गया है, एन ही चोत्रमें गाह धराशाया हो गया ह, भद्रकागी पर-बडे पत्नीका उरुदू फिर गयी ह, भनाने अपन ही मालेसे अपनेका भाव लिया ह और बटू जिम्मे गोरमें ह बह रानी चद्रलेखा ह । इनमें-में एकाध तक ता टाक ह ऐद्विन सदमा सम एक साथ घटना असम्भ्व है । लगता ह जस अब अन्त करना ह, इन्हीं सब कुछ एक साथ गट्ट मट्ट कर लिया गया ह ।

फिर, प्रारम्भमें तीपक 'चाचबद्रलेख' ऐजा ह जस कि इन्हीं चन्द्र चन्द्रके पहले चहारलावारी खीच ग गयी हो और बननेपर गहरका अ-अ-आना गिया उमक पार बसा ही ।

यह सब कुछ बातें मेर लिमाग्रमें तब ना था । जद्विन चन्द्र चन्द्र इत्या एक ता निष्ठाकारक मित्राज लगा, दूसरे चन्द्रका एक ही पत्रमें चन्द्र चन्द्र ह 'समरसका नाँह दोप गुसाद ।' और 'चारवद्रलेख' 'मन्त्र' चन्द्र चन्द्र राय नहीं ।

मैंने टोका "शास्त्रीजीने कहा यह भी तो लिखा है कि आप चाहते हैं कि आपकी कथाका प्रचार हो। आप प्रचार क्या चाहते हैं?"

अधोरनाथ कुछ तो ठिठके, फिर उखड़कर बोले "यह मेरे मनकी मौज है, 'स्वान्त सुप्ताय' ह।"

मैंने फिर टोका "इतना कहकर तो अब गोस्वामी तुलसीदासजी भी नहीं बच सकते। मनकी मौज ह, तो प्रचारको क्या जरूरत है?"

अधोरनाथ बोले "क्या क्या रोचक नहीं लगी? लीगाना मनोरञ्जन नहीं हुआ?"

मैंने कहा "कथा तो बहुत बढ़िया लगी। दुश्मे ही कह चुका हूँ कि यह मुचपर छापी रही। लेकिन मेरा प्रश्न है कि इतनी बढ़िया रचनाके लिए कोई बड़ा ही सकल्प होना चाहिए न?"

अधोरनाथ अब असमजसम पड़े "अब बड़ा-छोटा सकल्प जो ह सो तो यही ह। हा चाहो तो यह जोड़ सकते हो कि यह विदेशी आक्रमणके सदभ्रममें प्रजाम आरम विश्वास बना रहे अपने गौरवमय इतिहासकी प्रेरणा जाग्रत रहे, यह भी इसका एक प्रयोजन ह।"

मुझे सतोप तो न हुआ। लेकिन कामचलाऊ जवाब मिल गया। इसलिए इस सिलसिलेका अंतिम प्रश्न पूछा, "अच्छा यह बताइए कि सामाजिक दृष्टिसे आपकी यह कथा प्रगतिशील है या प्रतिक्रियावाणी?"

इस प्रश्नपर अधोरनाथ ऐसा हँसे कि जगा कि छत ही उड़ जायेगी। जब हँसो थमी तो बोले 'यह क्या तुम्हारा प्रश्न है? तुम्हारा तो नहीं ह। हाँ यह प्रश्न अगर कोई पूछे तो उसे नामवर सिंहजीके यहाँ भेज दना, वे जवाब दे लेंगे।'

म हँस पड़ा, पछा 'अच्छा महाराज, एक अंतिम बात। आजकल 'चारुचंद्रलेख की समीक्षाग्राम यह बात उठायी जा रही ह कि यह ह क्या? ऐतिहासिक उपन्यास ह? या सांस्कृतिक इतिहास? या ऐतिहासिक रोमांस ह? या शुद्ध प्रेमकथा ह? आखिर यह है क्या?'

अधोरनाथ इसपर जँम जी-जानसे बिगड़ गय, बोले ऐसी आलोचनाएँ तो घर-बडाना धंधा ह। मुझे इमसे क्या मतलब कि यह क्या है? मर लेंगे तो यह जो ह, सा ह। हाँ, इन आलोचकोने अलव्रत्ता यह कह दो कि कपट कपाट खोलवर पहले 'चारुचंद्रलेख पढ़ें। इसकी सुगंधसे अभिभूत हो, जैसे मैं हुआ था। फिर लिख सकें तो लिखें। समझे? क्या समझे?

मुझे सक्नेमें आया देवकर अधोरनाय बनायास हा ठहाका लगाते उठ सड हुए और जानेका हुए । उनकी हँसी भूँजती ही नहीं, काचती रही । और तब मेरी आँस खुल गयो । देखा बिरली दूधका गिलास गिरा गयो ह । गिलास अभी भी जमीनपर खनखना रहा है । बगलम 'चारुचन्द्रलेख'की प्रति पडी हुई ह । मैं सोचता हूँ कि यह क्या हो गया ? यह है क्या ? यह सब है या एक मपना ? इस बहसमें पड बिना, छेप रातम इस साक्षात्कारम प्राप्त प्रस्तावरका लिख डाला ।

अब यह जो भी ह, सो जसका तस प्रस्तुत ह ।



अजनबीपन प्रेमके अभावका स्रोतक है सन्नाम भविष्यकी उज-बनलके विषयमें निराशारा परिणाम है और अनान्या समाजके प्रतिष्ठित बहे जानेवाले लोगोंके आचरणके भाग परायण होनेका फल है । हममें आगाका केरम एक ही स्थान है—बह है साधारण जनताका स्वस्थ मनोमन । आगामी २०-२५ वर्षमें इसके सव-संगीत चित्तम स-प्रामकी जगह ज्ञास्था अजनबीपनकी जगह प्रेम और आ-काब स्थानपर निरवासका तर गे हिलोलित होंगी । कवितामें छ-का महत्त्व बढ़ेगा । वह प्रमुख साहित्यीग नहीं रहेगी कश्तानीम राग तत्त्व क्रमशः शिथिल होला जावेगा और अर्थाभारते कोमिन रचनामें बढ़ती जायेगी । यथाथका जा नसमान रूप है बहु बहुत दिन तक यों का रवा नहीं रहेगा । सज् दो हजार ईसवीका साहित्य अधुनिक अ-म यथाथ नहीं होगा । बहु बहुत कुछ चरिताथनादीके रूपमें प्रकट होगा । विभिन्न देशकी आ-तरिक व्यवस्थामें भी रह रह कर बिरकाट ह ता रहेगा । परन्तु हममें साहित्यकी नयी नयी शक्ति भी प्रवृत्त होती रहेगी । आगामी ३३ वर्षमें हिन्दी साहित्य स्वस्थ होगा अर्थात् देशके भीतरा जन जीवनकी उगती हुई ज-काभाके साथ ब-म रचना हुआ अगे बढ़ेगा । जहाँ तक रचना मक साहित्यका प्रन है वह अधिष्ठाधिक जन जीवनक सम्पामें अगगा और जन जीवनको चरिताथतकी खालमें अधिष्ठाधिक सलगन हुए ।

—दिनमान १३ अगस्त १९६७

द्विवेदीजीके उपन्यासोका सांस्कृतिक परिवेश

• •

त्रिभुवन सिंह

अवतक प्रकाशित आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदीके दो उपन्यास 'वाणभट्टकी आत्मकथा' और 'चारुचन्द्रलेख' क्रमसे हृदयद्वन्द्वन कालीन एव मध्ययुगीन भारतीय सस्कृतिकी सजीव शाकी प्रस्तुत करते हैं। द्विवेदीजीने जिस कालको अपने उपन्यासोका उपजीव्य बनाया ह उसका सम्बन्ध हमारे अतीत कालीन भारतकी सामंती सस्कृतिसे ह। द्विवेदीजीने अपने व्यापक अध्ययन एव अदभुत रचनात्मक मौलिक प्रतिभाके कारण अतीतमें विखरे सूत्राको जोटकर एक ऐसा प्रेरणादायिनी दृग्भित्तिका निर्माण किया है कि जिसकी टेक लेकर वत्तमान पीढी अपनी भावी जय-यात्राका सफल अभियान कर सकती ह। इतिहास ही किमी दश अथवा जातिकी सम्पत्ति होता ह। इतिहासम हुई भूलो एव सफलताओ को सामने रखकर किसी भा जानिओ अपने कर्त्तव्यकी भावी रूपरखा निश्चित करनेम सहायता मिलती ह। द्विवेदीजी आशावादो प्रगतिशील साहित्यकार ह, जिमसे मानवके पराभवकी आशकासे ही वे विचलित हो जाते हैं। उसके सदगुणो एव महती शक्तिपरन्ते उनकी आस्था कही भी टिगती नहीं जान पडती। वे उसकी हीनावस्थाका अनुभव करते हुए भी उसकी अतीत गरिमाका स्मरण दिग्ग कर उसे जातीय गौरवके अनुकूल बनानेकी कामना करते रहते ह। अपने साहित्यके माध्यमसे उहोने यह जो महत्त काय किया है, उसमें उाके सांस्कृतिक परिवेशमें लिखे ऐतिहासिक उपन्यासाने सर्वाधिक योगदान किया ह।

सांस्कृतिक ऐतिहासिक उपन्यासोके माध्यममे दशीय एव जातीय सस्कृति तथा परम्परागत भावताआका वत्तमान सामाजिक हितमें चित्रण किया जाता ह। या तो यह प्राय सभी ऐतिहासिक उपन्यासोका प्रिय विषय ह, पर इस प्रकारके उपन्यासाम ऐतिहासिक पृष्ठवा एव घटनाआका केवल साध्य भर लिया जाता ह। उपन्यासकारके विषय संग्रहके मात ऐतिहासिक तथ्यात्मक घटनाएँ न होकर तत्कालीन साहित्य तथा लाजजीवनका अनुप्राणित करती हुई चली आती

किंवदंतियाँ एवं आचार विचार हुआ करते हैं, जिनका सजीव चित्रण वह अपनी कल्पनाशक्तिके माध्यमसे करता है। 'बाणभट्टकी आत्मकथा में आये प्रमुख पात्रों में बाणभट्ट, समाप्त हृदयद्वन्द तथा राजश्री-जैमे कुछ पात्रोंको छोड़कर दोष पात्र उपयासकारकी कल्पनाकी उपज है। जिन घटनाओं एवं परिस्थितियोंकी सहायतासे उपयामका कलेवर निर्मित है, उनके उपजीव्य ऐतिहासिक घटनाएँ न होकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक घटनाएँ हैं जिन्हें प्रस्तुत करनेमें द्विवेदीजीने तत्कालीन वाक्यमें प्राप्त सामग्रीसे सहायता ली है जो उस वाक्यकी सांस्कृतिक शैली प्रस्तुत करनेकी दिशामें एकमात्र प्रामाणिक सामग्रीके रूपमें स्वीकार की जा सकती है। 'चाहचदलेख'के प्रमुख पात्र 'सातवाहन तथा रानी चदलेख'की ऐतिहासिकता सन्देह है। कथामें रंग भरनेवाले विद्याधर तथा जट्टण-एमे एकाध नाम उपयाममें आये हैं जो उपयामका घटनाओंका इतिहाससे जोड़नेका असफल प्रयत्न करते हैं अथवा उस कालमें प्राप्त धार्मिक विपमता, राजनतिक विश्रुतता धर्मयानी सिद्धो तथा नाथपथा यागियोंकी तंत्र-मंत्र साधना और अभिचार आदिके चमत्कारके बानमें ही उपयामकारने अपना सांस्कृतिक प्रतिभाका सर्वाधिक उपयोग किया है।

द्विवेदीजीने संस्कृतिको सर्वांग अयम न हेतु उसके व्यापक स्वरूपका ही अपने उपयाममें स्थान दिया है। हिन्दीमें संस्कृति अंगरजी शब्द 'बचर का पर्याय हो गया है और उसका प्रयोग करने में सर्वांग और व्यापक दो अर्थों में होता है। जिन संस्कृतिको द्विवेदीजी ने महत्त्व प्रदान किया है वह सर्वांग नहीं बल्कि व्यापक संस्कृति है। इस प्रकार संस्कृति समस्त सोचने हुए व्यवहार—उस व्यवहारका नाम है जो सामाजिक परम्परा में प्राप्त होता है। इस अर्थ में संस्कृतिको सामाजिक प्रथा 'कर्म'का पर्याय भी कहा जाता है। सर्वांग अर्थमें संस्कृति एक चाणनीय वस्तु मानी जाती है और संस्कृत व्यक्ति एवं दलाप्य व्यक्ति समझा जाता है। इस अर्थमें संस्कृति प्राप्त उन गुणोंका समुदाय समझी जाती है जो व्यक्तिव को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं। 'बाणभट्टकी आत्मकथा' में हृदयकीन भारतमें प्राप्त सामाजिक, धार्मिक एवं राजनतिक गति विधियाँ बड़ा ही सरस चित्र मिलता है। दशमें लोग ब्राह्मणोंका विनया अधिक सम्मान करते थे, उगका कुछ-न-कुछ आधार तो हमें 'बाण' से प्राप्त ही जाता है। ब्राह्मणोंकी सामाजिक स्थिति सम्बन्धमें यह जो कुछ भी पता है उससे स्मृतिवर्षे दृष्टिकोणका समर्थन होता है। 'बाणभट्ट' कृत हृदयचरितम् एक स्थानपर आता है (अमरतुलसीदासजी जायस द्विजमनो माननीया—हृदयचरित ५० १८) जो

१ दिने उदिय केश ५० ०१।

केवल जन्मे ब्राह्मण ह, परन्तु जिनकी बुद्धि सस्कारमे रहित है वे भी माननाय है। 'निपुणिका' और 'भट्टिनी' का बार-बार यह कहना कि बाणभट्ट, तुम ब्राह्मण हो न ? तथा बाणभट्टको प्रथम भाजन बराकर ही अन्न ग्रहण करना और उसे एक ब्राह्मणोचित सत्कार देनेके लिए सदब प्रस्तुत रहना आदि उस युगमें स्वीकृत ब्राह्मणोनी सामाजिक श्रेष्ठताका प्रमाण है। निश्चित ही यह एक सामाजिक शिक्षाचार ह जो भारतीय संस्कृतिका अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग रहा ह। 'बाण चन्द्रलेख' में भी धीर शर्मा और विद्याधर, राजा सातवाहन और रानी चन्द्र लेखा-द्वारा जिस सम्मान और आदरके अधिकारी माने गये ह उसमे भी इसी सांस्कृतिक चेतनाका परिचय मिलता है।

छुआछूतका रोग भी ऐपकालीन भारतमें अपनी पराकाष्ठापर था। 'ह्वेन सांग'के अनुसार 'बसाई', 'मछुए', 'मेहतर', 'जल्लाद' तथा 'नट' आदिके निवाम-स्थानोपर पहवानके चिह्न लगा दिये गये थे और वे गरमे बाहर रहनेके लिए बाय थे तथा गाँवमें जाते समय बायी ओर दबकर चलना उनके लिए अनिवार्य था। बाणभट्ट बादम्बरीम जिस समय चाण्डाल बचाने सुगमेको लेकर राजा गूढकके दरबारमें प्रवेश किया उसने राजाको मचेत बननेके लिए कुछ दूरमे ही हाथमें लिये हुए जनरित वस-सण्डको पीटा। इस समस्याका प्रबन्ध द्विवेदीजीने अपने उपयासमे बादम्बरीकारके रूपमें नही कराया ह। द्विवेदीजी प्राचीन-संस्कृतिके उनी रूपको ग्रहण करना चाहते ह जो वर्तमान सामाजिक जीवनको स्वस्थ रूप प्रदान कर सके। अस्वास्थ्यकर सामाजिक दुरीतियोंमे संस्कृतिके नामपर स्वीकार कर लेना उनके लिए कठिन ह और यही कारण हें कि द्विवेदीजीकी प्रगतिशीलताका परिचय मिल जाता है। समाज विरोधी वष किन् स्वतंत्रतापी भी द्विवेदीजीने कही भी अपना समर्थन नही दिया ह। यही कारण है कि उन्होंने प्राचीन संस्कृतिमें प्राप्त अस्वस्थ परम्पराको अपने ढंगसे स्वीकार कर उसे समाजके लिए अत्यन्त उपयोगी बना दिया है। भट्टिनी और निपुणिकाके आचार निष्ठ व्यवहारा-द्वारा जिस 'गुचिताकी' क्षापी मिलती ह वह और कुछ नही समाजमें व्याप्त अवाञ्छित छुआछूतका वाञ्छित स्वरूप ह। अन्तर्जातीय निवाहोका उम समय प्राय अभाव था, पर कुछ-न-कुछ होते ही रहते थे। बहुपत्निकी व्यापन प्रया थी, इसका संकेत 'बाणभट्टकी आत्म ब्या और बाणचन्द्रलेख' दाना ही उपयामोंमें मिलना ह। जहाँ कही भी द्विवेदीजीने इन प्रकारकी दूषित सामाजिक प्रथाओंकी चर्चा की ह उनका अभिप्राय केवल उनका इतिवृत्तात्मक बणन प्रस्तुत करना नहीं रहा ह, बल्कि उनके बुपरिणाममे वर्तमानकी आगाह करना चाहा ह। 'बाणभट्टकी आत्मब्या'

साहित्यिके तन्मे शिवालिख

में वर्णित राजमहल तथा छाटे कुल्का जघन्य एव अश्लील नृत्य तथा 'चाञ्चद्र लेख' में आये हिंदू शासकावधि अन्त पुराका उल्लेख इसी तथ्यकी ओर सकेन करना ह । न तान कितनी देवियकी जीवनका सवनाग इस दूषित पया द्वारा हुआ है— चाह वह महामाया' रही हो अथवा 'नाटी माँ' ।

प्रश्न यह उठता है कि 'वर्तमान' के सन्दर्भमें विगत सस्कृतिकी चर्चाकी उपयोगिता क्या है ? सस्कृतिकी व्याख्या करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह जीवनको जीने योग्य बनानेका प्रमुख माध्यम है । इसी आधारपर हम विगत पीढ़ियाकी सम्बन्धपर विचार करते हुए यह कहकर उसकी अधकृता प्रमाणित करते हैं कि अच्छा होता वह सस्कृति बनी रहती । जिन सस्कृतिकी चर्चा द्विवेदीजीक उपयासाम हुई है उनका सम्बन्ध सामाजिकी सस्कृतिके वैभव और परामर्श-नाशमे है । निरिक्त ही द्विवेदीजीका उस सस्कृतिमे कुछ ऐसे तत्त्व मिले ह जिससे वर्तमान विषम घुटनशाल जीवनका जीन योग्य बनाया जा सकता है । सामाजिकी सस्कृतिमे भौतिक सुखोंको महत्त्वपूर्ण स्थान मिला था । इसके कारण जिस प्रवृत्तिमार्गी भावनाका उदय हुआ उसकी प्रेरणामे मरण और अलंकरणकी वृत्ति पूर निरन्गी । इस वृत्तिका उत्पन्न राजन्य वर्गका अन्तश्चेतना-म था जिनमे उनक सम्पूर्ण जीवन और परिवेशको अभिभूत कर लिया । वाण-नटका आत्मकथा' में विव्रित और 'चाञ्चद्रलेख' में आये उल्लेखोंसे स्पष्ट हो जाता है कि निवेद्य कालकी सस्कृति मानव जीवनके भौतिक सुख संप्रदवी आर अत्यधिक अग्रमर हा उठी थी और आध्यात्मिकताकी उपेक्षा कारण जो अनन्त-न आने लगा था उनमे समस्त भारतीय जनजीवनको क्षयशोर लिया ।

अनेक घमोंके दुराग्रह, उनकी कट्टरतासे उत्पन्न बन्ध और विविध प्रकारक अन्धविश्वासोंका जा चामाजिकी क्षण निवेदीजीके दोनों उपयासाम भिन्नता है, उसका एकमात्र कारण यही है कि निवेदीजी जीवनको जीनेयोग्य बनानेवाले उन सभी तत्त्वोंका उल्लेख करना चाहते हैं जिन्गी मानवको आवश्यकता है । प्रचलित सामाजिक धार्मिक एव राजनतिक विकृत स्थितिक जो विश्व उपयासमें आये हैं, व इस प्रकार रने गये ह कि पाश्च सञ्ज ही वांछित ब्राह्मिणता प्राप्त कर लेना है । एक एतिहासिक परिवर्तन रची गया वृत्तिरा यही महत्त्व है । आज विगतकी पुनर्जीवित करन अथवा प्रमाण अन्ध हानेवांगी सस्कृतिकी आधुनिक परिस्थितियामें वर्तमानक वृत्तिय अग्रभाष्य बाने प्रस्तुत हो सकती है । वाणभट्टरी आभरणा और 'चाञ्चद्रलेख' में भी इसका अभाव नहीं है पर निवेदीजीने भरसक प्रयत्न किया है कि भूतकालीन योनाका सदुपयोग हम सामयिक सम्बन्धके विकास हितमें ही किया जाय ।

अतीत क्या

भारत सदासे धमप्राण दश रहा ह । आज भी धमबुद्धिवाला व्यक्ति चाहे किसी भी सम्प्रदायका क्यो न हो सभी धर्मोंके प्रति आदर भाव रखता ह । श्व वैष्णव मन्दिरके सामनेसे जत्र निकलता है तो मस्तक झुका देता है और ठीक ऐसी ही स्थिति एक वैष्णवकी शिवमन्दिरके सामने आनेपर होती ह । हिन्दू जातिके निर्माणमें विविध धर्मोंने समय-समय पर अपना हाथ लगाया ह । धम युगकी उपज ह । जो धमयुगीन परिस्थितियोंको साथ लेकर नहीं चलता वह निर्जीव हो जाता ह । इतिहास पीछे मुड़कर नहीं देखता, उसके पीछे आगेकी ओर बढ़ते ही जाते हैं । परिस्थितियाँ बदलती रहती ह जा समय-समयपर आवश्यकतानुसार नवीन धमको जन्म देती ह । समयक्रमम जाये दायाको भी धमके नामपर स्वीकार कर लेना आस्तिकता नहीं है, ऐसा द्विबदीजी भी स्वीकार करते जान पड़ते हैं । उन्होंने चारचन्द्रलेखक अंतिम पृष्ठपर अघोरनाथका जो परिचय दिया ह उसमें और कुछ नहीं उनकी स्वयंकी मायताए ह । अतीतकी घटनाओंका उनके लिए क्या महत्त्व है और उसे उन्होंने अपने क्या साहित्यमें क्या महत्त्व प्रदान किया ह इसमें स्पष्ट हो जाता ह । 'अघोरनाथ आधुनिक विचारोंके पुरानी परिपाटीमें सिद्ध ह । वे भावुक और कल्पनाप्रवण जीव ह । कथाओम ऐसे विचार मिलते ह जा आधुनिक युगकी दृष्टि पर सबत्र उनपर पुराने ढंगकी भाषावा आवरण है । प्राचीन साहित्य और सस्कृतिके द्विबदीजा कितने पारंगत पण्डित ह, इसे सहज ही उनकी कृतियासे जाना जा सकता ह पर व सममानयिक परिप्रेक्ष्यम अतीतको सामने रखकर किस निष्कर्षपर पहुँचते हैं यह विचारणीय ह । सत्यको झुठलाना चाहते ही हैं । भारतकी अतीत हिन्दू-सस्कृतिका जयघोष करनेवाले द्विबदीजी हिन्दू विरोधी इस्लामी सस्कृतिकी शक्ति और सामर्थ्यकी जत्र चर्चा करने लग जात ह ता हम उनकी उदारता और कृपादान एक साथ होत हैं । जो महान इस्लाम आ रहा ह उसे ठीक-ठीक समझा । उसके एक हाथमें अमृतका भाण्ड ह दूसराम नान कृपाण । वह हममानका मन्त्र लेकर आया ह, मन्त्र-माले आचारोंका चनीली देनेका अपार साहस लेकर उद्भूत हुआ ह और रासनम जो बाधक हो उसे साफ कर देनेका विद्वत् सवल्प लेकर निकला ह । उमन लाया-करोडाको पैरा तत्र दवाकर उसकी मांस मज्जारे दृष्टपर प्राणाद मन्त्र करनेकी श्रुति नहीं लिखायी । सड़े गले आचाराए व विपमताओंके जिस दिपने देश और जातिका निर्वाय बना दिया उसके विवरण

१ चारचन्द्रलेख, पृ० ४३८ ।

२ , , ३६१ ।

को स्वीकार करनेमें द्विवेणीजीको किसी भी प्रकारकी हिचक नहीं जिससे वे स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि हिन्दू सभ्यतिने मास-मञ्जारे दूँपर जो प्रासाद रखा किया है, वह बहनवाला है। यदि उसमें आसक्ति रखनवाले समय रहते नहीं चेत जात ता उनका अस्तित्वपर हा प्रानशाची चिह्न लगा है।

मानवतावाणी लेखक होनेके नाते द्विवेणीजीने समाजकी स्परस्त्राको प्रभावित करनेवाले उन मन्ना तन्त्रापर अष्टि डाले हैं जो मानवका मानव बनानेमें सहायक मिद्ध हात है। समसामयिक समस्याआवे सन्भमें ही वे मानव धर्मकी कल्पना करने हैं न कि जन्ता एक अन्विक्रमासामे प्रसित अद्विवादिताक आशरपर। उनके अनुसार—' सामाजिक मगलके लिए जो सहज प्रवृत्ति है उसीका नाम धर्म है।' मानवी शक्तिपर भरोसा करत हुए वे कहते हैं—“स्वगता स्वता पृथ्वापर भाग-जलवार लेकर नया आता। जा लोग धमबुद्धि सम्पन्न ह उन्हीको वे सुबुद्धि और शक्ति देने हैं। यह सुबुद्धि ही देगता है। शक्ति ही देवता ह।”^१ जिन लाभान धमका ठका ले रखा है और अपने बायेंमि सामाजिक हितको हानि पहुँचा रहे हैं वे जिनन भी महान् और आशरणीय कगान हा द्विवेणीजी उन्हें मम्मान देनेको तयार नहीं। उन्हें कहते दर नहीं लगती कि यह जा विरतिवचन है वह किसी ममय बौद्ध भिक्षु था वेक्रेण मट्ट कुष्ठ अत्रय लपगा लगता है।”^३

टी० एम० इलियटन मम्भनिक सम्भ्रममें अपने विचार व्यक्त करत हुए कहा है कि “सभ्यति विगिष्ट लोगके एक निश्चित म्यानपर साथ रखने और जावनयापन करनका एक निश्चित क्रम है। विगिष्ट लगाने उसका तात्पय उदा। लगाने हा सकना ह, जिनका सामाजिक म्यति अय दष्टियनि साथ भौतिक दष्टिष भा अच्छी हा। तभी वे समसामयिक परिस्थितियोंपर नियन्त्रण रगत हुए अपने प्रभावना उपयोग कर एक सामाजिक अनुागमागना सृष्टि कर सकते हैं। सामाजिक, साम्भ्यनिक एव राष्ट्रीय जावनमें पारम्परिक मम्भचाना कग महत्तर हाता ह जिसने अभावमें राष्ट्र एव आतिका जावनीशक्ति अघत टुरत हो जायगी। एग राष्ट्रिय सभ्यति जो स्त्रच्छमा अनियमित परिस्थितियोंके घात प्रतिपातक कारण अपनेका अय स्याताम विच्छिन्न कर लेता ह वह उपाका विषय बन जानी ह। इसक साथ ही यह दग जा अय दगाकी सभ्यतियोंके कुछ प्राप्त हो करता है पर उन्हे दग्गमें देनेक लिए उसक पास कुछ नहीं और वह

१ अ दवद्वन्द्व, पृ० २६६।

२ " " " ३००।

३ बाएनद्वन्द्व भासद्वन्द्व, पृ० २९२।

देश जो अपनी सस्कृतिको दूसरेपर लादना तो चाहता ह पर दूसरे देशोसे कुछ ग्रहण नही करना चाहता वह आदान प्रदानके अभावसे प्रसित होता ह। बाण भट्ट की आत्मकथा और चारचन्द्रलेखके द्वारा द्विवेदीजीने हमारी सस्कृतिके कुछ ऐसे गौरवमय पधावा उद्घाटन किया ह जो कि वत्तमान पीढीको दायव रूपमें मिले है। अपनी प्राचीनताके कारण तो हम अय सस्कृतियाको प्रभावित करते ही रहे हं, पर साथ ही आज हमारे पास इतनी पूँजी ह कि हम दूसरोको बहुत कुछ दे सकते ह। जहाँतक हमारी ग्रहणशीलताका प्रश्न ह इतिहास सामी ह हमने सद्गुणोको बराबर आत्मसात किया है चाहे वे किसी भी सस्कृतिने क्या न रहे हो। द्विवेदीजीके दोनो ही उपयासामें विभिन्न विचारधाराओ, कलाओ एव धार्मिक मायताआवा उल्लेख हुआ ह पर जान-बूझकर किसीके प्रति पशपातका न तो उनमें आप्रह पाया जाता ह और न ता किसीके प्रति घणा उत्पन्न करनेका ही प्रयत्न किया गया ह। हपवद्धनकी राजसभाका जो रूप प्रदान किया गया ह। क्याम आया ह उसमें समकयकी भावनाको ही बल प्रदान किया गया ह। सम्राट हपवद्धन स्वय एक सस्कृत ब्यक्ति थे जिनके द्वारा हिन्दू सस्कृतिका अविवाधिक विकास हुआ। टी० एस० इलियटका कथन ह कि सस्कृतिक विकासमें महत्त्वपूर्ण याग देनेवाला यक्ति भी सदा सस्कृत यक्ति हा नही होता। बाणभट्ट की आत्मकथाम सस्कृत और असम्भृत दाना प्रकारके यन्त्रिया वा चचा मिलती ह जो तल्लालीन सस्कृतिके विकासमें समान रूपस अपना योग दान करते ह। सम्राट हपवद्धनकी शालीनता ता इतिहास प्रमिद्ध ही ह कुमार वृष्णवद्धनने जिम उदात्त चरित्रकी कल्पना उपयासकारने की ह वह जागे आनवाली सम्य पीन्त्रियोंके लिए अनुकरणीय ह। छाटे राजकुलस चारकी भाँति पुसकर भट्टिना का निकाल जानवा जो कानूनकी दष्टिमें अपराध बाणभट्टने किया था उसे क्षमा करनेकी क्षक्ति कुमार वृष्णवद्धन ऐसे सस्कृत राजपुरषम ही हो सकता ह जो बाण द्वारा कहे गये कट्ट वचनानो भी नउरअ दाज कर जाते ह। विविध धर्मोंके प्रति कुमारकी सहिष्णुता और 'भट्टिनी'के बहाने रूपमें समाप्त करनेकी उदारताने उसके ब्यक्ति-वका स्वहणीय बना लिया ह। सामती सस्कृतिने विकासमें कुमार वृष्णवद्धन-ऐसे केवल सस्कृत राजपुरषावा ही याग दान नही हाता वकि छाने राजकुल जमे स्थानोपर भी सस्कृतिवा विकास होता

1 The person who contributes to culture however important his contribution may be is not always a cultured person — Notes towards the definition of culture
T S Eliot

शान्तिनिदेशनस शिवालिक

है। नाग विनायमें आकृष्ट दूर छोट रागदुःख-त्रय सामन्ता-द्वारा ललित कलाका का प्रथम किया जाता था। यद्यपि वे साग समारम्भ अपनी ऐतिक इच्छाकी ततिक लिए करत थे पर अनजाने वे एक बहुत बडे समुदायका पापण करते हुए विभिन्न कलाओंकी सदा कर जाने थे सुवहसे गाम तक सामन्ताकी वंकाका क्रम कया प्रदानका ही क्रम था। यह दूसरै बात है कि उनकी नारीविपयक दुबलताक कारण पापावारका भी कयाका मिला रहा जिसमें 'भट्टिना'-जैसी दकियाका यन्त्राणै सत्नी पत्नी थी। मस्त्वतिका अय हम यहापर सकीण अर्थोंमें न लकर व्यापक अर्थोंमें ले रहे हैं।

प्रायः लाभ मस्त्वतिका धमसे अलग करक नहीं दस पाते आर एव प्रकार व मस्त्वतिन पग्विवाका अयन्त सीमित कर दन हैं। तिस प्रकार कलाकाका उच्य मानव जीवनका सुखमय बनानक लिए समय-समयपर हाता रहता है उची प्रकार समय-समयपर धमका उपरेका भी निश्चित हाती रहती है। "धम मानव निमित्त है धम मानवका निर्माता नहीं।" कभा-कभा तो धमका अमानुकरण समाजक विनासमें घातक सिद्ध हाता है। दुसरीएके काग मानसने धमको 'अप्राम की सगा ती है जा लागका सनी लियामें सावने ही नहीं दता। अत कभा-कभा सकीण अर्थोंम स्वाकृत धमका बहिष्कार आवश्यक हा जाता है। माकान स्पष्ट शागम स्वीकार किया है कि "यथाय मानवाय मुक्ती यत् माँ हा कि उमका उपगनिक लिए मिथ्या सुखकी मष्टि करनेका धम का बहिष्कार हा।"

द्वितीयजीन सुत्र एव आवश्यक धमक बहिष्कारका मायता प्रदान की है। य स्पष्ट स्वाकार करत हैं- यह सब मिथ्या है। निद्विद्योके पाछे पागल बननकी इस हवान याथायम-धमकी प्रष्ट कर लिया। कायरा और नगागका अपना नेता समपनवागी गतिता दगा जो हागी चाहिए वगी आज इस जन-समूहकी दगा हागी। निरयक मत्रोंका निरयक रह दगमें प्राण गतिता सचार नहीं कर गत्रों। मनुष्यका तपता बनानक लिए आनविश्वास और ल सपमकी आवश्यकता है।^३ त्रिवात्राक कया सात्रियमें एव हा धम और मस्त्वतिक प्रति आस्था धन की गया है जा मानवका दवता बना सक। धम और कयाका परस्पर सहयोग समाजक लिए अत्यंत उपयोग सिद्ध हाता है। कगमन सवत्ना

१ Man makes religion religion does not make man
 २ The removal of religion as the illusory happiness of the people is the demand for their real happiness — Karl Marx
 ३ धारक ११७, पृ० ११७-११८।

अनंत कया

धार्मिक संवेदनासे विच्छिन्न होनेपर दुबल हो जाती है और धार्मिकता कलात्मक संवेदनासे विच्छिन्न होकर इसी स्थितिको प्राप्त होती है। द्विवेदीजीने वही धार्मिक भावनाओंको प्रथम नहीं दिया है। वे उसे कल्पना-जगतकी वस्तु न मानकर उपयोगी कलाओंके साथ जोड़ना चाहते हैं। मानवतावाणी लेखकके लिए यह आवश्यक भी है। सस्कृतिको पूर्णरूपेण चेतनाका ही विषय नहीं बताया जा सकता। सस्कृति जिसके विषयमें हम पूर्ण रूपमें सचेत न हो, चेतनाकी समग्रताको प्रस्तुत कर भी नहीं सकती। सस्कृतिका काय उन व्यक्तियों की प्रक्रियाओंको निश्चित निश्चाकी जोर प्रेरित करना है जो इस बातकी व्यवस्था करना चाहते हैं जिसे सम्यताकी सज्ञा दी जा सके। वाणभट्टकी आत्मकथा में वर्णित व्यापक सस्कृतिस अनुशासित विशिष्ट जगमुन्याय ही हृदयकालीन सम्यता का नियामक है।

एक ओर जहाँ द्विवेदीजी धर्म और सामाजिक व्यवस्थाकी अत्यन्त उदार व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, वहीं यह प्रश्न उठता है कि उन्होंने विवेचनाके लिए सामंती सस्कृतिका ही क्यों चुना। ऐसे प्रश्नका उदाहरण उद्भावना उद्धाने कदा नहीं की कि जिसमें मानवको समान अधिकार दिलानेकी हिमायत की जा सकती थी। 'वाणभट्टकी आत्मकथा और 'चारुचंद्रलेख में द्विवेदीजीने धर्म, सस्कृति और समाजव्यवस्थाकी जा लौह प्राचार खींच दी है, उसमें उनके रोमांचिक कहे जाने वाले कल्पनाप्रवण पान छटपटा रहे हैं, उनका दम घुट रहा है। वे बंधनमुक्त होना चाहते हैं शक्ति संचित करते हैं पर बदनामी एक टास छाँकर मौन रहे जाते हैं। एक ओर तो उनके पान समासाध्यिक समाज व्यवस्थाके बंधनमें अपनका बंध पा रहे हैं दूसरी ओर उद्धाने अपनी व्यक्तिगत सस्कृतिका भी विनाश कर लिया है जिससे मुक्त होनेकी इच्छा रहा हुए भी परस्पर सम्बंधका प्रकाश उस दिशामें नहीं कर पाते। हाथ बटाते हैं मा बढाना चाहते हैं। पर जैसे सामन अग्निपिण्ड हो, जलनेके भयसे हतप्रभ हो जाते हैं। चाहे 'वाणभट्ट' 'भट्टिनी' और 'त्रिपुणिका हो, चाहे 'सातवाहन', 'चंद्रलखा' और 'मना'। यह मसोस स्नेह सम्य धाने क्षेममें ही प्राय दलनेको मिलती है। कही-न कही तो समको मन्त्र देना ही पड़ेगा श्रयया अराजकताकी स्थितिमें सामाजिक विश्रुत्वला समूची जातिका ल डूबगी। पूर्ण समताकी बात कल्पनाका वस्तु है। पूर्ण समता का अर्थ विश्वजनीन उत्तरदायित्व हाता है। समाजमें हर व्यक्ति निम्नतम या अधिकतम उत्तरदायित्व प्राप्त करता है। यही उत्तरदायित्व सामूहिक हितका क्षेत्र विदु बनना है। इस उत्तरदायित्वकी उपलब्धिमें व्यक्तियों सामाजिक स्थिति विशेष रूपसे उल्लेखनीय हानी है।

सामाजिक हितको दृष्टि व्यक्तिके उत्तरदायित्वमें भिन्नता भी हो सकती है। ऐम प्रजातन्त्रमें जिसमें हर व्यक्ति हर परिस्थितिमें समान अधिकारका अधिकारी समझा जाता है, सामूहिक हितके लिए लाभप्रद नहीं सिद्ध हो सकता। यही कारण है कि द्विवेदीजीने अपने कथा-साहित्यमें मध्यमको महत्त्व देने हुए अधिकार और कर्तव्यके परस्पर उपयोग सम्बन्धको महत्त्वपूर्ण माना है। याम्यनानुसार अवसर प्रदान करनेवाली समाज-व्यवस्थाको स्वीकार कर लेनेमें बाधा नहीं, चाहे वह वर्णान्धमको हो अथवा अर्थ किसी धर्मके आलापन विरहित हुई है। ऐसा करनेके कारण ही द्विवेदीजीने अपने उपन्यासोंमें एक विकासशील मनुष्यिकी समाहित कर सके है। मनुष्यिकी कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं है। योग-बहुत मात्र रचनेवाली विभिन्न गति-विधियोंको यह निश्चित है। इसमें मनुष्य-द्वारा परम्पराको चेतना, उत्तरदायित्व तथा व्यक्तिगत सम्बन्धी विषयोंकी चर्चाके लिए पूर्ण अवकाश रहता है। द्विवेदीजीके यहाँ उपन्यास ऐस प्रमाणों पर पड़े हैं।

मध्यम ने लिखा है कि वह कौन-सा महत्त्वपूर्ण पद है जिसको सत्कृति उत्पन्न करती है। इसका उत्तर देते हुए अपने कथा है कि वह महत्ता है, जो एसी व्यापक परिस्थितियोंका उद्भावित करती है जिसमें प्रेम, अहिंसा और समानताके लिए विविध भाव होता है। कलाकार सम्पूर्ण सामूहिक परिवेशपर दृष्टिगत करके कलाकृति के लिए हमेशा उपयुक्तता या अनुपयुक्ततापर विचार करता है। उपयुक्त सांस्कृतिक अर्थोंके उच्चतम और निम्नतम सम्बन्ध धर्म प्रभाव तथा नैतिकता और राजनितिक विचारोंकी व्यवस्था किसी-न किसी रूपमें विद्यमान रहती है। चेतना यन्त्रोंमें चलनेवाले विचारोंको ही सत्कृति अन्तिम रूप मान बनाता कभी भी समाज के निर्माण नहीं हो सकती। "मानव अस्तित्वका आधार मानव चेतना नहीं है बल्कि मानवता सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतनाका आधार है।" द्विवेदीजीने मानवके सामाजिक अस्तित्वको दृष्टिगत प्रदान करने के लिए ही समाज के लिए कलाकृति मनुष्यका स्वीकार किया है। चित्रकला और संगीत-कला सामन्ती मनुष्यिका मनुष्यके अंग रहो है। इन कलाकृति उपयुक्त व्यक्तियों मनुष्य बनानेके लिए उच्च समय-समयपर उपयुक्त शिक्षा प्रदान करने

1. It is not the consciousness of human beings which determines their existence—It is their social existence which determines their consciousness — Karl Marx

तकके लिए होता रहा ह। निरंकुश शासकके स्वभाव परिवर्तनके लेकर प्रेम प्रसंगमें आत्मनिश्चय तक यह कला सहयोगी मिश्र होती रही है। चित्रकलाकी लोकप्रियताके दशक हमें 'वाणभट्टकी आत्मकथा' और 'चारुचंद्रलेख' दोना ही उपयासाम होते हैं। 'वाणभट्टकी आत्मकथा'में उज्जयिनीकी प्रथम गणिका 'मदनश्री' प्रेमासक्तिके कारण वाणभट्ट का चित्र बनाती ह और 'चारुचंद्रलेख' में 'मना' 'सातवाहन'का चित्र बनाती है। ये दोना चित्र परोक्षमें बनाये जाते ह और दोनो ही चित्र उन नारियोंके सम्मुख आते ह जो चित्रके आधारपर व्यक्तिके विसी-न विसी रूपमें प्रेम करती ह। चित्र बनाये भी गये हैं ऐसी नारियों-द्वारा जो मौन प्रेमकी शिंवार बन चुकी हैं। दोनो चित्रांसे बननेका रहस्योदघाटन प्रेमिकाका द्वारा मूल व्यक्तिके समय आनेपर किया जाता है। उपयासकारने एक तोरने दो शिंवार किया ह। पुरुषके समयका आदम भी उसके पाठोंके सामने रन दिया और चित्रकलाकी लोकप्रियताका उल्लेख भी हो गया। 'वाणभट्ट के सम्मुख 'मदनश्री'की पराजय और मना क सामने 'सातवाहन का समय पुन्य जातिके लिए गौरवका प्रसंग ह। वाणभट्टकी आत्मकथाम ह्यबद्धनकी राजसभाका रोचक बगन बरते समय भी द्विवेदीजी चित्रकलाका उल्लेख करना गही भूले। 'कुछ तो ऐसे दौढ थे जो भरी सभामें विसी रमणीके कपोल देशपर तिलक रचना कर रहे थे।' इम प्रकार कथाका अनुचित ढगते भी उपयोग किया जाना रहा पर यह उच्छल उरता रावत्र नही बकि विलासी सामंतानी गोष्ठियाम ही देखनेको मिलती थी। सगीतकी लोकप्रियता तो पूरे सभामें ही थी पर इस क्षमम पारगत होना नारियांके लिए आरक्ष्य-भा हो गया था। दाम्पत्य जीवाकी सुनी बनानेके लिए नारियां अपनेम जिन जिन कलाओका विरास करती थी उनमें सगीत प्रमुख था। 'वाणभट्ट'ने भी जय पहला बार छोटे राजकुलमें बर्तनी भट्टिनी की देना तो वह वीणा बजा रही थी। चारुचंद्रलेख के नारी पात्र भी समय समक्षपर अपनी सगीतप्रियताका परिचय देते हैं। अभिनय तो इतना लाजप्रिय था कि सम्भ्रांत नारिय एव विद्वान जन भी स्वयं अभिनयकी भूमिकामें उतरते थे। वाणभट्टकी गारी भटकान नाटक मण्डलीका लेकर ही हुई ह और राज-सभामें सम्मानित स्थान प्राप्त कर राजाके हाथमें ताम्बूल ग्रहण करनेका गौरवलाभ करनेपर भी वह निपुणिका के साथ अभिनयकी भूमिकामें उतरता ह, जिनम निपुणिका की ऐहिक लीला भी समाप्त हो जाती ह। कलामेयी नतनिमाकी एव एव भगिमात्रा तथा उसके सामाजिक सम्मान एव उपयागकी इतिहास सम्मत व्याख्या करते समय द्विवेदीजीने उनके स्वरूपकी समुचित रणा भी ह।

अभिनयक पत्रात 'मृट्ट क आग्रह भरे स्वरका मुनकर जम निपुणिका खडो हो गया ता 'उसका बाया हाथ कटिदेशपर यमन था, कृष्ण कर्णपर मरकत बाया या दाहिना हाथ सिथिल द्यामलताके समान झूठ पडा था। उसकी कमनीय नृत्यमगीत जरा झुक गयी थी, मुग्धमग्ण श्रमनिन्तुअनि परिपूना था।' एक ओर ता कलाके प्रति सामान्य नागरिकके मनमें श्रद्धा भाव ललित होता दूसरी ओर शानका-द्वारा उनका इस दुव्यताय अनुचिन लाभ उठानेका भा प्रयासक सक्त मिल जाता है। प्रसिद्ध नतकी चाखसिता क नृत्यके प्रति धानमरक निवासियोंमें अपूव प्रेम था पर कवि 'धावक न सय ही कहा है कि "चाग्मिताका नय कायकु गरा विद्रोही जनताका वगमें ल आनेका अर्थ है।'

आवन मस्मृतिमें अभिगचि अथवा लालित्यवाधका महत्त्वपूग न्यान होता है और द्विविज्ञान विवच्य काकी मस्मृति इस णिगमें अत्यन्त गौरवमयी रनी है—एमा उनक वणनमें मिलता है। नागरक की यह अनि-चि—मानना ध्यनिस आरम्भ गार ममाज और एग तन जाती है। वास्यायन कृन काम सूत्र म नाारक गूना वणन तिम प्रकार किया गया है उपयासकारन मट्टिनी क धानमर स्थित गूढका वणन ना उगी प्रकार किया है। मट्टिनी जिउ घरमें बठी था वहापर उसकी बाल्ये एन बढिकापर माय चल्न और अनक प्रकारक उपयान र्व हूण था। एक छाग-ना स्फटिक पीठिकापर मुगजिन मिकय बरण्डक (मानमताकी पितागी) और सौगिन पुत्रिका (इवगान) ग्या हुई था सुत्रियापर ला कपश्में लिपटी हुई एक वीणा रनी थी।³ सामान्यनाके बविधय और उनक प्रयासक प्रति अभिगचिना उत्पन्न करनक लिए एवकन मन्तश्राव प्रसापन सामद्राका चर्चा का है। भागत समय ग चार फेंक लय थ उम पत्रालिवामें वाक्कन (मन्वग) मन गिग हगिताल, हिगुग, गार राजावनका घूण रखा हुआ था।' स्पष्ट हा वह मन्तश्राके चित्रकमकी सामथा था। इसम स्पष्ट हा जाता है कि बयनिक प्रसाधनके प्रति उत्पन्न अभि रचिका विज्ञा चित्रकगक अनुया तन हाता है। चित्रकगका मवा मन्तश्री के लिए प्रसापनक प्रयासकी भाति उसकी मस्मृतिना एन अग वन गरा थी। सामानिक रचिमें परिक्तन जान ही मौल्यक प्रति व्यनिक दष्टिगामें भा परिवतन हा जाता है। द्विविज्ञान अपन उपयानामें अनक रूपवती नारिया

१ वाग-टरी कागद १० २२।
 २ व. १, १० ३६२।
 ३ व. १, १० ३६१।

अनोन कथा
 ६९

का आक्षेप किंचित् सीधा है। पर कहीमे भी बीमवी गतात्मीवी उस मारीकी छाया उनपर नहीं पड़ने पायी है, जो जीवनके हर क्षेणमें पुरुषांमे प्रतिद्विंदिता करती हुई समान अधिकार प्राप्त करनेके लिए आन्दोलन करनेकी तयार ह और जो भौतिकवादी आत्म्बरपूण प्रसाधनोंमे सज घजकर लोगकी आँगाकी बाँधिया देनेकी हाड लगा रही ह। नारियाका सौंदर्य उनके प्रसाधनापर नहीं बल्कि उनके गुणापर आधत है जो स्वाभाविक लज्जा एवं सकाचने कारण और भी आक्षेपक बन जाता ह। द्विवेदीजी जय नारी-सौंदर्यका विमर्श करने उठते ह तो उनके सम्मुख अतीतकालीन भारतीय वे महिमामयी नारियाँ आरर उपस्थित हो जाती ह, जिन्हें चिरित कर सस्मृत-काव्यके स्रष्टा अमर हो गये। यह सौंदर्य ऐसा सौंदर्य ह जिसे देखकर पतित व्यक्तिके हृदयमें भी भक्तिकी भावना उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। इस प्रकारके सौंदर्यको आक्षेपक बनानेके लिए जिन ललित कलाओंको लोकप्रियता मिल रही था व सभी सम्स्कृतिकी अग ह, द्विवेदीजीने अपने उपन्यासोंमें गिनना जमकर बणन किया ह।

कला मानव जीवनका अदभुत प्रतिमान ह। इनके अतगत अंतर्दृष्टि और और अनुभूतिके अभूतपूर्व स्वरूप मतिरहित रहते हैं। जिस किमी भी समाजकी निश्चित स्रष्टृति होती ह वही उपयुक्त प्रकारकी कलाका उद्भावक होता है। प्रश्न यह उठता ह कि कलाका-व्यापक महत्व ह और उसका मानवके विकास क्रममे क्या सम्बन्ध ह? उत्तरम्यरूप यही कहा जा सकता ह कि यह मात्र बौद्धिक अनुवृत्तन नही अपितु बौद्धिक जावनकी अपरिहाय आवश्यकता ह। यह मात्र धर्म नही अपितु धर्मके माय दिवसित हाकर उसे सवर्द्धित करते हुए उसकी प्रमुख निर्णायिका ह। बाणभट्टका आत्मनथा और चारुचन्द्रलेख' दोनों ही उपन्यासोंमें राजा प्रजाके सम्बन्धको चर्चा दार्शनिक चिन्तनके स्वरूप, तत्त्वचिन्तन, नारी पुरुषके स्वस्थ सामाजिक सम्बन्ध, वास्तविक धर्म रक्षणके प्रति आग्रह, धर्म-न्यायके प्रति अनाम्या स्त्रीके वास्तविक स्वरूपका चर्चा, सात्त्विक प्रेमके महत्व सामाजिक सम्बन्धमें सच-झूठकी वास्तविक स्थितिमे लेकर लोक जीवनमें सतीकी जिसे जानेवाते सम्मानकी विगद व्याख्या हुई है। इस प्रकार द्विवेदीजीने सम्स्कृतिकी एकमात्र चित्र ही न प्रस्तुत कर उसका समर्पित रूप ही समाजके चिन्तना मामने रखते हुए प्रस्तुत किया ह।

जीवनमें सन्तुष्टता होना आवश्यक ह। सस्मृति इस बानरो प्रतिपादित करती ह कि पूणताके मानकण्ड मात्र भौतिक नही अपितु अग रूपमें आध्यात्मिक भी है। अतएव हमकी दृष्टिमें धर्मवका सापेक्ष महत्व हाता ह। अगर सस्मृतिमें इय प्रकारके आध्यात्मिक स्वरूपके लिए आग्रह न हो तो सम्पूर्ण सम्यताके विनष्ट

हा जानका भय बना रहता है। सस्मृति सबप्रथम व्यक्तिपर दृष्टिपात करता है। द्विवदाजाने पात्रके व्यक्तित्वपर विशेष बल दिया है और उनके जितने प्रमुख पात्र हैं उनका अपनी एक अलग सस्मृति है। पर अपना व्यक्तिक विशेषताओंके साथ वे आत्म समाजक अविच्छिन्न अंग भी बने हुए हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। जिन पात्रोंका मूल समाजसे नहीं मिला वे तांत्रिक अथवा सिद्ध हैं जो किस्सा-न किसी अभावके कारण कुण्ठित जीवन व्यतीत करनेके लिए विवश हुए हैं। सस्मृति व्यक्ति-स्वभाव, वाणी और अभिव्यक्ति-क्षमता रहन-सहनपर दृष्टिपात करती है उनपर गम्भीरतापूर्वक विचार करती है। इस विचारकी परिधि पर्याप्त व्यापक होती है। सस्मृति मात्र मशीनी सम्यताका अतिक्रमण करता है। यह घुणास घुणा करती है। इसकी एक निशिष्ट चाह होती है और इस चाहका सम्बन्ध आदर्श और प्रकाशमे होता है।

मह अपनी इन अभिलाषाका प्रचारित करनेका उपक्रम करती है और यह क्रिया तबतक चलती रहती है, जबतक व्यक्ति पूणताका नहीं प्राप्त कर लेता। द्रष्टव्य है कि द्विवदाजाने दाना ही उपयामारी क्या भी अधूरी रह गया है और उनकी क्याय विनायक प्रमुख पात्रोंका जीवन भी अयोग्य रह गया है। पर एसा नहीं है कि वे अपूण हैं। पूणताक चित्र उनके मस्तिष्कमे है जिसे जीवनमे उतारनेके लिए वे बचन हैं उतारनेका वे प्रयत्न भी करते हैं और पूण हात-हाने उनके सामने कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण काय आ जाते हैं कि वे व्यक्ति पूणता प्राप्तिके प्रयत्नमे निमग्न हो उत्तर हिन सामाजिक कार्योंमें लगने जा अपनी निजी धननाम पाठनेका दुःखकर एक स्थाया स्मृति छाँवर चले जाते हैं। यहापर हम द्विवदाजाने कुण्ठ ग्राहित्य गिल्ली होनेका परिचय भी मिल जाता है और अपना उन्नत प्रगतिगाल सस्मृतिका बाप भी हो जाता है।

भारतमेंका धर्म-व्यवस्था बहूत-म छिद्र हो गयी है।^१

‘आमावतक विनागरा हेतु व्यथका कुलाभिमान है।’^२

— ‘हम कुछ ऐसा करना चाहिए कि सारी प्रजा दुर्भेद्य चतुर्भुजा तरह हो जाय। किन्तीरा उसका आर आश उठानका साहम न हो।’^३

— मैं स्पष्ट रूप रहा हूँ आमावत नागर बगाएपर लगन है इस दगाका वहा बचपेगा जिनके पास महज आवनका बचन होगा, सबकी तलवार

१ चारुचन्द्रनय।

२ वही।

३ वही।

होगी, धैर्यका रस होगा, साहसका ढाल होगी, मत्रीका पाग हागा, धमका नेतृत्व होगा।”¹

— “अमृतक पुत्री, नगाधिराज हिमालयकी शीतल छातीम आज हृत्चल दिखाई दे रहों ह। जवाना, प्रत्यत दस्यु आ रहे हैं।”²

“आर्यवित्तके तर्णो जीना सीखो, मरना सीखो, इतिहाससे सीपना सीखा। आर्यवित्त नागके कमरपर खटा ह। जवानो, प्रत्यत दस्यु आ रहे ह।”³

ऐसे सम्बोधनामें आचार्य द्विवेदीजीका भविष्यद्रष्टा साहित्यकार अतीत सृष्टिके आलोकमें वर्तमानकी चाकी प्रस्तुत करता हुआ कल्पके प्रति हम जागरूक बनाता ह। प्रताका तकके प्रयोगमें द्विवेदीजीने समसामयिक मदर्शका ध्यान रखा ह। हमारी सृष्टि कभी भी जड़ और मवाण नहीं रही ह। बाणभट्टका आत्मकथा म वाराहकी मनिवा प्रतीकात्मक प्रयाग हमारी जिस सांस्कृतिक उदारताको व्यक्त करता है उसी प्रकारकी व्यंजना ‘चारुचंद्रलेख’म द्विवेदीजीने नाटी माँ द्वारा धार-धार गाये जानेवाले श्लोकम की ह।

‘गताऽह कालिन्दी गृहसलिलमानेतुमनसा
घनद्वारमधमगनतलमभिता मेदुरमभूत।
ध्वनधारासाररपतमसहाया गितितल,
जयत्वङ्गे गह्वर्यटुनटकल को पि चपल ॥

मानवक सामाजिक अस्तित्वका दृढ करनेवाली विकासमान सृष्टिक परिवर्तन लिख गये जाचाम हजारप्रसाद द्विवेदीके उपन्यास साहित्यकी अनुपम दन ह।



हिन्दीमें गुनामका राज्य है। सबके सर खुपस्तमोर चरिप्रहीन जूर गवार। नाश हो जायगा इम सन्तपतका। गाँठ बाँध लो महाराज जिस सन्नदलमें सरको अपनी-अपनी पडी हो जिसमें बदेम मदेको अपना शिर बधानेका ही चिन्ता पडी हो जिसमें प्रजाके सुख दुरमे कोई मतनत्र ही न हो वह नाशके कगारपर खडी है। वे भाग्यहीन टपडके बत्तर राज पाहते हैं। सर नरवके पीड़े बनेगे।

— चारुचंद्रलेख

- १ चारुचंद्रलेख।
- २ बाणभट्टका आत्मकथा।
- ३ वही।

निर्बन्ध चिन्तन

*

द्विदशाका निबन्धकार अगोचर पूनकी तरह सागावन
गिरायकी तरह अबधूत कृष्णकी तरह बाहद मनमौजा और
देवगाकी तरह ब्यामकटा है। वह वसन्तकी छावनाक लिए
सबम छाग जानेकी आवृर है वह त्रिगुणसुत्रीक पन्थचारकी
छायाछाने पूनकिउ हानवाना है वह निगाघट तापपर टगाकर
हसना है पर हनकी सी दुर्मानाक उपशम कृष्णा जाता है।
वह कगीर पायाकी भेकर अपना भोग्य सप्रह करता है
परतु समके साथ ही वर चागस्तिउ है वह मघक लिए आत्म-
दानीक निर प्रथम अघ्य है वह म्दकट्टीका परामुठ कानवाना
हिमानवकी गरिमाका साग्री है पर अपन स्वचित्तका प्रेषमाय
बनानर साभनें समझीला करनेका तनिक भी प्रसृउ नहीं है।
—विद्यान्वय मिश्र

निबन्धकार द्विवेदीजी

कुछ प्रभावाकल

• •

विद्यानिवास मिश्र

मित्रोंका आराधन है कि मैं द्विवेदीजीकी निबन्ध गलीश असफल नज़रकी हूँ—
नज़रकी ता सफल कभी हाता नहीं, मफल हो जाये तो फिर नज़रकी बस—बोग
मृगम बना गया है कि द्विवेदीजीके निबन्धकार रूपपर प्रभावाकल प्रस्तुत करें।
अगर मैं अपने मादरका राज धारता हूँ ता फिर नज़रकीमें होड मच सबती
है और अगर छिपाता हूँ ता फिर रिझू क्या ? ता दाना छोरोंक बाच चलूंगा।

द्विवेदीजीके निबन्धोंको मैंने पहले नहीं पडा था, मैंने पडा था उनका
उपयास 'बाणमट्टकी आत्मकथा'। उसने गद्यका जादू मापर उतना नहीं छाया,
जितना उसका पात्रका। किंगार बिनपर मकुर्मा और भैरवी तुरत छा गये
गम्भृतमें मूल बान्धवी और हृदयरित पढ़नेके सस्कारने भट्टिनी बान्धवी,
मुमगता महाश्वेता निडनिया-पत्रन्धा समाकरण बना डाठे, पर गहन प्रभाव
निडनियाका हो पना, वऱा निडनिया मना हऱकर चारुचन्द्रधर्म पुन अवतीण
हुई। द्विवेदीजीकी निडनिया समष्टि चित्तके पारावारके ऊपर व्यष्टिचित्तमें
उत्पेकी विजय-लखा है। निडनियाक चरित्रका एक ही सऱग था—प्रीतिवा
गहरा सचाई सामाय मापदण्डोंनि यहायो नहीं जा सक्ता, विद्या और सऱचारके
दण उमक आग घूर घूर हा जाते है। तमी लगा था कि इन व्यामकेण पाण्डित्य
पापाणक भीतर अमृतका साना है। उमक बान् 'कबीर पना, उमक बान् उनके
निबन्ध पत्रे और फिर उनस ँट हुई, अपनाया बना उनका भित्तिभनी हँसी और
उनक गडे कयातवोंने अन्तरकी सम्भावनाएँ पाट दीं। तब निबन्धकारकी
समझना आसान हो गया। पण्डितके धातक और कथागिणीके जादू गानोंक
प्रभाव आमीयताक प्रभावक नीच दब गये। द्विवेदीजीकी परिभाषाके ही अनु
सार 'व्यक्तिगत निबन्ध निबन्ध इसलिय है कि ध लेखनके समूचे व्यक्तित्वम
सम्बन्ध गत है, लेखकी महत्पता और बिडनगोलना हा उमक बऱण है।'।
सहृदयता और बिडनगोलना दोनों हा निबन्धकारक बऱण है, उमुक्त व्यक्तित्व

निबन्ध चिन्ता

३४३

हो इस व्यक्तित्व छुटकारा है। द्विवदीजाक निष्कारने हम उम्मुक्त व्यक्तित्वको पानेकी आहुता पदा की, इसक बाद उनकी सौजीना प्रभाव तो अपने आप हो पड जाता, क्याकि नीचे तो सहज भावकी अनुवर्तिनी है,

‘स्फुरत्कनातापविलामकोमला रसेन गय्या स्वयमभ्रुपागता
 और मने द्विवदीजाके महदों और भावाको चारी चाहे म की हो, उनक व्यक्तित्व की उम्मुक्तता चुरानेका भल उम्मुक्त किया और अगर किसीने यह चोरी पवड ली तो क्या कहे, उम्मुक्तता भी वही छिपाये छिपता है। अब कोई आलापन द्विवदीजाकी ही तरह उद्गम्य मेना चाहे तो दे ले—‘मोते दुरद्री कहा मननी निहरे निहरे’ की चोरी ।

द्विवदीजाका निष्कारने की तरह रागावुल, ‘शिरोप की तरह अश्रुत, ‘कुटज’ की तरह बीहड माधीनी और देवकी की तरह ओमकेत है। वह सततकी अगवानिक लिए सबम आगे जानका आतुर है वह त्रिपुरसुन्दरी पद सरारकी आवाशाम पुलकित हानकाका है वह निष्पक तापार उदाहर हैसजा है, पर इन्की-मो दुर्भावनाये स्पष्टम कुम्हल जाता है, वह ‘बठोर पायाणनी भेद का पातालकी छाती पीरपर अपना माय सप्रत काता है, ‘वायुमन्त्रना चूमकर प्राप्य’ वमू उजा है, ‘आवाशना चूमकर उल्लास लीक लाता है परतु इसक साथ ही वह ‘चाहसित्त है, वह मेघन लिए आत्म दानाक गिन प्रथम अल्प है वह ‘मुहकटा का पराभूत करनवाणा शिवालमरो गरिमाका सागा है, पर अपन व्यक्तित्वका प्रेषणम यतानक अभिमें समग्रीता करनेका तनिव भा प्रमूल मने। हम निष्पकवाका हमकी आकाशा नहीं कि लोम-उद्यम अमरुत है, न हमका आवागा है कि लाग मन्तिपागि चरणामे आत है। पानका मिगाक लिए, इगका आवागन है, पास आभा, और दास आभो, म घर-दागका आभो है पर डारकी हा बाउ कच्छेण ।

द्विवदीजा बहुयुत है और है कथायौतुना भी, पर पानक ‘भारके वगने’ य बहोते नहीं और न कथाने स्वजलकामे निरत हा रहते हैं, व पानका उपयोग निष्पकका व्यापक आवास दनक लिए करत है और कथाग उपयोग महाराईका आवास दनक लिए हम दानाक उपयोगत उनक निष्पकामे हान आपागोंका उमार आ जाता है, पर सीखी रेखाक रूपसे उरदा व्यक्तित्व हा सरावर आपार बना रहता है। उ लोम अभिमें ‘व्यक्तिगत निष्पकना एक किमी एक विषयको छहता है, ‘विशु त्रिम प्रकार बीणाक एक सागको छेनय बाका सभा तार शहूत हा उठा है, उगा प्रकार उम एक विषयका हूम ही लेखकी वित्तप्रमिपर बंधे हुए मरुता विचार बत्र उल्ल है। यशुतक कि विचारप्रधान निष्पकामे भी

उनका व्यक्तित्व इतने स्पष्ट रूपमें सामने आता है कि समूची 'विचार शृंखला व्यक्तित्व पिश्याम और निष्ठाके बालोकेसे उद्भासित' बनी रहता है। उनके व्यक्तित्वकी तलवार ध्यानमें कभी बंद नहीं रह पाती, उनका छंद अथमें बंधा नहीं रह पाता। बड़ा ही दुनिवार व्यक्तित्व है, निश्चिनयाके प्रेमका तरह गम्भीर-पर सदैव स्मयमान। पर यह व्यक्तित्व बड़ा पयुक्तुक व्यक्तित्व है, बालकाकी तरह मात्र कौतुकी नहीं, वह महाकालकी रहस्य लीलासे उभयित है, वह मूयको, पृथ्वीसे मिलानके लिए यत्कुल है, वह शास्त्रको लोकमें जाडनके लिए व्यग्र है, वह सस्कृतका हिंदीपर योछावर करनेके लिए उत्कण्ठित है और वह राष्ट्रको मनुष्यस समजस करनेके लिए चिंतित है। इसीलिए वह मनुष्यके हर अनुभवको छेडता है उमनी हर एन सांस्कृतिक उपलब्धिके ममनी गुन्गुदाता है और प्रकृतिके हर त्रिवत्तगनी कुरेदता है, और मनुष्य उसकी परम्परा और उसके देश बालका जाडनका जुगाड करता रहता है। द्विवेलाजाके निबन्धाका सयाजन-तत्र इसी व्यक्तित्वका ही महज परिणाम है इसीलिए वह सायास बना नहीं लगता, इसीके सहारे साधारण सा द्विम्ब जाने कितनी यन्तुआका, कितनी विचार-घाराजाको जोडनेका मायम बन जाता है। गाँठ जाडनवाली निश्चिनया नाइन हर गाँठमें अपनेको हृदीके रूपमें अपित करती चलती है हसती और हँसी लुटाती हुई, बस नेगमें उसी प्रकार सहज अरित भाव माँगती है। निबन्धकारकी यह सयाजना ही उमका गोपन रहस्य है, जा उसी प्रकारका भाव हानेपर खुलता है।

द्विवेलाजी घर आशावाता है वह मानते हैं कि मनुष्यकी धमदुद्धि और उसकी सहज सौन्दर्य प्रेरणा उसका अतनित्त सत्य है यह एक न एक तिन अवयव प्राप्त हायी। इसीलिए उनका भाषामें सत्य नहीं, भय नहीं। यह जम्बर है कि वे आत्म आदरसु भी नहीं है और बार-बार आत्मालोचनय लिए तयार है कि 'हम अपनी दुबलताआको महतीय बनानेका यत्न तो नहीं कर रहे हैं, अपना अक्षमताजोगा गौरव देनेके लिए तर्काभासाका सहारा ता नहीं ल रहे हैं' और व चिंतित भी है कि हमार दशमें गिना स्वप्न पराद्मुख हा गया है और 'इस घर छाड पढाईकी बडी जाँच अब आवश्यक हा गयी है। परन्तु उनका विश्वास अडिग है अपन दाने भविष्यमें, केवल इसलिए कि मनुष्य और मनुष्यव सहज धमभावमें उनकी थडा अरिचल है। इस विश्वास और आशावाताक कारण ही व बिना निसा द्वेषभावक जधूरे और अवराशी सत्योंका सणन लीलामात्रस कर देन है। हाँ यह जम्बर है कि इसी कारण व स्वतंत्रताके बीम बर्षोंका माहभक्त अरधिव मार अभागानी अत्राप्य भी लगन है। लगता है व कर्नी ऊँच ठहर गय

है, जम गये हैं वे उतरेंगे नहीं और हम हैं कि—

अपने इधरके निबन्धोंमें द्विवेदीजी शास्त्रीय हो गये हैं, 'शास्त्र इस भाव जगतके सत्यको उन्मामित करते हैं। शास्त्र इसलिए माय है' और वे 'धार्मिक विप्लवकी निस्सारता' प्रतिपादित करने लगे हैं, बदाचित्त व्यवस्थाके लिए यह आप्रह वय परिपाक और बछुआ घर्मी आभिजात्यके विकासका फल हो, पर ह कुछ अटपटा द्विवेदीजीके मुपरिचित रूपसे अममज्म। उनके साधक रूपका जो प्रभाव है वह उनके निद्र रूपका नहीं। व्यक्तिगत रूपसे कम-कम में उनके धनुषरवाले रूपका ही मुरोत है, उनके अभिप्रेत रूपसे प्रसन्नता तो हाती है, पर अपनापा नहीं हाता। उद्वेग और आत्मेमें एक माहकना है, उन दणकी भाषामें एक लटक है और उनकी आत्मेमें एक ज्वलनशील शक्ति है, जो उनके गत निरदिग्ग रूपमें प्राप्य नहीं है। हा सक्ता है यह आप्रह मात्र विचार चित्तका आप्रह कहा जाय, पर विचार चित्तके कुछ आगल इत्तये नहीं हटते, उहीमें से यह एक है। पर क्या बहने, गचार हैं न तो भी द्विवेदीका आराधक है न उनका आलोचक ही म ता उनका अनुवर्ती अनुज हूँ इसलिए इतना ढीठ शायद जरूरतसे कुछ उपादा ही। इसलिए अपने आप्रहका समन रत्तनेमें सकोच नहीं होता। द्विवेदीजीके निबन्धकारमें जिम समय ओजस्वी व्यक्तिवका दगन हुआ है वह मर लिए बराबर स्पष्टणाय रहेगा।

■

मुझ स्पष्ट निगाई दे रहा है कि भूडो मित्रों प्रचारिणी और विधेनी बातोंका निदा तेजीय प्रचार किया गया है उतना ही निरयता-पूर्वक इन शुभ विधायी कारिणियोंकी अवहेलना की गयी है। साहित्यकारके विचारनेका यह बड़ा भारा प्रश्न है। हार तो माफी ही नहीं है। हमें आज सावधानीसे बाधक तत्त्वोंका अध्ययन करना है और दारना है कि हमारे भगत प्रयत्न उरुष्य रोगन सिद्ध न हों।

—साहित्यकारीका दायित्व

गातिनिवेदनमें निवालि

निबन्धकार द्विवेदीजी

• •

प्रभाकर माधवे

हजारी प्रमादजीका स्मरण आते ही मुझ सन् '३८ में शक्ति निवेदनमें हुए उनके प्रथम दशनकी याद हा आती ह। तब उनकी दाढा थी और वे 'हिन्दी पण्डित' कहलाते थे। उन्हान ही हमें कलाभवन दिखाया, नटोबाबूम मिलवाया — उस इण्टरव्यूको मैने विंगाल भारत में प्रकाशित किया था। उनका मुक्त हास्य तब भी बीसा ही सरल सहज था। उसके बाद अनेक बार मिलना हुआ, मेरठका साहित्य परिषदमें इलाहाबाद रेडिमापर था तब बनारसमें, और अकाशेभोमें मेर जून '५४में अनेक बार अनेक बार। द्विवेदीजी मूलत गप शप करनवाले, गोष्ठी सलापमें बहुत आनंद लनवाले रसन ह। उनके पास चुटकुलाका और लताफाका खजाना ह। प्राचान भारतमें मनविनोद उनका अटभुत ग्रन्थ है। उसी कारणत जा प्राचीन सभृत या आदि मन्त्रगान हिन्दीका गहरा अध्ययन उन्हान किया उसमें-स मा निकले 'वाणभट्टरा आत्मकथा या 'चारु चन्द्रसेल जम राक्षक उपन्यास या फिर कवीरपर पुस्तक। उनकी विद्वत्ता कहीं भी बाझिल नहीं ह। व आगेप्राक देते ह "चलिए हाथी पानका सहज दुलोचा बांधि ।

इसी स्वभावका एक लक्षण य भी ह, और जा रवीन्द्रनाथके सम्पकम उन्हान सोखा जान पन्ता ह कि वे तर्णपीठोके सदा सन्ध रह है। 'बोलो बायक ममन' अनेकवा 'आरता'में गद्यनुमा पद्य लिखा। 'कवि में भवानीप्रसाद मिश्रपर धता हा आंगोशांगमन लिखा। 'नू '५०में मर 'सरगो'के सींग की भूमिका लिखी। नवानतम नय रूपा आलोचनाक प्रथमाकम निबट जागति जाहूवा लिखा। उनका यह रूपा लिखि निबन्धक लिए सवया उपयुक्त ह। और 'अनाकके फूल', 'आम फिर धीरा गय', 'अब दिमाग खाली रहता ह, 'नाम्न क्या बढत है' जग उनके निबन्ध हमेंगा याद किये जायेंगे।

उनका निबन्धका पहला गुण ह प्रकृतिमे प्रगाढ़ प्रेम। मूर्ख अवलक्षण और स्वस्थ प्रवगाहनसे वह अनुस्यूत ह। 'निरोपक फूल' निबन्धका यह अंग दक्षिण

“जहाँ बैठक यह लंब लंब रहा है उसक आगे पीछे, दायें, बायें, शिरापने अनेक पेड़ हैं। जेठकी जलती घपमें, जब कि धरित्री निधूम अग्निकुण्ड बनी हुई थी, शिरीष नीचेसे ऊपर तक फूलासे लद गया था। कम फूल इस प्रकारकी गरमीमें फूल खबनेकी शिम्मत करते हैं। बणिक्कार और आरगधव (अमलतास) की बात में भूल नहीं रहा हूँ। वे भा आस पास बढ़त हैं। लेकिन शिरीषके साथ आरगधवकी तुलना नहीं की जा सकती। वह पाँद्रह-बास दिनके लिए फूलता है। वसंत ऋतुक पलाशकी भाँति। बबोरदासका इस तरह पाँद्रह दिनके लिए लहक उठना पसंद नहीं था। यह भी क्या कि दस दिन फूले और फिर खसखस खसख—‘तिस दस फूलन फलिक खपड भया पलाम। ऐमे दुमदारोन ता सडूरे भजे। फूल है शिरीष। वसंतके आगमनस साथ लहक उठता है, आपास तस तो निरिखत रूपसे मस्त बना रहता है।’ (कल्ललता, प० २१)

हारोप्रसादकी निबन्धाकी दूसरी मनकी माहनेवाली विशेषता है उनमें परिश्रम नम प्रिनोद। सतीशचन्द्र कालेज, बलियामें लिये दोशान्त भाषण जैसे गम्भीर अउसपर भी वे उससे घूरते नहीं

“कोल्पर राज यह कि हमारे दगरे अनेक प्रौढ जन जा इन युवकावे भाग्यका निणय बिया करते हैं प्राय यह प्रचारित करते हैं कि इन युवकावे पापका स्तर बहुत नीचा है म अपन प्रातक गवनरका नाम भी नहीं जानते। चरसा सपक सदर मुकामका इहें कुछ पता नहीं है, धपस खिलवे रेलवे पुलकी कोई खबर नहीं रखते, अखबारमें प्रतिदिन छानकर दूगरे दिन बासी हा जानवाली पटनाओंका काइ हिमाव नहीं रगते—गव प्रकारसे अशम अटउ गभार है। युवकोंके चरित्रबलका उपहास ता बिया ही जाता है, यत्ति कहीं काई आत्म विश्वासकी धाण रता उनमें रह भा गयी हो तो यथासम्भव घो पाछ देनेका प्रयाग किया जाता है। (विचार प्रवाह, प० २७२)

सक परिहास ध्यगपके हवागें उदाहरण दश भरमें ताके अतवासा, प्रगसक और सप बर्धो जानते हैं। अमलमें व जमा किय जायें ता एग पुस्तक तयार हा जाये। इसक पाछे तस उटप्यताका, अपनापरताका भाव सग हाता है।

जस ‘कविताका भविष्य’में लिखत है

‘बागाव हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर कवि सम्मेलन हुआ था। उपका बरब एकाधिक दिन तक चलती रही। एग बरबमें उपस्थित हानका अवनर मुत भा मिला था। मैं थोडाशामें बैठा था और ताकी मुग्धावृत्ति देख रहा था। कविधोंमें एग सजान बहुत कम मानर आये तिनका नाम प्रतिमान छपक क्षणोंमें उठा भरता है। अधिकांग कवि धोताधोव लिये मडाकवे पात्र

साहित्यनिजसुनम सिवालिक

ये और अधिकार थाता इसलिए समाम आये हुए जान पड़ते थे कि जरा उनका दिल बहल जायेगा और जरा मजा आ जायेगा। जो साहित्यिक श्रोता वहाँ उपस्थित थे वे निराश थे और एकाध तो अथ साहित्यिकोंको दखकर इस प्रकार शर्मकर वक्रियत देने लगते थे मानो किसी लज्जामनक जगहपर अचानक पकड़े गये हों। सक्षेपमें कवि सम्मेलन उसाह, मजाक, मौज, निराशा और लज्जामा मिला जुला रूप था। मुझे वास्तविक हिंदी भाषाकी शक्ति और प्रकृतिका प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ इस गद्य युगमें भी इस भाषाके पेटमें कितने कवि पड़े हुए हैं।" (हमारी साहित्यिक समस्याएँ, पृ० २०)

गम्भारसे गम्भीर सम्मेलन या आयोजनमें भा हजारीप्रसादजी अपनी यह हास्यप्रियता नहीं भूलते। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्के अध्यक्ष पदस दिये भाषण 'अपापवाक्'के आरम्भमें भूमिककी क्या पठनीय है।

द्विवेदीजीके निवर्तमें सबत्र उनकी बाल-भुलम सरलता, निर्व्याज भाव और दुःखान्त आशावाद विवाह दता है। रमो-द्रनाथ भी बगर्सीकी पीढीक जावना शक्ति विवासी मनीषियोंमेंसे एक थे। हजारीप्रसादजीपर भी उनकी आगीर्ष्या बराबर है। 'बुटज' निवर्तमें वे कर्ते हैं

"कितनी कठिन जीवनी गक्ति है। प्राण ही प्राणको पुनर्कित करता है, जीवनी गक्ति ही जीवनी-शक्तिकी प्रेरणा देती है। जाना चाहते हैं? कठोर पाषाणको भेत्कर, पातानकी छाती चीत्कर अपना भाग्य सप्रह करो, वायु मण्डल-का घूमकर, समा तूकानका रणकर, अपना प्राण्य बमूल लो, आनाशका घूमकर, अवनगकी लहरासे झूमकर, उलास खोंच लो। बुटजका मही उपदेश है।" (बुटज, पृ० ६७)

हजारीप्रसादजी द्विवेदीके ललित निवर्तका सबसे बड़ी गुणवती बात है उनकी शृजु प्रसन्न, गद्यकाय जमी भाषा शैली। उसमें बंगलाका लालित्य और भाजपुरी मुहावरेका सजापन, संस्कृतकी समाम विदग्धता और सद्म प्रचुरता और 'बाडल' और नाथपया सतोंका फवहडपन एक साथ घुल मिलकर एक अद्भुत रसायन उपस्थित करता है। जस डॉ० राधाकृष्णान्के छाटस छाटे सासृतिर या अथ विषयक भाषणमें एक संस्कृत वचन या आप्त वाक्य या दशोव अवदय हाता था—यन्त्रि राजधानामें आम चचा हाती था "आज राष्ट्रपतिर भाषणमें संस्कृत 'बाटे'न नहीं आया, आज मुहमें नहीं थे।"—बस हा हजारीप्रसादजीका बाई भी एमा निवर्त नहीं है आ संस्कृत मियक-वया, वाक्य सत्न, उद्धरणस छाली हा। वे अरना गद्य गैलीकी संस्कृत छिडकर मसालार घनाते हैं। जसे दयानंद का यह उद्धरण दमिए

‘ललित देवदास ह दानदार वर्य । हवाके चाकास जब हिलता ह तऱ इसका आभिजात्य झूम उठता है । कालिदासन इसी हिमालयके उस भागकी, जहाँसे भागीरथाके निरर चरते रहते ह द्योतल मन्द मुगध पवनकी चर्चा की था, उहाने शीतलताका भागीरथाक निरर सागरकी देन बहा, मुगधिका आसपासके वृषोक पुष्पाक सनकी बगैलत घापित किया, ललित मन्ीके लिए मुहु कम्पित देवदासका उत्तराया ठहराया ।’ (कुटज, प० ९३)

हजारीप्रसादजीक निबन्धाके सर्वोत्तम स्थल वहाँ हाते ह जहाँ वे सस्मरणात्मक हा उठते ह । ज्योतिषविषयक उनक लक्षामें, स्थानविषयक लक्षामें (यथा बशाली आदि) और रवाद्गतय सम्प्रये लक्षामें इसना पुट अधिक है । वहाँ द्विवेदीजी पुस्तकास अधिक अपने जावनका पुस्तकसे कुछ मुनाते हैं । और उनक भीतरका काव्यमय उच्छ्वास अधिक मनोरम हा उठता ह । हजारीप्रसादजीके भातर वही एक जगार मानववादो छिपा ह जो निररतर वागीके कटमुल्लस लडता रहता ह । उनीके भीतर वहाँ भारतमाय सस्कृतिकी प्राचीनताक प्रात आदरमिश्रित सम्भम ह तो उसका जाति पाति जसी जकञ्चनके प्रति धार विद्राह । पूर्वे उत्तरप्रदेश और शान्तिनिवतनना यह समय मल कभो कभो पण्डाक गडमें आजम्बी, आवशपूण वक्तता दता ह हिंदाका पजावकी दन’, ‘हिंदाका वतमान और भविष्य, ‘राष्ट्रीय सवट और हमारा दायित्व आदि लेख एसी स्वरमें ह । य परस्पर विरोधा प्रभाव उममें एनात्म गेहो हा पाय ह— इसीमें हजारीप्रसादजाक निबन्धवारका सामा और सामध्य छिनी ह । व पदाधर नहीं है, न व किसी भी पणका पूवाग्रस नदारत है ।

इसीलिए व ‘मानवधम’ में बहन है

‘मुट और गापणक कालाहलौन भातर मानवताका दवी चुपचाप किंतु निश्चित गतिसे विजय यामानी आर बढ़ रही ह । लागका दुकानकी सटासट्ट और गणैगुदरस शक्ति हाताक नूज जाते ह कि दह वस्तुत बाणाक तारका तपाराका कलाहल ह । जिस समय यट बाणा प्रस्तुत हो जायेगा, उस समय उसकी मनाहर ध्वनि हृदयना आनन्द विह्वन पर दगा । इस प्रकार मरा विश्वास ह कि मनुष्यताकी माहन योणा अबश्य प्रस्तुत होगी । पर यही विजय यामाका अंतिम नय नहीं ह । मनुष्य इन विराट विदुल कल्याण्ड मरा गजदल पा एर मामूना दल है ? वीन कह करता ह कि विदमिन मानवता महाबाल देवताका मिया विराट यात्राका एक गण्य अंग ह ? (कुटज, प० १०५)

[मन अपने समीपारा ममागा’ और मिया निबन्ध ग्रथामें द्विवेदीजीपर विस्तारस निगत ह, वह पठारके दलनमें आया हागा । मिया साहित्यका

कहानी' नामक मेरी पुस्तकमें भी कुछ पृष्ठ विशेष रूपसे उनपर है ।]

हजारप्रसादजीका प्रथम ललित निबंध शला एक ओर लम्बे और हृदयलिटकी या स्त्रिलीला तो दूसरी ओर गतिनर और आत्मसहमलेका । बगलमें बकिमचन्द्र और अणुदाशकर रायका शैलियाका, शितिमोहन सेन और सैयद मुजतबा अलीकी शैलियाका इतना मजा यहा है । मराठीक नरसिंह चित्तमणि कलकर और अनंत वाणेकर, दुर्गा भागवत और इरारती कर्वेकी शैलियाका सम्मिश्रण जमे उनके यहा है । गुजराताके आनंद शंकर बापू भाई ध्रुव और ज्योतीन्द्र दवे, कल्याणलाल मुन्गी और चन्द्रवदन मेहताकी शैलियोंका जोस सम्मिलन हा गया है । तमिलके राजगापालाचारी और शिवानान ग्रामणी, नाडाडी और सोममुन्दरमता सल्लेपण, या कानडके जो मजेश पे और गाकाक, कारंत और गुणप्पाजी निबंध शैलियाका मनोरम मगम लिखाई देता है । उदूके निबन्धा और हाजी, पतरम और मौलाना आजादकी ललाकृत और इल्मगाईका जैसे मजमुआ उनके यहाँ है । और उन निबंधानो पढते हुए बार बार लगता है कि नामक पुटपुटेमें हम काई पुगन महलका सँडर देख रहे है, नाथपरस वासुरी सुनाई दे रही है और हमसफर हमस अल्दो ही बिलुडनेवाला है यह सुनकर हमें कहोका नहीं रहने देता । जो उचाट हो जाता है और 'रम्माणि योशय' वाला भाव फिर फिर मनक भीतरम उठता है ।

हजारप्रसादजीकी शैली अनुकूलि शैलीमें हुइ पर उनकी बात हमें आंगमें नही मिली, न विद्यानियाम मिश्रम, न भगवतशरण उपाध्यायमें न 'बकतम स' के नामवर शकमें । व अपनी जगह अनुपमेय है । और इससे बढ पर और थोइ प्रमाण मोशयवा नहीं हो सकता । साहित्यिक सौन्दर्य अशुणा, अप्रतिष्ठ होता है ।

■

आज क्या सम्प्रदायवादी बहमान देकर परस्पर विच्छिन्न होने की जम्मत है । क्या शैव क्या वैष्णव क्या जैन क्या बौद्ध-सभो-पर विपत्तिकी घोर घण छापी हुई है । यदि हम अपने बाह्य शिष्टों पर अब भी अदे रहेंगे तो विश्वास निश्चित है । एक प्रकारकी बिना शोकी साधना मनुके भारतको प्राप्त विषय जा रही है मिश्रियोंके नामपर अत्यन्त निचली शक्तोंकी कामकाजी उत्ते-जना ही जा रही है । महात्माके निम्नस्तरम आयी हुई यह साधना हमारे देशके बड़े-बड़े साधकों तककी अभिभूत कर रहा है ।

—चारुचंद्र शर्मा

अशोक के फूलसे देवदारु वन तक

• •

कृष्णविहारी मिश्र

'वाणभट्टकी आत्मकथा की दीनेन पुरुष जातिको सावधान करते हुए कहा है, "प्रमात्, आलस्य और निप्रकारिता—तीन दोषास्त चच ।" यह उम व्यक्तिकी उल्लाखा है जिसने पूरी तरह इस चलाकनीको स्वीकार किया था । कानकी आवदयकता नहीं कि १० हजारीप्रमाद द्विवेजीका व्यक्ति-व इन अभावात् पूणतया मुक्त है । उनका वृत्ति उनके अवय परिश्रम और विराट साधनाका परिणाम है । दुनियाका सतटोंको साक्षपर रखके प्रमात् और आलस्यको तोड़कर द्विवेजी ने भारतीय वाचस्पयका गम्भीर अध्ययन किया । इसी प्रकार द्विवेजी निप्रकारितास भी मुक्त हैं यानी किसी बातमें इन्हें जल्मी नहीं रहती । उनका विराट सम्पन्नमें रहनेवाला इस बातको साक्षात् देगा । द्विवेजी प्रायः मातरस पन-ग मंगाकर अपन पायन पान लगाकर अतिवि-प्रकार करते हैं । और यदि सभागवत कथा आपन उक्त हाथका लगाया पान खाया हो, उन्हें पान लगात देया हो तो आप भा-म लयका अस्वीकार नहीं करेंगे । चुन चुनकर पानक पत्ते द्विवेजीका निकालते हैं अंगीकी ओरस जरा टग दते हैं और फिर धार धीरे उसपर चूा और फिर कपा लगात हैं, एक निश्चित मात्रामें मुपारी डालकर पानको माडते हैं । बाट नीट और ठहाना चलाता रहना है और य-प्रेमने अतिपियाका पान घमाने है । आर ध्यानस दगें जन अपन बात-यवहारमें द्विवेजीका नि-प्रकारितास न-आन देने, टाक-वग ही रचना अथवा उतमें ये निप्रकारितास अरनरा-वचन है ।

इतना बड़े गद्यका निवा-करणके बाद द्विवेजी जब कहत हैं कि "यवि-वना है मर-दोन्ता, या-क-द-वना । निरोपरी-मन्तोको-आ-द-वो," तो उनका मालम्ब वि-इतना ही रहता है कि रचनाक-पह-पु-व-ग्रह-छो-पना-ज-र-री-ह-मा-और-आ-ग-वि-व-व-र-त-ह-ना-ज-र-री-ह-। "कालिदास-महार्-पे, कया-वि-व-अना-म-र-र-त-म-थ-। कृ-उ-इ-गो-गे-गा-की-अना-स-क्ति-आ-पु-न-िक-दु-न्दा-व-वि-

—

शान्तिनिवनसे विवालि-व

सुमित्रानन्दन पत्रमें ह । कविवर रवीन्द्रनाथमें यह अनासक्ति थी" और मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि निबन्धकार हजारीप्रसाद द्विवेदीमें भी यह अनासक्ति है । द्विवेदीजी ठठाकर हँसते हैं, अपनी घनो (किन्तु छाटी) मूँछोंके बीच अगुली रखकर गम्भीर विषयोपर सोचते हैं, छालो समयमें तरह-तरहके विनाद करते हैं, फूट पौत्राकी ओर कुत्ता मनाकी बहानी कहते हैं, तत्रशास्त्रस लेकर रवीन्द्रनाथ तक बातें करते ह । और प्रायः मौजमें संस्कृत और अपभ्रंशका कविताएँ सुनाते ह । द्विवेदीजीका यह सम्पूर्ण आत्मतत्त्व उनके निबन्धोंमें प्रस्फुटित हुआ है ।

हिन्दोव एक समय आचार्यने द्विवेदीजीके निबन्धोंकी विशेषताकी ओर संकेत करते हुए दिल्लीकी एक साहित्य सभामें कहा था कि गुलरोजो और द्विवेदीजीके निबन्धोंमें इतनी अठन्थाएँ हैं कि बिना उनकी जानकारी रखे उनके निबन्धोंका ठाकसे समय पाना सम्भव नहीं ह । यह सोलहो बाने सच है कि द्विवेदीजीके निबन्धोंके पूरे आस्वादनके लिए एक साम्प्रतिक पाठिका और साहित्यिक सस्कार, आवश्यक ह । किन्तु जो इससे बचित है व भी द्विवेदीजीके निबन्धोंको पत्रपर विराग नगी होंगे । यह द्विवेदीजीके सहज शिल्पका निजा विशेषता ह । इनके निबन्धोंके बीच-बीचमें भारतीय मनापा अपने मुखशोषे घँघट हठानर मनुष्यको एक काष्ठीक दृष्टि निहारने लगती है । उस देखकर सामान्य पाठकोंके आँखें चौंधियाने लगती हैं और एक हा छविना विविध रूपामें देखकर यह आश्चर्यमें पड़ जाता ह । लेकिन चतुर पाठक, आँखें उस छविका पहचानती हैं । तथापि एक ही दृश्यको उनके निबन्धोंमें बार-बार देखकर भी उसकी आँखें थकती नगी । अतस्त मानसिक मूच इनके निबन्धोंकी ओर बड़ी स्वरान्ध साथ डोडती ह, एक विविध प्रकारकी तृप्तिका अनुभव होता ह । मगर एमा नहीं हाता कि मन भर जाय । एक बार पढ़कर हम उसे मनाक लिए बंद नहीं कर देते । एक बार पढ़ लेनेपर हम प्रयोजन निवृत्त नहीं हा जान यानी कि उन्हें बार-बार पढ़नेका इच्छा रह जाती ह । और यह द्विवेदीजीके शिल्पका बहुत बड़ी उपलब्धि ह कि एक हा वस्तुका मिन मिन सादरमें उपस्थित कर उसमें एक विविध अर्थवत्ता भर देने हैं, तथा आकर्षण उत्पन्न कर देते हैं । उनमें कहीं कहीं आश्चर्य भी ह । लेकिन यह कमजोर पाठकोंकी पकड़क बाहर ह अपनी गौलीके बलपर द्विवेदीजी कभी कभी यानी जब कमजोर रहल आता ह, पाठकोंके विचित्रो मुग्ध देने हैं । जिसमें उनका अभावतता प्रत्यक्ष होकर सामने नहीं आ पाती ।

गुलरोजोके यात्राकी पाठक निबन्धसभामें ५० हजारीप्रसाद द्विवेदी सबसे शक्ति निबन्धलेखक ह । आचार्य गुलरोज निबन्धोंमें—मेरा मतलब व्यक्ति व्यवहार निबन्धोंसे ह—बौद्धिकता कुछ अधिक ह । द्विवेदीजीमें अनुभूतियाँ अधिक

है यानी वे एक हृद तक लारिकल और रोमण्टिक हैं जो कल्पित खी-दनायका प्रभाव है और यह प्रभाव ग्यारह वर्षोंके सम्पर्कका स्वाभाविक परिणाम है। मेरा अनुमान है कि द्विवेदीजो योजना बांधकर लिखने नहीं बैठते हाने। बीणाका एक तार छूनेपर जैसे पूरे झट्टत हो उठते हैं, वैसे कोई बात द्विवेदीजीकी छू दती है, उनकी प्रतिभाको उबसा देती है और तब जब वे कलम उठाते हैं बहुत-सी बातें सहज ही फूटती चनी जाती हैं द्विवेदीजी उसे समाते जाते हैं, और इस प्रकार उनकी रचना एक रूप ले लेती है। इसी अर्थमें इन्हें लोरिकल कहा जा सकता है।

द्विवेदीजीके व्यक्ति-वर्णन सौजन्य और सादगी है। एक बार उन्होंने बातचीतके मिलसिलेमें कहा था कि जयप्रकाश बाबूसे परिचय हो जानेपर जब वे द्विवेदीजीसे खड़ी बोलीमें बात कर रहे थे, द्विवेदीजीने उन्हें टोका था और यह कहकर कि 'मेरी भी मातमाया भाजपुरी है उनसे गोजपुरीमें बोलनका प्रकारांतरन आग्रह किया था। उनके स्वभावकी यह सादगी उनके निबन्धोंमें भी है, उदाहरणके लिए 'वसन्त आ गया' 'एक बुत्ता और एक मना,' और 'गिरीषके फूल'को देखा जा सकता है। किन्तु जब कभी द्विवेदीजी 'गतिशील चिन्तन में डूबते हैं तो सीधे कालिदासके लोकमें पहुँच जाते हैं उनमें भीतरका बाणभट्ट सामने आकर उजानीक गवाणोंमें झरनेवाले सौन्दर्यको निरारने लगता है। एकाक्षरवाही रूपपर चन्वर डबड लाबड रास्तसे हाकर अपने गीतको ओर जाते समय द्विवेदीजीको अचानक एक धक्का लगता है जो उनकी स्मृतिका कुरेद देता है उनका साबुका मनको जा देता है और पुरातनको यादकर वे सोचने लगते हैं टिमालयक उस विषय पर पश्यपर एक दिन मातलि गामक कोई सारथी भा रूप हीन रहा था और यन् मरा सारथी भी एक अन्धबुद्धो और पाताल-पाती राजमागपर अपना रूप हीन रहा है। उस दिन उषशी और पुनरवा उसपर बने थे, एकाग्र और मुन्दरिषी भी रही होगी, घण्टा उम दिन भा लगा था, पर यही गारार और चित्त दानों ही मिलर उठे थे रागाच स्वैर और हृत्कम्पना एक साथ ही आक्रमण हुआ था। हाय ! कौन जाने मरे परित्त काय्यक भावो कालिदासका यह धक्का यान् भी जायेगा या नहीं। अगर आये तो समाजवाचके उस अप्रदूतना यह अपमानित, अक्षरैलित धक्का यह कभी नहीं भूयेगा। उम अपने अग्निगभ अक्षतीग उद्गिरण करनवाले महाराज्यमें हम भयापन अनयना चित्रण उन्पर करना होगा। गात्राणयवा और युजुआ मनोभावपर भी इसी यान् उने एक टोकर उन्पर मारते जाना पयेगा। धक्का राठ नी औरोंको भी जान कई बार लगता है, मगर उन धक्कोंका उनपर कोई अमर नहीं। द्विवेदीजीका धक्का और

है। ऐसा घक्का जा अपने विगत स्वप्नयुगके एश्वयकी याद दिलाता है, वतमान सामाजिक व्यवस्थाकी ओर साचनक लिए प्रेरित करता है और विवचन कर देता है साम्राज्यवादक खिलाफ आवाज उठानेके लिए। उनके भीतरका विवेक उन्हें सावधान करता है, 'डिफाटेड मण्टलिटी-पराजित मनोभाव। सामने दुर्भेद्य अज्ञान दुग है, वाइरका गापण और भीतरकी लूट जारी है, और तुम गुप्तकालके स्वप्न देख रहे हा। इस ही पराजित मनाभाव कहते हैं। आजका हरक कवि, हरके लेखक इसी पराजित मनाभावका गिकार है। अंगरजकाठ गुप्तकाल नहीं है, वतमान अतीत जसा मोहक नहीं है। उज्जयिनीकी अमिसारिकाए न जाने कौन सो गुदगुना पदा करके और न जाने कौन-सा बैराम्य उद्विक्त करके अस्त हो गयीं। आज बड़-बड़े नगरोंके वेस्वालय दगकी समस्त नतिवता, समग्र काव्यकला, समग्र आचार-परम्परापर मानो बड़े प्रश्नवाचक चिह्न हैं। वतमान युग युवती विधवाका द्वारा अभिगस्त है, अपमानित, दलित सधवाका-द्वारा अवशुद्ध है, निरुपाय सामायाओ-द्वारा बलकित है। इस असीन्दयके दहमें काव्यकला टिक नहीं सकती। साफ करा पहले इस जजालकी, इस कूड़ाकी, इस आवजनाका, इस अज्ञकारका। द्विवेणीजीकी ऊँचा उद्यानको दमकर कोई जनतादी पाठक या समीक्षक इन्हें पुराणपथी या पलायनवादी समझनेकी मूल न करे। धरतीसे नाता तोड़कर व सगने लिए व्योमविहारी बन जाना नहीं चाहन। उदयमान जगतक सगलास आँव मूँकर वे चिन्मय सत्ताका महत्ता नहीं समझाने। हर अक्षर अक्षय लाकमें विचरनेवालाका द्विवेणीजी पराजित मनोभावस घोडित समझते हैं। ऊपरका उद्धरण इस बातका प्रमाणित करता है। इसस कुछ और आग बन्कर और अधिव स्पष्ट रूपस उद्यान एक जगह लिखा है, "लोग कहत है-इस जगतकी समस्त गन्गियासि परे काइ ऐसा परात्पर ब्रह्म है जो शाश्वत है, जो विकालमें सत्य है जो सग-सगदा बना रहनवाला है। होगा। परंतु म कहता है कि मनुष्यका मानसिक मूल भी बहूत कुछ शाश्वत ही है। मनुष्यकी उद्याम लालसा का, पराजित युष्माकी और उदमनीय जिजीविषाकी चिर पुरातन और चिर मवीन रहनेकी इच्छा हातो है। बैरामा कहता है कि यह मूल तुम्हारा गनु है, किन्तु बन्नकी इच्छा हातो है कि इस भूगमें ही मनुष्यता है।" द्विवेणीजीक साथ मानवताग विल्ला न हानक कारण इन्हें बुजुआ, घुरीहीन और रक्ष्यजाती समझ लेना समझानाका बाध नहीं कही जा सकती। बल्कि सच ता ये है कि द्विवेणीजी उदा साम्राज्यवादक विरोधमें बालत है, उस अवस्थाके खिलाफ आवाज उठाते हैं जिसका प्रत्यक्ष परिणाम सामाजिक वैषम्य है। इस वैषम्यका परिणाम दारिद्र्य है, परमुत्पापगिता है, हीनता है जिस दखकर द्विवेणीजीक मनमें कई प्रश्न उठते

है "क्या सचमुच कला भी गरीबोंके लिए हो सकती है ? समाजवाद गरीबोंके लिए है या गरीबोंके ध्वंसके लिए ? वह जा चियडोमें लिपटी हुई ज्वराकांत बुढ़िया कराहतो हुई हाथमें तेल किट्ट-बलुप बोधी लिये नगरीके चिकित्सालयकी आर भागी जा रही है कलाका निर्माण क्या उसीके लिए होगा ? या मारिए गौली कलाको । रामराज्यकी भारी भरकम भित्ति क्या इही मुरदे कंधापर स्थापित होगी ? हरगिउ नहीं । समाजवाद इन मूढ, निर्वाक, दलित, अपमानित, हीन, निर्बीय और तजोहीन पुरप और स्त्रियाका ध्वंस कर दगा अवश्य विधायका, विशिष्यमानका नहीं । इहीं निर्बीय जन समूहमें तजोदप्त जन समूहका अवतार होगा पहले रामका अवतार, फिर रामराज्यकी स्थापना ।'

देशके इस दारिद्र्यकी देखकर द्विवेदीजीका दिल भारा हा उठा और धके मनमें उठाने कहा, "जब कि दिमाग खाली हो और दिल भारी हा तब शास्त्र चर्चा अच्छी नहीं लगती ।" और तमा कहींसे एक गठीले बदनवाला पठान युवक हीग बेचते आ पहुँचा । गुहदेव रवीन्द्रनाथकी लम्बा दाढी देखकर उसके मनमें कई तरहकी सकारें उठीं और अंतमें द्विवेदीजीके सामने एक प्रश्न रखकर वह चला गया । "मुसलमान भी नहीं, ईसाई भी नहीं, ता क्या हिंदू है ?" यही वह प्रश्न था उस पठान युवकका जो द्विवेदीजीको एक गहरी चोट द गया, उनकी प्रतिभाको जन किसीने उकसा दिया हो, सोचनेको मजबूर कर दिया हो कि इस अभागे देशमें जो मुसलमान भी नहीं, ईसाई भी नहीं, वह हिंदू हाता है । यह पठान युवक पाणिनि और यास्कका बगज है, पर चूंकि वह मुसलमान है इसीलिए वह हिंदू नहीं । इसके पूवजान बर्दिक साहित्यिक अतमाल भसोका सम्पादन किया था, पर चूंकि वह मुसलमान है इसलिए वह हिंदू नहीं और इसलिए उसके लिए वह साहित्य कुप्र है ।" यह सोचते ही द्विवेदीजीके सामने तत्काल ही भारतीय सस्कृतिकी अभाव-उपलक्षियाका एक दृश्य नाच गया । अफमासकी बात बेबुद्ध इतना ही नहीं है कि पाणिनि और यास्कके बगज आज हीग बेचते हैं बल्कि और भी डेर सी बातें हैं जा हमारे स्वाभिमानका ध्वंस करती हैं "कुमारजीके सगे-सम्बन्धी आज सामाजिके हिंदुआरी बहू-वेदियाका व्यवसाय करत हैं, और इस बातको भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि कालिदासका विहार भूमिमें आज एमो सभ्यता (या बररता)का ठाण्डक हा रहा है जो चित्तका मये बिया नहीं रख सकता, फिर भी भरोमा यह है कि वह रक्त बचा हा है । आज नहीं कए वह अपना प्रमाण फगतया ही, लनिन में दूसरी बात हाच रहा है वहन है फगत परिधीयते वृत्त -अपान दरमन्तकी पट्टवान फगत हाती है । आज जा हिंदुआरी दुरवस्था है, यह है ता उठी बहू

विधोपित समृद्धि बालोन सम्यताका परिणाम । कम कहूँ कि वह अच्छा था, जब कि उसका परिणाम स्पष्ट हा बुरा नजर आ रहा है ।” यह एक ज्योतिषके आचार्य और साहित्यके उस पण्डितकी वाणी है जा अपनेका अनास्तित्व कहता है, बूढाका झुककर प्रणाम कर उन्हें अपणित श्रद्धा देता है, दबस्थानके सामने माथा झुकाकर सहज हा अपना जीवत आस्थाकी चिन्ति देता है ।

इसे मैं यत्तिगत रूपस जानता हूँ कि ज्योतिषक आचार्य हाकर भी फलित ज्योतिषमें द्विवेदीका विश्वास नहीं है । मुझे एक बार उन्होने बताया था कि जब मैं गार्तिनिकतन पहुँचा तो वहाके लाग यह जानकर कि काशीका पण्डित आया है, मेरा ओर आकृष्ट हुए और जब उन्हें मेरे ज्योतिषपत्रानका पत्रा पला तो उन लागान बड़ी श्रद्धासे मेरे सामने अपनी जन्म पत्री और हाथ पसार दिया था । जन्म पत्रा और हस्त रेखा दग्ने बिना ही अटकलसे मैंने उन भाग्य वाण्याक भाग्यके बारेमें जा कुछ कह दिया सदागवश वह सच निकल गया, परिणामत मेरे यहाँ ऐसे लागोंकी भीट बलन लागी थी और किसी तरह उनसे विण्ड छुडाया था । इस विद्यामें मेरा विश्वास नहीं है । सुननवालाका शायद यकान न हा, लेकिन यह सच है कि द्विवेदीजी रूडियाक शत्रु है । फिर भी ज्योतिष और शास्त्रके आचार्य हानक कारण पणितका पचायतम तथा ठाकुरजी का बटारमें वे सम्मानपूर्वक बुलाये जात है । पणितकी पत्रापत्रस हटाकर उन्हें धान भरक लिए उनकी कल्पना अपने पलापर बठाकर एक दूसरे लोकमें उडा ल जातो है । वहा द्विवेदीजीने जो देखा उस बड स्पष्ट दग्ने यत्त किया है, “मुझे ऐसा जान पडा है मैं सार जगतक छोटे माटे यापारको देख सकता हूँ । मेरो दृष्टि समु पार करके अद्भुत कमनाकमें पहुँची । यहाँक मनुष्यामें किसीको फरसत नहीं जान पडी, सबका समयक लाले पड ये । सारे द्वीपमें एक भा एमा गाँव नहीं मिठा जहाँ पत्रा तक एकात्री ब्रतके तिणयकी पचायत बठ सक । सभी व्यस्त, सभी चवल, सभी तरपर । मैं आरचयन साथ इसकी छपक कमगक्ति देगता रह गया । महीते ताल, वाली, नाली माणि अनेक तरगें बड बगस निकल रही थीं और सार जगतक वायुमण्डलपर भी ये चार-चार आघात करती हुई नजर आयी । वह भी कुछ विशुद्ध हो उठा । ये विचाराकी लहरें थीं ।”

इसा प्रकार ठाकुरजीकी बटार में बठकर द्विवेदीजीन (एक अच्चावहारिक

१ द्विवेदीजीने एक बार मुझसे कहा था कि नियमका प्रतिबंध मुझे मा प्र नहीं है, करने से मैं एक अनास्तित्व हूँ । इसी प्रकार ज्येष्ठ बूढाके पैर दूते और दुर्गा मंदिरके सामने माथा नवाते मैंने उ हँ देखा है ।

की तरह लोगोंके स्वका ज्वाल निय बिना) बड उत्तेजित भावसे कहा था, 'जो ठाकुर जातिबिरोपकी पूजा ग्रहण करके ही पवित्र रह सकते है, जो दूसरी जातिकी पूजा ग्रहण करके अग्राह्य चरणादक हो जाते है, वे मेरा पूजा नहीं ग्रहण कर सकते । मेरे भगवान् दोन और पतिताके भगवान् है । जाति और वर्णसे परेके भगवान् हू, धर्म और सम्प्रदायके ऊपरके भगवान् हू । व सबकी पूजा ग्रहण कर सकने ह और पूजा ग्रहण करके अग्राह्यण चाण्डाल सबको पूज्य बना सकते ह ।' द्विवेदीजीकी इन पक्तियामें खीद्र और गांधीजी साँसें बोल रही हैं ।

द्विवेदीजीके निबन्धामें दो अतिवाणी प्रवृत्तियोंका निषेध दिखाई पडता ह । पुरातनका एकदम बेकार समझकर नये जमानके जो लोग परम्पराच्छुत हो गये, उनसे द्विवेदीजी समझौता नहीं हा सकता, क्याकि द्विवेदीजीने परम्पराको वही छाटा नही, बकि उस नये आगममें देना ह । कहना अनुचित न होगा कि द्विवेदीजीके अतिवाणी भित्ति ही पुरातनपर आघृत ह उसपर आधुनिक रग घटाकर उसमें नये प्राणको प्रतिष्ठा की गयी है । नये साहित्यकारोंने जहसे अपना दृष्टि हटा ली ह द्विवेदीजीकी दृष्टि वहीं ठहरती ह । शवसाधना का रहस्य उद्घाटित करते हुए द्विवेदीजीने लिखा ह, 'शवकी पीठपर मन्त्र तंत्रसे पाहे जितनी साधना की जाये, जयतक उसका मूय साधककी ओर नहीं हाता, तंत्रतक समझना चाहिये कि साधक सिद्धिक निष्कट नहीं आया ह, शव तम भी शव ही ह, उसमें शक्तिवा संचार नहीं हुआ ह । शवकी साधना तभी पूण हाती ह जब उसका मूय साधकक सामन हाता है, वह उसम जीवित मनुष्यकी भाँति बात करता ह । प्राचान ज्ञानक साधकको यह बात याद रखनी होती ह । हम ऐसे साधकको जानते हैं जिहान अपन गम्भीर अध्यवसायम प्राचीन युगका मूय अपना आर फेर लिया ह । तुलसीदास ऐम ही साधक थे । उँन जा कुछ पढ़ा, गुना उसे नि गेय भावने भविष्यक निमाणमें लगा लिया । शवल ज्ञान आर ह यकि का मुक्तिवा आर नहीं ल जाता । वह भी बाह्याचार मात्र ह, मूत ह । ज्ञानरा एक मुक्ति ह । इसी प्रकार अनक उपनिषत पुराना वस्तुआकी एक नयी अवस्था दकर द्विवेदीजीने अपन निबन्धम यद-तत्र व्यक्त किया ह । एकदम आधुनिक बन जानरी जो हया बही, वह द्विवेदीजीको छूकर निकल गयी, इतने भारी व्यक्तिगतका अपने सत्य टक, अरे पाये । इस प्रकार एक दूसरी अतिवा द्विवेदीजीने निषेध किया और वह ह पण्डिताईका दम्भ । अगोखके पूजनी अन्तिम पवित्रता हम प्रकार है, अगाधका दूक ता उमी मस्तीम हँस रहा ह । पुराने विस्तृत इय अध्ययनका उपास हाता ह । वह अपनका पण्डित समझता ह ।

पण्डिताई भी एक बोझ है—जितनी बीमारी होती है उतनी ही तैजीसे डुबाती है। जब वह जीवनका अंग बन जाती है तो सहज हो जाती है। तब वह बोझ नहीं रहती। वह उस अवस्थामें उदास भी नहीं करती।' और इसीलिए साहित्य के नये मूल्यकी ओर सक्त करते हुए द्विवेदीजीने कहा था कि 'वित्तगत उन्मुक्तता बड़ी चीज है, क्योंकि वह बड़ा सम्भावनास भरी है। उसका स्वागत होना चाहिए। उसका स्वस्थ विकास हुआ तो भारतीय साहित्यका अच्छा अध्ययन होगा और उसके ममका हम अच्छी तरह समझ सकेंगे। इसी प्रकार 'साहित्यका प्रयाजन—लोक कल्याण' मानते हुए द्विवेदीजीने कहा है, 'दृढता पूर्वक कहना चाहता हूँ कि मनुष्यको अज्ञान, मोह, कुसस्कार और परमुखापेक्षितासे बचाना ही साहित्यका लक्ष्य है। इससे छोटे लक्ष्यकी बात मुझे अच्छी नहीं लगती।'

निस्सन्देह डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी बतमान व्यक्ति व्यक्त निबन्धकारात्में श्रेष्ठतम है। अत्यन्त सामान्य विषयकी चर्चा-द्वारा सरम शैलीमें बड़ी बड़ी बातें कह जाना द्विवेदीजीकी अपनी विशेषता है। 'नाखून क्या बढ़ते हैं?' अपनी नामान विटियाके इस प्रश्नका जवाबमें बड़े ही रोचक ढंगसे सहज भाषामें द्विवेदीजी कहेंगे, 'नाखूनका बढ़ना मनुष्यके भातरकी पगुनाकी निशानी है और उनमें नहीं बढ़ने देना मनुष्यकी अपनी इच्छा है। अपना धादश है। वहत्तर जीवनेमें अस्त्र-शस्त्रोंका बढ़ने देना मनुष्यका पगुनाकी निशानी है और उनकी बाणकी रोचना मनुष्यका तकाजा है। मनुष्यमें जो घणा है, जो अनायास—विना चिन्ताये—आ जाती है, वह पगुनका द्योतक है और अपनेका मयत रखना, दूसरेके मनोभासाका आत्तर करना मनुष्यका स्वधर्म है।' कम्बलत नाखून बढ़ते हैं तो श्रेष्ठ मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा। 'एक कुत्ता और एक मना' की चर्चा द्वारा गुप्तेव खोदनापकी मनोदशाका परिचय अपने पाठकाकी द्विवेदीजी बड़ी सुगमतापूर्वक दे सकते हैं। मना-रूपतिके सम्भाषणका अटकल द्वारा उनके दाम्पत्य जीवनकी सीकी प्रस्तुत कर मनुष्यपर योग्य कम सकते हैं। निबन्धका शोषक है, 'अंगोरके फूल' और उद्देश्य होता है, इतिहासके बने लक्ष्यका उद्घाटन करना। लोग-बाग जानते हैं कि बसन्त एक निश्चित समयपर आता है मगर द्विवेदीजी कहते हैं कि बसन्त आता नहीं, ले आया जाता है। जो चाहे और जब चाहे अपनेपर ले आ सकता है। 'द्विवेदीजीकी प्रतीति है कि बसन्त भागता भागता चलता है। देगमें नहीं बालमें। किमोका बसन्त पदरुह निनका है ता किमोका नौ मरनेका।' इस प्रकार बड़ी सहज भाषामें महान उद्घावना कर जाना निबन्धकार द्विवेदीजीके लिए आसान है। इनके पत्राके आरम्भ और

अनके शब्दाको सटा देनेपर वे एक श्रेष्ठ निबन्धका रूप ले लते हैं जैसे मेरी जन्मभूमि नामक निबन्ध श्री वैजनाथ सिंह विनोद के नाम लिखा गया पत्र है। ऐम ही दा और पत्रोका मैंने देखा है एक 'नयी धारा' के सम्पादक रामबृन्ध वेनोपुरीके नाम और दूसरा हमके (शांति सखति अक) सम्पादक अमृतरायको।

द्विवेणीजीने मौजमें एव वार कहा था कि मैं अपने तइ अनार्किस्ट हूँ। हमका उल्लेख मने ऊपर किया है। सचार्ई यह है कि द्विवेदीजाके कृतिरव और व्यक्तित्वसे जिनका अच्छा तरह परिचय है वे इस बातसे कतई सहमत नहीं हागे। सामाजिक मयादा और यथानिज समयका जतिग्रम कर जाना द्विवेदीजाके व्यक्तिके अनुकूल नहीं है। उनक निबन्धामें उनकी प्रकृति जावती है, उनरी भाषामें उनका वक्तव्य (आरेटर) वालता है एक विशेष प्रकारका उतार चढाव लिखे हुए। विचार और अनुभूतिमें एकमें सम्पन्न होकर अभिव्यक्त हुई है। कहीं-कहीं बाच बोचमें विनाद भी है। लेकिन व्यंग्यको मात्रा उनके निबन्धामें कम है। व्यंग्य है भी तो उतना उत्पन्न और तीखा नहीं जानी जैसा कि भार तेदु और निरालामें है, कहीं कहीं गुजलजीमें भी। कबीरक सिङ्गसिङ्गमें स्वय द्विवेणीजीने व्यंग्यका बडी अच्छी परिभाषा दी है। व्यंग्य यह है जहाँ बानेवाला अथरापामें हंस रहा है और सुननेवाला तिलमिग उठा है और फिर भी कहनेवालेका जबाब देना अपनेका और भी उपहासास्पद बना लेता हो जाता है। कबीरदाम ऐम ही व्यंग्यकर्ता थे। और द्विवेणीजी ऐम ही व्यंग्यकर्ता हैं लेकिन उभातक जय के बातचीतकी भूमिपर रहत है। इनके निबन्धोंमें इस श्रेणीका व्यंग्य कहीं नहीं दियाई पडता। कहीं है भा तो अस्पष्ट शांत। उनक निबन्धको गलाब आज और प्रसरतापर एव विशेष प्रकारकी गतिरव शासत सिधार्ई पता है अथात वह गतिरव आज जा रवीन्द्रनाथकी कृतिमाकी विशेषता है। कतिरव यह शान्ति उनक मान्यतावादक अधिक निकट पडतो है, और इसलिये उम बान्पर भी द्विवेणीजी हटा नहीं सवने। द्विवेणीजीका स्वच्छता या निरालाका स्वच्छतावाद नहीं, बल्कि छायावादियों (हिंदी स्वच्छता बानिया) के पत्रका प्रवृत्तिसे इनका अधिक साम्य है।

द्विवेणीजी कहीं कहीं एराय वाक्यमें ही अपना वक्तव्य समाप्त कर देत हैं, जैसे 'शहर शहरे शहर शहरों में भा बाई तुम है। शहर शहर दुनिया इसीका तुम कथा जा रहा है और बिलालकी छटा उपरिधत करनक लिए यह कहना कि "मुझे बचनार पूरकी लार्ई बहुत गाता है। सबसे बडी बात यह है कि इस पत्रका पत्रोका भा बन सक्ती है। द्विवेणीजी प्राय धारेंग एमी बात कहकर अट्टाय कर उठत है। इस प्रकार वेनु गानकी शक्ति बचत दो ही

त्रय निकालकर रम दिया जाय तो आप ध्यानसे देखें, वह पूरा वस्तुत्व है,
 उर यह है कि हस्तनभयवाला वेतु दण्डवारण्यके रानाका नाग कर डालता
 । मुझे आंका हूँ कि दण्डवारण्य वही हृदराबादकी रियासत तो नहीं है ।”
 शोभे जो दो पक्षियाँ हैं, “बुरा मैं किसीका नहीं सोचना चाहता । भगवान
 करें, दण्डवारण्य मूलोकेमें वहाँ हो ही नहीं ।” लेकिन दण्डवारण्य मूलोकेमें ही
 है और द्विवेणीजीकी आशंका है कि वह हृदराबादकी रियासत है जो पापकी
 नाशपर लड़ी है । एक और वाक्य दमिए, “प्राय मोहक वस्तुओंको देखकर
 मनहूम लोगोंको याद आ जाती है । सबको याती है क्या ?” और किसीका
 आवे न आवे द्विवेणीजीका आशंकाकारी दम्बर चिट्ठका या जल्द याती है ।”
 चिट्ठ-शो सत्कारका सबसे पुराना, सबसे सुगुण, सपस झोधी और सबसे
 दक्षिणानुस प्राणी है । इसी तरह एक बार लेखकाकी समस्याके बारेमें
 सोचत हुए जान कम द्विवेणीजीकी बलवत्के चिठियाधरके बनमानुषकी भी याद
 आयी था और उन्होंने अपना पूरा धारणामें किचित मशासन कर लिया था और
 अब उनका राममें दस्तुत ससारक सभी बनमानुष गम्भार और तत्त्वदर्शी
 त्तिाई दत है ।” द्विवेणीजीका शलीवा एक रूप यह है और एक वट है जब वे
 वस्तुनिष्ठ भाषा और लम्बे लम्बे वाक्याका प्रयाग वाणमट्टका तरह था कि
 रत्नाद्रनाथकी तरह करन लगते हैं । वाणमट्टके अलावे और ना बहुत से सस्तुत
 मनापिशोकी प्रभाव द्विवेणीजीपर होगा । मगर जो सबसे स्पष्ट और गहरा प्रभाव
 है वह रत्नाद्रनाथका है । यह प्रभाव इनका मुख्य है कि द्विवेणीजीके निबन्धोना
 पस्त समय पाठको कभी यह भ्रम भी हो सकता है कि हम वहाँ रत्नाद्रनाथको
 का नहीं पढ़ रहे हैं । इसी प्रभावके कारण द्विवेणीजीके अनिश्चित भाव प्रवणता
 और कौन-कौन अनिश्चित उच्छ्वास भी दिखाई पड़ता है । यह यत्नियक
 निबन्धकी विशेषता ही मन्ती है मगर समाधा अप ग्राह्योय विषय विवचनमें
 यह एक प्रयुक्त दर ल लता है । उदाहरणके लिए हम ‘मूर साहित्य’ को देखें,
 उसमें नालसासकी भाषा बहुत अधिक है, द्विवेणीजीकी अथ समीगा कृतियोंमें
 भी एक अनिश्चित भाव प्रवणता दिखाई पड़ती है । कल्पित हम ही लक्ष्य कर
 हीं। देवगान क्या है कि ‘वस्तुत स्थितीजी एक गुण समीगक नहीं है ।’ मरे
 कौनो वाक्य निक इतना ही है कि द्विवेणीजीका गैरीमें एक उच्छ्वास है,
 उनका दृष्टि एक करता है जो समाधामें वाक्य निष्ठ होती है । द्विवेणीजी
 त्तिा प्रार नरसक तिसका नामुग करना नहीं चाहते, इनलिा गुण समाधामें
 जो एक साह्य और तदस्पता अपगित है वह वाधित होकर अब जाती है ।
 मरा मन्त्र विप्र इत्यादी है । उनका पाण्डित्य का एक आच्छातक गरिमासे

अतके शांदाको सटा देनेपर वे एक श्रुत निबन्धना रूप ले लते हैं जैसे मेरी जन्मभूमि नामक निबन्ध श्री बजनाथ सिंह 'विनोद' क नाम लिखा गया पत्र ह । ऐसे ही दा और पत्राका मने दखा ह, एक 'नयो धारा' क सम्पादक रामवन्ध बेनीपुरीक नाम और दूसरा हसके ('शांति सस्वति अक) सम्पादक अमृतरायका ।

द्विवेणीजीने मोजर्म एक चार कथा था नि में अपने तइ अनाकिस्ट हैं । इसका उल्लेख मने ऊपर किया ह । सचाइ यह ह कि द्विवेदीजाक कृतित्व और व्यक्ति-वस जिनका अच्छी तरह परिचय ह वे इस बातसे कतई सहमत नहीं हागे । सामाजिक मयाग और वैधानिक समयका अतिव्रम कर जाना द्विवेदीजाक व्यक्ति क अनुकूल नहीं ह । उनक निबन्धामें उनकी प्रकृति सािकती ह, उनकी भाषामें उनका बक्ता (आरेटर) बालता ह एक विशेष प्रकारका सतार चनाव लिये हुए । विचार और अनुभूतिया एकमें सम्पकत हाकर अभिव्यक्त हुई हैं । कहीं-नहीं बोच वाचमें विनाद भी ह । लेकिन व्यंग्यका मात्रा उनक निबन्धामें कम ह । व्यंग्य ह भी तो उतना उत्तुज और तात्वा नही यानी जैसा कि भार तेदु और निरागामें ह कही कही गुजलजीमें भी । कवीरक सिलसिलेमें स्वयं द्विवेणीजीने व्यंग्यकी बड़ी अच्छी परिभाषा दी ह । व्यंग्य वह ह जहा कहनेवाला अक्षरालयमें हंस रहा हा और सुननेवाला तिलमिला उठा हा और फिर भी कहनेवालेका जवाब देना अपनको और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हा । कवीरदाम ऐस ही व्यंग्यकर्ता थे ।' और द्विवेणीजी ऐस हा व्यंग्यकर्ता हैं, लेकिन समातर जब वे बातचीतकी भूमिरर रहत हैं । इनके निबन्धामें इस श्रेणीका व्यंग्य कहीं नहीं दिखाई पडता । कही ह भा तो अत्यत शांत । उनक निबन्धाकी शैलाक आज और प्रखरतापर एउ विशेष प्रकारका शांतिका शासन सिखाइ पडता ह अयात वह शांतिपूण आज जा रवीन्द्रनाथकी कृतिमाकी विशेषता ह । कथाचिन यह शांति उनक मानवतावादके अधिक निरुट पडतो ह, और इसालिए उन चाहकर भी द्विवेणी हटा नहीं सकते । द्विवेणीजीका स्वच्छन्दता वाद निरालाका स्वच्छन्दतावाद नहीं, बल्कि छायावाणिया (हिंदी स्वच्छन्द वाणिया) में पत्रकी प्रवृत्तिस इनका अधिक साम्य ह ।

द्विवेणीजी कहीं कहीं एकाध वाक्यमें ही अपना बक्तव्य समाप्त कर देते हैं, जैसे " 'मगर मगरे बगरे ठगरे में भी काई तुक ह । मगर मभी दुनिया इसोका तुक कता आ रग ह और विनाका छटा उपस्थित करनेक लिए यह कहना नि "मुमें कवनार पूरकी लगाई बहून भाता ह । सबसे बड़ी बात यह है कि इन पूर्णोंकी पकौणिया भी बन सकती ह । द्विवेणीजी प्राय धारेंमें ऐसी बात कहकर अट्टांस कर उठत ह । इसा प्रकार वेनु दग्न की चर्चासे केवल दा ही

वाक्य निकालकर रग गिया जाय तो आप ध्यानसे देखें, वह पूरा वस्तुव्य है, "डर यह है कि हस्तनगनमाला वेतु दण्डकारण्यो रात्राका नाग कर डालता है। मुझे आका हुई कि दण्डकारण्य कहीं हदरावादनी गियासत तो नहीं ह।" आगे भी दो पक्तियाँ ह, "बुरा मैं निसोका नहीं सोचना चाहता। भगवान करें, दण्डकारण्य भूलोकमें कहीं ही ही नहीं।" लेकिन दण्डकारण्य भूलोकमें ही है और द्विवेणीजीको आका है कि वह हदरावादकी रियासत है जो पापकी नीवपर रखी ह। एक और वाक्य देखिए, "प्राय मोहक वस्तुआको दखकर मनदूम लागोंको याद आ जाती ह। सबको आती ह क्या ?" और निसोको आवे न आवे द्विवेणीका आग्रमत्ररी दखकर निच्छुकी याद जरूर आती ह।" विच्छु-का सकारका सबसे पुराना, सबसे सूसत, सबग क्रोधो और सबसे दडियानूस प्राणो ह।' इसी तरह एक बार लेखकी समस्याके बारेमें साक्षत हुए जाने बस द्विवेणीजीको बलकसेक चिडियाघरके वनमानुषकी मो याद आयो था और उन्होंने अपनी पूव धारणामें किंचित नशाधन कर लिया था और अब उनकी रायमें वस्तुतः ससारके सभी वनमानुष गम्भार और तत्वदर्शी सिद्धाई देने हैं।" द्विवेणीका गलीका एक रूप यह है और एा वह ह जब वे मस्कुनीष्ट भाषा और लम्बे लम्बे वाक्याका प्रयोग बाणभट्टका तरह या कि रवीन्द्रनाथकी तरह करने लगते हैं। बाणभट्टक अलावे और भी बहुत स मस्कृत मनापिमाका प्रनाद द्विवेणीजीपर हागा। मगर जा सबसे स्पष्ट और गहरा प्रभाव ह वह रवीन्द्रनाथना ह। यह प्रभाव इतना मुखर ह कि द्विवेणीकाके निबन्धोंको पढ़त समय पाठकको कभी य भ्रम भी हा सकता है कि हम कहीं रवीन्द्रनाथकी सा नहीं पढ़ रह हैं। इसी प्रभावके कारण द्विवेणीजीमें अनिश्चित भाव प्रवणता और कहीं कहीं अतिरिक्त उच्छ्वास भी सिद्धाई पडता ह। यह अतिचञ्चक निबन्धकी विशेषता हो सकती ह, मगर समीक्षा जस शास्त्रीय विषय विवचनमें यह एक प्रयुक्तना रूप ल पता ह। उदाहरणक लिए हम 'सूर साहित्य को देखें, उसमें उच्छ्वासीका माप्रा बहुत अधिक ह, द्विवेणीजीकी अय समीक्षा कृतियोंमें भी एक अनिश्चित भाव प्रवणता सिद्धाई पडती है। कथावित् हम ही लक्ष्य कर डॉ० देशपांडेने कहा ह कि 'वस्तुतः द्विवेणीजी एक शुद्ध समीक्षक नहीं हैं। मरे कहारा बाणभट्टक इतना हा ह कि द्विवेणीजीका गलीमें एा उच्छ्वास है, उनका अर्थमें एक कथा ह जा समासामें बाधक सिद्ध हाती है। द्विवेणीजी सिमा प्रनाद नरसरा निसोका नागपुग करना नहीं चाहते, इउतिना शुद्ध समासामें जो एक सागम और तटस्थता अपणित ह व बाधित होकर रय जाती ह। मरा मउत्तव सिद्ध इउता ही ह। उनका पाणित्य सा एा आच्छातन परिभासे

युक्त है। यह भी सच है कि आचार्य गुबलके बाद आधुनिक साहित्य और साहित्यिकोपर आचार्य नन्ददुलार वाजपेयी और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीवा ही सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। निरालाजीका प्रभाव दूसरे प्रकारका था। और अनेयजी जरा बादमें आये और उनका प्रभाव जरा और बादमें एक खास सीमा रेखा लिये हुए पड़ा।

‘दशदास के जगलमें बैठकर द्विवेदीकी मुटकट्टाकी भीड़ देखते हैं तो उत्साहित होकर कहते हैं कि “ताज लाव मुटकट्टाकी गुलाम बना सकता हूँ। भूतोमें जमे मुटकट्टे होते हैं, आदमियोंमें भी कुछ होते हैं। मस्तक नामकी चीज उनके पास होती ही नहीं। मस्तक ही नहीं तो मस्तिष्क कहाँ, लता ही कट गयी तो फूलकी सम्भावना हा कहाँ रही—“लताया पूत्रलूनाया प्रसूनस्पोदभव फुल।” ये मुटकट्टे यानी कटे मस्तिष्कवाले, आश्चर्य हैं कि कटे मस्तिष्कवाले होकर भी दूसरोका मूड वाटनेकी तज बुद्धि रखते हैं। जाति वृद्धिकी चिन्ता शायद इनकी प्रधान चिन्ता होती है। और चिन्तन चूँकि वेमूडके चलता है, इसलिए मूडवालो के काम नहीं आता। इन मुटकट्टोके बारेमें द्विवेदीजीके वक्तव्यका अर्थ जहाँतक म सम्झ सकता हूँ वह यही है और इतना और भी है कि मुटकट्टोंका वास केवल उन घोर देहातामें ही नहीं जाता जहाँ फक्ककी गायकी या ‘महासम पाठ करनेवाले पण्डितजी रहते हैं बल्कि आज ता इनकी संख्या उन नगरों महानगरोंमें अधिक बढ़ता जा रही है जहाँ सम्यक्ता शरापत्रकी डोग हाकनेवाले अधिक हैं, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय हैं चाकचिक्कमें पलनेवाले और शिथिल बड़े जानेवाले लोगोकी बहुसंख्या है, विज्ञान समा और लोचसभा हैं, यायालय और उच्च मायालय हैं नेता हैं—अभिनेता हैं, बवि और महाकवि हैं महात्माके महान हैं और वही मुटकट्टाकी भारी पलटन है। ‘पूने परिवीधने वृत्त।’ महात्माके महान जीवन दानक प्रति आम्प्यानी हवा उठ रही है कि उनके चले देशकी नतिकताकी ‘धने क भावपर उताव लाये हैं। और देश मुटकट्टाकी मारका शिकार हो गया है कि भयकर भ्रांति है, बौद्धिक जड़ता है और राज राज मुटकट्टाकी पलटन बढ़ता जा रहा है। बसोधि दशदारका लकडासे घाट करनेवाले चरित उठ गये हैं या ‘भूतमगावन त्रियामे उदासीन हो गये हैं।

चमूना यह पत्रका एक महामुडकट्टाका मूडवाला मानकर चला है। लेकिन इन चमूनाका कौन समझाये कि वह महामुडकट्टा यदि मूडवाला है नरे गाव जवामें मुटकट्टाकी मुटकट्टा बढ़ते हैं। यानी वने मूडवाला और मूड घाट लनेवाला भूत। ऐसी एक धारणा है। जिने जीके गतिके निश्चय ही मेरा गाव है, इसलिए मुटकट्टा और मुटकट्टा दो नहीं एक है।

शांतिनिकेननमे निवालिक्

होता तो तुम्हारे लिए विजातीय होता, उसपर तुम्हारा आस्था नहीं होती, उस अपना आका मानकर तुम न चलते। पीकिंगवासी इस महामुडकट्टेकी भापाका अर्थ सबका नहीं लगता। अपनी भापाका असली अर्थ वह खुद ही समझता है। और मुडकट्टाभी पलटनको समझस क्या लेना दना। द्विवेदाजी कहते हैं, "जो सबको लगे वह अर्थ है, जो एकको ही लगे वह अनर्थ है।" पीकिंगसे उठनेवाली हवा अनर्थका हवा है और यह रुग्ण और विपली हवा यदि दबदार उगानेवाली जमीनको छूने लगी हो तो उसे यही दफना देना जरूरी है कि महामुडकट्टेको यह एहसास हो जाय कि भारतकी धरतीपर—हिमालयकी चोटियापर देवदारुका वन है, मुडकट्टाका पौध अब यहाँ नहीं उग सकती।

हसा-हँसीमें बड़ी बात कहनेका द्विवेदाजीको सहज अभ्यास है। जब वे कहते हैं कि "आज देवदारुके जगलमें बंठा हूँ। लाख लाख मुडकट्टाना गुलाम बना सकता हूँ" तो गुद हँसी नहीं करत बल्कि एक बड़ा संकेत देने हैं कि मुडकट्टाभी जड़ उखाड़ फेंकनेके लिए जगला और गाँवमें जाकर पेट पीघाकी जाति पहचानना जरूरी है, मिट्टीका रहस्य जानना जरूरी है। लोक सभासे काफी हाजम तक ही जिनकी सीमा है कि कवि गाण्डियासे लेकर श्रेष्ठी दरबारा तकमें ही जिन्हें बठनेका अभ्यास है वे तो देवदारु भी डरेंगे और मुडकट्टास भी। मानी मित्रस भी और अमित्रमे भी। इस प्रकारके जीव जिन्हें मित्रस भी भय हो और अमित्रसे भी उनकी स्थिति सबसे बुरी होती है। कदाचित्त इसीलिए बंदिब गण्डिने कामना की थी 'अभय मित्राद् अभय अमित्रान्' मित्रस अभय हा और अमित्रस अभय हा। अभय बड़ी चीज है। बिना इसे प्राप्त किये 'मुडकट्टे को भगाना तो दूर देवदारुकी पकड़ी भी पकड़नेकी शक्ति नहीं रह जाता। और जाना हुई बात है कि जब लकड़ी पकड़नेकी भी शक्ति नहीं रह जाती तो आदमी जमान पकड़ लेना है। शक्तिकी पूजा मनातन कालन होती आ रही है। देवदारु-जसा उन्नत होकर जा मस्तीमें डूब नहीं सकेगा और जिसमें विपत्तियोंक असम्भ्य यपेताको मह सजनेकी शक्ति देवदारु-जसी यदि नहीं होगी तो वह 'भूत भगावन' कलामें सिद्ध नहीं हो सकता। बोरी 'फचफची गायत्रा से राम नहीं चलेगा। इससे मुडकट्टाकी भांड बडना जायेंगे।

सबका दुल्हारा बन जाना बड़ी बात नहीं है क्योंकि तब आदमी विलीन बन जाता है। बड़ा बात है देवदारुका तरल नाच न उतरना, हर बहेतू हवाके साथ समझौता न करना। हजारीप्रसाद द्विवेदाक 'देवदारु' शीघ्रक निबन्धका अन्तिम परिचाय बड़ी अत्युत्तम है—'देवदारुके बारम्बार कथित होने रहनेमें एक प्रकारका मस्ती अवस्था है। युग-युगान्तरकी शक्ति अनुभूतिन हो माना यह मस्ती

प्रदान भी है। जमाना बदलता रहा है, अनेक युगों और लतामान वातावरणत समझौता किया है, कितने ही मदानमें जा बने है और खासो प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली ह, लेकिन देवदार है कि नीचे नहीं उतरा, समझौतेके रास्ते नहीं गया और उसने अपनी मानदानी चाल नहीं छोडी। झूमता है तो ऐसा मुसकराता हुआ मानो कह रहा हा, मैं सब जानता हूँ, सब समझता हूँ, तुम्हारे करिष्में मुझे मालूम है—मुझे तुम क्या छिपा सकते हो—'मोने दुरही कहा मजनी निहुरे निहुरे कहूँ ऊट की चारो।' हजारा बपके उतार चढावका एसा निमम साथी दुलभ ह।'

आज एही अलगाकर ऊँच बननेकी काशिशम हम कितने हाम्यास्पद बनत जा रहे है और नीचे रास्तेसे ऊँच भूमि पानेकी हमारी—महत्वाकांक्षा हमें कितनी बदरूप और कमजोर बनाती जा रही ह, यह कहनकी बात नही ह। कहता तो यह ह कि आज देशे नेता—बलाबार और पण्डिताने अपनी सहा जमान छाडकर दरबारा गचसे समझौता कर लिया है, अपनी खानदाना चाल छाडकर नीचे उतर आये है और नयी चालका अभ्यास गृह कर दिया ह और कुठ घरती छाडकर आकाशमें उडने लगे ह। साम्राज्य इसालिए युगका विसंगतिपर चाट करनेकी उनकी शक्ति शेष हो चुकी ह और दतना ही नहा इहेँ रिदेशी विचार बलमका अपना मूल उरत माननेमें गौरव बोध होने लगा ह। स्वामाविक रूपसे प्राणा ऐसी निक्लने लगी ह जिसका बध किसीका न लगे। जिसकी वाणी उमीका बध 'दिवे-जीव कहते है 'पागलका लगना एका लगना हता ह— बविका लगना सबका लगने लगता ह' अयात "जिसका लगना सबका लगे वह कवि ह, जिसका लगना सिप उसे ही लगे औरका नहीं, वह पागत ह।" पागलाकी सरप्रा आज बढ रही ह। लेकिन अब ५० हजारोप्रसाद द्वियदी नैन चित्त लखव ह ता एव भरासा ह कि भारतमें अभी देवगुरु आवित ह, हजारा बपकी भारताय परम्पराका गवाह जीवित ह आर 'अगोवके फूल' ह जा सकेत दत ह कि 'स्वर्गीय वस्तुएँ परतीस मिले दिता मनाहर नहीं हावीं।

■

आचार्य द्विवेदीके निबन्ध

• •

रमेशचन्द्र शाह

हिंदा-साहित्यका कोई भी चर्चा छिड़नेपर अर्थात् विवादायक साथ एक आम विवादायक जा बहुधा सुननेको मिलती है, वह यह कि इसमें निबन्धकी विधा अथवा विधाओंकी अपना काफी पिछाई हुई है। निबन्धकी अथवा भाषाओंकी तुलनामें भाषा अथवा यद्यपि निबन्ध-साहित्यका दारिद्र्यका रोगा प्रायः रोगा जाता है। यह दूसरी बात है कि भारतके युगसे लेकर अधुनातक निबन्धकारों तक विस्तृत सुदीर्घ परम्परासे घनिष्ठ परिचय रखनेवाला पाठक वस्तुस्थितिको इतना निराशाजनक माननेके लिए तैयार न हो।

मात्रा और विषय वैविध्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो हिंदाके अपने विकासकी इस अलावधिमें जितना प्रगति का है वह किसी भी भाषाका सांख्यिक उपलब्धिसे तुलनीय ठहराया जा सकता है। न केवल विषय निष्ठ, गंभीर और आलाचनात्मक निबन्ध अपितु आत्मन्यत्रक निबन्धकी भी अविनाशिक मुद्राएँ अधिकाधिक छवियाँ हमारे निबन्धकारों द्वारा मूत हुई हैं। निबन्धका 'गाय' हा कोई प्रकार, कोई रूप हो जिसको उपलब्धि न नहीं तो उपलब्धिका आभास या बाज तक अपने यहाँ विद्यमान न हो। बल्कि बहुत सम्भव है दो एक स्वर ऐसे भी यहाँ मौजूद हों जो हमारे निकट अपने ही और जिनकी अनुगूँज तक अद्यत्त न मुनाई पड़। १० माघक मिथका 'सत्र मिट्टा हा गया' और अध्यापक पूर्णसिन्हा 'आचरण का सम्पत्ता' इस प्रसंगमें अनायास स्मरण हो आता है। दूसरा आर लागोंका यह कथन कि हमारे यहाँ मान्तेन या घाला लम्बना टक्करक निबन्धकार नहीं है एक तथ्य है, पर इस तथ्यको स्वीकारनेमें हमें कोई हानिताका बाध नहीं आता। कारण—य प्रतिमाएँ अपने हाँ छात्रियोंमें क्यों, समूचे निबन्ध निबन्ध छात्रियोंमें अफला और जनय है। इनका प्रादुभाव परम्परासे नहीं आता, व्यक्तिगतकी जिहीं अबुम और असायाय सघटनाओंसे प्रेरित आता है।

मात्रा और विषयकी दृष्टिसे तो नहीं किन्तु गुणकी दृष्टिसे हमारे निबन्ध साहित्यमें या एक चूतता गुणसे यात्रि तर सटकनवाली है, वह यह है कि

निबन्ध चिन्तन

३६५

इसके अंदर बहुत कम ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें रचनाकारक सम्पूर्ण व्यक्तित्वकी सवधा सतोपजनक और साहित्यिक अभिव्यक्ति पायी जा सके। दूसरे शब्दोंमें अपने यहाँके निबंधोंकी सबसे बड़ी कमी यह मालूम देती है कि उनकी आत्म व्यंजना कुछ दृष्टियाँ सफल और मनोरंजक होकर भी कई स्तरपर व्यस्पृष्ट या अधूरी ही रह जाती है। बुद्धिका संप्लुट करनेके सारे उपादान भा आ जुड़े हागे तो हृदय व्याप्ता ही रह जायगा, या रजकना भरपूर मिलेगी तो साहित्यिकता तिरोहित हो जायगी, तक होगा तो इनना कि पाठक दस बठकामें भी निबंधका पूरा न कर पाये, और भावना होगी तो इतनी कि समूचा रचना ही सिसकियो में डूबने उतरने लगे। निबंध व्यक्तिका हृदयप्राही आत्मे प्रस्तुत करता भी है ता वह व्यक्ति तक ही सीमित हो रहता है। व्यक्तित्वके माध्यमसे समाज और विश्व मानवताके व्यापक और गहरे सदर्भोंकी उजागर नहीं कर पाता। उनकी सवदाना स्तर भी उतना उचा नहीं होता जितना कि बिधाके महारथियामें पाठकको देखनेको मिलता है। हिंदीके अधिकांश निबंधामें व्यक्तित्वका या ता एक ही आयाम उभरेगा या फिर एकाधिक आयाम उतरते भी प्रतीत होंगे ता उनमें सामञ्जस्य नहीं हो पायगा। हृदय और मस्तिष्कका पाथम्य स्पष्ट चलक जाता है। यहा विराच गैली पथम भा प्रतिबिम्बित होता है। हिंदी निबंधके अंदर शैलियोंका पर्याप्त बविध्य है। पर शिष्य और निर्वाह, भाष और भाषाकी पूण पारस्परिक निभरता बहुत कम देखनको मिलती है। हमारे शैलीवारोम शैलीको सचष्ट आरापना जितनी दिताई पडती है उतनी भाव और मन स्थितिक अनुरूप सटीक व्यंजना डूँडनेकी साधना नहीं दीरता।

इस गुणका उत्कृष्ट हिंदी निबंधके अंदर कहीं मिलता है तो आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीक कृतित्वमें। वास्तवमें व्यक्तित्व और साहित्य जात्म और समग्रकी सभावना सन्तापजनक (और बलात्मक) बविति लगभग जपवाद रूपमें हम द्विवेदीकाके निबंधामें पाते हैं। अभिव्यक्तिके स्तरपर भी वहा अयो माध्यमता वही बविभक्त एका उनमें मुग्ध होगी। हिंदी गद्य इन षोडस निबंधामें प्रौढत्व और परिष्कारकी जि उचाइपाका छू सपा है वे अधिकांश निबंधकाराके लिए अद्यावधि अनधिगम्य बनो हूँ है। क्या सरल, क्या अलंकृत शैली ही प्रकारोके गद्यको उत्कृष्ट बानगियाँ यहाँ उपलब्ध हो सकती है। हिंदु प्रथम श्रेणाके गणकार हाते हुए भा उनम शैलीवारीका कोई साग्रह अनुरोध नहीं मिलेगा। वे सार्द शिली ही नहीं, गण गायत्री भा है। सजक हा नहीं, पण्डित भा है। और इन दानाग मणिकावन सहपाग उन्हें जहाँ एक ओर मोरम और वाशिल हानेस बधाता है, यहीं उन्हें भाषा शैलीके अतिरिक्त सम्मोहनसे ऊपर

रखता है। "निबन्ध गद्यका निबन्ध है"—यह उक्ति द्विवेदीभाषी द्विपद्यमें पूर्णतः चरितान होता है।

हमारे अविवादाय निबन्धकार—मुख्यतः भारते-ओर द्विवेदी-युगके लेखक—या ता "भाव अनुभूति चाहिए, भाषा कसिठ शाय"क सिद्धातका अनुगमन करते प्रतीत होते हैं या "शली हा 'यत्किन्व है' वाली वाचनिक (ओर निर्दोष) भाषाका सद्गुण आभातरम्भामें बहुर दूसरे अतिरेकमें पहुँच जाते हैं ओर व्यक्तिगत तथा व्यक्तिगत निबन्धकी चरमसिद्धि शैलाके सौंदर्यमें ही एकान्तत निहित मानकर गैलीगत प्रभावोंके अन्वेषणमें ही अपना सारो प्रक्तियोंका वेदित करन लगते हैं। साधनमें उन्हें साध्यका भ्रम होने लगता है। नतीजा यह होता है कि ईला व्यक्तिवका रूप न होकर व्यक्तिवका आरूपण प्रकृत उसका 'ग्रहण' (eclipse) बन जाता है। आचार्य द्विवेदीकी कला इन दानों अतिमोक्ष मुक्त है। भाषाके अनुभूति—प्रश्न ज्ञान चेतना ओर उत्तर मानवीय इतिहास—क साप-साय उनमें भाषाक भी उस अनुभूति आभिजायने दान हात है जा हमें लम्ब ओर हृदयगत सारासे अमर निबन्धकारोंका स्मरण दिगता है। इन सन्धनमें लम्बका उच्च यत्नाका अनावाक्य ओर अतिरिक्त प्रतात होगा पर इन पक्तियोंके शेषनको इसमें काइ ऐसा अप्रासंगिकता नहीं लिखाई दती।

त्रिष प्रकार चाल्म लम्बने अतीतयुग (एजिजियन ओर जैजानियन युग का) कई मनानुमियोंका आत्मोत्तरण करके अपना सर्वथा मौलिक ओर अनन्य प्रतिभाका निभाज-नस्कार किया था—जगमग उन्नी प्रकार आचार्य द्विवेदीकी प्रतिभामें भारताय वाचनिकी प्राचीन ओर मध्ययुगीन अनेक रत्नराशियोंका आलोक समाया हुआ है। दोना ही अपने अतिरिक्त आत्मा ओर गुणामें समान भवने अत्रातकी मार्मिक रान्दियाकी अवतारणा करते हैं। हाँ, इस अवतारणा न स्वप्न ओर दग्में जा अतर है वह दानोंके निभो ओर विविष्ट व्यक्तिवोंका अतर है ओर यह सर्वथा स्वानाधिक है। लम्बमें कथाकारका उदयताका पृष्ठ अदिक है मनुष्यका ऐतिहासिक उदय-यात्रा ओर साम्प्रतिक पष्ठभूमिका विन्तन सानन गयीं। उसकी साहित्यिक शक्तियाँ बहुत सृष्टित (अत गहन) ओर उसकी अपनी व्यक्तिगत सनकति प्रेरित शक्त कारण सामित थीं। साहित्यिक जा विगत मानवीय सन्धन इतिहासका जो व्यापक दान द्विवेदीकी नवधिक कतिधामें पद न उभरता है वह लम्बमें कथारित् दु दनेपर भी न मिले। वह ता मानवीयता (उसका कथा ओर उसका श्रु हास) लम्बमें बूट-बूटकर भरी हुई है। अर्थ लम्बका पाठनका—मग्य पाठन—का सत्य जितनी ज्यो प्राप्त हाता है उतना गाय द्विवेदीका नहीं। लम्ब—प्रपगाकन अर्थ आत्माम है

क्योंकि वह अपक्षावत अधिक लौकिक और अधिक 'साधारण' भूमिकापर पाठक से सम्बन्ध स्थापित करता है। किन्तु महानुभूति और उदार मानव प्रेम समान रूपसे दोनोंके कृतिवकी प्रेरणा है। दृष्टियाँ अवश्य भिन्न हैं। सम्भवतः यह भिन्नता 'यक्तिवमे' भी अधिक दोनोंके जातीय और धार्मिक परिवेशकी भिन्नता है।

बाल्मिकीसे द्विवेदीजीके निबन्धकी तुलना इसलिए भी अधिक साधक जान पड़ती है कि दोनों साहित्यके महान अध्येता और आस्वादक हैं। जिस प्रकार 'रामायण' हर सृजनार्थक चेष्टा उसने गहन अध्ययनसे प्रदीप्त है उसी प्रकार द्विवेदीजीकी भी। निबन्ध क्षेत्रमें ही यद्यपि—समूचे हिन्दी साहित्यमें, सृजन और अध्ययन, प्रतिभा और पाण्डित्यका ऐसा विलक्षण संयोग अनूच है। चूँकि बाल्मिकीके निबन्ध अधिक 'वैयक्तिक' है अतः उसकी प्रतिभाका पाण्डित्य विषयकी अपेक्षा शैलीके पक्षमें अधिक प्रस्फुटित हुआ है। इसीलिए उसके 'एसेज' में हम शैलीकी अनेक सुपमाआ श्लोक क्षमताआके दशन करते हैं। द्विवेदीजीमें यह क्षमता निबन्धकी अपेक्षा उपयोगमें अधिक व्यक्त हुई है।

द्विवेदीजीके निबन्ध किसी एक विशिष्ट 'व्यक्ति चेतना' के बाहक नहीं हैं। वे एक ऐसी समृद्ध और सूक्ष्म अंतर्दृष्टिके माध्यम बनकर आये हैं जो मानवको उसकी समग्रतामें—कई-कई कालों और कई-कई सभ्यताओंके परिप्रेक्ष्यमें गिराकर विकसितशील किन्तु चिरंतन मानवको उदघाटित करना चाहती है। उनका 'सत्य' इस या उस 'यक्तिव' निबन्ध, प्राइवेट सत्य नहीं अपितु सबका 'मानुष सत्य' है। द्विवेदीजीके लगभग सभी निबन्ध इसी दिक्कालनिरपेक्ष माननीय 'सत्य'को निरावरण करनेकी महत्सवाकाशा और अनुसंधितसास प्रेरित हैं। यही कारण है कि शैलीका उनका नकट्य न होनेपर, उनकी अपेक्षा अधिक साधकगीन है। इतना अवश्य है कि जिस प्रकार बाल्मिकीके पूरा मन जाननेके लिए पाठकके पास थोड़ा बहुत विद्वत्ताकी पूँजी भी अपेक्षित है, उसी प्रकार आचार्य द्विवेदीकी निबन्धकलाका पूरा रस लाभ उसी रसिकाके लिए सम्भव है जो प्राचीन सभ्यता साहित्य और मध्ययुगीन साहित्यमें कुछ गति रखते हैं। पर इतना ही है कि बाल्मिकीके निबन्ध पाठकसे जिस प्रकारकी विद्वत्ताकी अपेक्षा रखते हैं वह लेखककी भिन्नता यत्किन्तु हृदयामे आक्रान्त हानक कारण अधिक भाग लोगकी महानुभूतिके दायरेसे बाहर पड़ जाती है। (इसीलिए बाल्मिकीके अर्थमें 'वाचस्पत्य' कहा नहीं जा सकता जिस अर्थमें 'महाभारत' या 'ए० आ०' गाँडिनर का अर्थ है।) परन्तु द्विवेदीजीका पाण्डित्य अन्तर्दृष्टिके महानुभूति और रसिक निबन्ध पढ़ता है। यद्यपि उसकी जड़ें हमारी लोक सभ्यतिके अन्दर बहुत गहरी धमी हुई हैं।

यह लोकतत्त्व उनके सभी निबंधोंकी आधारशिला है। विषय चाहे 'अशोकके फूल' हो, चाहे 'संतोका सूक्ष्म वेद' वे अपन इस मूलस्य पल भरको भी पिच्छित नहीं हो पाते। शास्त्रके सूत्रातिमूक्ष्म लौकिकों विहार करते हुए भी उनके मनकी ओर निरंतर इसा मूल मानुष-सत्यसे घेँधा रहती है। 'ठाकुरजीकी बटार' शीपक निबंधमें उहान एक स्थलपर लिखा ह कि 'साधारण मनुष्यके लिए समय पाना बना कठिन ह कि कब पण्डितका शास्त्र उसका बुद्धिको दवा देता है और कब उसकी बुद्धि शास्त्रको।' द्विवेदीजा स्वयं अनेक शास्त्राके ममन ह। पर वे कोरे शास्त्रानकी निडम्बनाअस भली भाँति परिचित ह। वे लोकदृष्टिसे ही शास्त्रगत सत्यका मूयाका करते है। उनका विश्वास ह कि 'पण्डितकी वातका समति लोक परम्परास हो लग सकती ह'। तथापि हजलिटकी तरह उहाने 'पण्डिताकी अजता' पर प्रहार ननी किये क्योकि 'पण्डित्य'में जा एक महिमा, एक दीप्ति हाता है, वह लोक-दृष्टिक सतहीपन और अस्थिरताका उपचार करती है, एक प्रगाप्ते उसे सन्तुलित और सम्पूर्ण करती है। द्विवेदीजी इस सत्यको हृदयगम कर चुक है। उनका पाण्डित्य अपनी साध वृत्तिना उरसाता ह और वस्तुके प्रस्तुत सौत्यमें लीन उनके मनकी हठान खींचकर उसका परम्पराका अनुसंधान करने और उसक मूल तक पहुँच जानेकी ओर प्रेरित कर देता है। तथापि उनकी यह प्रवृत्ति निबंधको तत्रि भी बोधिल नहीं बनने देती। प्रस्तुत उसकी रमणीयतामें चार चाँद लगा देती ह। 'अशोक'—'गिरीपके फल' और 'आमके घोर' उनका विद्वत्ताके सत्यगति सप्राण-मवाक हो उठते है—मनुष्यकी जययात्राके जीवत आलेपस। यह वह पान नहीं जो जानकारोक धानस थक चुका होता ह। यह प्रताका वह तेज ह जो रत्नका विधायक कल्पनाके त्रिये नये गितिन, नये आवागवो उभुन कर देता ह। उने एक विलक्षण अतदृष्टिसे सम्पन्न कर देता ह।

आचार्य द्विवेदी 'कला कलाके लिए बाल सिद्धान्तका नहीं मानते। उनकी दृष्टिमें तो "सारे मानव-समाश्रकी सुत्तर बनानकी साधनाका नाम ही साहित्य ह।' उनक निबंधोंमें भी वही साहे-दता, सत्यकी वही आदुल अनुगतिप्रत्या सब्र द्यास है जो उनके शोध प्रथोमें। इन निबंधोंमें-मे अधिकांश साहित्य और उनकी आलापनास सम्बन्धित ह और इस नाते 'आरम निबंधक क्षेत्रस दूर पत्न है। कि भा य बटना ह कि ब 'ललित चि-उन'की परिचित बाहर है उनके साथ अ-याय हागा। एक उगर, निरापह मानव प्रेम उनक चिन्तनका नियामक ह। उनकी विद्वत्ता उदस्य सत्तोंमें नहीं, अकि धतोत्र और वतमानक रागात्मक सम्प्रयोगो प्रवागित करनेमें प्रसट होता ह। विन्ता सबन्नास दिनच हाता ह

और संवेदना विद्वत्तासे प्रखर । दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि आचार्य द्विवेदीके निबन्धोंमें विद्वत्ता ही नहीं, विद्वत्तावा रसावेग भी है ।

यह विद्वत्ताका रसावग उनके शुद्ध ललित निबन्धोंपर भा छाये हुए है । इसकी सहाय्य अनुमानत दो दर्जन होगी । हिन्दी निबन्धका चरम उत्कर्ष इन रचनाओंमें देखा जा सकता है । इनमें निबन्धकारके द्रष्टा और भोक्ता दोनों स्वभावकी क्षात्रियाँ मिलती हैं । लेखकके 'आत्म' की, उसके यन्त्रिणा मनोरम छटाएँ तो इनमें विद्यमान हैं ही । मगर उनके साथ साथ भारतीय साहित्य और संस्कृतिकी अनुपम सुरभि भी इनमें आद्यत परिध्यात है । एक पार्श्वात्म परिधुने निबन्धकी परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'किसी चोखेसे प्रभावित और प्रतिष्ठित व्यक्तिकी मनोदशाका हृद्बद्ध चित्र ही निबन्ध है ।' यहना न होगा कि "अशोकके फूल "आम किं दूरी गये" और "वसन्त आ गया है" के रचयितामें इस वर्णनकी नैवचिक्य प्रतिभा प्राच्य है । शिन्तु पर्याप्त आत्मपञ्चक माधुय लिय रहनेपर भी शिवेनीजाके ये निबन्ध उत जयमें 'पानल' नहीं हैं जिम अयमें 'अम्ब या मान्त'के निबन्ध । उनमें अहका उद्रेक नहीं, रिलय है । उनका 'अह' किसी बटुन बड़ी सत्ता गृह्यत घटी शक्तिके प्रति समर्पित है । महानताका जनवत्त सम्पक और चित्तन मनन उन्हें स्वयक —अपनी मानम-तरफारो—अतिशय गम्भीरतापूर्वक लेने और मात्र उर्हींको शब्दबद्ध करनेमें अपना सिद्धि समझोसे रोवता है । यही कारण है कि उनके निबन्धोंमें अहका व अनुगण विस्फूर्जन, व्यक्तियन राग विरागोंकी पग पगपर घोषणा करनेका आग्रह नहीं मिलता जिमसे कि हिन्दीके कई सांस्कृतिक चेतना सम्पन्न निबन्धकार तक बुरी तरह आज्ञान्न है । व्यक्तिक निबन्धकारकी मन्त्रप्रयम विगयता उनकी आत्मीयता होनी है । यही लम्बकी महानताका रहस्य है । 'म' की आत्यन्तिक परिध्यासिके धारतू बह पाठककी ममता पर रोता है—इसके मूठमें यही मधुर आत्मीयता है । द्विवेदीकी निबन्धोंका स्वर भी वृत्त 'आत्मीय है । य आत्मीयता लम्बियत आत्मीयता नहीं है । दोनोंमें स्तर भेद है, पर प्रभाव एक सा है । द्विवेदीजी पाठककी अपेक्षा अपने विषयक साथ आत्मीय हैं । पाठकका स्वभावसे या चमत्कृत कर देनेकी लालसा उनमें नहीं यथाकि उनकी चेतना का विषयक साथ एकात्म है । उनका अह तो उलका मामिक भावनामें लीन है । अतः पाठक उनक साथ सहज भावम, यिना किसी आतक और सञ्चोचके विषयके अदर श्रविष्ट हो सकता है । प० रामचन्द्र गुबन्ने माधवप्रसाद मिश्रके निबन्धोंकी आलोचना करते हुए यह विचार व्यक्त किया था कि "मिश्रजी यिना किसी अमिनिग (उपदेशक या व्यावहारिक प्रयोजन) के नहीं लिख सकते ।"

आचार्य द्विवेदीय निबन्धोंका सबसे बड़ा आकषण मेरी दृष्टिमें यहा है कि पानामक चतनाका उच्चस्तरोंय निवा करतै हुए उनका स्वर गुम्ब आगिर तक सौम्य और भिन्न बना रहता है । काई अतिरिक्त आवेग या आवेग उनका हावी नहीं हो सकता । उसका दस बगिच्छका बह्वास सब होता है जब उनका कोर निबन्ध पढनक बाद हम किसी समानधर्मा समकालीन रचनाका धार अभिमुख हातै ह । एक सहज प्रसन्न व्यक्तिवका आलाक उनका निबन्धामे फूटता रहता ह ।

हमारे यहा अधिकांश निबन्धकारोंमें जो एक आउम्बरप्रियता और स्पष्ट अस्थानार अपन वाग्वैचर्यका प्रयोग करते चलनेका आग्रह निवाटं देता ह उत्तरा आभास तक आचार्य द्विवेदीमें नहीं मिलता । उनका वाग्विचार बहुत मानित और सयत हाता है क्योंकि उसपर विद्वत्ताका अङ्ग रहता ह और कलाकारका सौन्दर्य-भाव । उाका दिनाप्रियता भी स्मित हास्यमें झलकता है— अट्टासमें नहीं । उनका स्वभावमें व्यग्य भा नहींवन है । व्यग्यका अचापन दखनक लिए हमें बालवृष्ण मेट्ट और डॉ० विद्यानिवास मिथक पास जाना हाता । पाठा और रिपा के रग भा आचार्य द्विवेदीय निबन्धोंमें नहीं उभरत । लम्बक सव-यापो और सजग्राहा 'हूमर स उनका हास्यका धरातल मिल्ल है । वह उनको कलाक लिए प्रयोजनीय भा नहीं ।

किन्तु लम्बका कुछ एसी कलागत विशेषताएँ है जे जायाब हजारोप्रसाद द्विवेदीय निबन्धामे भा यत्र-तत्र दखी जा सकता है । कुछ-कुछ बने यायावरो कथना, बने अत्रात्मिक प्रासंगिकताएँ बने गूँस और बाक्योंकी वाचमय अनुबुँध और लक्षानियोंके मानिक प्रमाण उनका लक्षित निबन्धामे भा निरुमान है । विषयक सीमापाण निवाहकी रूपका हमे मुक्त आसगरी पढतिस विरमित करना उन्हें प्रिय ह, निबन्धको उसका अनुबुँध निबन्ध स्वादप्रका भूमिारार प्रतिष्ठित बरनेगारा अंगरजामे हैव ह । द्विवेदीमें यदि इसका कुछ मुग्नाय बनी है ता आचार्य द्विवेदीका जो समता प्रथम श्रेय निश जाना चाहिये, एका शाश्वत अयमे जिमे निवारका एवता (unity) कत ह न्यना बहुत रसांग आग्रह द्विवेदीका निबन्धामे नहीं ह और यका कथा उचित और वाचनाय ह । क्योंकि लक्षित निबन्धका अनुगासन साधारण निबन्धक निन हाता है, उसकी एवता उन और समतिके परस्परगत नियमाँ पर हाता ह । उसका विचार ता प्रगोतरो तरा 'कथना स नियमित हाता ह । आचार्य द्विवेदीय निबन्धोंका 'गद्य प्रगाठ का सजा ता नहीं है जा सकता क्यकि उनका कथा उस एवता मान्यक उठार पडावपर निभर नहीं रहता, न कश्चि-मुग्नाय उकाण्डिक सौम्य

बाधपर ही। फिर भी यह निम्नकोष कहा जा सकता है कि हिंदी निबंधकारों में 'मुक्त आत्म का कलात्मक निर्वाह द्विवेदीजी ही कर सके हैं। यहाँपर वे अनन्य हैं। जिस लंबीके साथ वे विषयसे विषयमात्र करके नाना आयामों कल्पनाका लोला बिनास दियाकर अंतमें पुनः सारे सूत्रोंको एकरूप करके उनका तारतम्य बिठा दत हैं, वह अत्यंत दुर्लभ है। एक जगह उन्होंने लिखा है—“मेरा मन अधभूले इतिहासक आकाशमें चीलकी तरह मँडरा रहा है। कहीं कोई घमकती चीज नजर आयी नहीं कि चपट्टा मारा।” यह वाक्य उनकी रचना प्रक्रियाक रहस्यपर प्रकाश डालता है।

एकदम बतकहिया दगसे मामूली सी बातका बातकी बातमें कल्पनाके पखो पर बिठाकर ऊँचे उड़ जाना और एक असाधारण धरातलपर उसकी चर्चा करना उनकी अपनी विशिष्टता है। पाठक बिना किसी बोध या ध्वनिका अनुभव किये उठना अनुसरण कर सकता है। उदाहरणक लिए उनका 'नागून क्या बढ़ते हैं' पत्र जाइए। कितना कुछ हाथ लगता है और प्रारम्भमें उपसंहार तक कहीं भी पढ़नेमें आयासका अनुभूति तक नहीं होती। कल्पनाकी कला दखनी हो तो उनके क्या आपने मेरी रचना पढ़ा है? और जबकि दिमाग माली है' सीपक निबंधका आस्वाद लेकर देखिए। लेखनीका यह लापव हिंदीक कितने निबंधकारोंको मित्र हो सका है?

भाषाको दृष्टिसे भी द्विवेदीजीने निबंध लेखकाका भागदशन कर सकत है। संस्कृतके विद्वानोंमें जो एक अत्यंतिक अलंकरणप्रियताका आग्रह अक्सर देखा जाता है वह यहाँ लगभग नहींके बराबर मिलेगा। अलंकरण उसी सामाजिक स्वीकारा गया है जहातक वह निबंधकी कलात्मक सिद्धिमें बाधक नहीं बनता। उनके ध्वारिक निबंधोंमें भी विषय प्रतिपादनका दृष्टिसे एक समय आवायका कौशल सर्वत्र शक्यता है। किन्तु अध्यापकका उपदेशात्मक अथवा वाग्मीके शब्दमोहसे वे सर्वथा मुक्त हैं।

ध्वारिक दृष्टिकोणका उदारता भी इन निबंधकारोंके विशिष्टता प्रदान करती है। भारतीय संस्कृतिके इस अनूठे मंत्रद्रष्टाकी यह उक्ति कितनी सायक है।—
“म ऐसा नहीं मानता कि जो कुछ हमारा प्राचीन है जो कुछ हमारा विदेश है उससे ही हम चिपटे रहें। पुरानका भाव सब समय वाद्यनीय नहीं होता, मरे बच्चेका गोममें दवाये रहनेवाली बंदरिया मनुष्यका आदेश नहीं बन सकती।”

बौद्धिकता और तार्किकताका आदेश समायाजन इन निबंधोंमें देता जा सकता है। यह सामाजिक किसी कार सद्धातिर सामाज्यवादका पत्र नहीं है। यह तो एक विनाल सवग्राह्य सवदना और परिपक्व प्रतिभाकी उपज है।

द्विदोषों का ठेठ विचार प्रधान निबन्ध भी तार्किक रूढ़ता से मुक्त होते हैं। बुद्धि और हृदय दोनों के दावा पर बराबर ध्यान दिया जाता है किन्तु दोनों के स्तर अलग अलग नहीं जान पड़ते। यह पाठक शुकलजी के निबन्धों में स्पष्ट दिखाई दे जाता है। वहाँ हृदय और बुद्धि की सत्ताएँ एक दूसरे से कटी फटी सी प्रतीत होती हैं। उनमें सहयोग तो दूर रहा, सह अस्तित्व टक्का निर्वाह मुश्किल से हो पाता है। शुकलजी के निबन्ध शुकलजी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दर्शन नहीं करा पाते। वैचारिक व्यक्तित्व ही प्रकट होता है, व्यक्तित्व के और पक्ष या तो सामने आते ही नहीं और अगर आते भी हैं तो बहुत हिचकते झिझकते हुए। एक एक वाक्य में दबा दबाकर विचार ठेंगनेबा आग्रह उनके निबन्धों को इतना सरत और सघन बना देता है कि उसमें हृदय के छलकने की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती। कभी-कभी कुछ तरलता का आभास मिल भी जाता है तो वह पष्ठभूमि की कठोरता और कमावट में घुल मिल नहीं पाता। पूरे निबन्ध से उसका कोई सहज सम्बन्ध नहीं उभरता। बुद्धि हृदय को समानता के स्तर पर भेंटती नहीं—बल्कि उसे उसपर कोई अहसान करके थोड़ी रियायत बख्श देती है। अतः प्रभाव समरस नहीं हो पाता।

हमारा ध्यान हम देखते हैं कि आचार्य द्विवेदा के निबन्धों में हृदय की मुक्तावस्था और मस्तिष्क की स्थितप्रणता का एकत्र निर्वाह सम्भव हुआ है। वे अपने ललित वाक्यों में विचार का भाव और भावना का विचार करते हुए प्रतीत होते हैं। हृदय और बुद्धि का दो धाराएँ निविराध बड़े सहज भाव से हिल मिलकर एक दूसरे को और समुक्त रूप से लखकरी कल्पना को अपसर करती प्रतीत होती हैं। इसी बात को यों भाँव सकते उनकी बटुमुखी रुचि का ही ज्ञानक व्यासपीठ पर आसान हाँकर मुखरित होती है। इसमें रचमान भी सन्देह नहीं कि शुकलजी के निबन्ध साहित्य का एक विशिष्ट स्तर, एक ऐतिहासिक महत्त्व है। यह भी हमें मानना पड़ेगा कि उनके क्षेत्र में उनसे टक्कर ले सकने लायक कोई प्रतिभा अभी तक हिन्दी में अवतरित नहीं हुई। फिर भी—सब दृष्टिगोले विचार करने के उपरान्त निष्पत्ति यही निकालना पड़ता है कि आचार्य शुकलजी अपना आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदा का निबन्धादा ही इस विषय में हिन्दी की सर्वोच्च सम्भावना ज्ञाना सक्त और पूर्वाभास प्रस्तुत करता है।



द्विवेदीजीके निबन्ध साहित्यमें—

‘मानव’

• •

दिनोदिनी सिंह

आधुनिक युगके साहित्यमें मानवके मूल्यांकनका प्रश्न महत्त्वपूर्ण स्थान रखा है। आजके साहित्यकारके समस्त दृष्टता गीण है, मानव प्रमुख है। इसलिए स्पष्ट रूपमें कहा जा सकता है कि मानव जीवनकी प्रगति, मानवका विश्राम, मानव की भावना ही साहित्यकी आत्मा है।

प्राचीन साहित्यमें भी ‘मानव’ को प्रथम मिला था, परन्तु तत्कालीन साहित्यमें उसके जीवनके समग्रवी प्रधानता नहीं थी। प्राचीन साहित्यकारोंने मानवके उदात्त चरित्रका महत्त्वपूर्ण माना था, आधुनिक साहित्यकार मानवके सम्पूर्ण व्यक्तित्वका साहित्यका आधार मानता है। ‘चरित्र को स्वीकार करनेका अर्थ है, उसके समाजानुकूल विचारोंके आधारपर ही उसका मूल्यांकन परन्तु व्यक्तित्वको स्वीकार करना अर्थ है, उसकी सबलताओं और दुबलताओंकी एक साथ स्वीकृति।

आचार्य महात्माप्रसाद द्विवेदीके युगम भा मानवतावादो विचारधाराको प्रथम मिला था परन्तु उसमें आदर्शका स्वर ज्यादा मुखर था।

प्रगतिवादी साहित्यकारोंके आविर्भाव कालमें ‘मनुष्य’ फिर एक बार नवीन रूपमें साहित्यका विषय बना।

उसके नवीन रूपको डॉ० धर्मवीर भारतीने स्पष्ट करत हुए लिखा है—
“मनुष्यकी गरिमा नये स्तरपर उठ्य हुआ और माना जान लगा कि मनुष्य अपनेमें स्वतः मायक और मूल्यवान है। वह आन्तरिक शक्तिप्राप्त सम्पन्न चेतन स्तरपर अपनी नियतिक निर्माणके लिए स्वतः नियम रनेवाला प्राणी है। सृष्टिक कर्तृमें मनुष्य है।”

‘प्रसरण युग के साहित्यमें ‘मनुष्य’ की इस गरिमामय सत्ताका विस्तारक

१ मानव मूल्य और साहित्य, डॉ० धर्मवीर भारती—भूमिका ६० ६, प्रथम मुखरण।

साथ विश्लेषण डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने किया है। डॉ० द्विवेदीकी दृष्टि एक एस साधककी दृष्टि है जो जगतको विवेक रूपमें अनासक्त या दृढाकी भाँति स्वीकार करती है। उसने लिए जा मूल्य सुखका है, वही दुःखका है। उसने लिए जीवन यदि 'सत्य' है तो मृत्यु अनिवाय सत्य है।

डॉ० द्विवेदी जब भी साहित्यके लक्ष्य, साहित्यके उद्देश्य, साहित्यकी सीमा, साहित्यकी भावना, साहित्यकी भाषाकी चर्चा करते हैं, उनके मस्तिष्कमें 'मानव' अपने प्रखर तेजके साथ मूर्तिमान रहता है। डॉ० द्विवेदी जानते हैं कि "मनुष्य की पशुताकी जितनी वार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।" परन्तु वे यह नहीं मानते कि यदि पशुता मर नहीं सकती तो उसे उसी रूपमें छोड़ दिया जाय। 'पशुता' समाप्त हो या न हो, उसे समाप्त करनेकी चेष्टा मानवका धर्म है। 'मानव' का व्यक्ति व इतना व्यापक है कि उस किसी दायरेमें नहीं रखा जा सकता। उसका वास्तविक विकास जब भी होगा, उध्वमुखी होगा।

यथावत् गहनने इसी विचारधाराको स्वीकार करते हुए कहा है—

"मनुष्यक अस्तित्वका सम्भावना क्षेत्र असोम है, वह कुछ भी बन सकता है। इसका अन्तगुहावासा उतना ही रहस्यमय है जितना ब्रह्म, उतना ही वस्तु-सम है जितना वैज्ञानिक सिद्धांत, उतना ही दुर्निवार है जितना प्रत्यक्ष और उतना ही वाच्य है जितना परम पुण्याय।"

इस प्रकार 'मानव' का मूल्यांकन किसी एक 'परिभाषा' में बाँधकर नहीं किया जा सकता। 'मानव' का मूल्यांकन हमकी समस्त विशेषताओंके साथ किया जाना चाहिए।

डॉ० द्विवेदीने निबंध साहित्यका अपनी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधाके रूपमें स्वीकार किया है।^१ इनका निबंध साहित्य इनकी विचारधाराका प्रतिनिधित्व करता है। फलतः इनके निबंध साहित्यको इनके विविध विचारोंका कोश बना जाये तो अशुद्धि नहीं होगी।

उन विचारोंमें 'मानव का मूल्य निर्धारण करनेवाले विचार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ० द्विवेदीने मानवके सवगुण सम्पन्न रूपकी ही कल्पना की है। इनके मानवतावादी विचारोंके मूल केन्द्र कानिगास, कचार, गांधी, रवात्र और पन्त रहे हैं। कबोरकी फण्ड मस्ती, गांधीकी पर-दुःख-नातरता, रवात्रकी पर-मुग्धागिताके प्रति विरक्ति, कानिगास और पन्तवा अनामक रूप डॉ० द्विवेदीके 'मानव' सम्बन्धी विचारोंकी मूल भूमि है।

१ माध्यम १० १३ पृष्ठांक १० मई १९६०।

२ २३ ६ ६७ की हुई व्यक्तिगत वाणीके व्यापारपर।

फ़लत डॉ० द्विवेदीना 'मानव अनेक शक्तिका स्वामी, स्वाभिमानो, आरिभक्त गुणाके प्रति आगत, अपनी सस्कृति और परम्परामें निस्वास रखने वाला, आयुनिकता और पुरातनतामें समन्वय स्थापित करनेवाला प्राणी ह ।

डॉ० द्विवेदी जब मानवके शक्तिकी सीमा निर्धारित करनेकी चेष्टा करते हैं तो उन्हें कोई सीमा रेखा नहीं मिलती । उनको आँखोंके समान जीवतत्त्वके उद्भव और मानव रूपमें उसकी परिणतिका सम्पूर्ण चित्र अंकित हो जाता है ।

वे देखते हैं मानवकी जिजीविषा शक्तिका प्रसर रूप ।
 "न जान किस पुण्य क्षणमें किसी अनात कालके अगत मुहूर्तमें हमारा यह ग्रह पिण्ड जिसका नाम पृथ्वी दिया गया है मूय मण्डलसे टूट गया था, उस समय यह ज्वन्त गमोसे भरा हुआ था । गुरुसे अतन्त बबल तापसे परिपूर्ण यह द्रुटित धरित्री खण्डके किस कणमें जीव तत्व वत्तमान था, कोई नहीं जानता । न जाने कबसे जीव तत्व उन तप्त घातुओमें छिपा हुआ अनुकूल अवसरकी प्रतीक्षामें बैठा हुआ था । समस्त जड शक्तिके मस्तकपर पैर रखकर जब वह मृदुल तृणाक्षुरके रूपमें पैग हुआ तो पृथ्वीके इतिहासमें अवटित घटना घटी थी । जीव-तत्वकी ऊच्च गामिनी वृत्ति आजतक समस्त जड तत्वोंकी परास्त करके विराज रही है । जीव-तत्व विकसित होता गया एक कोशसे अनेक कोशोंमें सरल सघातसे जटिल समूहके रूपमें, बर्मेन्द्रिय प्रधान जीवोंसे नानेन्द्रिय प्रधान जीवोंके रूपमें और अन्तमें उनमें मनुष्यके रूपमें अपनेको पकट लिया । मनुष्य उसकी अन्तिम परिणति है ।"

युग, धम जाति साम्राज्य और समृद्धि मनुष्यको नहीं बाँध पाते ह ।
 सबका उत्थान और पतन होता रहता है, मनुष्य फिर भी बचा रहता है ।

'विपत्ति और कष्ट आते हैं और चले जाने हैं, समृद्धि और धनाढ्यता फेर बुद-बुद्धके समान काल स्रोतमें उत्पन्न होती है और विलीन हो जाती है साम्राज्य और धम राज उठते हैं और गिर जाते हैं परंतु मनुष्य फिर भा बचा रहता है ।"

मानवकी बुद्धिम्य जिजीविषाके मूलमें उसका स्वाभिमान निहित रहता है । उसके अंतरका गौरव ही उस समस्त विपमताआने विलग रहता है । यही स्वाभिमान व्यक्तिका पतनोन्मुख होनेसे बचाता है । दूसरे क्षणमें इसे नान्त धम कहा जा सनता है ।

१ विचार प्रवाह, पृ० २०८ प्रथम संस्करण ।
 २ अशोकके फून, पृ० १०३ आठवाँ संस्करण ।

“वह आत घर्म उसे आत्मा कहिए या जो कुछ भी कहिए, बहुत शक्ति-शाली जीवनीपादान है। उसके सन्तुष्ट हानेस मनुष्य बड़ी आसानीसे विरोधी और उपहासाकी उपेक्षा कर सकता है।”

मानवके अन्तरकी पशुता उस बार बार लालच दकर अपनी ओर आकर्षित करती है, परन्तु उसकी, अन्तरकी पशुताको समाप्त करनेकी इच्छा उसके स्वामिमानस प्रेरित है। यही स्वामिमानकी भावना मानवके अन्तरमें मनुष्यताके धमकी जागृत करती है।

“कादनेरी जो प्रवृत्ति है वह उसकी मनुष्यताकी निगानी है और यद्यपि पशुत्वके चिह्न उसके भीतर रह गये हैं, पर वह पशुत्वको छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता।”

स्वामिमानस प्रेरित मनुष्यताका धम मानवको जगत्के भौतिक उपकरणोंके प्रति अनामक बना देता है। ऐतिहासिके स्यामपर वह शाश्वत सुखाकी खाज का ओर उन्मुख होता है। डा० द्विवेदी शाश्वत सुखोंकी खोजकी ओर उन्मुख मानवका ही अपना लक्ष्य मानते हैं, क्योंकि वे जानते हैं।

“सोमाजोंमें बड़ी हुई वस्तुके पानेसे मनुष्यकी वह चिर अतृप्त लालसा अतृप्त ही रह जाती है। युग-युगस मनुष्यन यह धामणा का है कि सोमाजोंमें बंध हुए पशुधर्म पाये जानेवाला सुख शक्ति है, उससे मनुष्यकी शाश्वत तृप्ति नहीं होती। वास्तविक सुखके लिए कुछ करते बड़ी वस्तु कुछ सोमातीत वस्तु चाहिए^२।

डॉ० द्विवेदीकी दृष्टिमें ‘सोमातीत’ सुख बतते हैं जो मानवको सामान्य दुखसमाजोंमें ऊपर उठानेकी क्षमता रखता हो मानवको महान बनानेका इच्छा रखता है, उस परमुखापनितासे विमुक्त करनेकी शक्ति रखना हो।

“मनुष्यमें यदि विवक नहीं जागृत हो सका, यदि उदारता, समता और सर्वज्ञताकी लक्षणा का विकास नहीं हुआ, यदि आत्म-सम्मान और पर-सम्मानके महान् तत्त्वोंको नहीं अपना सका, यदि उसमें सतोष और श्रद्धाका विकास नहीं हुआ तो वह ‘पशु’से अधिगमिल नहीं है।”

मनुष्यकी यही सर्वज्ञता, समता और उदारता उसके अन्तरमें पर दुख-आवरताकी भावनाको जागृत करता है। वह दूसरोंके परिवेशमें अपनेका

१ बल्लभता ५० ३, चतुर्थ संस्करण।

२ विचार और शिवा ५० ५०, द्वितीय संस्करण १९६१ ई०।

३ बल्लभता ५० १४१, चतुर्थ संस्करण।

हालकर अपना मृत्यावन करता ह। वह यह सोचता है कि परिस्थिति विरोधमें जैसा दु ल सुख उसने अनुभव किया वैसा ही दूसरे भी अनुभव कर सकते हैं।

यही वह सोमांत है, जहांसे वह उध्वगामी होकर 'शिवत्व'को स्वीकार करता है। 'शिवत्व'की यह प्रेरणा मानव अपने वातावरणसे तो प्राप्त करता ही है, प्रकृतिक जड और चेतन अंग भी यही सीख अंत प्रतीत होते हैं। यह 'शिवत्व' ही डा० द्विवेदीकी दृष्टिमें 'आत्मदान' या परोपकार ह। 'मानव' इसी 'शिवत्व'का प्रतीक बने, डॉ० द्विवेदीकी यही कामना है।

“जानता हूँ मूल स्वर प्रेमका हूँ, आत्मदानका है, दलित दशाका समान अपने आपको निचोड़कर महा अज्ञानकी तृप्ति साधनाका है। सारी धरिनी इसका सबूत है, चराचरमें वात व्याकुल मनोबेदना इसका समयन करती ह। सधारी भाषास व्याकुल होनेकी जहरत नहीं ह। प्रत्येक कटुतिक्त रस मधुर रस को अंतत सहायता ही पहुंचाता ह। बसन्तका काल समस्त चराचरको उन्मथित करके समूची धरतीको पुष्पाभरणा बनाके और मनुष्यक चित्तम योमल वस्तुतयाको जागरित करके यही सदा ल आता ह कि साधकता आत्मदानमें ह। यह सृष्टि का इतना व्यापक आयोजन व्यय नहीं ह। अपने आपको निछावर कर देनेके आनन्दसे ही यह आरम्भ होता ह और उसीमें इसकी चरितायता ह। ये युद्ध और प्रतिहिंसाव भाव दायिक है—सघायो ह अपनेको उरतर्ग करके मटाकाकी गोलाम सहायक होनेकी मानसीच्छासिनी बेदना।”

जब भी मानव 'आत्मदान'की बात साचता ह उसके समान अतीतकी गरिमा, वनमानका कम और भविष्यकी आशा सीना एक सूत्रमें बंधकर उपस्थित हान है। वह 'आत्मदान'का प्रेरणा पाता ह अपनी परम्पराआप्त, और वत्तमानमें वह क्रियाशील होता ह 'आत्मदान'के लिए और यह क्रिया भविष्यके लिए आशाका सत्ता इती ह। इसलिए यदि 'मानव' अपने भविष्यके स्वर्णिम रूपके प्रति आशावाणी दृष्टि रखता है तो उस अपनी सस्कृति और परम्पराकी स्मरण रखना होगा।

डा० द्विवेदीने 'सस्कृति'का विशेष अयम ग्रहण किया है। व एक जाति, एक देश एक सम्प्रदाय एक युगमें बंधकर 'सस्कृति'की रूप रेखा नहीं बनाते हैं। इन्होंने मानवक लिए ग्राह्य सस्कृतिको सावर्भौम रूपमें स्वीकार किया ह।

“हमारे देशका सांस्कृतिक इतिहास इस भजवृत्तीके साथ अदुरय काल विधाताने हाथा सी दिया गया ह कि उसे प्रान्तीय सीमाओंमें बंधकर सोचा ही

नहीं जा सकता। उसका एक टाँका यदि बागीमें मिल गया तो दूसरा बगालमें, तिसरा उड़ीसामें और चौथा महाराष्ट्रमें मिलेगा और पाँचवाँ मालावार या सीलानमें मिल जाय तो आश्चर्य करनेको कोई बात नहीं है।¹

केवल 'संस्कृति'की सीमा ही नहीं, संस्कृति शब्दके मूलमें निहित 'सत्य' भी सावभौम होना चाहिए। डॉ० द्विवेदीकी दृष्टिमें संस्कृतिके मूलमें निहित 'सत्य'का रूप 'अविराधा' होना चाहिए। 'अविराधी सत्य'का अर्थ है, वैसे सत्य जिसे भिन्न देश, जाति और वातावरणस सम्बद्ध मनुष्य एक घरातलपर स्थित होकर स्वीकार करें। 'संस्कृति'का यह 'सत्य' मानवताकी आर सम्पन्न होकर ही अविराधी होता है।

"म संस्कृतिको किञ्चा देश विशेष या जाति विशेषस्ये अपनी मौलिकता नहीं मानता। मरे विचारस सारे ससारके मनुष्योंकी एक सामान्य मानव संस्कृति ही सकती है। नाना प्रकारकी धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्ना और सवा भक्ति तथा याग मूलक अनुभूतियाँ भीतरमें मनुष्य उस महान् सत्यक व्यापक और परिपूर्ण रूपको क्रमश प्राप्त करता जा रहा है जिसे हम 'संस्कृति' शब्दद्वारा व्यक्त करते हैं।²

अपनी परम्पराओं और संस्कृतिमें विश्वास रखते हुए भी डॉ० द्विवेदी आधुनिक दृष्टि रखते हैं। इनकी आस्था निरन्तर विकासगोत्र मानव-समुदायमें है। वे मानते हैं सृष्टिक कण-कणमें विकास होता है। जमकर रहनेवाला मनुष्य निकट है।

"शिक्षते पुत्रे रहो, स्थान बदलते रहो, आगेका ओर मुँह करिये रहा ता बाढकी भारतस घब भी सकते हा। जमे कि मरे।"³

डॉ० द्विवेदीका 'मानव' परम्परा और संस्कृतिमें सम्बद्ध सावभौम मूल्यस प्रेरित होकर भी आधुनिक बुद्धिमें परिचायित है।

'आधुनिक' शब्द अर्थयक है। एक ओर तो यह शब्द 'विकास'के सिद्धान्तका प्रतिपादन करता है और दूसरी ओर यह शब्द कुछ अभावकी ओर भी संकेत करता है। 'मनुष्य पर ही निर्भर है कि वह इन शब्दका किस रूपमें स्वीकार करता है।

जहाँतक 'अभाव'का प्रश्न है आधुनिक कालके विचारकों विभिन्न रूपमें इस

१ स्वल्पता, पृ० १८८, चतुर्थ संस्करण।

२ असाहसके फूल, पृ० ७७, आठवाँ संस्करण।

३ स्वल्पता, पृ० २१, चतुर्थ संस्करण।

समयने और व्यक्त करनेका चप्टा की है। इसी चप्टाके फलस्वरूप विविध 'वाद'का आविभाव हुआ है।

तीन 'वाद' विशेष आधुनिक युगमें ज्यादा प्रचलित हैं—साम्राज्यवाद, साम्यवाद और समाजवाद। साम्राज्यवाद पूँजीवादो मनोवृत्तिका पोषक है और वैषम्य ही इसका इष्ट है। साम्यवाद, परम्परा और ससृष्टिको रुद्धिस सम्बद्ध मानकर उसके परित्यागमें विश्वास रखता है। परन्तु समाजवाद अपने वास्तविक अर्थमें सत अरा जहा भी मिल उमे स्वीकार कर लेनेमें विश्वास करता है। 'रईमा' उमे प्रिय है, रुद्धियाका जाल काट देना उसका धर्म है, अतीतकी गरिमा उसे गौरवावित करती है, भविष्यकी आशा उसे गतिशील बनाती है। फलतः समाजवादीके लिए नो कगाराके बीचकी समतल भूमिपर चलना ज्यादा आनन्ददायक है।

डा० द्विवेदीकी आधुनिक दृष्टि समाजवादको इसा विशेष अर्थमें देखनेमें विश्वास रखती है। द्विवेदीजीका मानव इन विशेषताओस पूण हाकर शाश्वत सत्यके अविकर निकट जाता है। 'समाजवाद' जब समन्वयकी साधनाकी स्वीकार कर लेता है, तभी डा० द्विवेदीका मानव उसे स्वाकार करता है। डा० द्विवेदी इसी विचार विशेषका ग्रहण करते हुए धर्म और जातिकी नवीन व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

“जो ठातुर जाति विशेषकी पूजा ग्रहण करके ही पवित्र रह सकते हैं, जा दूसरी जातिकी पूजा ग्रहण करके अप्राप्त्य चरणोदक हो जात हैं, वे मेरी पूजा नहीं ग्रहण कर सकते। मेरे भगवान दीन और पतितोत्र भगवान् है, जाति और वर्णसे परेके भगवान् है। धर्म और सम्प्रदायक ऊपरके भगवान् है। वे सबकी पूजा ग्रहण कर सकते हैं और पूजा ग्रहण करके अप्राप्त्य, चाण्डाल सबको पूज्य बना सकते हैं।”

डा० द्विवेदीका मानव आधुनिक दृष्टि रखता है परन्तु वह 'शाश्वत जीवन और 'शाश्वत सत्य' में विश्वास भी रखता है। 'शाश्वत जीवन और शाश्वत सत्य युगकी सोमामें बँधा नहीं रहता। वह अतीत वत्तमान और भविष्यको एक मूत्रमें बाँधकर निरंतर आगे बढ़ता जाता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह आधुनिक युगके 'अभाव का ही कद्र मानकर उसीके धारा ओर चक्कर काटता रह जायेगा, परन्तु यदि वह समन्वयका जीवन और सत्यकी शाश्वतताके लिए स्वीकार कर लेता है तो विनामका पय सदा उसके

१ कल्पवृक्षा पृ० ५०, चतुर्थ संस्करण।

लिए प्रशस्त रहेगा—

“आंतरिक गुचिता और बाहरी समयके लिए हमें नवीन और पुरातन समस्त उपलब्ध साधनोंका उपयोग करना चाहिए। दोनोंमें समता बनी रहनी चाहिए।”^१

इस प्रकार डॉ० द्विवेदीका ‘मानव’ इन विशेषताओंको ग्रहण करनेके बाद ही सादरत ‘सत्य के दशन करता ह। यह विशेषताएँ जब डॉ० द्विवेदीके ‘मानव’ द्वारा सम्पूर्णत स्वीकृत हो जाती ह, तब डॉ० द्विवेदी युद्ध और हिंसाके कगार पर छडे, एक धक्केकी राह देखते हुए विश्वके लिए सुखमय भविष्यकी आशा करते ह।

“यह आशाजनक समाचार है कि ससारके प्रत्येक देशके लोग उन समस्त आचरणोंका वग्न समझत ह जिहे प्रत्येक युगके महापुरुष बडा कटते आये है। मनुष्यता आज भा आसुरी वृत्तिस श्रेष्ठ मानी जाती है। आशा की जानी चाहिए कि एक ऐसा समय आयेगा जब समस्त सनात हिंसा, धृणा और छोना क्षपटीके विषाक्त वातावरणस मुक्त होगा।”^२

इसलिए साहित्यके रचयिताओंके लिए डॉ० द्विवेदीका सदेश है कि जब किसी विशेष भावके लिए कसौटीकी आवश्यकता हो तो ‘मानव’ स बढकर दूसरी कोई भी कसौटी नहीं ह। साहित्यकार कभी भी नहीं भटकेंगे, यदि वे अपने चिन्तनका क्षेत्र ‘मानव’ की मान लें।—

“वास्तवमें हमारे अध्ययनको सामग्री प्रत्यक्ष मनुष्य है। आपने इतिहासमें इसी मनुष्यकी धारावाहिक जय यात्रा पत्नी ह, साहित्यम इसीके आवगा चढ़ेगे और चलनासाना स्वप्न दखा है, राजनीतिमें इसके लुका छिपाके खेलका दशन किया ह, अयगास्त्रमें इसकी रीढ़की शक्तिका अध्ययन किया ह। यह मनुष्य ही वास्तविक सत्य ह।”^३

डॉ० द्विवेदीकी दृष्टिमें मानव चरम विकासका परिचायक ह। वह ‘सृष्टिकी समय बडे साधना ह।”^४

इस प्रकार मानवीय गुणोंके प्रति आसक्ति सद्वृत्तियामें विश्वास द्विवेदीजीकी आत्माका मूल स्वर ह। यही उनके साहित्यका मेरुण्ड ह।



१ कलकत्ता, पृ० ५०, चतुर्थ संस्करण।

२ वही, पृ० १३ वही।

३ असीको फून पृ० १८२ भाटवी संस्करण।

४ विचार प्रवाह, पृ० २२२, प्रथम संस्करण।

विविध

★

द्विवेदीजी सुरय्य एक पण्डित हैं एक महान् पण्डित या स्कॉलर जिनका प्रभुत्व क्षेत्र सांस्कृतिक इतिहास है। द्विवेदीजीकी मेकडानल्ड बिटरनिट्स आदिसे जो तुलना की गयी है वह बहुत समीचीन है। द्विवेदीजी साहित्यके साधारण इतिहासकारोंसे भिन्न और महत्तर हैं। साहित्य सस्कृतिकी एक अभिष्णति है साहित्यके इतिहास-द्वारा समग्र जातीय सस्कृतिपर प्रकाश डालना द्विवेदीजीका लक्ष्य है।

—देवराज (प्रतिनिधायक)

सहज साधना

• •

परशुराम चतुर्वेदी

प्रस्तुत पुस्तकके अंतर्गत डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीके वे चार व्याख्यान संगृहीत ह जो, 'मध्यप्रदेश शासन-साहित्य-परिषद्'की ओरसे आयोजित हुए थे और जो स्व० प० रविशंकर शुक्लके मंत्रिकात्ममें नागपुरमें दिये गये थे। इसकी 'भूमिका' उक्त परिषद्के अध्यक्ष प० द्वारिकाप्रसाद मिश्र द्वारा लिगी गया ह। व्याख्यानोके चार शीर्षक क्रमश 'साधनाके द्वार', 'शब्द-साधना', 'सुरति और निरति' तथा 'मधुरोपासना'के रूपमें, दिये गये ह और वे सभी लगभग एक ही आकार-प्रकारके ह।

द्विवेदीजीने अपने प्रथम व्याख्यानका आरम्भ इस प्रसंगके साथ किया ह कि "आधुनिक मनुष्य अपने पूर्ववर्तियोंके बहुत-कुछ भिन्न हा गया है और उसकी दृष्टि पहलकी भाँति अधिकतर परलोकपर केन्द्रित न रहकर निरिच्छत रूपसे दृष्टान्तरम निरवह हा गयी है।" अठारहवीं शताब्दीके युक्तिवादी विचारका (रैशनलिस्ट) ने ईसाई धर्म-भंगटनकी धम भावनाका जगह जिम मानवतावादके सिद्धांतका प्रचार किया था, उसकी प्रतिप्या पीछे कई प्रकारके होती चली आया और तदनन्तर धर्म भावनाके क्षेत्रमें जहाँ मानव-मेवा, समाज-मेवा चिकि-साल्य मान-समा-मान तथा प्रवृत्तियाँ इसकी अत्यन्तसिद्ध उपज रही वहाँ राजनीतिमें प्रजातन्त्र, समाजवादी आन्तिवाद प्रभृति बातें भी सामने आ गयीं और वास्तवमें, इनके कारण मनुष्यकी सेवा ही साध्य एवं साधन भी बन गयी। फिर तो एही मानवतावादीयक भावनाका प्रभावमें साहित्यके अन्तर्गत, व्यक्तिव स्वाधीनता का प्रश्न भी उत्पन्न हो गया जिम कारण एक नवीन क्रान्तिकी प्रथम मिला। परन्तु यह मुक्ति व्यक्ति-मनुष्यको नहीं प्रयुक्त समष्टि-मनुष्यको ही, आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक आधारे, मुक्त करनेके सम्प्रदाय रखती थी। अतएव यह विषय भी प्रथम विचारणीय बन गया कि मनुष्यकी क्या कामनाका मूल उद्देश्य क्या है? तथा किस प्रकार उसको ऐसा इच्छा-शक्ति वतमान भौतिकवादी वातावरणमें रहते हुए भी, उसमें उत्पन्न हो सकती ह? अथवा वास्तवमें जट

विविध

जगत एवं चेतनके द्वन्द्वमें, चेतनके क्रमिक उभेप तथा उसके स्वरूपका रहस्य क्या है ? वह चित शक्ति क्या है जो मनुष्यको सदा स्वाभाविक रूपमें प्रेरित करती रहती है तथा इसका कोई अंतिम गूढ उद्देश्य भी हो सकता है ?

प्राचीन बाल्गे ऋषियो म्निमाने सोचा था और उहोने, प्रत्यक्ष लिखनेवाला इस प्रश्नपर विचार करते समय, अपने दृग चेतनाक अंतरतरमे प्रवाहित विराट चेतनाके रूपमें उस विराट इच्छा शक्तिके मूल स्रोतका पता लगा लिया था । उहोने मनुष्यकी महिमाका साधन करत हुए जड-चेतनके उपयुक्त द्वन्द्वकी महाराईमें प्रवेश किया और यह निश्चय किया कि जो पिण्डम है वही ब्रह्ममें भी है तथा यदि मययोगीन सत्ता एव भक्तोकी साधनापर विचार करें तो पता चलेगा कि इहोने भी वही स्वीकार किया । इहाने, इमी कारण, मातव-दहकी श्रेष्ठतापर पूरा बल दिया और गति, साधकोसे लेकर बौद्ध सिद्धो नाथा एव सन्ता तकने इसपर प्राय एक समान विचार प्रवट किये । इहोने इसके आधार पर यह भी निष्पन्न निकाला कि मनुष्यका वास्तवम, केवल इसलिए कष्ट है कि उस वस्तुस्थितिका यथाय पान नहीं है । यदि वह इस उद्देश्यको लेकर अनुसन्धानमागपर अग्रसर हो जाये तो उमे अपने विवेक-बलके द्वारा यह स्पष्ट हो जा सकता है कि सबके मलमें कोई परतत्त्व है जो जड एव चेतन दाना रूपोंमें अभिव्यक्त होता है और वही योगियोका 'शिव' तथा वेदांतियोका ब्रह्म है । वह तत्त्व स्वयं निष्पन्न, निष्पद एव सच्चिदानन्दस्वरूप है किन्तु उमकी विसी सज्जनेच्छाके कारण सृष्टिका स्फुरण अन्तित्वमें आ जाता है । अतएव, जबतक हमें उक्त शिव तथा ऐसी शक्तिसे बीच सामरस्यका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो जाता तबतक हमारे लिए उपयुक्त रहस्यका ठीक पता पाना सम्भव नहीं है ।

इसी प्रकार दूसरे व्याख्यानम बतलाया गया है कि जिस परतत्त्वकी खचा पहले की जा चुकी है वह इन्द्रियग्राह्य सत्य नहीं है । भारतीय वैदिक ऋषियो तथा अतिप्राचीन सुमेरियन एव बेबिलोनियन सभ्यतावाले पण्डितोकी भी माय ताआरु अनुसार, दृश्यमान जगत्की सृष्टिका मूल तत्त्व 'जल' था और जलका ही चित शक्तिरूप सद् है जो इस प्रकार उसकी बुद्धि का काम करता है । यह उसकी मानसी धारणा है जिसे हम ब्रह्माण्डकी चित शक्तिका प्रतीक 'स' ब्रह्म भी कह सकते हैं तथा इमी कारण, इस शक्तकी साधना ही हमारा परम लक्ष्य होता चाहिए । सद्के स्वरूपका विवेचन करते समय यहाँपर कहा गया है कि उमके मूढम एव स्थूल-जग दो भेद हैं और उसकी परा, पश्यती मध्यमा एव बन्तरी नामक चार अवस्थाओका भी यहाँ उल्लेख किया गया है । इसके अलावा यहाँपर यह भी बतलाया गया है कि जिस प्रकार ब्रह्माण्डके पगमें, महाबिन्दुके

विस्फोटके पहले उसकी 'परा' अवस्था रहा करती है उसी प्रकार पिण्डमें भी कुण्डलिनीके गतिशील होनेके पूर्ववाली किसी स्थितिका अनुमान, उसके निष्पन्न रूपमें, किया जा सकता है। यहीपर पिण्डमें अवस्थित न समझे जानेवाले अनेक स्थलोंकी ओर भी सम्प्लित सञ्चन कर दिया गया है और फिर कहा गया है कि साधकका कर्तव्य है कि वह गुणपदिष्ट सञ्चनके आधारपर निरन्तर अभ्यासके द्वारा, विद्वयापी चतुर्थकी अभिन्नताका अनुभव करे। इस प्रकारकी साधनाको ही सत्तोने यैमे 'मुमिरन'को सज्ञा दी है जिसके भीतर उस चतुर्थकी अपने ध्यानम लानेकी प्रक्रिया भी समाविष्ट हो जाती है। द्विवैज्ञानिकोंने इसी प्रसंगमें, सत्ता द्वारा प्रयुक्त कर्तव्य अथवा शब्दाकी भी व्युत्पत्तिपर प्रकाश डाला है और बतलाया है कि किस प्रकार उन्होंने अनेक पुराने शब्दोंके रूपों किञ्चित् परिवर्तन लाकर उन्हें कोई-न-कोई ऐसा पारिभाषिक रूप दे दिया है जिसकी उचित व्याख्या करते समय हमें उनकी अथ गम्भीरताके साथ उनकी यथेष्ट सरलता भी हृदयगम हाने लगती है।

'सुरति और निरति' शीघ्रकाले तीसरे व्याख्यानमें कहा गया है कि 'मत्ता मात्रमें, तत्त्व मात्रमें, भाग मात्रम और प्रकाश मात्रम एव ही चित्त शक्ति एव ही 'परासविद्' व्याप्त है, 'इस कारण जो कुछ भी हमें इन्द्रियग्राह्य प्रतीत होता है यह सभी कुछ उसीका 'विलास' हो सकता है। अतएव, यही हम 'परतत्त्व' तक पहुँचानेमें सहायिका धन सकती है, परावाच भी उस परासविद्का ही रूप है तथा इच्छा भी उसीका विकास है। परायाक अव्यक्ता धर्म्यासे व्यक्त होनेकी ओर प्रवृत्त हो जानेकी अवस्था है और पिण्डमें उसका स्थान मूलाधार चक्र है। याग-साधनाके विभिन्न रूपाका लक्ष्य 'ब्रह्म-साक्षात्कार' बना जा सकता है जिसके निमित्त ही जानेवाली आवश्यक प्रक्रियाओंका यहाँ वर्णन किया गया है तथा उसके लिए प्रयुक्त होनेवाले अनेक पारिभाषिक शब्दोंकी यथाम्थल व्याख्या भी की गयी है। परन्तु इसके साथ ही यहीपर यह भी कह दिया गया है कि सत्तोने इन सभीको सहजरूप देकर उसे 'सुरति' या स्मृति-तत्त्वा-पर ही वेष्टित कर दिया है। 'सुरति' शब्दके अन्तर्गत, स्मरणना प्रक्रियाके अतिरिक्त, प्रीतिव भावपर भी जोर दिया गया है। 'सुरति' आन्तर विषयानि प्रति आसक्ति सूचित करती है जहाँ 'निरति', बाह्य विषयानि प्रति अनास्था तथा वराम्य भाव उत्पन्न करके वही अन्तर्मुखी प्रवृत्तिका प्रथम दिया करती है। अतएव सत्ता द्वारा निर्दिष्ट 'सुरतियोग' एक प्रकारकी प्रेम-साधना है जिसे उन्होंने उपर ब्रह्म-साक्षात्कारके लिए आवश्यक माना है। इसकी सहायता ही हमें स्थायी निश्चिन्ता प्राप्त होती है और हमें उपयुक्त रहस्य भी कुछ-कुछ अवगत

होने लगता है ।

'मधुरोपासना' नामक चौथे या अंतिम व्याख्यानके अन्तगत, सबप्रथम, 'रूप की परिभाषा देते हुए, कहा गया है कि वह 'अरूप गतिमय असीम'को सीमामें उपलब्ध करनेका परिणाम कहा जा सकता है । जीव स्वयं सीमामें बँधा हुआ है और वह प्रत्येक वस्तुको नाम और रूपकी सीमामें बाँधकर देखना चाहता है तथा इसीलिए अरूपको स्मरण कर वह उसे प्राप्त करना भी चाहता है । यही उसके लिए सहज माग है, क्योंकि प्रत्येक पिण्डमें अरूपकी झलक आ जा सकती है । साधकका काम यही हुआ करता है कि जब कभी संयोग या भाग्यसे वह अरूप सौंदर्य उसे झलक जाता है उसी क्षण उसे वह अपना गुह्य मान लिया करता है । मानव-गुरु उस वास्तविक गुरुको प्राप्त करनेमें सहायक मात्र हुआ करता है और वह तब आता है जब, भौतिक दानके अनन्तर चित्तम उद्भूत व्याकुलता उत्पन्न हो गयी रहती है तथा जिस लीन एक क्षणका वियोग असह्य है उठता है और सच्चे प्रेमोदयका अवसर उपस्थित हो जाता है । वास्तवमें अपने हानेकी चरितायता किसीके लिए हानि ही हो सकती है और इसीलिए वह अपने भीतर उस स्वीकार कर ब्रह्म अपने लिए एक दृष्टि पा लिया करता है । फिर ता इसका फलस्वरूप लोक राज और नास्त्रके प्रति निष्ठा भी उसे अपने मागसे विचलित नहीं कर सकती और वह अपने 'भाव में आ जाता है । मनुष्यका भाव वही है जो वह वस्तु है, जिस कारण उस भाव जगन्के साधकके लिए यह आवश्यक है कि वह अपना प्रकृतिका पहचान ले । यह भाव ही जय गाढ़ या 'साद्र' बन जाता है तब 'रस' नामसे भा अभिहित हुआ करता है । किन्तु भक्ताके इस 'रस में और काव्य रस में यह भेद है कि भक्ति-रसमें जहाँ चिन्मसना रहा करती है वहाँ आलंकारिकाका रस वस्तुतः जड़ामुल हुआ करता है । भक्ति रसके भी महापर फिर शान्त, दास्य सख्य एव वात्सल्य जैसे चार भेदोंकी बतलाकर उन सभीमें श्रेष्ठ मधुर रस को ठहराया गया है जिमके अनुसार एक बष्णव भक्त उसके आलम्बनस्वरूप श्रीकृष्णसे प्रेम करने लगता है और वह स्वयं अपनाको राधिका या चन्द्रावलाकी स्थितिमें अनुभव करने लग जाता है । यह मधुर रसकी साधना सृज साधनाका अद्भूत विवास है जिमने निगुण भावसे भजन करनेवालाको भी प्रभावित किया था ।

इस चौथे व्याख्यानका समाप्त करनेके पहले, इसका अंतिम अंशमें, एक प्रश्न इस रूपमें उठा दिया गया है 'क्या इस साधनाकी पृष्ठभूमिमें जो दान है वह हमारे सामूहिक उत्थानके लिए भी कुछ दे सकता है ? ' क्या हुआ जो दो चार व्यक्ति परम पद प्राप्त कर गये । संसारकी समस्या तो इससे मुल्य

नहीं जायेगी। उसको विनाश पैमानेपर सुलभानेकी जा सुविधाएँ हमें जड विज्ञानने दी हैं, क्या उनका इस तत्त्ववादसे कोई सामंजस्य भी हो सकता है ?" इसका उत्तर भी महापर अपने ढंगसे दिया गया है और कहा गया है कि आज समूहिक मानवक लिए जो प्रयत्न हो रहे हैं वे निस्सन्देह स्तुत्य हैं, किन्तु उनके मूलमें कोई ऐसी विचारधारा नहीं है जो गहराईम जाकर ऊपरी सतहकी समस्त हलचलको एक निश्चित लक्ष्यकी ओर ले जा सके। एक ही विद्व-ब्रह्माण्ड-ध्यात मूल चित शक्ति समस्त प्राणिजगतमें व्याप्त है और मनुष्यके रूपम इसीका सर्वोत्तम विकास हुआ है। अतएव, जो कुछ उस चित शक्तिके अनुकूल किया जा सकता है वही ग्राह्य और आदरणीय है और जो प्रतिकूल जाता है वह अग्राह्य है। संक्षेपम जा विचार और प्रयत्न केवल स्थूल जगतको दृष्टिम रखकर किया जाता है वह स्थूल होता है। यही, स्थूल रोगोंके कारण द्वन्द और सघप पैदा कर सकता है, किन्तु जिन प्रयत्नासे मनुष्यका चिन्मय स्तर प्रभावित होता है वह अधिक महत्त्वपूर्ण है। सत्ताकी वाणीका आज इसलिए उपयोग है कि वह मनुष्य पर मशीनके महत्त्वका प्रत्याख्यान करती है और वह जड़ोमुखी यात्रिवताकी जगह चिन्मुखी मानवताका बड़ी चीज समझती है, क्योंकि केवल मात्र मानवता बाद एक अस्पष्ट और लक्ष्यहीन तत्त्ववाद है और चिन्मुखी मानवताका सिद्धान्त स्पष्ट और सौद्देश्य विचारवाद है जिसे हम उसका विरोधी न मानकर उसका पूरक ही समझ सकते हैं।

इम प्रकार जिस आधुनिक मानवतावादके प्रश्नको छोड़कर प्रस्तुत पुस्तकमें समूहीत व्याख्यानाका आरम्भ किया गया था उसे यहाँपर, अन्तमें, तत्त्वत एकागी ठहराया गया है और उसकी आवश्यक पूर्तिके लिए उस मध्ययुगीन मानवतावादकी आर ही सबेते किया गया है जिस तत्त्वालीन सत्ता एव भक्ताने अपने भारतीय तत्त्ववाद्के आधारपर अपनाया था। पुस्तकमें वर्णित सहज साधनाका लक्ष्य एत ऐसी दृष्टिको प्राप्त कर लेना है जा, बस्तुस्थितिके मूल आधारका सम्यक विवेचन कर लेनेपर निर्धारित की गयी हो तथा जा न केवल मानव समाज प्रत्युत एक ही साथ प्राणि-मात्र तत्त्वका ध्यानमें ला सकती हो। उसम ऐसी ध्यापकता भा जानेपर आधुनिक समस्याआका सुव्यवस्थित रूपमें हल किया जाना कभा अमम्भव नहीं कहला सकता। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि आधुनिक मानवका दृष्टिकोण बहुत-कुछ उस भौतिकवादक आधारपर निर्मित हा गया है जिनके अनुसार मनुष्य केवल जन्तुत्वके ही श्रेष्ठ विभाग था एत है और उस अपनी वतमान अवस्था पारम्परिक हाट एव चिरवाली सघपके द्वारा प्राप्त हो सका है तथा उसके इसी प्रकार अप्रसर होने जानम ही

अपना कल्याण भी निहित है। इस कारण उसका ध्यान जितना अपने अधिकारों को प्राप्त करनेकी ओर वेदित है उतना अपने कृत्योंपर भी विचार कर लेनेकी ओर नहीं है। पश्चिमी मानवतावादी पण्डितोंने उममें कुछ-न कुछ सुधार, ईसाई धर्मकी परोपकारसम्बन्धी भावनाके प्रकाशमें प्रयत्न किया है और तदनुसार उन्होंने ब्रह्मशास्त्र किन्हीं न किन्हीं ऐसे समाजवादका भी आदेश रखा है जिसे व्यवहारमें लागू करना समस्याएँ दूर की जा सकती हैं। किन्तु यह भी बोरे विज्ञानपर आश्रित है जिसका काम प्रयत्नत दक्षिण सुलोपभोगकी व्यवस्था तक ही सामित रह जाना जान पड़ता है और यह उस आत्मज्ञानपरव शास्त्रिकों भी प्राप्त करानेमें सवथा असमर्थ रह जाता है जिसे मध्यकालमें यहाँ, नर-देहकी साधन बनाकर, उपलब्ध किया जा सकता था। सच्चे मानवतावादके विचारसे वस्तुतः ज्ञान एवं आत्मज्ञान, इन दोनोंको, एक-दूसरेका पूरक बनाकर उपयोगमें लानेकी आवश्यकता है।

जहाँतक पुस्तकके प्रमुख विषय—सहज साधना के स्वरूपका परिचय दिलाने की बात है इस वाक्यको यहाँपर सुधार रूपसे निभाया गया है। जसा इस पुस्तकके 'निवेदनके' परिचयमें कहा गया है, 'सहज शब्द को, प्रायः 'ह' और 'ज' इन दोनों अक्षरोंको ब्रह्मशास्त्र 'हृद्योग' एवं 'जपयोग'के लिए प्रतीक मानते हुए उन दोनों साधनाओंके सम्मिलित रूपका बोधक ठहराया जाता है और उन दोनोंके एक साथ चलनेका संकेत, इन दोनों अक्षरोंमें पहल आयें हुए स के आधारपर स्वीकार कर लिया जाता है। इस कथनाका समर्थन एक प्रकारस उन सारी बातोंके द्वारा भी किया जा सकता है जिनका वर्णन ब्रह्मशास्त्र के व्याख्यानके अंतर्गत किया गया है। इनमें अनेक ऐसी जटिल परिभाषाओं तथा प्रक्रियाओंका समावेश कर लिया गया देख पड़ता है जिन्का प्रसंग, स्वभावतः केवल सशुद्ध रूपमें ही आनेके कारण कभी-कभी अस्पष्ट एवं दुर्बल अथवा अनावश्यक तक प्रतीत हो सकता है।

यदि यहाँ वर्णन शैलीकी साधकता और मौलिकता सहायक न होती तो कई स्थानोंका नीरस बना रह जाना भी बड़ा आश्चर्यकी बात न थी।

पुस्तक रूपमें एक साथ सङ्गृहीत हो जानेपर भी सभी व्याख्यान अपने-अपने मूल रूपमें ही प्रकाशित कर लिये गये हैं, जिससे कारण उसमें एक ऐसी सजीवता सुरक्षित रह गयी है जो हम सहसा आकृष्ट कर लेती है और हम सहज उत्तम बनकर आगे बढ़ने लगते हैं।

प्रस्तुत पुस्तकमें एक महत्त्वपूर्ण किन्तु गूढ समझे जानेवाले विषयपर बड़े सुन्दर ढंगमें प्रकाश डाला गया है।



‘मृत्युञ्जय रवीन्द्र’ दो समीक्षाएँ

• •

वनारसीदास घटुवेंदी

गुरु [रवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर] के विषयमें यदि कोई हिंदीवाला अधि-
 कारपूर्वक लिख सकता है तो निम्नलिखित वे कथुवर हजारीप्रसाद द्विवेदी ही हैं।
 उन्हें शान्तिनिकेतनमें दोम वषतक अध्ययन-अभ्यापन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ
 था। वही द्विवेदीजीके जीवनका स्वर्णिम युग कहा जा सकता है। वहाँ द्विवेदी-
 जीने अपने समयका सर्वोत्तम उपयोग किया—ग्रंथोंके पठनेमें ही नहीं, महापुरुषों
 के चरित्रके विद्वरणमें भी। मुझे भी चौदह महीने तक शान्तिनिकेतनमें रहना
 पडा और वहाँकी ताथयात्रा तो मने द्विवेदीजीसे भी बारह वष पहले की थी, पर
 बगल भाषा न जाननेके कारण म बगली भाषाके निरुट नहीं पहुँच सका और
 न गुरुदेवका ही विशेष अध्ययन कर सका।

‘मृत्युञ्जय रवीन्द्र’ द्विवेदीजीके बीस वष-व्यापी गम्भीर अध्ययनका शुभ परि-
 णाम है। इस सग्रहके कई मन्त्रद्वय लेख ‘विशाल भारत’ में सब प्रथम छापने
 का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था और द्विवेदीजीकी उत्तरात्तर वन्ती हुई प्रतिभा
 तथा निरुगताको हमने अपनी आँखोंसे देखा है। इस सग्रहके कई लेख हमने
 नेत्रकष्ट होनेपर ना पढ़ लिये और उनसे हृदयका परम मुन्ताप आर शान्ति भी
 मिली।

गुरुदेवके जम दिवसके उत्सवका बन्ना ही मनोरंजन वगल द्विवेदीजीने किया
 है। उनका निम्नलिखित वाक्य विरुता हृदयगर्शी है—

“शास्त्रावकाशे वा”

आँगनमें जो सदा रक्षित तिनका अब बान बगानी सुची कर’

गुरुदेवके कई मधुर हास्योंका भी उल्लेख इस ग्रंथमें हुआ है। कई लेख ऐसे हैं
 जिन्हें श्रितनका अधिकार बवल द्विवेदीजीका ही प्राप्त है—यथा ‘रवीन्द्रनाथ
 और हिन्दी साहित्य’, ‘रवीन्द्रनाथ और आधुनिक हिन्दी साहित्य’ और रवीन्द्र
 नाथकी हिन्दी कथा।

द्विवेदीजीके एक लेखमें हिन्दी भवनी स्थापनाका बसाठ पञ्जर पुरानी

स्मृतिर्मां जाग्रत हो आयी । द्विवेदीजी बड़े हास्परसिब ह और एक दिन मुँयावे समय जब आकाशमें रंग विरगे वादल दीख पड़े रहे थे और हम लोग साथ साथ टहल रहे थे, द्विवेदीजीके साथ मजाक करते हुए ही हिंदी भवनकी कल्पना की गयी थी । उसके तीन वषके भीतर ही उस कल्पनाने साकार रूप धारण कर लिया । मैं अपनेकी शान्ति निकेतनका हउ पण्डा बहा करता था और द्विवेदीजी असिस्टेण्ट पण्डा थे । हिंदीवालाक आतिथ्यका भार प्रायः उन्हीपर पडता था । वे भी क्या दिन थे ।

‘साटकी राटी जहासे तोड़ी वही मोठी — किसी चतुर्वेदीकी गड्डी हुई यह कहावत द्विवेदीजीके इस सग्रहपर लागू होती ह । रवीन्द्रनाथके राष्ट्रीय गान’ से इतना स्फूर्तिप्रद था ह कि उस पाठ्य-पुरतकाम उदघृत किया जाना चाहिए । अतमें गुग्देवकी कुछ कविनाओंके अनुवाद भी दे दिये गये हैं । यदि उन्हें बचुवर श्यामसुंदरजी समीप छ-दबद्ध करा दिया गया होता तो और भी अच्छा होता । ‘जाना ह, जाना ह आगे जाना ह भी बहुत उच्चकोटिकी रचना ह जिसमें गुग्देवकी प्रगति-गोल प्रवृत्तिके उज्ज्वल दशन होते हैं । गुग्देवकी जमपत्रा भी दे दी गयी ह जिममें द्विवेदीजीक समानधमा ज्योतिपिमोकी कुछ लाभ होगा ।

इलायत जौशी

रवीन्द्रनाथकी मृत्युके बाद हिंदीमें उनके जीवन और साहित्यसे सम्बन्धित इतनी कम पुस्तकें प्रकाशमें आयी कि लगता था जैसे हिंदी-जगत उन्हें या तो एकदम भूल गया है या उनकी चर्चाकी ही महत्वहीन समझने लगा है । कविनी जमपत्राकारकी दग भरमें बड़े समारोह और आभ्वरके साथ मनायी गयी । हिंदी क्षेत्रमें भी मनायी गयी । पर लगा कि बेरल औपचारिकताके निवाहके लिए ही यह महापव मनाया गया और हमारे युग-बोधक साहित्यकारकि भीतर वाई विनोद प्रेरणा जगा सक्नेमें न रवीन्द्रनाथका साहित्य ही सफल रहा न उनका विज्ञान व्यक्तित्व । रवीन्द्र-मान्यके प्रेमियाकी लगन लगा था जम उन महासाहित्यकी सभा प्राण धाराएँ एक विशाल मग प्रांतरम एक एक करके खोती चली जा रही ह । और वे हताग हाजर, निरुपाय आत्मां, निरक्रिय अवस्थामें यह सब दग्ध कर जा रहे थे ।

पर बहुत दिना बाद जब आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीकी पुस्तक 'मृत्युजय रवीन्द्र सामने आयी तब उस पढ़कर फिर एक बार लगा कि वे अमर धाराएँ कभी खो नहीं सकती और गहन मरु उदरकी चौरती और फाड़ती हुई वे युग-युगमें नये-नये रूपों हमारे आगे प्रकट होनी रहेंगी। हजारीप्रसादजी एक लम्बे अरस तक कविवे निवृत्ततम सम्पत्तमें रहे हैं और कविता भीतर और बाहरसे जानने और परखनेका अपूर्व सौभाग्य उन्हें प्राप्त रहा है। द्विवेदीजी स्वयं भी कलाप्राण ह। कविका हृदय उहाने पाया ह और कायात्मक सवेदनशीलता उनमें कूट-कूटकर भरी हुई ह।

'मृत्युजय रवीन्द्रमें सकलित विषय तीन खण्डाम बाँटे गये हैं। प्रथम खण्डम महाकविके व्यक्तित्व सम्बन्धी विषयोकी चर्चा की गयी है, जिनमें अधिकांश सस्मरणात्मक ह। 'गुरुदेवके सस्मरण', 'रवीन्द्रनाथकी दिनचर्या', 'एक कुत्ता और एक मना' और 'प्रयागमें कवि रवीन्द्रनाथ — ये चार निबंध इस खण्डमें सकलित किये गये ह। सभी सस्मरणाम द्विवेदीजीकी सुकुमार भाव-बैदना रह रहकर छलकता हुई सी लगती ह। एक महान मूर्ति कविक काय-बुज और भावाधानकी छायाके नीचे अन्तरंग रूपमें बिताये गये दिनाकी भाव विभोर और स्नह भरस बातें रह रहकर लेखकके भीतर जैसे मीठी टीम मारती रहती ह।

अत्यंत उन्नत क्षणोंमें कविके अन्तरसे फूट पडनेवाले विचारोंमें लेकर, साधारणमें साधारण क्षणोंमें जग उठनेवाली सुकुमार भावुकता और सामान्यसे सामान्य अवसरोंपर विखर पडनेवाले हास्य और निष्कण्ठक व्यंग्यकी फुरेरियाके उन्नत व्यक्तित्व-सम्बन्धी प्राय सभी निबंधोंमें सहज समयता आ गयी है। १९१४में रवीन्द्रनाथने प्रयाग प्रवासमें अवसरपर 'बलाका' में सकलित जा अत्यंत मन्त्रपूण और बहुवचि कविताएँ लिखी थी (जिनमें 'साजमहल' गीतक विख्यात कविता भी सम्मिलित ह) उनकी चर्चा भी अत्यंत सचक और मार्मिक बन गयी है।

द्वारे भाग ('वृत्तित्व') में रवीन्द्रनाथके विचारा और रचनाआपद विविध रूपमें प्रकाश छाता गया ह। महाकवि मानवताकी अन्तिम विजयपर किम दृढताम मृत्यु-मयन्त विश्वास करते रहे यह बात इस खण्ड प्रथम चार निबंधों-म प्रभावशाली ढंगसे समझाया गयी ह। फिर भी वनमात मानवकी आत्मविद्राही और आत्मपानी याजनाओं जौवनको बगा कुत्तित धीमन् और नाशकीय बना दिया ह, यह बात भी महाकवि मूल नहीं पाये थे। मृत्युके कुछ समय पूर्व अपनी एक कवितामें अपनी दुःख आभावा आत्रोण उहान इन शब्दोंमें क्या किया था

“जिस दिन मेरा चैतन्य लुप्तिकी अथ गृहासे मुक्त हुआ, उस दिन उसने, एक दु सट विस्मयकी आधीके साथ दारुण दुर्योगके बीच, मुझे न जाने किस नरकाग्निवर्षी ज्वालामुखीके गिरिगह्वरके बिनारे लानर खडा कर दिया ।

मने देखा कि वह ज्वालामुखी गरम धुएँके रूपम मनुष्यका तीव्र अपमान उगड़ता हुआ फुफकार रहा ह अमगल ध्वनिसे धराको कम्पित कर रहा ह और वायुमण्डलके स्तरोंम बालिमा पीत रहा है ।

मने इस युगकी आत्मघाती मूढ उमत्तता देखी, और यह भी दता कि उसके समूचे शरीरमें विवृत्तिका घिनौना परिहास छा गया ह । एक तरफ ह स्पर्धित क्रूरता मतलाका निलज्ज हुवार, और दूसरी ओर है भीरतारा दुविधा भरा पल मगर कृपणका छातीसे चिपका हुआ सतर्क मम्बल ।

जितने भी प्रौढ़ और प्रतापशाला राष्ट्रपति ह उन सभीने मच-मभाके मण्डप-तरे, सगम और सकोचवदा, अपने समस्त आदेशो और निर्देशोकी होठाम दबाकर पीस रखा है । इधर बैतरणी नदीके उस पारसे दानव पत्नियोंके दलके दत्र क्षुब्ध शून्यसे उडे आ रहे ह । ये नर मासके भुवत्त गिद्ध अपने यत्र स्त्री पत्नीकी फडफडाकर जीवनको अपवित्र कर रहे हैं ।

हे महाबालके सिंहासनपर बठे हुए विचारक, मुझे शक्ति दो मुने शक्ति दा । मेरे गण्डमे बज्रवाणी संचारित करो, ताकि म इस शिगुघाती शरीरघाती मुत्सित बीभत्सताको धिक्कार दे सकूँ—वह धिक्कार जो लज्जातुर इतिहासके हृदयमें उस समय भी स्पन्दित होता रहेगा जब यह रद्रकण्ठ, भयात, शृगन्वित युग चुपचाप अपने चित्त मस्मके नीच, प्रच्छन्न होता दिखाई देगा ।”

आजरी पतित और अमिन्न भावताके प्रति इस दुधप आत्राग भरे बज्र धिक्कारकी गूँज महागविने बहुत दूर तक पहुँचायी ह । आजीवन सत्य मुदर मगम और गात गिव-अद्वैतम का उद्धोपक यह मत्रद्रष्टा श्रृपि सकीण राज नीतिकी स्वायाच श्रृष्टिम पागलोनी तरह इतराय हुए हिमा रत युग मानवका महापतन देगकर अपने ईश्वरको लाल अमारोंकी तरह जलत हुए स्वरमें एवा रते हुए अपनी मृत्यु गग्यामें लेग हुआ कहता ह

‘ भगवान्, तुमन गुण-गुण से दार-दार, इस दयाहीन मसार म अपने दूत भेजे है ।

वे कह गये है सब को क्षमा करो ।

बह गय है प्रेम करो अन्तरमें विद्वेष का विष नष्ट कर ग ।

वरणीय है वे, स्मरणीय भो ।

ता भी आज दुर्दिन के समय उन्हें, निरथक नमस्कार के साथ, बाहर के द्वार से ही लौटा दे रहा है।

मैंने दया है, गोपन हिंसा ने कपट रात्रि की छाया में निस्सहाय को घोट पहुँचायी है।

मैंने दया है, ज़रदस्त के प्रतीकारविहीन अत्याचार से 'याय का वाणी चुपचाप एवान्त में रो रही है।

मैंने दया है, तरुण बालक उमत्त हाकर दौड़ पड़ा है—बेकार हो पत्थरपर सिर पटककर मर गया है।

बसा विकट यंत्रणा है उसका।

आज मेरा गला रूँध गया है, मेरी बाँसुरी का सगीत रसो गया है।

अमावस्या का कारण न मर सत्कार का दुःस्वप्ना के नीचे लुप्त कर दिया है। इसीलिए ता आज भरी आँसुओं से तुमसे पूछ रहा है।

जा लाग तुम्हारी हवा को विपाक बना रहे है, उन्हें क्या तुमने क्षमा कर लिया है ?

उन्हें क्या तुम प्यार कर सके हो ?”

फिर भा—युगक विकराल अपरोत्यके बाद भी—इतिहासकी अविरल धारा अपना काम करती हुई चली है। सुनन और विनासकी बहिरंग और अन्तरंग लीलाएँ, निरन्तर किसी रहस्यमय नियमन, मृग्युके नये-नये पथोंमें जीवनका भटकाने फिर फिर नये सत्यका निमाण करती चली जाती है। और यही जीवन है—नित नया और चिर पुराना।

मृत्युजयी रवीन्द्रनाथ इसी अटल विश्वास के बंध में और अन्ततक रहे। आचायप हजारोत्रमाद द्विवेदीने अपन अधिभाग निरधामें कविक व्यक्तित्व, कृतिर और दगात्र इस पहलूपर विशेष जार देकर बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया है।

इस मग्नहमें रवीन्द्रनाथ कथा-साहित्यको बाह्य चर्चा नहीं पायी जाता। उनका नाटक और काल्याण ही विशेष बल लिया गया है। अधिनास निरधम बहुत छोटे-छोटे और अचूके-ले लगे हैं। निरधमके विषय इनका आवपक है, लिगाका गाने ऐयो हृदयग्राहा है कि उनसे छोट आकारस एक प्रकारकी अतृप्ति-को पाठकक मनम बनी रहे जाती है। वह प्रत्येक विषयपर और अरिज जानना, और अधिध मुनना और समझना चाहता है—विगाय रूपसे इस कारण कि उनका अनुभवो लेगा महत्कविक निरधम सम्पर्कमें रहे चुका है।

रवीन्द्रनाथने अपने जीवनके अन्तिम दिनाम जो लुकाठीकी तरह दिप दिप करके जलनेवाली कविताएँ लिखी थीं उनको भी ज्ञानवचन चर्चा द्विवेदीजीने का है। रवीन्द्रनाथके हिंदी प्रेमपर भी दो-एक निबन्धोंमें अच्छा प्रकाश डाला गया है। बीन-बीनमें कविताओंके जो अनुवाद, उद्धरणके रूपमें, दिये गये हैं उनकी भाषा मूलकी तरह सहज लगती है। अनुवाद चाहे गद्यमें दिये गये हों चाहे मुक्त छन्दों में सभी प्रभावगाली हैं।

पुस्तकके तृतीय और अन्तिम भागमें रवीन्द्रनाथकी तेईस चुनी हुई कविताओंके अनुवाद प्रवाहशील मुक्त छन्दोंमें दिये गये हैं। परिशिष्टमें रवीन्द्रनाथकी जन्मपत्री भा दी गयी है, जिसे पढ़ना और पढ़कर समझना द्विवेदीजीका पुराना और प्रिय विनाश रहा है।

कुल मिलाकर 'मृत्युञ्जय रवीन्द्र' रवीन्द्रनाथ और उनके साहित्यपर एक विशेषण-द्वारा लिखे गये महत्त्वपूर्ण और पठनीय निबन्धोंका संग्रह है इसमें कभी एक ही दिशाई देती है और वह यह कि ये निबन्ध योजनायुक्त नहीं हैं, और आलोचन विषयोंका केवल छिटपुट चर्चामय प्रस्तुत करते हैं।

आज दुनियाको यह बतानेकी आवश्यकता आ पड़ी है कि रवीन्द्रनाथने मानवीय इतिहासकी निरन्तरताका और आजके विश्व मंचपर अवतरित गये मानवका मूल्यांकन—वहत देश और महाकालकी पृष्ठभूमिमें—कितन कितने रूपोंमें किया है, और अनेक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चक्र जालोंमें उलझे बतमान युगको उनका अन्तिम संदेश क्या है। इस महाप्रश्नके इस महत्तर उत्तरको समझानेके लिए यह आवश्यक है कि द्विवेदीजी-जन्म अधिकारी व्यक्ति एक नयी योजनाके साथ रवीन्द्रनाथके व्यक्तित्व और कृतित्वपर आरंभिक विस्तृत प्रकाश डालनेका काम हाथमें ले लें।



मून चैतन्य धारा करुणात्मकी उच्छ्वाश शक्ति का ही रूप है। वह गतिमात्र है। क्रिया शक्ति स्थिति मात्र है। गति और स्थितिके द्वन्द्व ही रूप बनता है। गति चिद् तत्त्व है स्थिति अचिद् तत्त्व है। चिन् या गति बारम्बार अचिन् या स्थितिमें रोक दी जाती है। चैतन्य धारा बारम्बार जड़में स्थित आरक्षण शक्तिसे नीचेकी ओर रहींकी जाती है।

—कालिदासकी साहित्य योजना

मेघदूत एक पुरानी कहानी

• •

रवीन्द्र धामर

आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी की प्रस्तुत रचना कई दृष्टियों में विचारणीय है। पहला मसाला इससे स्वयंसे विषयमें उठाया जा सकता है। यह क्या है? अनुवाद है, टीना या व्याख्या है या कुछ और है। जसा कि रसक नामस ही ध्वनित होता है, महाकवि काण्दिदास कृत अमर काव्य 'मेघदूत' इसका रचनाका प्रमाण उपजीव्य है अर्थात् यह कृति 'मेघदूत' पर आधारित है। किन्तु यह कोई टीका या अनुवाद नहीं है। मैं इस व्याख्या भी नहीं कहना चाहूँगा। बसन्त का एक स्वतंत्र कृति है जिसमें लेखकने 'मेघदूत' के छन्दोका उपयोग क्रमशः अपन भावाच्छवासकी अगलाक रूपमें किया है। लेखकी बहुविधता तथा पुरानात पुराना धातुका नय सदन एक नूतन अन्वयसे साथ व्यक्त करनकी उसकी क्षमताके कारण यह रचना मूयवान् एक मनाहर हा उठी है। इस कृतिके सम्बन्धमें 'निम्नलिखित दा पद्यमें स्वयं लेखकने कुछ महत्त्वपूर्ण विचार संकत दिये हैं—

"परन्तु जब आर्षे खराब हा, शिवन-मङ्गलेपर सत पावदा हा और पुस्तक मॉनेपर मित्राको आरम डोट पढनेकी भी आगका हा तब उपाय हा क्या है? इमाणिए काद टाका या व्याख्या लिखना तो सम्भर नहीं था, जा कुछ शिया या शियाया गया वह 'गल्प'से अधिकता मयाग नहीं रखता। इमाणिए मन इसका नाम भा शिया—मेघदूत एक पुरानी कहानी।' अपने दस निम्नलिखित लेखकने जिस 'गल्प' कहा है वह बस मन्वपूण गल्प है। हिन्दीमें आ जानेपर दक्कामन लेकर दाग मारनेतक इसका जा भा गति हूँ हा किन्तु सन्तमें य गल्प है जिसका अम हाता है लघुवधा। प्रस्तुत कृतिसे सन्तमें इसने हिन्दी तथा सन्तुत दाना ही अर्थोका लिया जाये ता कुछ अनुचित न हागा यथाकि इसमें शिवन 'मेघदूत' के सगित कथा-तन्तुदाके आचारण बन्धना तथा विवरता नूतन विधान धारनेका चला की है। एक शत और लेखकने इस कृतिका स्वान्त मुगाय' माना है। "स्वान्त मुगाय अर्थात् अपने अन्त करणके मुगाके लिए। 'स्वान्त मुगाय' बहुत अम गल्प है। परन्तु मन जिन दा चार

निबन्धा और पुस्तकाकी रचना सचमुच स्वात सुखाय की ह, उनम यह भी एक ह ।” इस प्रकार लेखने इस कृतिको ‘स्वात सुखाय’ मानकर इसकी प्रकृतिके एक और पक्षको स्पष्ट करनेकी चेष्टा की है । अतः करणके सुखके लिए रची गयी कृतिया प्रायः विषयि प्रधान हुआ करती ह । ऐसी कृतियोंमें लेखककी निजा दृष्टि और स्वगत चिन्ताधाराकी प्रधानता होती ह । व्यक्तित्वका घनी कोई भी त्रैलोक्य जब भी कुछ लिखता ह तो उसके उद्देलित मानसकी प्रतिच्छवियाँ अंकित हो उठती ह । मेघदूत एक पुरानी कहानीको म इसी परिप्रेक्ष्यमें एक विषयि प्रधान रचना कहना चाहता हूँ । कालिदासका ‘मेघदूत’ अपनी जगहपर है किन्तु यहा तो श्री यामकेश शास्त्री (लेखकका छद्म नाम) के पाण्डित्यपूर्ण तथा सृजन उल्लासमय व्यक्तित्वकी मनोहर चद्रिका छिटकी हुई ह ।

भारतीय साहित्यमें मेघदूतका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा ह । रसराज शृंगारके वियोग पक्षसे उद्देलित तथा प्रिया विरहकी कामादीप्त मनोयथास आद्यत मुग्धरित यह काव्य शताव्दियामें सहृदयताका कण्ठहार बनता आया ह । इसपर अनेक टीका टिप्पणिया की गयी ह अनेक ‘यारयाएँ’ लिखी गयी ह तथा इस देशकी नापाआदिके अतिरिक्त अंगरेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि युरोपीय भाषाओंमें भी बराबर इसका अनुवाद प्रकाशित होने रहे ह । साराश यह कि ‘मेघदूत’ कविताकी एक पुरानी प्रसिद्ध पोथी ह जिसपर अनुवाद, ‘यारया’ तथा टीका टिप्पणीका काय पयास मात्राम किया जा चुका ह । ऐसी स्थितिमें आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदाने नये सिरमें इसे एक स्वतन्त्र तथा ‘स्वात सुखाय’ रचना का निमित्त क्या बनाया ? इस प्रसंगमें उन्होंने एक मौलिक उत्तर देनेकी चेष्टा की ह । वे लिखते ह कि “गीता और मेघदूत हमारे देशके दो विचित्र ग्रन्थ ह । धर्म और अध्यात्मका उपदेश देनेवाला हर एक विद्वान और आचार्य गीताकी एक ‘यारया’ बखर्च लिख जाता ह और साहित्य रसिक कवि और सहृदय जन काई-न-काई टीका व्याख्या कविता या आलोचना मेघदूत के सम्बन्धमें अवश्य लिख जाते हैं । ये दोनों ग्रन्थ किवनाथजीके मन्दिरके घण्टेक समान ह । हर तावयानी एक बार इनको जरूर बजा जाता ह ।” आचार्य द्विवेदीक इस कथनका महत्त्व इस बात में ह कि उन्होंने कमयाग और आध्यात्म-दर्शाकी रचना गीता तथा अनुराग भाव एक शृंगार रसकी रचना ‘मेघदूत’ का समान महत्त्व प्रदान किया ह । यागक पल्लपर गीता और भागक पल्लपर मेघदूत-वज्र और मूल्यमें लगभग बराबर ह । और, विद्वानाथजीके मन्दिरवाले उस घण्टेकी छटा गिराला ह । काई उस धारस बजाता ह, काई जोरसे । काई उस बजाकर घूम लेता ह काई सिर आंगना लगाता ह । जिसमें जितना सामर्थ्य या श्रद्धा

रता है वह उसे उसी प्रकार बजा लेता है। प्रस्तुत कृतिमें सन्दर्भमें यदि इस घण्टेवाले स्वरका कुछ आगे बढ़ाया जा सके तो म कहेंगे कि आचार्य द्विवेदीने उसे पूरे मन्त्रयोगके साथ निरूपित किया है। उनका अन्तरिक आनन्दाललाससे साहित्य-देवताका भन्व प्रासाद एक बार पुन गूँज उठा है।

'मेघदूत' एक छोटा-सा सदेश काव्य है जिसकी रचना 'मन्दाकारा' नामक नामग ११५ छन्दमें हुई है। आचार्य द्विवेदीकी प्रस्तुत रचना इस छोटे-से काव्यका काँड़ १७८ पद्याना बान्धात्मक परिचय देती है किन्तु इस सहायताके साथ कि पाठक वही ठर नही और मूल कृतिके रसको द्विगुणित आयेगके साथ महसूस करता चले। द्विवेदीजी इस रचाना समारम्भ निम्नांकित प्रकारसे करते हैं

कहाना बहुत पुरानी है, किन्तु बार-बार नये सिरमें बनी जाती है। अत एव बार फिर स्मरणमें आई नुरगान नही है। एक मय था, बलकापुरीका निवासी। इस दिन और उस कालक निवासिभावी सृष्टि रखा जाये तो वह विहायन शरीर नही कहा जा सकता। दूरमें ही उनके विहाय महलका तारण इन्द्रनुभव समान चमकता था।"

इस समारम्भ कालिदास कृत 'मेघदूत'के गुणगमनसे भिन्न है और जिसके नामकी स्वभावका परिचायक है। आगे इसी प्रसंगमें यद्यपि अपराधने सम्बद्ध निरूपण काव्यनिक प्रसंगकी अवतारणा की गयी है। फिर धरम भावसे प्रेम-य प्रमाण और दान-निरागके दृष्टपर विषयियों की गयी है। और इस समस्त पद्यभूमिके उपरांत मघदूतक प्रथम श्लोकके मायायका उम्मी कथामक प्रवाहके साथ पल्लवित विभा गया है। प्रथम दृश्य तक पठनेतम पूर्व लक्षकी मानवता वाणी विचारणाका एक अंग दृष्ट्य है। प्रेम-य प्रमाण प्रसंगमें लक्षने पहल ता मह बताया है कि विषय प्रसार मानवता का उद्गार रहीने प्रियामाहक कारण बन-रकृत रूप अपने एक नृपता समा कर लिया था फिर यह कि बुद्धे मघदूतक उस याका समा नहीं कर सका जो फिर इसी सन्दर्भमें अवसर पाते ही प्रेमकी मानवतावाणी दक्षिण आगत कर उठा है। लक्षन गद्यमें— 'मनुष्य भया कर सकता है दयता नहीं कर सकता। मनुष्य हृदय लक्षार है, दयता निरमता कदा प्रयतयिता है। मनुष्य निरमम विचलित हो जाता है, पर दयताकी कुटिल मनुष्य निरमता निरंतर रणदाता बनती है। मनुष्य इमलिए बना होता है कि वह शक्त कर सकता है यना इमलिए बना है कि वह निरमता निरमता है। मा बुद्धेने उसे गान द दिया।" मघदूत एक पुरानी कहानी क प्रारम्भ अगरी दस चका द्वारा उसके स्वप्न जो प्रकृतिकी समानमें

घोड़ी सहायता मिलेगी। सम्पूर्ण कृति कुछ इसी प्रकारकी मनमौजी टंका टिप्पणियों तथा गैलीगत सौन्दर्यसे परिपूर्ण है।

जिन लोगोंने आचार्य श्री हजारिप्रसाद द्विवेदीके साहित्यकी घोडा-ग्रहृत पढा है वे उनकी बहुततामे परिचित होंगे। इतिहास, पुराण और साहित्यसे लेकर फलित ज्योतिष तक एव भारतके प्राचीन कलात्मक विनोदामे लेकर सम्यता और सस्कृतिके अन्वय तत्त्वा तक आचार्यजीकी जानकारीका क्षेत्र बहुत व्यापक है। अध्ययन तथा अनुभव-द्वारा अर्जित की गयी यह जानराशि उनके किसी भी कृतित्व की प्रयासगत बहुत मूयमान बना देती है। इस दृष्टिसे 'मेघदूत एक पुरानी कहानी के पाठको कुछ निराशा न होगी। इस रचनामें भी आचार्यजीकी बहुताता भलीभाँति प्रकट हुई है। इस कथात्मक व्याख्याको कुछ नवीन, कुछ रचिकर तथा कुछ अधिक उपयोगी घनानकी दृष्टिमे उठाने वृद्धा अन्वय त्रिपयाकी निजी जानकारीका अवलम्ब ग्रहण किया है। कही तो इतिहास पुराण अथवा शास्त्रोंकी शल्लक मिलती है और कही हठयोग एव तत्र-साधनागी। फलित ज्योतिषके आधारपर कही शुभाशुभ निमित्तोंकी चर्चा की गयी है तो कहीं सगौन तूत्य अथवा आभूषण मण्डन द्रव्यादि शृंगार प्रमाधनोंके वर्णनका अवसर देँड लिया गया है। ऐसा जान पता है कि लेखक जो कुछ जानता है उसने जितना कुछ अर्जित किया है उस सत्र-बुद्धों प्रयासगत दे देने समर्पित कर देनेकी उसमे अपूर्व निष्ठा है। उदाहरणके लिए भाषा बोधके एक प्रसंगको लिया जा सकता है। मेघदूत के सातवें छंदमें 'हृम्य' शब्द प्रयुक्त हुआ है। विरही यक्ष मेघका 'अल्का का विवरण देते हुए कहता है कि वहाँ चाँदनीम घुले हुए बड़े-बड़े 'हृम्य' देखनेको मिलेंगे। द्विवेदीजी केवल इतना ही नहीं कहते। वे लगे हाथा इस शब्दकी भाषा वैज्ञानिक स्थिति भी स्पष्ट कर देते हैं—'हृम्य समज्ञ गये न ? इधर लोग धनिकाक मकानको हृम्य कहने लगे हैं। लेकिन असली बात यह कि धनमेठोंकी धनी अट्टालिकाआने भरी यस्तीमें बहुत कम मकान ऐसे हाते हैं जिनमे धम या धूप पहुँच सके। जा बहुत ऊँच होने हैं वही धम्य ही पाते हैं। 'धम्य' शब्द ही जरा मुलायम होकर हृम्य बन गया है। यहाँ यह उल्लेख है कि 'हृम्य का एक अर्थ स्थान्तर हरम जस्वी भाषाशास्त्र है और अट्टालिका अथवा अन्त पुरके अर्थमें ही प्रयुक्त होता है किन्तु द्विवेदीजीने इसकी कोई चर्चा नहीं की है। यह तो सस्त्रुत हृम्य का ही परवर्ती विवास है।

यहाँ यह सम्भव नहीं है कि प्रस्तुत कृतिके माध्यममे उपलब्ध होनेवाली अन्वय त्रिपयाका जानकारीका पूरा विवरण उपस्थित किया जाये। यह विवरण पूरी पुस्तकमें मेघदूत के छंदोंके माध्यममे अनुस्यूत है। इस सन्दर्भमें इतिहास

पुराणके कतिपय प्रसंगाकी जानकारीके लिए पृ० ४०, ४७, ६०, ८१, १०० गुप्त
 राजाकी दृष्टिमें पृ० २०, २१, १५६ ताण्डव और लास्य नामक नृत्य भेदोंकी
 पौराणिक आधारभूमिके लिए पृ० ७३, दस शोभा विधायक धर्मोंके लिए पृ० १२३
 १२४, आवेध्य, निवर्धनीय, प्रक्षेप्य, आरोप्य नामक आभूषणानी चार कोटियाके
 लिए पृ० १२५, कम्तूरी, कुकुम आदि शृंगारिक मण्डन द्रव्योंकी दृष्टिमें पृ० १४५
 लोकाचार और दुनियादारोंकी दृष्टिमें पृ० १० १३, १५९ तथा तार्किक दृष्टियोग-
 के लिए पृष्ठ १४९ विशेष रूपसे द्रष्टव्य हैं। ये विवरण कृतिक मूल प्रवाहमें किसी
 प्रकारका व्यवधान उत्पन्न नहीं करते वरन् विन पाठकको सहज भावसे मानसिक
 ताप प्रदान करते हैं।

मेने निवेदन किया है कि मैं प्रस्तुत कृतिको 'मेषदूत'की व्याख्या मान करना
 पसन्द नहीं करूँगा। मैं बात मुझे इस पुस्तकमें जहाँ-तहाँ उपस्थित कुछ वाक्या-
 न्वा देखकर दोषारायण हो आया है। कुछ वाक्य ये हैं— 'मत्यवासी कमके
 प्रेमी है, देवनाजानी भागभूमिमें जाकर व मूख क्या बनें।' (पृ० १८) 'तज
 की (शक्तिसे) बुरा नाम लेकर बदनाम करना अपनी असमयताका विनापन
 करना है।' (पृ० ८४) 'जिसके पाम पसा होता है वही माटा होता, उसीके
 गरीबकी चर्चा बंद जानी है।' (पृ० १३६) 'पसा मनुष्यको भातर और बाहरसे
 बर्णन बना देता है।' (पृ० १३६)। अब 'मेषदूत'की व्याख्यामें इन वाक्या
 की क्या सगति बढाया जाय। इस प्रकारकी सूक्तियाँ इस पुस्तकमें अनेक स्थला
 पर टँकी हुई मिलेंगी। इनमें लक्ष्यकी सामाजिक दृष्टिका पता चलता है।

'मेषदूत' एक पुरानी कहानी' सचमुचकी कोई कहानी' नहीं है। इसमें न
 तो किसी घटनाका प्राधान्य है और न उसका माध्यमस्य पाठकको कौतूहलकी
 जागृत रानाका बाद बौल। चरित्रके नामपर लक्ष्यकर मगका चरित्र है किन्तु
 वसमें भी कोई तार-बन्ध नहीं है। बस उसका प्रेमोन्मत्त परिस्थिति स्वल्प
 ही आदान सम्मुख रहता है। तब इस कृतिका 'कहानी कहना सार्थकता ?
 हममें एक ओर तो 'मेषदूत'की सगति सा प्रेम-वधा, उसका स्वल्प तथा गौरी
 का निर्वाह किया गया है और दूसरी ओर 'मेषदूत'के गम्भीरान्यामन परिस्थल
 में जिन पूर्वोपर सम्बन्धोंकी सगति नहीं बढायी जा सक्ता था उन्हें भी सुगठित
 कर लिया गया है। लेखकके टिप्पणियाँके छोर-बोर सम्पूर्ण कृति आम चरित्रा
 स्मर गौरीमें प्रस्तुत की गयी है। कथा-नायक मग विगत घटनाका एक स्मृतिपा
 व आधारपर अपने मनोभावका बाह्य-सम्मुख व्यक्त करता जाता है। इस
 दृष्टिमें मगका प्रेम वादर पाठक को बन्धुत तादात्म्य स्थापित किया गया है।
 इतिहास पुराना धर्म, दान या प्रार्थना सत्त्व जो कुछ भी कहना हुआ है वह सब

प्रायः यदके मखमे ही बहलवाया गया है । इस रूपमें प्रस्तुत कृतिको आत्मानाप या एकात्मक कह सकते हैं ।

पुस्तककी भाषा शैली उसके प्रतिपाद्यके अनुकूल बन पड़ी है और उसमें कालिदास और उनके 'मेघदूत'की आत्मा सुरक्षित है । विरही यग मेघको दूत बनाकर उसके माध्यमसे अपनी प्रिया तक अपना प्रणय मन्देश भेजना चाहता है । उसे मेघस वर्य महत्वपूर्ण काम लेना है । ऐसी स्थितिमें वह मेघको प्रायः अत्यन्त आदर तथा मनुहारपूर्ण शब्दोंमें सम्बोधित करता है— मेरे प्यारे जलधर मित्र ! यद्यपि मेरा हृदय सगमोत्कण्ठासे कातर है और मैं प्राकृतजनके समान प्रलाप कर रहा हूँ तथापि मुझे रजमात्र भी मन्देश नहीं है कि मेरे हृदयमें जो उत्कण्ठा और औत्सुक्य है वह ज्वारण नहीं है ।" पुस्तकके प्रारम्भमें कहानीका समारम्भ करते हुए नुक्सान गरीब, निहायत गरज पशा हृक्वत, शौकीन, गणत-जस कुछ उद्व-फारसी शब्दोंका प्रयोग किया गया है किन्तु बादमें मेघदूतकी मूक कहानीके साथ यह प्रवृत्ति समाप्त हो गयी है । फिर तो उसी देव भाषाकी शब्दावलीका व्यवहार किया गया है जिसकी अपेक्षा देवलोकके निवासी यगसे की जा सकती थी । वही कही तो दुरत्यय कुट्टिम मिसृगा-असे घोर ससृजन शब्दोंका व्यवहार किया गया है जिसका अर्थ जाननेके लिए कोशों की शरण लेनी पड़ती है । इस पुस्तककी भाषा और इसकी शैली निरूपण पर विचार करते समय आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदीकी एक दूसरी लोक प्रिय कृति वाणभट्टकी आत्मरक्षा की याद हो आती है । यह उपयास इसलिए भी बहुत सराहा गया कि इसमें विद्वान् लेखकने वाणभट्टकी अलङ्कन गर्वोली शैलीको उपाका तथा ग्रहण कर लिया है । इसी प्रकार 'मेघदूत एक पुरानी कहानी' में कालिदासके शब्द विद्याम तथा वणन-शैलीका ध्यान रखा गया है । 'मेघदूत'के छन्दोपर आधारित गद्य शब्दोंमें तो ऐसा होना स्वाभाविक ही था, अथवा भी उसी वाक्यनवा निर्वाह किया गया है । दम्पा, वस्तुओं अथवा मन स्थितियोंके वर्णन लेकर उपमानोंकी आयोगा तक अथवा शब्दोंके सामासिक प्रयोगसे लेकर भाषाके नाद ध्वनि समुक्त लयात्मक प्रसाद तक आचार्यश्रीने कुछ वैसी ही शैलीका प्रयोग किया है जिसकी अपेक्षा कालिदास की जा सकती थी ।

मेघदूत एक पुरानी कहानी के माध्यमसे, भारतीय वाग्मयकी एक सरस एवं एकाग्र कृतिको नूतन मूल्यवान और विचित्र मौलिक परिधानमें पुनः प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा की गयी है । हिन्दीमें 'मेघदूत' को लेकर विपुल माशामें साहित्य रचना की गयी है किन्तु प्रस्तुत कृतिका रम्य कुछ यारा है । आचार्य श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित साहित्यमें इसका एक निश्चित स्थान है और हिन्दी साहित्यमें भी अपने शैलीगत मौलिकके कारण यह विशेष रूपसे सम्मानित होगी ।

■

सूर साहित्य



सुधा राजपाली

'सूर साहित्य' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीकी पहली कृति है। उस समय लेखक कुल २३ २४ वर्षक युवक थे। उन्होंने सान्तिनिकेतनमें अध्यापकत्वा पद अर्थात् स्वीकार ही किया था। एक दो वर्षोंके भीतर ही सान्तिनिकेतनके नव मानवधर्मो वातावरणमें व्याप्त धार्मिक पुनर्जागरणसे प्रेरणा लेकर उन्होंने अपने सांस्कृतिक अध्ययनको भास्वर बना लिया। आचार्य श्रितिमोहन सन जैसे सन्त-वाच्य-भर्मा विद्वान्के सम्पर्कमें आनन तथा सिद्ध, सन्त तथा अन्य भारतीय धर्म-साधनाओंके मर्म अनुरानेक आचार्योंके सत्संगन नये तरण आलाचक्रके मानसकी रचना हुई। भारतीय पुनर्जागरण और स्वानन्दम साधनाकी जन्म भूमि बंगालमें रहते हुए उन्होंने बड़े अपमानजनक ब्यसाके साथ यह अनुभव किया कि अंगरेज और दूसरे विदेश पण्डित भक्तिके सम्पूर्ण गरिमामय वाच्यको ईसाइयतका अवलान सिद्ध करनेका प्रयत्न करने रहे हैं।

दूसरी ओर भक्ति और सत्-साहित्यका अध्ययन कमसे कम हिन्दीमें अनेक दशकोंमें कम गया था। 'सूर साहित्य'के पहल इन विषय अथवा सम्पूर्ण भक्ति वाच्यपर जो कुछ भी लिखा गया उस देखनेमें पता चल जाता है कि आलाचक्र इस प्रकारके वाच्यकी समानताके लिए जिस पुराने मानदण्डका उपयोग कर रहे थे वह न सिर्फ इस साहित्यके सही अध्ययनके लिए बाधक था, बल्कि इन साहित्यका असली मर्म और माध्यम इस कठोर तुलापर चढ़कर नष्ट भ्रष्ट हो रहा था।

यह सही है कि द्विवेदीजैव सूर साहित्य'के प्रकाशनके पहले आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी सूर-विषयक समीक्षाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। शुक्लजीने सूरसाधना अपने मयागवाणी मानदण्डपर बना-परतत। यह भी सही है कि मिथिल-मुझके विनोद और हिन्दी नगरन में प्रकाशित सूरविषयक सामग्रीसे यहाँ बहुत आगे बढ़कर आचार्य शुक्लन सूर साहित्यका अध्ययन किया। उन्होंने अपने रसवाणी सिद्धांतोंके आधारपर सूरके भाव और बन्ध पगाता बहुत ही विवाद व्याख्या का। उन्होंने सूरकी मौखिक उद्भावनाओंकी भी प्रशंसा की।

उन्हें सूरका गोपियाका वाग्दत्त भी प्रिय था किन्तु शुक्लजीकी अपना कुछ सीमाएँ थी। वे अपने मयादावादी आग्रहोके कारण सूरके माधुम्य भाव सिक्त, पदाको ठीकसे सराह न सके। उन्होंने रीतिकालकी 'अदलीलता के लिए भी बेचारे सूरको ही उत्तरदायी बताया। उनका यह दृष्टिकोण प्रियसनसे बहुत मिलता जुलता है। प्रियसनने सूरकासके बारेमें लिखा कि "युरोपीय आलोचक तुलसीको ही सर्वश्रेष्ठनाका मुकुट पहनाना चाहेंगे और आगराके इस अचे कवि को उससे नीचा, फिर भी ऊँचा स्थान देंगे।"¹ प्रियसनके इस कथनमें ईसाई नतिकतावादका आग्रह स्पष्ट था जो मानव-मात्रका पाप-सम्भव मानती है और आदम और ईश्वके प्रेम-सम्बन्धको पाप कहती है। आचार्य द्विवेदीक सम्मुख प्रेम और भक्तिके बीचके सम्बन्धकी व्याख्याका प्रश्न भी इसीलिए सहज ही उठ सड़ा हुआ।

सूरको ममत्तनेके लिए भक्ति-व्यवस्था सही चेतनाका समझना आवश्यक था। भक्ति चेतना सूरके बहुत पहले ही लोचमतका रूप धारण कर चुकी थी। भक्ति जादोलन गीताके उदयक माघ-ही साथ विकसित होता रहा। इसपर गुरु-गुरुमें सात्वत धर्मियाका प्रभाव था। इसी कारण इसे मारवत धर्म कहा गया। महाभारतके शांतिपर्वम इसकी विशद व्याख्या की गयी है। वहाँ इसे ऐजातिक धर्म भी कहा गया है। कागतरम राम और कृष्णके अवताराका प्रमुखता देकर चलनेवाला यह धर्म भागवत धर्मके नामसे विख्यात हुआ और इसमें अनेक धर्म-साधनाओंके तत्त्व घुल मिलकर इमे लोकमतका रूप बन लगे। बौद्ध महायान और दक्षिणक आलवाराकी साधनाके अनेक उपादान इसमें समन्वित हो गये। यह सही है कि चौथी इसवी शताब्दीके आस-पास भक्ति साधना नयी भास्वरताके साथ अग्रसर हुई किन्तु इसके पीछे ईसाई धर्मका कोई प्रभाव डालना निराधार कल्पना ही कर जायेगा।

आचार्य द्विवेदीने ईमाइयतके प्रभावकी इस मिथ्या कल्पनाका नाना तर्कोंके आधारपर पूणत निस्सार सिद्ध कर दिया है। उन्होंने 'सूर साहित्य' व 'राधा कृष्णना विकास और 'स्त्री पूजा और उसका वैष्णव रूप नामक निबन्धोंमें भक्ति साधनाके प्रमुख आलम्बन राधा और कृष्ण तथा वैष्णव पूजामें स्त्री तत्त्वकी प्रधानताके बारेमें इमाइयतके द्वारा फलाये हुए भ्रमजातकी पूणत निरस्त कर दिया है। उन्होंने लिखा है कि 'गतादियाकी उलट-फेरके बाद प्रेम, ज्ञान, वागमत्य, दास्य आदि विविध भावाके मधुर आलम्बन पूण ब्रह्म श्रीकृष्ण रचित

१ हिन्दी साहित्यका प्रथम इतिहास, पृष्ठ १३।

हूए। सब-कुछ उनमें परिपूर्ण रूपमें दाननेकी कोशिश की गयी। भाष्यके अति-
 ग्नि उद्रेकसे भक्तिका प्याला लबालम भर गया। इसी समय ब्रजभाषाका
 साहित्य बनना शुरू हुआ। ब्रजभाषाकाव्यकी इस युगल मूर्तिका परिचय
 अपूर्ण ही रह जायगा यदि हम तत्त्ववाद और वैष्णव सहजवादका रहस्य न समझ
 लें।^१ उहाने कृष्णके व्यक्तित्वमें समाहित अनेकानेक धर्म-साधनाओंके मार्मिक
 तत्त्वोंका पूरी व्याख्या की तथा उनके आधारपर कृष्ण भक्ति-साहित्यका समझनेका
 एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया।

आचार्य गुरुत्वे मूरके जिन रसाद्रेकपूर्ण अंगोंको छोट किया अथवा उन्हें
 अदलील कहकर निरस्त किया उही अशाम द्विवेदाजीने भाष्यके तत्त्वोंकी प्रतिष्ठा
 दी। उन्हाने स्पष्ट ही लिखा है कि प्रेम और भक्तिमें कोई अंतर नहीं है
 जड़ो-मुग्य प्रेम ही बिदो-मुग्य हाकर भक्ति कहा जाता है। 'प्रेम तत्त्व' शीपक
 सृष्टमें तथा मूरदासकी राधा' शीपक निवचनमें प्रेमने सिद्धान्त और व्यवहारका
 निरूपण है। यही लेखने जयदेव और चण्डीदासकी राधाने साथ मूरका राधा-
 की तुलना करके उसकी अनन्यता, प्रणति, भोलापन और निरद्वय सहजताका
 बरीयता स्थापित की है।

मूर साहित्य बवल ईसाई प्रभावका सादन, भक्तिका लोकमठके रूपमें
 विकास, प्रेमतत्त्वका विश्लेषण, तथा मूरकी प्रेम और भक्ति-विषयक धारणाओंका
 निरूपण ही नहीं करता बल्कि मध्यकालके इस अप्रतिम कविके व्यक्तित्व और
 उसके समाजका समझनेका प्रयत्न भी करता है। रवि चानूने मूरदासक विषयमें
 जिनामा का भी कि 'हे वैष्णव कवि, तुमने यह प्रेम वित्त नहीं पाया था,
 विसाकी ओमें दमकर राधिकाकी ओमें भरी धाँसें याद आ गयी थीं निजान
 बगल रात्रिकी मिलन-सायापर किसन तुम्हें भुजपागामे बाँड रगा था और अपने
 हृदयक अगाध समुद्रमें मन कर रगा था। इतना प्रमकथा, राधिकाकी वित्त
 विनीत कर देनेवाली व्याकुलता तुमने किमके मुग्य और किमकी आँखमें चुरा
 ली थी। आज क्या इस सगीतपर उसका कोई अधिकार नहीं है। क्या तुम
 उसका नारी-हृदयकी मचित भाषान उमाना सगने लिए बचित कर दामे।'^२

द्विवेदाजीने इस जिनामाका उत्तर मूरदासकी प्रतिकारा सजात करके नहीं
 बल्कि उस कालक समाज और युगकी साधनाका सही विदरूपण करके दे दिया
 है। इसक पहले शिरीम कविका उसके तत्त्वोंका समझका दृष्टि दानकी परि-

१ धर साहित्य, पृ० १६।

२ धर साहित्य, पृ० ७०।

पाटी नहीं थी। असलमें यह परिपाटी भास्चीसी हिपालायत तेन (Hippolyte taine) की पुस्तक 'द रेस एण्ड द मोमेण्ट' (१८२८-९३) के प्रकाशनके बाद चली। तेनने स्पष्ट स्वीकार किया था कि कला अपने समाजकी उपज होती है। द्विवेदीजी न सिर्फ 'सूर साहित्य' बल्कि 'हिंदी साहित्यकी भूमिका'में भी अपने सिद्धांतके निमाणमें तेनके निष्कर्षोंमें प्रभावित ह। यद्यपि उन्होंने तेनके सभी सिद्धांत-पक्षोंका स्वीकार नहीं किया है। क्योंकि उनके व्यक्ति-यमें भारतीय परम्परा सस्कृति और सबके केन्द्र स्थित मनुष्य और उसकी विजय यात्राके विश्वासका स्वर इतना प्रबल है कि वे सामाजिक वातावरणका सभी-कुछको बदल देनेकी शक्तिमें भरपूर कोई तत्त्व माता ही नहीं सकते। 'सूर साहित्य में उन्होंने स्पष्ट ही लिखा है कि 'सूरदास मनुष्यकी दुबलताआका पहचानते हैं और इन्हीं दुबलताआको उसकी रक्षाके लिए उपयुक्त प्रहरी बना दते हैं' अर्थात् सूरदासने अपने ममयके समाजको, उसकी वामनात्मक दुबलताको पहचाना और उसके परिष्कारका उदात्ताकरणका प्रयत्न किया। क्योंकि सूरदास रवि बाबूके इस कथनको पूणत अभिव्यक्त कर चुके हैं कि "हम जो श्रीज देवताको द सकते हैं वही अपने प्रियको दते हैं। और जो अपने प्रियानको द सकते हैं वही देवताको दते हैं। इससे हम पायेंगे क्या ? देवताको हम प्रिय कर दते हैं और प्रियका दयता। जो सूरदासकी कविताओंसे नाक भौं सिको-ते हैं उनको लिए उपाय क्या है?"^१

इस प्रकार हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि 'सूर साहित्य'की भूमिकापर जिस आलोचकका उदय हुआ वह एक जोर अपनी सस्कृति और धर्म साधनाको पूणत ममय था, उसे भक्तिपर ईसाइयतके प्रभावकी बात स्वाभाविक रूपमें ही स्वीकार नहीं हुई। साथ ही वह प्राचीन साहित्यकी सही ढंगसे समझनेकी एक एतिहासिक मातृतावादी और धर्मसाधना मूलक दृष्टि लेकर आया जो अतक हिंदी समीक्षा क्षेत्रमें प्रचलित दृष्टियामें विलुप्त भिन्न था। 'सूर साहित्य' इस बातका प्रमाण था कि हिंदीको एक सबल सास्कृतिक विचारक मिल गया है।



१ सूर साहित्य, पृ० ६८।

२ वही, पृ० ७१।

हिन्दीका युगपुरुष

हिरण्माय

सन् १९३३ मई मासके प्रथम सप्ताहकी बात है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार समा, मद्रासकी बाल्य आयाजित हिन्दी प्रचारकोंका एक यात्रीसभ विद्वत्कवि रवीन्द्रनाथके दण्डाय शांतिनिवेदन पहुँचा। इस यात्रीसभका साठवाँ महामा गांधीजीके मुमुक्षु स्वर्णोपदेशमा गांधीजीने कराया था। इस यात्रीसभमें पन्द्रह व्यक्ति थे जो कर्नाटक, आन्ध्र, तमिलनाडु तथा कन्नड़के प्रतिनिधि थे। कर्नाटकके प्रतिनिधि तान थे त्रिनमें एक में भी था। पञ्चभूषण एम० सयनारायणका इस यात्रीसभके नेता थे। इस यात्रीकी आयोजनका उद्देश्य यह था कि अहिंसे प्रेरणामें हिन्दीका प्रचार करनेवाले हिन्दी अध्यापक हिन्दी भाषी प्रदेशोंमें समय-समयपर दौरा करके हिन्दी भाषाका प्रवृत्ति तथा हिन्दी साहित्यकी प्रवृत्तियामें मगीर्भाव परिचित हो जायें। सबप्रथम यह यात्रीदल मद्रासमें रवाना होकर बडोला, इंदौर, आगरा दिल्ली, लाहौर हृषीके, हरिद्वार, कापुर, लखनऊ, प्रयाग काशी, पटना, आदि प्रमुख हिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें हिन्दी साहित्यकारों, विद्वानों तथा हिन्दीकी मस्याजाना परिचय प्राप्त करने गुप्त रवीन्द्रनाथजीके मिलनार्थ विद्वानरतो पहुँचा। मुझे स्मरण है कि अमलोग शांतिनिवेदनमें दा तिन रू। दूसरे दिन गंध्याक समय गुप्तयने दण्डकी व्यवस्था की गयी थी। विद्वत्कवि एक कुम्भोपर आसीन हुए और हमको उनका सम्मुख उमीनपर बैठे। पहलमें हम गुप्तयने हम लागाका परिचय करवाया गया और तत्परांत हमें आशीर्ष देनकी उनमें प्रायना का गयी। गुप्तयने पत्र बगलमें बोलना प्रारम्भ किया और कहा कि मैं यात्री-बहुत हिन्दी जानता हूँ लेकिन मुझे दर है कि हिन्दी बोलत समय कहीं गलती न हो जाये। इसपरि यही केतर है कि मैं बगलमें बोला। जब उनका यह निबन्ध किया गया कि हमको दण्ड नहीं समझने, तब व अंतरोंमें यात्राकोत करने लगे। दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका जा बाय थाता है उसका परिचय पाकर गुप्तयने अपनी प्रयत्नता प्रकट की। उन्होंने अपना गुप्तय सुनाते हुए कहा कि "आपको कभीरती रचनाओंका

भलीभांति अध्ययन करें।" गुरुदेवका सदेश छोटा था, पर महत्त्वपूर्ण था।

उन दिना आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी 'विश्वभारती'के हिंदी भवनके अध्यक्ष थे। उहीका कृपासे शांतिनिकेतनमें हमरोगाके कार्यक्रमकी व्यवस्था हुई थी। जब मैं आचार्य हजारीप्रसादजीके व्यक्तिपर विचार करने लगता हूँ तब ह्यान ही मेरा ध्यान दो महत्त्वपूर्ण बातोंकी ओर जाता है। विश्वविद्यालयकी रवीन्द्रनाथ ठाकुरपर बनीका प्रभाव और विश्वभारतीमें हिंदी भवनकी स्थापनाके द्वारा हिंदी भाषा तथा साहित्यके अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था—ये दो ऐसी बातें हैं जो हिंदी भाषा तथा हिंदी साहित्यके इतिहासके लिए अपूर्व घटनाएँ नहीं जा सकती हैं। वस्तुतः आचार्य हजारीप्रसादजीकी साहित्यिक प्रतिभाकी क्रियाशीलताके कारण ही ये घटनाएँ घट सकीं। विश्वविद्यालयकी रवीन्द्रनाथजीकी सगतिमें जो प्रतिभा पापित तथा विवसित हुई वह विद्यालयपर भी अपनी जमिट छाप छोड़ सकी, यह सार हिंदी जगतके लिए गवका हा नहीं, वरन् अविस्मरणीय विषय है।

जिस समय शांतिनिकेतनमें पहली बार आचार्य हजारीप्रसादजीसे भेंट हुई उस समय उनके महान व्यक्तित्वमें मैं विस्कुल अनभिन्न था। मुझे क्या मालूम था कि यह पहली भेंट मेरे लिए वरदान बनेगी और किसी समय मुझे उनके चरणोंमें बैठकर हिंदीका थोड़ा-बहुत अध्ययन करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा। सन् १९५२, जनवराम में मोघ करनेकी तीव्र इच्छा लिये काशी पढ़ाई और स्वर्गीय आचार्य चन्द्रली पाण्डेयजीके साथ आचार्य हजारीप्रसादजीके घर गया। जब मैंने अपना परिचय दशरथाय करनेके हेतु काशा हिंदू विश्वविद्यालयमें नाम लिखानेके लिए उनसे अनुमति मागी तब उहान शांतिनिकेतनमें मिलनका स्मरण किया और वर प्रेम तथा आत्मापताके साथ कहा—'शोधनायके लिए व्यवस्था करनेमें कोई कठिनाई नहीं है।' यद्यपि उसी वय मेरा रजिस्ट्रेशन ही गया तो भी सन् १९५४ जनवराम ही अपना काम प्रारम्भ कर सया। यह मेरा परम सौभाग्य रहा कि सन १९५४ से सन् १९५६ तक मुझे काशामें आचार्य द्विवेदीजीके चरणोंमें बैठकर हिंदीका अध्ययन करनेका सुअवसर ही नहीं मिला अपितु उन दो बरसोंमें उन्हें अत्यन्त निवृत्त दस्तने तथा समझनेका भी मौका मिला। उनके शुभचिन्तक व्यक्तिपनी यह विशेषता थी कि जस-जस मेरा उनसे परिचय बढ़ता जाता था वने-ही-वने उनके प्रति मेरी थढ़ा बढ़ती जाती था। उहान मर गोव कायमें पय प्रणा तथा किया, मर जीवनका ही पय प्रदान किया। एनी थी उनकी उत्तरता तथा आत्मापना।

मैं एक अनिर्गुण भाषी हूँ। विगत पैंनीय वयमें लगातार हिंदी पढ़ना

गता आया हूँ। हिंदी साहित्यकी गतिविधिम अपनेका परिचित रखनेका
 मन करता आया हूँ। साथ ही, हिंदी भाषी प्रदेशोंमें समसमयपर भ्रमण
 रहे जिन्होंने कविया, लेखकों, आगचकाकी साहित्यिक प्रवृत्तिया तथा उनके
 प्रकृतिकमे परिचित होनेका मुझे अवसर मिला है। हिंदीकी सम्बन्धोंके समा
 सम्बन्धनामें हिन्दीके साहित्यकारों तथा विद्वानाको दूरसे निकटमे रखने-समझनेका
 ने मौका पाया ह। जय म अपने परिचित समस्त हिन्दी जानकर एक
 बन्धुमन्त्रिष्ट शोभाता हूँ तब कुछ विविष्ट व्यक्तिके मगी आसोंके सम्मुख
 अपनी आना किन्हे दते हैं। यदि मुझ उन किन्ही साहित्यकारोंके नाम बताके
 का कता जाये जिनके व्यक्तिकेसे म सर्वाधिक प्रभावित हुआ हूँ और जिनकी
 समिट छाप मुझपर पडी ह, ता मैं तुम्हें ही कूँगा—श्राव्य बाबु प्रेमचन्दकी
 तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।

यदि प्रेमचन्दने अपनी कहानिया तथा उपमाओंद्वारा किन्ही भाषा तथा
 साहित्यका सम्बन्ध केंद्रा किया ता आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजीने हिन्दी
 साहित्यकी आभावा उनको महान् मान्यताके सम्पत्तिमे सम्बन्ध काकर उनकी
 गरिमाकी ज्यति जगाया। ये दोनों हिन्दी जगतके बेजान दो दुग्धपुत्र ह।

य निम्निका कहा जा सकता ह कि आधुनिक हिन्दी साहित्य सत्राग समृद्ध
 तथा पुत्र बनना जा रहा ह। यह तो अनगिनत छाटे-बटे साहित्यकारोंकी
 माधना तथा कृतिवका ही फल ह। इन साहित्यकाराम किन्ही एकका गवाधिक
 न श्रेय दिया जा सकता ह न एसा करना ही उचित ह। फिर भी, एक कल्पिय
 साहित्य-शास्त्र अन्वय मिले जिनकी प्रतिमाकी छत्र मुद्रा दिया पत्नी ह।
 ए इन कि साहित्यकाराम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका अपना विविष्ट
 स्थान ह। इन विविष्ट स्थानका परत का हो, य विचारणीय ह।

हिन्दी साहित्य जगतमें कुछ एक साहित्यकार मित करते ह जिनान अपनी
 कृतियोंके परिमाणकी श्रेष्ठमे सर्वाधिक श्रेय प्राप्त किया ह। एम भी कुछ
 साहित्यकारा मिले जिनान साहित्यका किमी एक विधाकी समृद्धिमें मन्व
 पूरा योग दिया ह। अथवा अपने युगी एक सर्वश्रेष्ठ रचना प्रस्तुत की ह। यदि
 कोई श्रेष्ठ आचार्य माने लये ह तो हमर कार्य मन्वश्रेष्ठ अनुमति-मु कहे जा
 सकते हैं। यह भी सम्भव ह कि कोई किमी ए विषयके विशेष है तो और
 बाद किमी हमर विषये सर्वश्रेष्ठ विद्वान् ह। य सम्भव प्रत्येक ह कि आचार्य
 हजारीप्रसाद द्विवेदीके व्यक्तिके कि मान्यता मापा जाय। रचनाओंकी
 संख्या श्रेष्ठ आचार्य द्विवेदीका सत्रा केंद्रा स्थान नों दिया जा सकता।
 यह भी गही कहा जा सकता कि साहित्यकी किमी एक विधाकी समृद्धिमें

उनका योगदान सर्वाधिक है। उन्होंने साहित्यका इतिहास किया है, निबंध लिखे हैं उपमासं लिखे हैं आलोचनाएँ प्रथम रचने हैं। किन्तु इनमें-स किसी एक प्रकारकी कृतिके आधारपर आचार्य द्विवेदीजीको सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः उनकी छोटी-बड़ी सभी कृतियोंको एक साथ रखकर उनका सम्भव आलोचन, अध्ययन करके यह देवता पड़ेगा कि उनकी विचार-सरणिमें ऐसी कौन-सी मूलभूत भाव धारा है जो अन्तर्धारारूपमें सब कृतियोंमें विद्यमान है और जो उनके व्यक्तित्वका महान तथा गरिमामय बनाती है। यह भाव धारा बड़ी गहरी गम्भीर और ऐश्वर्ययुक्त है। इस जीवन्त भाव धाराकी कुछ रूप रेखा निम्नलिखित पक्षियोंमें प्रस्तुत करनकी कोशिश की जायेगी।

किसी भी जातिके साहित्यका आन्विकाल उमरे भावी विकास-वृद्धिकी आधार गिला है। जबतक आन्विकालका सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत नहीं हो पाता तबतक परवर्ती साहित्यका सही मूल्यांकन सम्भव नहीं होता। हिन्दीका आदिकाल बहुत दिना तक अस्पष्ट उलगा हुआ और उन्का परिचय अधूरा ही रहा। आचार्य द्विवेदीजीने अपना सस्फुट ज्ञान पाठ्य भाषाआकी विद्वत्ता तथा आधुनिक आलोचनाकी प्रक्रियाआस सुलभ रूपमें अपनी सूक्ष्म विचार-सरणि एवं विवेचन शक्तिके सहारे हिन्दीके आन्विकालके वास्तविक स्वरूप तथा महत्त्व का परिचय उसकी महती सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमिके परिवेशमें प्रस्तुत किया। फलतः समूच हिन्दी साहित्यके अध्ययनका पथ प्रगम्य हुआ।

आचार्य द्विवेदीजीकी सज्जम बनी देन है उनका साहित्यकी कायगास्त्रके तम दायरमें बाहर लानर उसे जीवनकी अभिव्यक्ति सहज साधन बनानर उसका जीवनक साथ साधा सम्यक् स्थापित करनका आग्रह और मनुष्यकी अन्तर्निहित एकताकी प्राप्तिके ही साहित्यका एक मात्र लक्ष्य धारित करना। उन्होंने बराबर यह स्पष्ट किया है कि साहित्य चेतना व्यक्ति चेतनाका बाह्य भाग न होकर ऐसी समृद्धि है कि वह जीवनका प्रफुल्ल तथा प्रबुद्ध बनानेकी प्रेरणाका अजस्र स्रोत है।

आचार्य द्विवेदीजीका जीवन ज्ञान परम्परागत रुढ़िया तथा विश्वासाकी भीमिंत परिधिमें मानसना मुक्त करके आधुनिक वैज्ञानिक युगकी नूतन स्थापनाओं के साथ सांगजस्य स्थापित करता है। जहाँ वह स्वस्थ है वहाँ उन्नत तथा जीवनके सही मूल्यांकन पापक भी है।

आधुनिक साहित्यके भीतर साधका मन्त्रत्वपूर्ण स्थान है। इस क्षेत्रमें हिन्दी साहित्यका प्रगति आशावाचक है। आचार्य द्विवेदीजीन शोध-कार्यको पवित्र ज्ञान

का साधन बताकर गायत्र्याको तथ्याका निर्जोव पुलिन्दा न बनाकर रचनात्मक प्रतिभाका वाहक धारित किया है।

बला बगवे लिए मायनाको अथरहित बताकर आचाय द्विवेदीजीने साहित्यका वास्तविक तथा अन्तिम प्रयाजन सारे मानव समाजको सुन्दर तथा भव्य बनानेका साया-भाय माना ह।

आचाय द्विवेदीजी सच्चे अथमें एक प्रगतिशील साहित्यकार हैं। उन्होने किमी भा प्रकारके प्रयोग या मनवादनी निगा न करके पूरा सहानुभूतिके साथ उन सबके भीतर एमे तत्त्वको देखनेका प्रयास किया है जो किमी समय साहित्य की समृद्धिमें सहायक सिद्ध होगा।

हिन्दी भाषाका सृजक विकासमें आचाय द्विवेदीका योगदान कुछ कम महत्वका नहीं ह। उनकी समस्त रचनाओम बरती गया भाषाके स्वरूपको दखनेस यह बात स्पष्ट हो जाती ह कि भाषाभिव्यजनामें भाषा एक सृजक साधन ह, बाधक न ह। उनका द्विदालि स्वभावकी छाया उनकी भाषाम क्या, भाषाभिव्यक्तिमें क्या विषय प्रतिपादन-सौलीम बना—सबत्र सिगई देती ह, जो भाषाको, साहित्यको, जीवनको मधुर, सरस तथा प्रफुल्ल बनाती ह।

आचाय हजाराप्रसाराजीका छाती पड़ी समस्त रचनाओम अन्तर्धारार रूपमें जो तत्त्व सिगई देत ह व उनके महान् व्यक्तित्वका परिचय प्रस्तुत करते ह। ये तत्त्व ही उन्हें हिन्दी साहित्यक भीतर एक महान् विभूतिके रूपमें प्रतिष्ठित करते ह। ये एम तत्त्व ह जिनका हिन्दी भाषा तथा साहित्यका गौरव निरंतर बढ़ता ही जायेगा।



जिस भाषाका अथ समझमें नहीं आया उसका अथ है ही नहा यह कैसे कहा जा सकता है। यह आकाश भरा तारक महान् उन्नाम सुन्दर चचन पवन उद्भूत अग्निशिखासे तुनना करनेवाला साध्याकानीन गिरि कुहर सबका अथ होना चाहिए। समझमें नहीं आ रहा है। जितना समझ पाया हूँ * उस विजल दृष्टा*इमें जो कोनाहत सुनाई दे रहा है वह क्या निरर्थक ह ? वह जो जय-पराजयकी विनयुक्त मन्त्रावांछा है वह क्या उपर-उपरम जैसा सुनाई दे रहा है बैसा ही है ? नहीं गहराईमें कुछ आर दाना चाहिए।

—चारुचंद्रलेख

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका लोकवार्तिक दृष्टिकोण

• •

श्याम तिवारी

किसी साहित्य-समीक्षकके लोकात्मिक दृष्टिकोणका तात्पर्य उन 'युत्पत्तियां तथा निष्कर्षांसे ह जो लोकवाताके अध्ययनसे निःसृत हुए हैं। लोकवार्त्ताशास्त्रका मूलतः चिन्तन अपने-आपमें एक अलग विषय है जो पुराणशास्त्रसे लेकर सांस्कृतिक नवतत्त्वशास्त्रकी उन सभी शाखाओंआ प्रगल्भाओंआ सम्बद्ध है जिनमें किसी जातिकी मौखिक, अशास्त्रीय आदिम और परम्परागत कृतियां, चलती-चलनी विश्वासों क्रिया-कलापों और मनावृत्तियोंका अध्ययन होता है। इन सबके धारावाहिक अध्ययन और उसके परिणामों तथा सिद्धांतोंका आधारपर किसी साहित्यविशेषकी समीक्षा एवं व्याख्याकी रीति ही समीक्षक अथवा साहित्यअध्येताका लोकात्मिक दृष्टिकोण है।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि समीक्षक अथवा व्याख्याता लोकवार्त्ता विज्ञान विषयक अध्ययन तथा गोजकी साहित्यक्षेत्र मानकर उसके परिणामों और निष्कर्षोंका नकारता है। हिन्दी साहित्यके अध्येताओंआने तो इसके विपरीत लोकसाहित्य और अभिजात अथवा श्रेष्ठ साहित्यमें बराबराहिक समानता और विषय विषय प्रतिविम्ब भाव रखनेके बजाय दोनोंको असप्रतिगामी मान लिया है। वे इन दोनों धाराओंआ एकताका दावा नहीं कर पाते और एक सीमातक इन्हें अध्ययनके भिन्न क्षेत्रके अन्तर्गत रखते हैं। इसीलिए हिन्दी लोकसाहित्य और हिन्दी साहित्यके अध्ययनके बीच एक विचित्र अन्तर्भाव दिखाई पड़ता है। इसमें अभिजातवादियोंके उस असंतुलित मनोविज्ञानका कम योग नहीं समझना चाहिए जिसके चलते साहित्यमें अस्पष्टतावाद या क्लृप्तावृत्तियोंका बड़ावा मिलता है।

हिन्दी साहित्यके अध्येताओंआ आचार्य द्विवेदी ही एक ऐसा साहित्यमनीषी साधक हैं जो जिज्ञान सबप्रथम इस दृष्टिकोणकी ओर ध्यान दिया और लोकवार्त्ताका साहित्यविशेषके अध्ययनविषयमें आवश्यक मान उसे अध्ययनकी

उस परम्पराम जाड दिया जिसे कतिपय युरोपाय पण्डिताने भारताय साहित्य, विनोपकर पुराकथा, आख्यायिका और कथाके अथ अनेक रूपाके अध्ययन-मनन द्वारा स्थापित किया था। इसका अर्थ यह है कि साहित्यके अध्ययनकी पद्धति-विनोप, चाहे वैदिक या लौकिक सस्कृत हो, चाहे प्राकृत, पाली, अपभ्रंस या हिन्दी और उसकी बोलियाका साहित्य हो, अपनी धारावाहिकतामें हो नित्य नूतन साजा तथा निद्वान्तमि जुम्बर पूष विकसित हाती ह। किन्तु रोम्के साथ स्वीकार करना पता ह कि मैक्समूलर, वेनेपी, पेंजर, लैंग, टानी, टूमफिड, ब्रुन आदि विदेशी पण्डितकी भारतीय साहित्यालाचन-पद्धतिकी उाके अध्ययनकी शिष्टाका जहाँका तहाँ छाड दिया गया ह। अनलमें हिन्दी साहित्यके अध्येताओं और समीक्षाने साहित्यास्त्रीय मानदण्डमि साहित्यकी नाकेबंदी कर अध्ययन का रुचिप्रस्त कर दिया ह, उन्हें पूर्ववर्ती साहित्य-समीक्षका और अध्येताअकि उन मानदण्डा तथा पद्धतियमि काई प्रयोजन या लयाव ही नही ह जो साहित्यकी अथ मानवनादिशास्त्रा और उनके निष्कर्षमि होता ह, उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करती ह और समीक्षा-पाठ्याना शास्त्रकी जवडबंदीमे मुक्त करता ह। आचार्य द्विवेदीने इस विमर्शित, अलगाव आर जन्तवका अनुभव कर अपना राजी प्रवृत्ति तथा अतीत अध्ययनकी जागरूकताक अनुरूप, हिन्दी साहित्यके अध्ययन चिन्तनम लोकतात्विक किंवा लोकज्ञानिय दृष्टिकोणकी पहल की ह।

शिक्षणीय मानदण्डाका समीक्षक बडे जाने ह। किन्तु उनका यह दृष्टिकोण (स्मूथरिफिण आउटटुक) पिछले आग्निटलिस्टा-जरा भावामक तथा एकांगी नहीं ह। शास्त्रगत सभ्यतिके सहारे साहित्यकी सत्यचिकित्सा करन तथा लया-उदाहरण मोन्नेका काम उाहाने बहुत कम किया ह। सत्य चिन्तना इमलिए कि हिन्दी आचनारा एक प्रतिष्ठित वग बोते दुग और मृतसाहित्यका ही अध्ययन-का उचिन जोर गौरवपूष क्षेत्र मानना लाया है। उसमें अध्यापक-विमर्श ही उनकी विमर्शता नही ह वरन् वह अवसर भी ह जिसक द्वारा वे साहित्यास्त्रीय पानना निमग परिचय दन है। द्विवेदी भा अतीतक उापरवादी चिन्तन ह किन्तु उाकी साथ-साथनारा प्रयोजन उस दन रूपमें सिद्ध कर लेता ह ताकि अथ बाराच्छत्र अतीतका रहस्यभेद हो सक। यन् रहस्यभन्त उन अर्थमि नही समझाा चाहिए जिनकी अनिरजनाके कारण गडाजने मैक्समूलरपर बटापर करते हुए किया था—'मैक्समूलर यात्र क मिय हिमनात्र।'।

टी० द्विवेदीक लोकतात्विक दृष्टिकोण पाछे अनुमति-सुकी जिनासाका बंग शिगाई परता ह। उाहोंने साम्प्रक भास-मानमें पिण्ड छुडाकर अपने स्वतंत्र

चिन्तन और अध्ययन द्वारा हिन्दी साहित्यका प्राचीन साहित्यकी दृष्टिया और परम्पराओंके क्रम परस्परका प्रयास किया। उन्होंने एक विकासवादीकी भाँति उन मूल अभिप्रायों, उपादानों और रुढ़ि-तत्त्वाओंके आलाच्य साहित्यके सदभ प्रसंगमें देखने-परखनेकी चष्टा की जिनका निरंतर उपस्थिति उसे पूर्ववर्ती साहित्य सम्पदा तथा परम्परामें जाडती है। अतः यह उनकी अनिवार्य आवश्यकता थी कि वे साहित्यके विवचन अध्ययनमें उन प्रभावों और परिणामोंका रेखांकन करें जो साहित्य इतिहासका परम्परा और प्रयोगके उपादान-स्वरूप उसमें प्रकृत होते आये हैं। आपने अपने हिन्दी साहित्यकी भूमिका में दो भिन्न श्रेणियोंके संस्कारवाले आयोजकों के भिन्न भाषाओंमें दो भिन्न प्रकृतिवाली रचना-परम्पराओंके लक्षण कर, संस्कृतके समानांतर निरंतर विकसित लोकभाषा साहित्यकी स्थिति स्पष्ट की और उसके प्रति हीन भावनाओंसे विजडित सिद्धांतका चुनौती दी। यह आपके ऐतिहासिक लाक्षणिक दृष्टिकोणका आग्रह था जिसके आधारपर आपने हिन्दी साहित्यका भूमिका बनानेवाली दो भिन्न प्रकृतियोंकी कायधारामें लोकभूमिपर जाघत कायपरिपाटीकी ओर सवत किया और उदाहरणस्वरूप प्राकृतम लिखित हालकी गाथा सत्तसई तथा अपभ्रंशकी नीति शृंगारवाली रचनाओंका उल्लेख किया। आगे अपभ्रंश और हिन्दी दोनोंका साहित्य धाराओंमें दो भिन्न जातियोंकी विविध प्रकृतियोंके संयोगको शुभ माना। इन धाराओंमें जिसका मूल उदगम 'लोक' था और अपभ्रंश-साहित्यमें जिसके आगमनसे ऐहि कतामूलक शृंगारिकाय तथा 'लोक प्रचलित कथानक' का विकास हुआ था पूर्वोपभ्रंशकी साधनामूलक कायधारामें मिलकर हिन्दी जन साहित्यकी गंगाजमुनी साहित्यधाराके रूपमें परिवर्तित हो गया था। लोककी ताजी अनुभूतियामें भण्डित इस स्वच्छन्द काव्यधारामें साथ दूसरी धाराकी काय प्रकृतियोंके मेलन हिन्दीके पूर्वकायवालीन साहित्यको वास्तविक जन-साहित्यके रूपमें उभरसाया। आचार्य द्विवेदीका मत है कि इन संयोगमें हिन्दीके जिस जनसाहित्य का उदभव हुआ उसके जाडवा साहित्य सम्पूर्ण भारतीय इतिहासमें दुर्लभ है।

हिन्दी जन-साहित्यका भारतीय साहित्यमें बेजान बना देनेवाली लोक प्रकृतियोंके उपयुक्त संयोग-सम्बन्ध और सदभका संकेत करनेके अतिरिक्त आचार्य द्विवेदाने उनका समीक्षा तथा व्याख्याके लिए भी लोकवाचकों तत्त्वोंके आकलन और परिशीलनपर कुछ सामान्य तर्क प्रयात कर लिया है। मत्र तो यह है कि आपने साहित्यके इतिहासमें अध्ययन समीक्षा, व्याख्या आदि सभीभ लोकप्रकृतियों, तत्त्वों और लाक्षणिक मानकोंका अर्पित करीयना प्रयात की है। उदाहरण स्वरूप आन्कितानेन परिलकाया, भक्तिकानेन सत भक्ति कथा प्रस्ता तथा

गीतों और गृन्थोंके रसमें परिपूर्ण रीतिनाया एव लोकचित्रा, उद्भावनाआ, अनुभूतिया मानल वणना आदिकी उननी अनुशीलन-पद्धति तथा विचार-भाग उपस्थित त्रिये जा सकते हैं। अध्ययन विवचनकी यह रीति जना कि सष्ट किया जा चुका है, आपने भारतीय साहित्यके पाश्चात्य पण्डितोंने ग्रहण की है। आन्कालीन चरितकान्यानी अनुशीलन पद्धति वही है जो भारतीय साहित्य, इतिहास, धर्म, जाति, समाज आदिके खोजी युरोपाय भारतीय अध्येताओंने प्रतिष्ठित की थी। हृदयचरित, राजतरंगिणी, पृथ्वीराजरासा, पुरातन प्रवच सग्रह प्रदय चित्तामणि, भोज प्रवच आदि प्रगल्भमूक प्रच्छन्न ऐतिहासिक कान्या, जानककथा, कथामरितसागर, पञ्चतन्त्र, कथारत्न आदि भारतीय कथा आन्यायिका ग्रथा, पुराकथा और पुराणा, लोककथा, विद्या, वाता आदि नृतत्व-समागास्त्रीय तत्त्व-सकानाके सम्पादन, सग्रह और त्रिविध-क्रमम अध्ययनका जा पीठिका प्रस्तुत हुई थी, द्विवेणीजीने हिन्दी साहित्यके अनुशीलनमें उसका उपयोग किया।

कथानक रचियेकी ही लें आपने हिन्दीके प्रचलित अध्ययनम उस प्रवर्तित किया। अत्र ता कथा प्रवचामें इसका जययन विशेष लोकप्रिय हो चला है किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि हिन्दी प्रवचान अनुशीलनमें कथानक रचियेके अत्रपणकी परिपाटी द्विवेणीजीने ही चलाया। कथा-साहित्यके तुलनात्मक अध्ययन-क्रममें चिट्टरनिन्द, 'टूमफील्ड, पेंडर जाति विद्वानान लोकवात्तागास्त्रके अनुशीलनको कथानक कहाने, उन मुश्रुतलि करने और विद्वन्त आभारापर कथाओंने प्रभाव एव प्रमाणको स्पष्ट करनेके लिए कथानक रचिये तथा अभिप्रायकी साज पद्धति चलायी थी। हिन्दीके अभिज्ञान साहित्यमें इसके उपयोगका शुभारम्भ करते हुए द्विवेणीजीने हिन्दी साहित्यका आदिकाठ (प० ७४) में ऐतिहासिक चरितकान्यानी कथानक रचियेका आरम्भ करने किया है। यही नहीं, बल्कि विद्वानक चण्डोजने इस दावन महमत प्रतीत करते हैं कि प्राचीन कथा 'आधुनिक साहित्यमें जटिलतम कथावस्तुवाते उपयामाके गीत तत्त्व' भी परम्परा प्राप्त लोकसाहित्यमें कूँते जा सकते हैं। अथ यह हुआ कि कथानकके परम्परागत विचार, अभिप्राय और क्रियाका साहित्यिक दृगपर प्रयोग हाता रहा है भारतीय कथा-पारारे विभागमें इसका वण मन्त्र है और साहित्य प्रवचान साहित्य की यह उतना ही उपाय पद्धति है जितनी पूर्वजनीने साहित्यिक भाषाओंने कथा प्रवचाने लिए। साहित्यकी मनाता घारा, परम्परा और प्रयोगकी साहित्य और रचनाविशतकी गरिमा धाम्निवि अनुमान ही रचियेका लक्षण तथा साहित्यपर किया जा सकता है। भारतीय लोककथा रचियेके मन्त्रमें साहित्य कथा प्रवचाने

अध्ययामें झाका अशेष महत्त्व ह ।

इस महत्त्वको दष्टिम रगते हुए द्विवेदीजीने मुख्य कथा प्रवधा और चरित पाया—कीर्तित्ता पथ्वीराजरासो रामचरितमानस, पद्मावत आदि—के लोकप्रतिष्ठितत्वा एव कथानक रूढियोंका अध्ययन किया ह और उसके लिए उत्साही अनुसंधित्सुआको प्रेरित भी किया ह । डॉ० ब्रजविलासचन्द्र 'पथ्वीराज रासोम कथानक रूढिया तथा 'मथुरालीन सूफी प्रबन्धोंमें लोकतत्त्व', पञ्जारी लोककथायात्री कथानक रूढियोंका अध्ययन उनकी ही सतप्रेरणाके निदान ह । इन कृतियाँ की गणना हिन्दी साहित्यका कथानक रूढियोंकी दष्टिसे दखनेक प्रारम्भिक प्रयामामे की जा सकती ह । इसासे प्रेरित होकर भोजपुरा जवरी और राजस्थानी कथाओरी कथाक रूढियापर अच्छा काम हुआ और हो रहा ह ।

मकसमूलरन अपने 'साइयालीजी ऐण्ड फोवलास'म पूर पश्चिमकी पुरा कथाओके तुलनात्मक अध्ययनके लिए भाषाका सहारा लिया ह और यह सिद्ध करनेका प्रयाम किया ह कि पुराकागी भाषाका प्रतिविम्ब पुराकालीन कविताम परिष्कृत हाता ह । उन्होने विशिष्ट वकके शब्दा द्वारा का भिन्न दशीय पुरा कथाका प्रतीको और रूपकोस सम्बद्ध तथ्योका वागिक हल प्रस्तुत करत हुए, काल और ऋगे भिन्न सद्भाव प्रयुक्त एक ही शब्दके अर्थ विकामका विवरण दिया ह और प्रताया ह कि पुराण प्रसिद्ध पुरखा उवगीकी प्रेमकथा विम पत्ता सौर कथासे निकमित हाकर समजातीन पश्चिमी तथा परवर्ती भारतीय कथा साहित्यमें नूतन रूप रग लेकर उपस्थित हुई जिनका उपयोग आगे चलकर धम और दान दोना क्षेत्रामें हुआ । उनका यह भी कहना ह कि सौरकथाएँ आन्तिम जडगीववादका परिणाम थी जिनके रहस्यकी कमीटी उसकी भाषामें ह । आचार्य द्विवेदी भी इसी कमीटीके अनुसार नाथ सिद्ध तथा सत-साहित्यमें प्रचलित कुछ शब्द प्रतीकाकी व्याख्याद्वारा उम युगका रहस्यान्घाटन करत ह । इस क्षेत्रम आपके लोकात्मिक सवेतके लिए 'जोगीडा' और 'कवार' सम्बन्धी बन्धका उल्लेख किया जा सकता ह जो पयाप्त विचारोत्तेजक सिद्ध हुआ ह । 'हिन्दी साहित्यकी भूमिका के यागमाग और सतमत' अध्यायम आपने यागिया और गिगुण मतवालीमें हाड और 'करामाती दैव-पवोकी कहानी की चषा करत हुए लिखत ह । 'दुक प्राप्त और दिदरूप होलीके अन्तरकर जो धनील और अनाय गान गाय जात ह उन्हें जोगीडा कहते ह । जोगीडा गा लेनेके बाद लोग कवीर गाते ह जा और भी भयकर हाते ह । क्या इन जागीनी और कवीरान गाय गायिया और कवीर पथियाकी विभी प्राचीन प्रतिद्विष्टता

की स्मृति जुने हुई है या ये अलोल गान भी उलटवाँमियोंकी भाँति किसी युगमें किसी अग्रन्तुत वन्तनिहित सत्यकी ओर हारा करनेवाले माने जाने थे।”

कबीर' और 'जोगी' इन दो लोकप्रचलित शब्दों और उनके व्यवहार-के आस-पास आपने यागिया और निगुणियाकी प्रतिद्वन्द्विताका जो संकेत दिया है वह निरक्षय ही लोकदात्तान्त्र तथा शक्त विरोधका व्याप्तिरा अनुमयेय प्रकरण है। न जाने ऐसे कितने शक्त अपने गभम अतीतनी रहस्यक्या समेटे और अथके पुराने सद्बोधोंमें कटे हुए अनुसंधानकी प्रतीकामें विमूर्च्छित पड़े हैं। तुलनात्मक पुरातत्वाशास्त्रके अध्येताओंने तुलनात्मक भाषा विज्ञान पद्धति द्वारा ऐम ही शक्तोंमें उक्त अथ विकासका इतिहास ज्ञान किया और साथ ही, पुरा-कागत इतिहासके कुछ पहलूआपर विश्वमनीय अनुमान प्रस्तुत किया था।

द्विदेशीयके 'जोगी' और 'कबीर' सम्बन्धा अनुमानानि उल्लिखित होकर इधर कई लेख लिखे गये हैं किन्तु वे किमा तथ्यपर नहीं पहुँच सके हैं। मेरा अनुमान है कि दा त्रिचारपाराश्रामें प्रतिद्वन्द्विताके ऐसे दोन लोकप्रचलित पहली प्रतियागिता तथा मराठी-गुजराती लावणी और टप्पाम टेंडे जा सजने हैं। जोगीटा और कबीर जम अदला-पचामे भोपालके 'बबीठा' छत्तासंगठके 'डिडवा छिदवाढाणे' 'मिहडा की तुलना की जा सकती है। कम मुकामा तक हमका विस्तार खोजा जा सकता है पर विचारणीय है कि 'जोगी' सरसू या घाघराके तटवर्ती प्रयोग तब ही सीमित है। गागा, बस्ती गारणपुर, फाँताराद आसमगड, बरिया, दवरिया और इनमें सटे कतिपय जिलोंमें ही इसका विशेष प्रचलन है। बस्तीमें धनगमननाथ अवसरपर जितन मल लगने हैं, उनमें अलोल गाना और उक्तिगामे भरपुर जागोटा नृत्यकी धूमधाम देखी जा सकती है। शृंगी कतिपय पण्डूरघाट गानगठके मेलामें आजम पचीस वष पूर सका करे जागीटा नृत्याना दगा आयोजित होना था जिनकी सयाग और पूर्वाम्याउ महीना पहलेमे घना करना था। आज भी बरपुर पण्डूरघाटके मेरामें जागाडा नाचन सी से अधिक कर दृष्टान्त मचाने और अलोल पद्याका बधापकदन या उत्तर प्रयुत्तर करन देगे जा सकत है। जागोठके नाचमें प्रयुक्त कुछ गानगठियाँ और रुढ़ियाँ उल्लिखनीय हैं।

बस्ती-भोरणपुर जिलेके प्राचीन अलमन्त्र छे जोगी नृत्यका आयोजन तथा प्रवृत्त करते हैं। इनके प्रयोगने समय जा नटर निराजित जाना है उसे जाग्नी कहते हैं। मन्त्रालार मन्त्र दानोंने मध्य दा दानोंने बीच जा पद्य प्रतियागिता चलता है उम 'पना बापना (परिचय अथवा भूमिका ?) कहते

है। दो दलके लोग एक दूसरेको 'हि नायजी'का सम्बोधन कर वारी-वारीसे पता बोलते ह। ये पते रति विषयक अश्लील क्रियाओ और सम्बन्धपर आरो पित पद्यात्मक-उक्तिया है जो इतने नग्न, फूहड और अनतिक्र होने ह कि परिष्कृत रचिके दशमको उनमें कुछ भी आनन्द नहीं आवेगा। किन्तु गाली भरे 'पता की नोक झोक, दगाकाके बेतरतीब भभटमे घडा विचित्र आकषण उत्पन्न बरती है। जिन प्रदेशामें इनका विशेष प्रचलन है, वे अधिकाशत निगुनिया सतो और गोरखपन्थी नाथोके विशेष प्रभाव क्षेत्र रहे ह। जत कबीरके सदभम द्विवेदीजीके अनुमानके पीछे अतीत सत्यकी कौषके ये आधार विश्वसनीय प्रतीत होते ह।

लोकवार्ता तत्त्वोसे निर्मित दृष्टिकोण तथा मानदण्डको हिंदी साहित्यके अध्ययनमें एक देनके रूपमें महत्त्व प्रदान करनेवाले डॉ० द्विवेदीके ऐतिहासिक प्रयासकी जागे दानके लिए लोकवार्ता तत्त्वोंके सुश्रुत अध्ययन एव आकलाका काय अत्यंत आवश्यक ह। भारतीय लोक साहित्यके सग्रहका काय पिछली शताब्दीके अंतिम चतुर्थांशस चलकर बीसवी शताब्दीमें विशेष लोकप्रिय हुआ। अबतक प्राय सभी अचला और जातियोका लोक साहित्य अपर्याप्त ही सही सबलित हो चुका ह। परंतु सग्रहीताआने अपना ध्यान प्राय सग्रहकी ही ओर केन्द्रित किया ह। इधर बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात राजस्थानके लोक साहित्य सस्थान और फोकलोर सोसायटिया इस दिगामें अच्छा काय कर रही ह। लोकसाहित्य एव लोकवार्ताके अध्येताओ—गो० सेन, डॉ० सत्येद्र, डा० श्याम परमार, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ० मनोहरशमा, डॉ० सहल, चक्रधर महापात्र, डॉ० इन्द्रदेव, दुर्गाभागवन आदिने इस क्षेत्रमें उल्लेखनीय प्रयास किया ह। डॉ० द्विवेदीसे प्रेरणा प्राप्त कर इन पक्तियोके लेखके आजने बारह बप पूव 'उत्तरभारतीय लोकवार्ता कोश' निर्माणके लिए दुम्साहसपूर्ण चरण बढ़ाये, अनेक बाधाओंके बावजूद अब उस योजनाका तृतीयांश-काय शेष रह गया ह। लेकिन कुल मिलाकर स्टिथ टॉमसन-कृत 'माटिफ इण्डेक्स' और मेरियालीच-सम्पादित 'डिक्शनरी आव फोकलोर' जसा काय यहा नहीं हो पाया ह। आग ह कुछ वर्षोंमें भारतीय लोकवार्ता सम्बन्धी प्रामाणिक कृतियोके प्रस्तुत हो जानपर आधुनिक-पूव हिंदी साहित्यकी अनेक गुत्थियोको मुलज्ञानके लिए ठोस भूमि प्राप्त हो जायेगी।

द्विवेदी-साहित्य

पाठकीय प्रतिक्रियाएँ

• •

श्यामनन्दन किशोर

सिद्ध आलोचक गुद पाठक होता है। किसी साहित्यकारका कृतियोंका सोभाग्य यह नहीं है कि उनकी कितनी समीक्षाएँ प्रकाशित हुई, उनपर कितने साहित्यिक-भरिसवादाकी याचना की गयी अथवा उनपर कितनी मूल्यांकन-भालाएँ प्रकाशित हुई। मेरा समझमें वह साहित्यकार बड़ा भाग्यवान है जिसकी रचनाओंको सहज पाठक मिले है। सहज पाठक, अर्थात् वह व्यक्ति जो किसी पूर्वाग्रहम मुक्त है, पुस्तक पढ़नेके पूर्व ही आलोचना लिखनेका कागज-कलम ठोक विये न बठा है। केवल अपने साली समयकी आनन्ददात्मक अनुभूतिमें भरनको पढ़ने बठा वहिए, लेटा है। आज तो अधिकांश आलोचक परीक्षण-प्रणालीस पन्ते लिखते हैं। जस किसी विश्वविद्यालयकी उत्तर पुस्तिकाओंको जीवनेके लिए अत्र-यत्र पहलेमें ही संभाते रमे होते हैं और समय-सीमावा ध्यान रहता है वस ही वे आलोचक किसी सम्पादकके अनुरोध, किसी लेखककी प्रापना या किसी पुस्तकके प्रकाशनके निमित्त तयार होकर आलोचना लिखने बग्न हैं। आलोचक भी एक पराभव है, पर उसकी मयादाका निर्वाह डाकका भुंहाज नहीं हो सकता। उसका विगुद मूल्यांकन उसकी वे सहज प्रतिक्रियाएँ हैं जो अध्ययनक्रममें अनायाम प्रकट होती हैं। स्वाध्यायमें प्राप्त ये अनमोल अनुभूतियाँ हैं। विद्या पुस्तककी वास्तविक देन है। आलोचनाके क्षत्रमें व्यावहारिक कठिनाई यह है कि आलोचकका केवल आनन्द लेकर रह जाना अभीष्ट नहीं है। उस कविकी भाँति अपन अनुभूत भावाको सन्नमित करना पन्ता है। जहाँ कवि सहज निःसूत्र गल्पकृतियोंमें अपनेको अभिव्यक्त करता है वहाँ आलोचकका पाठकावा समझानेके लिए एक शिष्यकी वृत्ति अपनाना पन्ती है। अपने विचारको ठकसे पुष्ट करना पडता है। उसकी पद्धति वैज्ञानिक हो जाती है। उगमें यह स्वानाश्रितता नहीं रह जाती, जो कवितामें मिलता है।

एकिन हिंदीमें एक एक आलोचकका जन्म हुआ है, जिसकी रचनाओंमें

है। नो दलोंके लोग एक दूसरेको 'हे नायजी'का सम्बोधन कर वारो-वारीसे पता बोलते हैं। ये पते रति विषयक अश्लील क्रियाया और सम्बन्धपर आरोपित पद्यात्मक-उक्तियां ह जो इतने गन्ग, फून्ड और अनतिक होने ह कि परिष्कृत रचिके दशनको उनमें कुछ भी आनन्द नहीं आयेगा। विन्तु गाली भरे 'पता'की नोक चोर, दशकके बेतरतीव भग्भट्टम बडा विविध आकषण उत्पन्न करती है। जिन प्रद्वामें इनका विशेष प्रचलन है वे अधिवाशत निगुनिया सतो और गोरगपथी नायाके विरोध प्रभाव क्षेत्र रहे ह। अत कबीरके मन्दभमें द्विवेदीजीके अनुमाके पीछे अतीत सत्यकी कौंधके ये आधार विश्वसनीय प्रतीत होने ह।

लोकवार्ता तत्त्वोंसे निर्मित दृष्टिकोण तथा मानस्यदकी हिन्दी साहित्यके अध्ययनमें एक देनके रूपमें महत्त्व प्रदान करनेवाले डॉ० द्विवेदीके ऐतिहासिक प्रयासका आगे बढानेके लिए लोकवार्ता तत्त्वारे सुसुल्लिखित अध्ययन एवं आकलनका काय अत्यत आवश्यक है। भारतीय लोक साहित्यक सग्रहका कार्य पिछली शताब्दीके अन्तिम अनुषांशसे चलकर बीसवी शताब्दीमें विशेष लोकप्रिय हुआ। अवतक प्राय सभी अच्छा और जातियोंका लोक साहित्य अपर्याप्त ही छोटी, सकलित हो चुका ह। परन्तु सग्रहीताओंने अपना ध्यान प्राय सग्रहणी ही ओर केन्द्रित किया ह। इधर बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात राजस्थानने लोक साहित्य मस्यान और फोननोर सोसायलियां इस निगाम अच्छा काय कर रही हैं। लोकसाहित्य एवं लोकवार्ताके अध्येताआ—पी० सेन, डॉ० सत्येन्द्र, शा० इयाम परमार, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ० मनोहरदामा, डॉ० सहल, चक्रधर मद्रापात्र डॉ० इन्द्रदेव दुर्गाभागवन आदिने इस क्षेत्रमें उल्लेखनीय प्रयास किया ह। डॉ० द्विवेदीसे प्रेरणा प्राप्त कर इन पत्तियोंने लेखकन आजमे बारह वष पव 'उत्तरभारतीय लोकवार्ता कोश' निर्माणके लिए तुम्साहसपण धरण बढाये, अनेक बाधाआने बावजूद अब उस योजनाका तृतीयान्धाय शेष रह गया ह। लेकिन कुल मिलाकर स्टिप टॉमसन-शून मोटिफ इण्डपस' और मरियालोच-सम्पादित 'दिवानरी आब फोकलोर' जसा काय यहाँ नहीं हो पाया है। आगा ह कुछ वर्षोंमें भारतीय लोकवार्ता सम्बन्धी प्रामाणिक कृतियाँ प्रस्तुत हो जानेपर आधुनिक-भूव हिन्दी साहित्यकी अनेक गुत्थियोंकी सुलझानेके लिए ठाम भूमि प्राप्त हो जायेगी।

■

द्विवेदी-साहित्य

पाठकीय प्रतिक्रियाएँ

• •

श्यामनन्दन किशोर

सिद्ध आलाचक गुद्ध पाठक हाता है। 'निम्नो साहित्यकारका कृतियाका सौभाग्य यह नही है कि उनका कितनी समीक्षाएँ प्रकाशित हुइ, उनपर कितने साहित्यिक-मरिसवादाका याजना की गयी अथवा उनपर कितनी मूल्यावन-भालाएँ प्रस्तुत हुइ। मेरा समझमें वह साहित्यकार बडा भाग्यवान है जिसकी रचनाआका सहज पाठक मिले हा। सहज पाठक, अथात वह व्यक्ति जो किसी पूर्वाग्रहस मुक्त हा, पुस्तक पढनेके पूव ही आशेचना लिखनेका वागुज-कलम टाक किये न बग हा, केवल अपने खात्री समयका आन-दामक अनुभूतिसे भरनका पढने बग, कहिए, लेटा हो। आज तो अधिकाश आलाचक परीक्षण-प्रणागस पत्र लिखत है। जस किसी विरवविद्यालयकी उत्तर पुस्तिकाआको जीवनक लिए अन्वयक पहलस ही सँभागे रख होते हैं और समय-सीमाका ध्यान रूठा है वस ही वे आलोचक किसी सम्पादकके अनुरोध, किसी लेखककी प्रायना या किसी पुस्तकके प्रकाशनके निमित्त तयार हाकर आलोचना लिखने बजत है। आलाचन भी एक परीमक है, पर उसकी मपादाका निवाह हाकका मुहताज नहीं हो सनता। उसका विगुद्ध मूल्यावन उसकी वे सहज प्रतिक्रियाएँ है जा अध्ययन ब्रममें अनायास प्रकट हानी है। स्वाध्यायने प्राप्त ये अनमो अनुभूतिपाँ हा किमा पुस्तकका वास्तविक दन है। आलोचनाके क्षेत्रमें व्यावहारिक बगिनाई यह है कि आलाचकको केवल आन-द-केवर रह जाना अभीष्ट नहीं हाता, उस बढिका भाँति अपने अनुभूत भावाको सन्नमित करना पजता है। जहाँ बकि सहज निमूत गन्तावल्पियोंमें अपनेको अभिव्यक्त करता है, वहाँ आलाचकको पाठकाका समझानक लिए एक गिणककी वृत्ति अपनाजी पजती है। अपने विचारारो तर्कसे पुष्ट करना पजता है। उसी पद्धति वैधानिक हो जाती है। उसमें क स्वानाविकता नहीं रह जाती, जो अवितामें मित्रता है।

एनिन हितामें एक एन आलाचकका है, जिसका रचनाओंमें

विबिध

आलोचनाकी विश्लेषणात्मकता, गुण दाप निरूपणशक्ति आदि सभी विशेषताओंके होते हुए भी एक अपूर्व सहजता है। वह आलोचक है लेकिन उसकी कृतियामें दुरुहता, तर्क-जाल, वैज्ञानिक सन्भावलयोका बोझ या मानसिक व्यायामके लिए कोई स्थान नहीं है। उसमें सम्पूर्ण भारतीय साहित्यका पाण्डित्य है लेकिन उस पाण्डित्यका प्रदर्शन कही नहीं है। पाण्डित्यमें बुद्धिकी अजीबता नहीं है। लगता है जैसे विभिन्न पुष्पोंके पराग मधु बन गये हों। विभिन्न नदियोंकी धाराएँ जैसे समुद्र बन गयी हैं। सात सुरोंका समन्वय जैसे संगीत बन गया है। ऐसे तत्त्वदर्शी आलोचक है—राष्ट्रभाषाके गौरव, विद्यावारिधि पद्मभूषण डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी। भूल हो गयी इतने सहज साहित्यकारका स्तना बड़ा नाम क्यों?—कहिए जाचाय द्विवेदी, नहीं मान द्विवेदीजी। द्विवेदीजी आलोचक हैं क्योंकि वे किसी वस्तुको देखने या ममझनेके लिए सम्यक दृष्टि प्राप्त करते हैं। ऐसी दृष्टि जा कविकी हाती है—आर-पार देखनेवाली। तथ्य परक इतिहास हा, भाव-परक निबन्ध हा या घटना-परक उपन्यास—सबत्र द्विवेदीजीकी अनुभूति प्रवणता दृष्टिगोचर होती है। 'हिन्दी साहित्यकी भूमिका में भूमिकाकी लपेटमें हिन्दीके अतिरिक्त हमें कई भारतीय भाषाओं और संस्कृतिया की संवधा मौलिक व्याख्या और स्थापना देखनेको मिलती है। गूढ विषयोंका प्रतिपादन सबत्र एक प्रसन्न शैलीमें हुआ है। 'नाथ-सम्प्रदाय और जादि काल'की ऐतिहासिक दृष्टि साहित्यक अध्यायमें खोयी टूटी पड़ी अनेक शृंखलाओंको जोड़नेवाली है। द्विवेदीजीकी खोजने हिन्दी साहित्यको कुछ और बुजुग बना दिया है। 'हिन्दी साहित्यका उद्भव और विकास परम्परागत रूप से लिखे गये साहित्यिक इतिहासोंमें भिन्न है। न इसमें उद्धरणोंकी चकाचौध मिलती है न 'यथकी घटनाओंके विस्तारके क्रममें सामाजिक राजनैतिक इतिहासोंकी बराबरी। परम्परा और विकासकी पृष्ठभूमिमें साहित्यिक गतिविधिका मूल्यांकन किया गया है।

'मूल-साहित्य' और कबीर में जिन दो महाकवियोंका अध्ययन प्रस्तुत किया गया है उनमें भी द्विवेदीजीके साहित्यिक यत्नरत्नका निराला रूप मिलता है। इन दोनों ग्रन्थोंके उप-शीर्षक ही इस बातके प्रमाण हैं कि लेखककी आलोचना दृष्टि कितनी नयोनमिणी है। कितने ही अद्भुत प्रसंग पूरी सज-धजके साथ उपस्थित हुए हैं उनकी संवेपणात्मक और समीक्षात्मक दृष्टिकोणाका अद्भुत समन्वय, इन दोनों कृतियोंमें हुआ है। पौरस्त्य विचार धाराओंकी कितनी ही भूलों विसरों की-दृष्टि हुईं भाव-मुक्ताओंका संचालन कर द्विवेदीजीने साहित्य का बड़ा उपहार किया है।

द्विवेदाजीकी कल्पना-शक्ति बड़ा ताज़ा है। उनका 'अनुमान' इतना प्रबल होता है कि वह पाठशाली सब कुछ 'प्रत्यक्ष' करा देता है। कल्पनाएँ इन्द्रियगुणों ताने-बाने ब्रुतकर भाग सही नहीं होती, जम जाती हैं। कल्पनाएँ घटनाओंका निमाण कर अन्त खलिला हो जाती हैं। द्विवेदाजीकी कल्पना-शक्तिमें दृष्टि सज्जना हीन कर देनेकी ऐसी शक्ति है कि कल्पना कल्पना न रहकर यथार्थ प्रतीत होती है। इतिहास और पुराणके कितने ही टूटे प्रसंगोंकी इन्होंने जोड़कर एक रूप कर लिया है। 'बाणभट्टकी आत्मकथा' हा या 'बालकन्दो', उनमें जो कुछ है द्विवेदाजीका अपना है। ऐसा लगता है कि सभी चरित्र असली हैं—यहाँ जो कुछ गलतपूर्व इसी रूपमें परा धाममें विचरते रहे हैं। लेकिन यथाथ यह है कि उनमें-से अधिकांश चरित्रोंका रूप निर्माण मुख्यतः द्विवेदाजीकी कल्पना शक्तिकी दत्त है। बाणभट्टकी कथाक साय भरव नरवी महामाया, जटिल बट्ट सुचरिता आदि प्रसंग बड़ी स्वाभाविकताम जुड़ हैं। द्विवेदाजीकी कल्पना ऊर्ध्वगामिनी होकर भी बनी समतल है। इनकी दास्य है कृतियोंमें बाल-कर्मका निर्वाह बड़ा निपुणताम हुआ है। सन्तारिण सामाजिक, राजनितिक और साम्प्रतिक परिवर्तनोंका स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

एक तो द्विवेदाजी प्रख्यात आलोचक, इतिहासकार, गवेषक और उपयाम कार हैं, पर उनका सबसेश्रेष्ठ रूप है उनका निराचकार, ललित निराचकार। साहित्यकार अपनेका अभिव्यक्त करनके लिए विविध माध्यम ईशता हैं। खान्द-मापन भा लेख लिखे कहानियाँ लिखा, उपयाम लिख और चित्रकारी तक की पर जस उन सभी रचनाओंमें भीतर उनका कवि-रूप प्रमुख रहा, उसी प्रकार द्विवेदाजीकी समस्त साहित्यिक विधाओंमें भी उनका ललित निराचकार प्रमुख है। सब दृष्टिगत ता 'बाणभट्टकी आत्मकथा' और 'बालकन्दो' भी उनके निराचकार ही हैं एक निराचकारके सभी गुण इन दोनों ग्रंथोंमें प्रियमान हैं। कल्पना, अज्ञानपूर्व कृत्रिम-ज्ञान सत्रहमें विचारोंका वसुन्धरा, विषय-वस्तुकी मग्यता और कल्पनाकी प्रमुखता, एक विषयको माध्यम मानकर उदात्त भरन हुए जीवन और जगतकी अनेक वस्तुओंको रूपद, भावुकता, जीवनमें गहर पैठनका पश्चिम आदि—जा इनके गुण मिलत है व इन ज्ञाना कथानाहित्यमें प्रचुर भागमें है। एक कथाकारकी घटनाओंकी जसा और जितना चिन्ता रहती है, वही कुछ बात इन ज्ञाना ग्रंथोंमें नहीं दीकती। द्विवेदाजीक उन निराचकारोंमें भी, जिन्हें साहित्यिक आलोचनात्मक ऐतिहासिक, सामाजिक या अन्य नामोंमें पुकारा जाता है इन गुणोंका विरास अध्यापित भागमें दीकता है। 'सम्पत्ता और सम्पत्ति, सम्पत्ति और साहित्य', नागदाय मस्तिष्ककी दत्त, 'सुधा-साधना',

'शिव साधना', 'रवीन्द्रनाथका राष्ट्रीय गान', 'हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली', 'भारतीय फलिन ज्योतिष आदि किसी भी रचनाको पढ़कर देखा जा सकता है कि उनमें सबत्र 'हजारोप्रसादत्व वसमान है। द्विवेदीजीका अपना व्यक्तित्व सबत्र मुखर है। कही विषयका नीरस प्रतिपादन पढ़नेको नहीं मिला।

वेद, पुराण और शास्त्रके निष्णात पण्डित होकर भी द्विवेदीजी कोरे पण्डिताङ्गणसे उत्पन्न विटम्बनाआ और दयापर बरारी चोट करनेवाले है। उनका विद्राही रूप उहाके शब्दाम—मेरी भावुकताको जबरदस्त धक्का लगा। मेरा विद्राही पाण्डित्य तिलमिलाकर रह गया।' सगति लगानेकी पण्डिताईपर व्यभ्य करते हुए द्विवेदीजी लिखते ह—“सगति लगानेका यह रूप मुझे हतदप भारतीय धमकी सबने बडी कमजारी जान पडी ह। मैं ठीक समझ नहीं सका कि शास्त्रीय बचनो के इन विशाल पवताको खोदकर ये चुहिये क्यों निकाली जा रही है।” इसी तरह वे शास्त्रीयताका भीमासा करते हुए कहत है—‘साधारण मनुष्यके लिए यह सम्पत्ता बडा कठिन है कि क्या पण्डितका शास्त्र उसकी बुद्धिका दवा देता है और क्या उसकी बुद्धि शास्त्रको।’ अशाके फूलका विवेचन करते हुए पण्डिताईके बाह्याडम्बरपर कसी अच्छी सूझ दी ह— “पण्डिताई भी एक बोझ ह—जितनी ही भारी हाती है उतनी ही तेजासे डुवाती ह। जब यह जीवनका अक्ष बन जाती है तो सहज हो जाती ह।”

धीसवी शतादीका हिन्दी साहित्य उपक्षित और अनादत मानवताको नयी आशा और प्रतिष्ठा भर देनका प्रयामी ह। इस कालमे समाजके बितने ही नव मूल्याको प्रतिष्ठित किया गया। डॉ० हजारोप्रसाद द्विवेदीक साहित्यमें यह तत्त्व बहुत बडी शक्ति लकर उभरा ह। एक कविके लिए, विशेषत प्रबन्ध-कविने लिए ऐसे मूल्याकी स्थापनाम मुगमता ह पर एक आलाचक्क लिए, एव इतिहासकार के लिए इसकी पुष्टि बडी कठिन ह। द्विवेदीजाने जो अपन ललित निबन्धोम मानव उत्कृष्ट तत्त्वका प्रथम दिया यह उतने आश्चर्यकी बात नहीं ह, लेकिन उनकी अयाय गद्य विधाजाम इसकी प्रतिष्ठा बहुत बडी सफलताकी सूचना देती ह। डॉ० द्विवेदीका विशाल जीर उदार दृष्टिकाण उनके मानवता उदारक विचाराकी रीत ह। वे मनुष्यकी दुदम जिजीविषा मनुष्यकी विराट एकता, वे विदवासी और विवक कल्पना आनय और समय को मनुष्यताके तत्त्व माननेवाल ह। उसकी अंष्टिम हमारे समस्त प्रयत्नाका लक्ष्य एकमात्र मनुष्य ह। द्विवेदीजी धम अक्ष और मानव जीवनके लक्ष्यका आनुतिष्ठ व्याख्या करते हुए लिखते ह उसरा (मनुष्यका) वतमान दुगतिस बचाकर मनुष्यके आत्यन्तिक बचावणी ओर उन्मुख बरना ही हमारा लक्ष्य ह, यही सत्य ह, यहा धम

है।" द्विवेदीजी ठोस भूमिके कलाकार हैं। वे आध्यात्मिक तन्त्राकी आवश्यकतासे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहते। वे पलायनवादी वृत्तिके घोर विरोधी हैं। विन्व-साहित्यमें मानवताका जेचा उठानेकी प्रेरणा देनेवाले साहित्यकारोंमें द्विवेदीजी उच्च पंके अधिकारी हैं। वे स्पष्ट रूपसे इस बातकी घोषणा करते हैं कि उनका साहित्य मानवीय है—'म साहित्यको मनुष्यकी दृष्टिसे देखना पस्यपाछा हूँ। जो वाग्गात्र मनुष्यकी दुर्गति, हीनता और परमुखापक्षितासे बचा न सक जा उसकी आत्माकी तेजादीप्त न बना सके, उसके हृत्पको पर दुख वातर और सबदनशील न बना सके उसे साहित्य कहनेमें मुझे संकोच होता है।' यणीनासका भाति ही द्विवेदीजी मनुष्यको सबसे बडा सत्य मानते हैं। द्विवेदीजी मनुष्यका श्रेणी विभाजन उसकी मनुष्यताकी क्षमतापर आधारित मानते हैं और उस मनुष्यताकी पहचान है दूसराज साथ तादात्म्य-सम्बन्ध। साहित्यको 'वे मनुष्यका व उच्छलित आनन्द मानते हैं जा उससे अन्तरमें अेटाये नहीं अेट सवा था।' मानव मानवकी शभेद भावनाके कारण ही वे विज्ञान और कायको 'एक ही मानवाय चतनाके दो विारारी उपज' मानते हैं।

जिस सहजताकी बात में उपर कह आया हूँ व सहजता द्विवेदीजीकी भाषा गलीश है। सस्कृत-साहित्यके अगाध पाण्डित्यके होते हुए भी इनकी भाषामें उड़ अंगरजी भाति गलीके प्रयाग प्रचुर मात्राम हैं। लेकिन उनका प्रयोग उन्हीं स्थानापर हुआ है, जहाँ वे अधिक भाववीचक सिद्ध हुए हैं और उनसे भाषा गलीकी व्यजना और प्रवाह्य शक्ति आती है। उन स्थानापर वे ही अपि प्रहन लगते हैं। अभिव्यजनारो पुष्ट वरनके लिए गद्यकी सभी विधाआम इहाने नये-नये शब्द गडे हैं। भाषा गलीके उत्पका एक प्रबल मानदण्ड है—व्यंग्य, द्विवेदीजीके व्यंग्यमें सूझका पैठ और पनापन तो है, पर वे व्यंग्य निर्लमलानेवाके नहीं दुल्लारनवाले सौर गुग्गुत्तनेमाके होते हैं। द्विवेदीजीका व्यंग्य मनी आंगका वाजल है—याग लगता है, क्याग मुत्तर बनाना है, ज्याति बढ़ता है।

संगेपम यदि द्विवेदीजीके साहित्यके एक पाठनरी सहज प्रतिक्रियाआको सार-महा कहा जा सव ता उनका रूप कुछ इस प्रकार होगा—

१ द्विवेदीजी भारतीय वाङ्मयके अमाधारण पण्डित हैं लकिन उनकी पण्डिताई पुल मिन्वर अनुभूतिका अग बन गयी है।

२ साहित्यरी त्रिविध विधाआने मन्त्र प्रयाका शवर नो वे म्पुपत निरपचार हैं।

३ भारतीय ससृष्टिवे प्रबल समयक हाते हुए भी वे विद्वधी उन मभी विपताआकी अपानेकी तैयार है जो मानवताके लिए हितकर ह ।

४ वे मानवताके जगण्ट सुन्दर, कथाणकारी और आनन्दमयस्वरूपके प्रबल प्रेरक है । उनकी राष्ट्रीयता बौद्धिक नहा आत्मिक ह ।

५ विपयोकी नवीनता थीर उनके प्रतिपादनके उपयुक्त नवीन शिल्पको जम देनेकी इनकी प्रतिभा असाधारण है ।

६ द्विवेदीजी सहज साहित्यकार ह । उनका चरित और साहित्यकार एक रूप ह । वे अपनी चेतनाके माध्यमस जमा दोगने ट, यावहारिक जीवनम भी वैसे ही ह । यह बात उस पाठकके लिए सहज ह, जिमने उन्हें थोण निवटस देखा ह ।

७ द्विवेदीजीने जो कुछ लिखा ह, यह साहित्यका एक नवीन अध्याय बन गया है ।

८ इनके साहित्यमे यह स्पष्ट गलनता ह कि ये अतीतक प्रति थडा रगकर बतमानके प्रति पूण आस्थावान ह और भविष्यके प्रति इनकी सुख आगाएँ अटूट है । आगावात्का इतना बडा निड ट प्रवक्तव भारतीय भाषाओमें कोई दूसरा साहित्यकार नहा है ।

■

देख कस सिंहबाहिनी नील ताराकी । यह सिंहपर सवारी करणी है । कसके चौखटेपर शिर मारकर प्रसाद पानेकी आकांक्षा न रख सबा सिंह बन तभी कसका प्रसाद पा सकेगा । सहय बार मैने इस नील तारा मूर्तिका निमम अङ्गस सुना है । यह बड़ी निमम है बड़ी बेवीर है । कायरोंकी अपनी छाया तक नहीं छूने देती । मृत्यु नीतिशोकी जड़तापर दारण अङ्गहास करती है पथधात कर्मियोंकी भ्रमाभ्रम निवस्तती बाणोंकी क्रूर परिहासका विषय मानती है । यह निखिल ब्रह्माण्डकी त्रिया शक्तिकी अधि-
पत्या है ।

— चारुचन्द्रलेख

‘विश्वभारती’ का सम्पादन

अन्तरके सत्यकी यात

काशीनाथ सिंह

बीसवा सदाके आरम्भिक दशकोंमें ‘सरम्बती’ हिंदीको व्यवस्थित और सुमम्बद्ध भूमिका दे चुका थी। ‘हंस’ हिंदीको ‘जनताके हृदय’ और ‘जनताकी आत्मा’ के साथ एक कर देनेका दायित्व निभा चुका था। उदरत थी अधीन भारतके भाषावार साहित्यानी आंतरिक एकरूपता पहचानने और जातीय परम्पराके सम्भ्रममें वनमान चिन्ताधाराका मूल्यावन प्रस्तुत करनेकी—‘विश्वभारती पत्रिका’ इहां प्रयासाका परिणाम रही ह।

किसी हिन्दी भाषी क्षेत्रकी पत्रिकाकी तुलनामें इस आवश्यकताका अनुभव ‘विश्वभारती’को अधिक होना भी चाहिए था। यह मान इसलिए नहीं कि वह अहिन्दी भाषी प्रान्तमें जम ले रही थी बल्कि इसलिए भी कि वह इतिहासके उस दौरमें थी जिसमें विदेशी हुकूमत समूचे राष्ट्रको प्राता, जातिया, धर्मों और भाषाओंके स्तरपर टुकड़ोंमें बाँटनेके लिए प्रयत्नगोल थी। बंगाल अकालमें गुजर रहा था, हिंदू और मुसलमान एक-दूसरके खूनके प्यास हो रहे थे और बंगाली ‘हिन्दुस्तानिया’को हिंकारतकी निगाहमें देख रहे थे। विश्वभारती पत्रिका पर यह ऐतिहासिक जिम्मेवारी थी और कहना न होगा कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके सम्पादनमें वह अपने दायित्वा आरम्भमें ही समप गयी थी।

द्विवेदीको पत्रिकाके प्रवर्तनमें ही लक्ष्य करते ह कि “बाहरके आचारने भारतमें नाना आचारमें भ्रमका ही मजबूत कर रखा ह इसीलिए भारतकी श्रेष्ठ छात्रना ह—बाहरके आचारकी अतिक्रम करके अन्तरके सत्यका स्वीकार करना।” अन्तरके सत्यका तभी स्वीकार किया जा सकता ह जब बाहरी आचारको नातिका अच्छी तरह समझा जा सके।

द्विवेदीजाय सामने स्पष्ट था कि भारतमें छावन करनेवागे यद् भीम अपने

पहले आनेवाली सभी कौमोसे भिन्न किस्मकी है। यह भारतको अपना देश नहीं मानती उसका होकर रहना नहीं जानती। अपना दश उसके लिए 'अपनिर्वा' सरीखा है। उसे निवट भविष्यमें ही जाना है लेकिन जानेके पहले वह उस तोड़ कर जाना चाहती है। द्विवेदीजीने यह भी लक्ष्य किया कि उसकी इस भेद नीतिका अमर भारतीयोंपर पड़ने लगा है।

उन्होंने पत्रिकाके दूसरे अंकमें घोषणा की—“नाम मार्गके साधक जो कुछ भी साधना कर रहे हैं उसका लक्ष्य ही होना चाहिए इस विशाल जनसमूहकी मुक्ति।” उन्हें पराधान दशमें 'काय विभाजन की पद्धति' स्वीकार नहीं थी क्योंकि इस पद्धतिके पीछे विश्वी शासनकी चाल थी। इसलिए उनकी नष्टि माग चाहे जा हो लक्ष्य गवना एक होना चाहिए। उन्होंने मुनाया कि इस जनसमूहकी मुक्तिके लिए हमें साहित्य लिखना है राजनीतिक आन्दोलन चलाना है सामाजिक सुधारका आयोजन करना है, जाँचिक अध्ययनका प्रयत्न करना है और धार्मिक दृढता प्रतिष्ठित करनी है।

प्राचीन साहित्याका अध्याय पत्रिकाके दूसरे लक्ष्यमें अन्तर्गत रहा है। उनके विचारमें वस्तुतः भारतवर्षकी एकताको दृढतर और स्थायी बनानेके जितने भी उद्योग हैं उनमें साहित्यिक विचारोंके आत्मन प्रदानका उद्योग प्रमुख है।” एक साहित्यकार इस एकताको दृढतर बनानेमें इसी तरह योग दे सकता है और फिर हिन्दी भाषाके लेखकोंपर तो अग्रे भाषाके लेखकोंकी अपेक्षा बनी जिम्मेदारों हैं। अगर इस विशाम वह पहल नहीं करता तो और कौन करेगा ?

द्विवेदीजीने यह सुझाव ही नहीं दिया बल्कि स्वयं बगला साहित्यकी सामयिक गतिविधियाँ हिन्दी लेखकोंका परिचय भी कराया। उन्होंने अग्रे भारतीय आग्रभाषाओंकी प्राचीनतम सामग्रियोंको लेकर उनमें परस्परकी अन्त भ्रूषता भी ढँढ निवाली और इस क्रमको आगे बढ़ानेके लिए लेखकोंका आवाहन भी किया।

प्राचीन साहित्याके अध्ययनका आधार क्या हो ? इस प्रसंगमें द्विवेदीजीने लिखा कि उनका अध्ययन 'समूची जनताका समानेके लिए होना चाहिए।' क्योंकि जनता राष्ट्रीय और साहित्यिक एकताकी नींव है। उसकी अपेक्षाका अर्थ है कि हमें हूकूमतको अपना समर्थन देना, उसकी काय विभाजनकी नीतिका अनुमोदन करना।

जनताको आधार रूपमें स्वीकार करनेके बाद द्विवेदीजी एक लेखको प्राचीन साहित्य तक ही सीमित रहनेके लिए नहीं कहते। इस भाषाके लेखकोंको दूसरी भाषाके जनसमूहोंके निन्दित होनेका मतलब होता है उसकी भौगोलिक

तिहासिक, धार्मिक और जातिगत विशेषताओंसे परिचय प्राप्त करनेका प्रयास करना। इसके अन्तर्गत उस प्रान्तकी लोक भाषाएँ, लोक-गीत, पूजा-भावणकी विधियाँ, रीति-रिवाज, लोक-कियाँ पुराण-ग्रन्थ, शास्त्रीय सिद्धान्त, पौराणिक-यात्राकी लोक-प्रचलित व्याख्याएँ-आदि सभी कुछ आती हैं। जबतक एक-एक इन्हें नहीं जानला और न प्यार करता है तबतक वह 'दस प्रेमी की भाषा पानेका हजदार नहीं होता।

यही यह भी कह देना होगा कि द्विवेदीजीकी बाहरी आचारसे कभी परहेज नहीं रहा। उन्हें विरोध बाहरी-आचार विचारकी नायतमे ह। उन्होंने पत्रिका में चीनी, जापानी, रूसी कविताओंका अनुवाद प्रकाशित किया ह और अपने समयक पाठकमे उन्हें परिचित कराया ह। वे दशके हर नागरिककी बाहरी विचार धारके लिए खुला रखनेके पक्षमें ह। उन्हें विरोध बाहरी उस बाहरी चिन्ता धारके ह, जो देशकी एकता और भारतीय सभ्यतिकी खण्डित करनेके लिए सचेष्ट ह। यही कारण ह कि व उसे 'अतिक्रम करने अतर्क्य सत्यको स्वीकार करनेक लिए प्रेरित करते ह।

स्वाधीनताक बीम वर्षों बाद भी विद्वद्भारती-पत्रिकाकी भाषा-नीति हमारे कामका है, यह अलग बात है कि वह हमारे राजनीतिक और स्वायत्तक विचारमे कहीं मेल न पाती हो।

जो लोग अंगरेजोंको भारतके लिए अनिनाय मानते हैं, उनमें द्विवेदीजीका कहना ह कि "अंगरेजोंके बिना कम काम चल सकता है, यह विचार तो हमारे पुराणीय चिन्तका विकल्प ह।" ममन्त स्वतंत्र दशक अपना ही भाषाका उपयोग किया ह। कितन ही म्याधीन राष्ट्र ता जाऊ ना ऐसे हैं जिनकी भाषाएँ हिन्दीकी तुलनामें बहुत पिछड़ी ह परन्तु हम न ता उनका राजराज रचना ह न विचारसे सम्पन्न बहानोंमें बाधा अनुभव हाती है। तब फिर हिन्दीका लेकर चलनी क्या ?

'दादा' भाषा का राजभाषा बनाये जानेका विरोध करने हुए द्विवेदीजी लिखते हैं कि हमें एसा भाषा चाहिए जिनमे हम सरकारकी आलाचना कर सकें, बकाशा बहाने चला सकें, सरकारकी आरम्भ जवाब द सकें कठिन कठिन समस्याका निराय लिख सकें और फिर भी वह भाषा इतना भाऊ, मैत्री और चुम्न ह कि विना राजदूतोंको सम्मानमें अस्पृष्टता और गन्तव्यकी बाधा न ह।

ऐसी भाषाका बात घर करने दे—व भी जिनकी अपना बाद भाषा नहीं

है। वे भाषाशास्त्र और इतिहासके सिद्धांतके आधारपर बहस करते हैं और गड़े मुरदे उखाड़ते हैं। गड़े मुरदे उखाड़नेका शौक बुरा नहीं क्योंकि ऐसे लोग कभी-कभी इतिहासके अंग भी बन जाते हैं। लेकिन जब जातिके बनने और बिगड़नेका प्रश्न हो तो यह नीति गलत है। द्विवेदीजीने सन '८५ ई० में लिखा था कि 'हम जब जल्दी ही कोई रास्ता निकालना हैं। शास्त्रीय बहस फिर हो लेगी। लेकिन हमें आजादी हासिल किये इतना अरसा हो गया और बहस अब भी जारी है कोई रास्ता नहीं निकला।

हिंदीके सबसे बड़े शत्रु कौन हैं—इसका आभास देते हुए सन '४२ की 'अपनी बात में द्विवेदीजीने लिखा है कि "यदि हम केवल इस भाषाका विरोध करनेके लिए या उस भाषाकी स्तुति करनेके लिए अथवा आदेशमें हिंदी हिंदी चित्ला रहे हैं तो निश्चित रूपसे गलत रास्ते जा रहे हैं।" और हमारे गलत रास्ते जानेका नतीजा यह हुआ है कि आज भी साम्राज्यवादियाकी जबान हम भारतीयके मुँहमें है, कलममें है, कुरसी और मेजपर है।

द्विवेदीजी अपने बारम्बार स्पष्ट लिखते हैं कि 'मेरे लिए हिंदी भाषा और हिंदी माहिल्य कोई देव प्रतिमा नहीं है जिसका नाम जपकर और आरती उतारकर हम सन्तुष्ट हो जायेंगे। यदि वह अपना दायित्व नहीं निभाती तो वह श्रद्धा और भक्तिका विषय भी नहीं बनी रह सकती।' हिंदीका दायित्व है—भारतवर्षके करोड़ों नर-नारियाके हृदय और मस्तिष्कको खुराक देना। हृदय-शम स्थित उसे अनाम, मोह कुसस्वार और परनिभरतासे बचाना।

जो हिंदीको बड़ी मात्रा उसकी विराट जनसंख्याके कारण मानते हैं उनसे द्विवेदीजीका कहना है कि यह गवकी नहीं, चिन्ताकी बात है। यदि भी भाषा महज इसलिए बड़ी नहीं होगी कि उसके बालनेवालोंकी संख्या अधिक है। हिंदी इसलिए बड़ी है कि करोड़ा जनताके हृदय और मस्तिष्ककी भूख मिटानेका वह इस देशमें अबरदस्त साधन है, वह इसलिए बड़ी है कि भारतकी हजारों वर्षकी अपरिमेय चित्ताराशिकी ठीक ठीक सुरक्षित रख सकनेका मजबूत पात्र है, वह इसलिए बड़ी है कि करोड़ाकी लादादमें अकारण कुचली हुई गुंगी जनता तक आना और उत्साहका संदेश इस जीवत और समय भाषाके द्वारा दिया जा सकता है वह इसलिए बड़ा है कि उसके आचलकी छायामें ऐसे हजारों महापुरुषोंके पनपनकी सम्भावना है जो न केवल इस दशको वरन् समूचे ससारका विनाशके मागसे बचानेकी साधना करेंगे। हिंदीका खानेवाली संस्थाएँ और नेना हिंदीका इतना और महत्व समझ लें तो वह हिंदीका चाहे जा करें, अपना कल्याण उभार करेंगे।

हिंदी में साहित्य रचनेवालासि द्विवेदीजीका कहना है कि "हम इस भाषाको उस योग्य बना देता है जो अत्यन्त साधारण मजदूरमे लंकर अत्यंत विकसित मस्तिष्क व बुद्धिजीवीक दिमागमें बिहार कर सके।" जो भाषा बबल बुद्धि जीवियोंके कामकी होगी, वह न तो किसी राष्ट्रके कामकी होगी और न जनताके। यदि हम हिन्दीको ऐसी भाषा बनायेंगे जा अंगरखीकी ही भाँति जिन्हीं वनी रहेगी या सस्कृतकी तरह कुछ चुने हुए विद्वानाका मनारजन करगी तो हम उस इतनी कमजोर बना देंग जितनी कोई भी शक्ति नहीं बना सकती। हमें हर हालतमें ध्यान रखना होगा कि हिन्दी उनके लिए होनी चाहिए जो दीन ह, उपेक्षित हैं, भुला दिये गये ह और जिनका भविष्य ह।

द्विवेदीजीने तभी लक्ष्य कर लिया था कि भाषाका प्रश्न जिनके लिए ह, उनके लिए है हिन्दी आनेवाली पीढ़ीके लिए कतई समस्या न होगी। नवीन पीढ़ी इस समस्यासे न तो विचलित होगा, न पराजित।" और आज स्पष्ट ह कि भारतीय भाषाओंमें आनेवाला साठवीं पीढ़ीके लिए भाषा काई समस्या नहीं है— चाहे वह बंगलाकी 'भूमी पीढ़ी' हो या दक्षिणकी 'दिग्म्बर पीढ़ी' या हिन्दीकी 'साठोत्तरी पीढ़ी'। इनमें वैचारिक मतभेद चाहे जितना हो लेकिन भाषा कभी बाध नहीं आती।

द्विवेदीजीके नामक साथ मानवतावाद' शब्द उनी तरह लिया जाता ह जिस तरह आचार्य रामचन्द्र शुक्लने नामके साथ 'लान्मगतकी भावना' और प्रेमचन्द साथ 'आदर्शोन्मुक्त यथार्थवाद'। लेकिन 'मानवतावाद' शब्द उतना ही भ्रामक है, जितना भ्रामक शब्द 'जनता'। 'पत्रिका में प्रकाशित द्विवेदीजीके लया और 'अपना बान का आधार बनाकर देखना होगा कि द्विवेदीजी 'साहित्य' में जरा 'मानव की बात करते ह तो उनका उद्देश्य किस मानवमे हाता ह।

सन् '४५ में 'प्रमाद-परिपद्' नासी-द्वारा आयोजित सातवें अधिवेशनमें द्विवेदीजीन एक निबंध पढ़ा था। वह निबंध उनी बपकी पत्रिकामें प्रकाशित भी ह। य मनुष्यका साहित्यका लक्ष्य मानते हुए लिखते ह—'नगरा और गाँवमें फला हुआ सडा जातिवा और सम्प्रदायामें विभक्त अंगिता, कुंगिता, दारिद्र्य और रोगस पीडित मानव-जमाज आपने सामन उपस्थित ह। भाषा और साहित्यका समस्या वस्तुन उन्हीका समस्या ह। क्या ये इतन दान-दलित है ? शत्रुताभासी सामाजिक मानसिक और आध्यात्मिक गुलामीक मारत दब हुए ये मनुष्य ही भाषाका भाषाक प्रश्न और मस्कृति तथा साहित्यकी बसोटी है।' अर्थात् य ही मनुष्य साहित्य और भाषाका समस्या भा ह और उसक

हैं। वे भाषाशास्त्र और इतिहासके सिद्धांतोंके आधारपर बहस करते हैं और गड मुरदे उखाड़ते हैं। गड मुरदे उखाड़नेका शौक बुरा नहीं क्योंकि ऐसे लोग कभी-कभी इतिहासके अंग भी बन जाते हैं। लेकिन जब जातिके बनने और बिगड़नेका प्रश्न हो तो यह नीति गलत है। द्विवेदीजीने सन् '४५ ई० में लिखा था कि "हम अब जल्दी ही कोई रास्ता निकालना हैं। शास्त्रीय बहस फिर हो लेगी।" लेकिन हमें आजादी हासिल किये इतना अरसा हो गया और बहस अब भी जारी है कोई रास्ता नहीं निकला।

हिंदीके सबसे बड़े शत्रु कौन हैं—इसका आभास देते हुए सन '४२ की 'अपनी बात' में द्विवेदीजीने लिखा है कि यदि हम केवल इस भाषाका विरोध करनेके लिए या उस भाषाकी स्तुति करनेके लिए अघश्रद्धाके आदेशमें हिंदी हिंदी चिल्ला रहे हैं तो निश्चित रूपसे गलत रास्ते जा रहे हैं।" और हमारा गलत रास्ते जानेका नतीजा यह हुआ है कि आज भी साम्राज्यवादियाकी ख़्वाब हम भारतीयोंके मुँहमें है, कलममें है, कुरसी और मेजपर है।

द्विवेदीजी अपने बारेमें स्पष्ट लिखते हैं कि मेरे लिए हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य कोई देव प्रतिमा नहीं है जिसका नाम जपकर और आरती उतारकर हम सन्तुष्ट हो जायेंगे। यदि वह अपना दायित्व नहीं निभाती तो वह श्रद्धा और भक्तिका विषय भी नहीं बनो रह सकती।" हिंदीका दायित्व है—भारतवर्षके करोड़ा नर-नारियाक हृदय और मस्तिष्कको खुराक देना। हृदय-देशमें स्थित उस अज्ञान, मोह, कुसस्कार और परनिभरतास बचाना।

जो हिंदीको बड़ी मात्रा उसकी विराट जनसंख्याके कारण मानते हैं उनसे द्विवेदीजीका कहना है कि यह गबकी नहीं, चिन्ताकी बात है। कोई भी भाषा महज इसलिए बड़ी नहीं होगी कि उसके बोलनेवालोंकी संख्या अधिक है। हिंदी इसलिए बड़ी है कि करोड़ा जनताके हृदय और मस्तिष्ककी भूख मिटानेका वह इस देशमें खबरदस्त साधन है, वह इसलिए बड़ी है कि भारतकी हज़ारा वर्षकी अपरिमेय चित्ताराशिको ठीक ठीक सुरक्षित रख सकनेका मजबूत पात्र है, वह इसलिए बड़ी है कि कराड़ाकी तादादमें अकारण कुचली हुई भूँगी जनता तक आशा और उत्साहका संदेश इस जीवन्त और समग्र भाषाके द्वारा दिया जा सकता है वह इसलिए बड़ी है कि उसके आषलकी छायामें ऐसे हज़ारा महापुरुषोंके पनपनेकी सम्भावना है जो न केवल इस देशको वरन् समूचे ससारको विनाशके मार्गसे बचानेकी साधना करेंगे। हिंदीका खानेवाली संस्थाएँ और नेता हिंदीका इतना और महत्व समझ लें तो वह हिंदीका चाहे जा करें, अपना कल्याण खरूट करेंगे।

हिन्दीमें साहित्य रचनेवालासे द्विवदीजीका कहना है कि "हम इस भाषाना इस याग्य बना देता ह जो अत्यन्त साधारण मजदूरसे लेकर अत्यन्त विचक्षित मस्तिष्क व बुद्धिजीवीके दिमागमें बिहार कर सके।" जो भाषा केवल बुद्धि-जीवियाके कामकी होगी, वह न तो किसी राष्ट्रके कामकी होगी और न जनताके। यदि हम हिन्दीको ऐसी भाषा बनायेंगे जो अंगरजीकी ही भाँति विदेशी बनी रहेगी या सस्वृतकी तरह कुछ चुन हुए विद्वानोंका मनोरजन करेगी तो हम उसे इतनी कमजोर बना देंगे जितनी कोई भी शक्ति नहीं बना सकती। हमें हर हालतमें ध्यान रखना होगा कि हिन्दा उनके लिए होनी चाहिए जो दोन ह, उपेक्षित हैं, भुला दिये गये हैं और जिनका भविष्य है।

द्विवेदीजीने तभी लक्ष्य कर लिया था कि भाषाका प्रश्न जिनके लिए ह उनके लिए ह हिंदी आनेवाली पाढ़ीके लिए कतई समस्या न होगी। नवीन पीढ़ी इस समस्यासे न तो विचलित हागी न पराजित। और आज स्पष्ट ह कि भारतीय भाषाओंमें आनवालों साठकी पीढ़ीके लिए भाषा कोई समस्या नहीं ह— चाहे वह बंगलारी 'भूनी पीढ़ी' हो या दक्षिणकी 'दिग्ग्वर पाढ़ी या हिंदीकी 'साठोत्तरी पीढ़ी'। इनमें वैचारिक मतभेद चाहे जितना हा लेकिन भाषा कभी आड नहीं आती।

द्विवेदीजीके नामके साथ 'मानवतावाद' का उसी तरह लिया जाता ह जिस तरह आचार्य रामचन्द्र शुक्लके नामके साथ 'लोकमगलकी भावना' और प्रेमचन्दके साथ 'आदर्श-मूल्य यथायथा'। लेकिन मानवतावाद का उतना ही धामक ह जितना धामक काद जनता'। पत्रिका में प्रकाशित द्विवेदीजीके साहित्य' लया और 'अपनी बात को आधार बनाकर देखना होगा कि द्विवेदीजीके साहित्य' में जब 'मानव की बात करत ह तो उनका उद्देश्य किस मानससे हाता ह।

सन् '४५ में प्रजाद-परिषद् कासी-द्वारा आयोजित सातवें अधिवेशनमें विभाजन एक निश्चय पड़ा था। वह निश्चय उसी यपकी पत्रिकामें प्रकाशित भी ह। वे मनुष्यको साहित्यका लक्ष्य मानते हुए लिखते ह— नगरा और गाँवोंमें फला हुआ सङ्घा जातिया और सम्प्रदायोंमें विभक्त अशिक्षा, कुशिक्षा और साहित्य और रागस पाड़ित मानव-समाज आपस सामने उपस्था ह। भाषा और साहित्यका समस्या बरतुत उहीका समस्या है। क्या य इतन दान-लित ह ? गताश्रित्यारी सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक गुलामीक भारत दबे हुए ये मनुष्य ही आपकी भाषाके प्रश्न और सस्वृति तथा साहित्यका कसौटी है।' यर्थात् य ही मनुष्य साहित्य और भाषाकी समस्या ना ह और उसके विविध

समाधान भी ।

सन् '४७ ई० में 'सावधानीकी आवश्यकता' नामक लेखन द्विवेदीजी फिर लिखते हैं—“साहित्य लिखोका अर्थ है कराटाके मानसिक स्तरको ऊँचा करना, करोडा मनुष्याको मनुष्यके सुख-दुःखके प्रति संवेदनशील बनाना, कराडाको अज्ञान, मोह, और कुसस्कारसे मुक्त करना । वह शिक्षा किस कामकी जो दूसराके शोषणमें और अपने स्वाधसाधनमें ही धपनी चरमसाधकता समझती हो ।” जब भी द्विवेदीजीकी मानवतावादी दृष्टिकोणकी ब्याख्या की जानी चाहिए, कमसे कम इतनी सावधानी तो बरतनी चाहिए ।

द्विवेदीजीकी साहित्य-साधनाका ठोस आधार मनुष्य है लेकिन वह मनुष्य नहीं जो स्वाध लिप्सा और शोषणमें विश्वास करता है । वे उस साहित्यके भी विरोधी हैं जो शोषणकी प्रवृत्तिकी शिक्षा देता है और प्रचार करता है । द्विवेदीजीका मनुष्य वह है जो अज्ञान मोह कुसस्कार और परमुखापेक्षिता'म पडा पिस रहा है । इसलिए जो साहित्य मनुष्यके लिए इन सारी बातोंके विरुद्ध सघष करता है द्विवेदीजी उस 'अशय निधि मानते हैं । वे साफ कहते हैं कि “जो साहित्य अपने-आपके लिए लिखा जाता है, उसकी क्या कीमत है मैं नहीं कह सकता परन्तु जो साहित्य मनुष्य-समानको रोग शोक दारिद्र्य-अज्ञान, तथा परमुखापेक्षितासे बचाकर उसमें आत्मबलका संचार करता है, वह विश्व ही अशय निधि है ।”

भारतमें हिन्दू हैं मुसलमान हैं स्पश्य हैं अस्पश्य हैं, सट्टत हैं फारसी हैं विरोधी और सघषारी विराट् चाहिनी हैं । पर सबके ऊपर और सबको छापकर मनुष्य है । अपने समयके सामाजिक ढांचेमें मनुष्यकी स्थितिका सक्त करते हुए द्विवेदीजी लिखते हैं— अच्छी बात कहनेवालाकी कमी नहीं है परन्तु मनुष्यके सामाजिक सघटनमें ही कही कुछ ऐसा बडा दोष रह गया है जो मनुष्यका अच्छी बात सुनने और समझनेमें रक्त रहा है । इसलिए आजकी सबसे बडी समस्या यह नहीं है कि अच्छी बात बस कही जाये, बल्कि यह कि अच्छी बातका सुनने और माननेके लिए मनुष्यका बस तयार किया जाये ।”

सम्भवतः यही कारण है कि द्विवेदीजीका अपन सम्पादन-बालम समसामयिक साहित्य लेखनमें भीतरसे विराट् और समयके लिए प्रगतिशील साहित्य'की धुना और मनाविज्ञान' तथा 'मनाविद्वेषण' नामके आधार माकर लिखी जानगयी रचनाओंको कोई प्रोत्साहन नहीं दिया । द्विवेदीजीका प्रगतिशील साहित्यकी जिस बातमें विराट् रहा है वह है 'दुष्टप जड विज्ञानका तत्त्ववाद । साहित्यके अंदर अगर इन तत्त्ववादकी अविकल ब्याख्या होती रहे और इसे

'फ्रॉमूला' बनाकर रचनाएँ की जायें तो उसमें किसीको भी विरोध हो सकता है। लेकिन द्विवेदीजी कहते हैं "सिद्धांत रूपमें वह चाहे जो भी स्वीकार क्या न करता हो, साहित्यमें वह मनुष्यको दृष्टि चित्त बनानेका कार्य करता है।" यही वह बात है जो द्विवेदीजीको 'प्रगतिशील' साहित्यमें सबसे अच्छी लगती है। इसी सन्दर्भमें 'पत्रिका पाठकका ध्यान 'पुस्तक-समीक्षा' की ओर आकृष्ट करती है। मत '६४ के दूसरे अंशमें द्विवेदीजीने 'तार-सप्तक' की समीक्षा की है। 'तार-सप्तक'की कविताओं और कल्याणपर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहाने लिखा है—“कल्याण और काव्यका सबसे अच्छा मामजस्य गजानन माधव मुक्तिबोध और 'अनेक' की रचनाओंमें हुआ है।” इतना पहले मुक्तिबोधको पहचान लेना द्विवेदीजीके लिए आश्चर्य नहीं है। दो साल पहले इनकी पुस्तक 'कवीर' प्रकाशमें आ चुकी थी। पुराने कवियोंमें कवीर और नये कवियोंमें मुक्तिबोध की पसन्द जाहिर करती है कि द्विवेदीजीकी आत्मायता मानव-समाज के निम्न सघपके माथ है ?

पत्रिकाका उद्देश्य मात्र विद्यालय जनसमूहकी मुक्ति, मानवकी प्रतिष्ठा और भाषागत तथा साहित्यिक समस्याओंका मूल्यांकन ही नहीं था उसकी दृष्टि 'सुग' विद्यापीठ उमड़ती धारा की ओर भी थी। सच तो यह है कि पाठ्य-पुस्तकों और छात्रा छात्रा और अध्यापकों, विद्याविद्यालय और अधिकारियों, शिक्षाके माध्यम और उद्देश्यों—आदि अनेक प्रश्नोंके विषयमें द्विवेदीजी निम्न गहराई और निश्चयतासे सोच सकते थे, किसी दूसरे और बाहरी व्यक्तिमें इसकी उम्मीद नहीं की जा सकती।

स्वाधीनताके योग वर्षों बाद सन् '६७ में भारत सरकारने बाकी सोच विचारने का इरते इरत फसला लिया है कि विद्याविद्यालयोंमें विद्यापीठ माध्यम की भाषाएँ हों। इस निश्चयने पीछे देखना कराना रूपका भावना है जिसका उपयोग किसी रचनात्मक काममें हो सकता था। द्विवेदीजीने सन् '४३ की पत्रिकाअपनूबर अंकमें लिखा है— 'हमारे विद्याविद्यालयोंमें विद्यापीठ प्रसारके लिए विद्यापीठ आयोजन है पर व भी विदेशी भाषाके माध्यमसे विद्यापीठ है। इसी भाषाके इन विद्याविद्यालयोंमें उपनिषत् रण है।

ये दोनों भाषाएँ एक ही उपनिषत् थी अब भी उपनिषत् है। यही नहीं इस तरहके मुद्दा भी उपनिषत् रहे हैं। द्विवेदीजीने विदेशी भाषाका माध्यम बनाने की योजनाओं 'राष्ट्रीय अपमान की सजा दी है और यह राष्ट्रीय अपमान इस व्यापक दायमें इस समय भी जारी है।

शिक्षाका उद्देश्य क्या हो और इस दिशामें विश्वविद्यालयका क्या कतव्य हो सकता है ? द्विवेदीजीका कहना है कि केवल पाठ्य-पुस्तकोंकी भरमार कर देनेसे ही विद्या नहीं आ जाती । विश्वविद्यालयामें जो पाठ्य बालिका पढानेको होड-सी मची हुई है, वह गलत है । केवल पुस्तकें पढाना शिक्षाका उद्देश्य नहीं है । आदमी बनाना ही बड़ी बात है ।' लेकिन विश्वविद्यालयको शिक्षा हमें आदमी नहीं बनाती, यह हमें यादगूरी या ऐसे ही और किसी 'यवसायके योग्य बना दती है । जहाँ हम दफ्तरमें लौटनेके बाद या जानेके पहले बपड़े और घड़ी सजाकर रखते हैं वही अपनी सारी विद्या भी उठाकर रख देते हैं ।

वे कौन सी पाठ्य पुस्तकें हैं जो विश्वविद्यालयाम पढायी जानी चाहिए ? द्विवेदीजीकी रायमें विशाल जन-समूह विस्तृत भूखण्ड और सजीव चिन्ताप्रवाह ही प्रधान पाठ्य-पुस्तकें हो सकती हैं । पुस्तकें इसी महाप्रयत्नको समझानेका साधन मानी जानी चाहिए । वे शिक्षा संस्थाओंमें पुराने ढंगका अध्ययन करने वाले पण्डितोंके प्रयत्नको 'शास्त्रीय' कहते हैं और उनका आग्रह है कि हमारा प्रयत्न रचनात्मक होना चाहिए । प्राचीन साहित्यको अध्ययन भावी भारतीय समाजको ध्यानमें रखकर हो तो अच्छा है ।

विश्वविद्यालयोंमें इन दिनों काफी उत्साहसे शोध-कार्य हो रहा है और प्रतिवर्ष भारतमें सैकड़ों छात्र पी एच० डी० की उपाधि हासिल कर रहे हैं । द्विवेदीजी भी शोधकार्यपर जोर देते हैं लेकिन शोध-कार्यका रूप क्या होना चाहिए—'मगर भी वे गुरु नहीं हैं । वे लिखते हैं कि 'यदि हम भावी मानव समाजका अपने अध्ययन और शोध-कार्यसे कोई कल्याण न कर सकें तो वह अध्ययन एक शाम्भ्र विलासिता मात्र सिद्ध होगा । इसीलिए शोधकार्यकी योजना इस प्रकार बननी चाहिए कि उससे भावी मानव समाजका कल्याण हो ।' मानव समाजका कल्याण तो तब ही जब अपने कल्याणसे मुक्ति मिले । अपने देशका दीक्षणिक ढाँचा ही ऐसा है कि अनुसन्धितसुआका भावी समाजके कल्याणकी बात ही उनके मस्तिष्कमें नहीं उठती ।

चिन्तु इस सन्दर्भमें मुख्य बात है शोध-कार्यका दिशा निर्देश । द्विवेदीजीने 'पत्रिका में समय-समयपर इस प्रकारके शोधसम्बन्धी निबन्ध भी प्रस्तुत किये हैं जिनमें शोध करनेवाले प्रेरणा पा सकते हैं । उदाहरणके लिए—भारतीय संस्कृतिके अध्ययनकी एक उपमित दिशा (शिनिमोहन सेन) हिन्दीका भक्ति साहित्य (हजारोप्रसाद द्विवेदी) मध्य एशियामें प्राचीन पौधियाँ (प्रहलाद प्रधान) हिन्दीमें त्रिपुरती बाडमयके उपकरण (शान्ति भिषु) नागरीमें चीनी ध्वनियाँ सवेन (शान्ति भिषु) बौद्धधर्ममें तान्त्रिक प्रवृत्तियारा प्रवृत्त

नया मूल्यांकन

कालिदासकी लालित्य-योजना

• •

करुणापति त्रिपाठी

'कौन नहीं जानता कि कालिदास सौन्दर्यके महान् गायक कवि है। रूपका वषण का, प्रभाका और प्रभावका ऐमा चित्तेरा दुःख है, आभिजात्य और विलासिता का ऐसा उदगाना (अर्थ) कवि कायनगतका जाना हुआ नहीं है और राग और सौभाग्यका ऐसा उदघोषी खोजे नहीं मिल सकता। कविताका सच्चा रसिक सिर धुनकर रह जाता है। कहा जाता है कि गारुका ऐमा लाल आजतन दूसरा पैदा नहीं हुआ। परंतु आ लोग काय-सौन्दर्यका विश्लेषण करनेमें रस पाते हैं—उनके लिए कालिदास एक समस्या है। आप यदि जानना चाहें कि कालिदासका सौन्दर्यवाचके सम्बन्धम क्या मत है, क्या वे सौन्दर्यकी स्थिति द्रष्टाके रागात्मक चित्तमें मानते हैं या ऐसा मानते हैं कि द्रष्टा हो या न हो सुन्दर वस्तु सुन्दर ही रहेगी या क्या वे सौन्दर्यके किसी विशदजनीन मानदण्डमें विश्वास करते हैं या ऐसा मानते हैं कि ऐसा कोई मानदण्ड हो ही नहीं सकता, ता कठिनाईमें पड़ना पड़ेगा।

कालिदासकी 'लालित्ययोजना' नामक ग्रन्थके तत्वावली और वृत्ती शीघ्र प्रकरणका आरम्भ उपयुक्त वक्तव्यक साथ होता है। उपयुक्त कथनके द्वारा जिस अनुसंधेय जिज्ञासाकी ओर इंगित किया गया है उसीकी व्याख्या और समाधान करनेका प्रयास इस वृत्तिम है। यहाँ आचार्य द्विवेदीन तन्व्यान्वली वृत्तीके रूपम अपनी व्याख्यानात्मक वृत्तिका सयाजन किया है। दूसरे गानम गाना जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रन्थमें आचार्य हारीप्रसाद द्विवेदीक मुख्यतः दो व्यक्तित्व गाकर होत हैं। एक रूप है वृत्तीका जो तत्वावलीके बौद्धिक शक्ति और विश्लेषणात्मक प्रपञ्चम न पत्कर महाकविक काव्यलालित्यका आम्बादन करनेम आकण्ट निमग्न है। वृत्ती पाठक इन बेकारकी बातम उन्नतना नहीं चाहते। वे छत्रर सौन्दर्यम पाते हैं। बेकार बातम उल्लगा भी बेकार है। इस द्विवेदीजी भी स्थान-स्थानपर काव्यरसम निमग्न होकर

उद्गार प्रकट करते हैं। कालिदासने भी इन गहराया प्रयाग किया है। ऐन्द्र लगता है वह 'वृत्ती का ही धर्म मानने है। 'तत्त्वावेपी' को वे हतभाग्य ही समझते हैं। आगे प्रयत्न करने लिया है— लेकिन कवियाकी डोट-मटवारके वावजूत दुनियामे तत्त्वावपणका कारवार बंद नहीं हो गया है। खुद कालिदास सस्वारवती वाणीकी दाद देने है। मनोपाकी वे उत्तम गुण मानते है।”

यहाँ द्विवेदीजीने बताया है कि कालिदासकी दृष्टिसे कलाके आस्वादकताका, रसानुभवाका, सहृदयका, वृत्तीका स्थान अपेक्षाकृत अधिक उल्लेखगाली है। कान्यके, कलाका ललितकलाके (मूर्ति, चित्र, संगीत, नृत्य, नाट्य आदिके) सागत भोला सहृदय या सामाजिकका दर्जा कुछ अधिक ऊँचा है। मूल्यांकनकत्तिका समीक्षणका, आलाचनका, तत्त्वावेपका स्थान अपेक्षाकृत कम महत्त्वका है। फिर भी कालिदासने जिस परिप्रेक्ष्यमे 'सस्वारवती वाणी मनोपी विद्वान' का गामित होना बताया है उसी परिप्रेक्ष्यमे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने परिचेय रचना-द्वारा कालिदासका कालित्य योजनाका नया मूल्यांकन दिया है। नये मूल्यांकनकी दृष्टिपद्धति

द्विवेदीजीने अपने इस नये मूल्यांकनका क्षण रखा है— कालिदासकी कालित्य योजना।” इस 'कालित्य का तात्पर्य भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया है— आचार्य सौम्य गाम्भीरी सौंदर्यके अनेक रूपानी चर्चा करते हैं। उसकी चर्चा करना यहाँ अभीष्ट नहीं है। मनुष्य निर्मित सौम्य ही—जिसे मैं कालित्य कहना पसंद करता हूँ आजरा (व्याख्यानका) अनुसंधेय विषय है। कालिदासने इस सम्बन्धमें क्या कहा है या उनके कहनेसे किस बातका अनुमान किया जा सकता है यही बात आजकी चर्चाका उद्देश्य है।

इसमें स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदीजीके इस नये मूल्यांकनका परिप्रेक्ष्य क्या है? उसकी सीमा क्या है? उसकी स्याति और धर्म क्या है? यह प्रश्न वस्तुतः द्विवेदीजीके दायादागारा (१—कालिदासकी प्रसावा-सामग्रा, २—कालिदासकी कालित्य योजना) एकत्र समायोजित और पुनर्लिखित ग्रन्थरूप है। दायादागारा व्याख्यानका नय मित्रस मित्रर इग प्रयत्न प्रकाशन हुआ है। अतः इसमें दोना हलाका सामग्री आ गया है। कुछ मित्रर इग प्रयत्न चौहट्ट प्रकरण या पोषक है। कालिदासके अगाध साहित्य रचनाकरका मयन (मान चित्तन और आस्वादन) करने हुए तत्त्वान्वयी मनापान शिन रनारा प्राप्त किया है उहीके सप्रहसे यह प्रयत्न बना है।

इस प्रयत्न जहाँ एक आर शायुतिर आर पाठारत्य माध्यमताका दृष्टि कालिदासका कालित्य-यात्राका मूल्यांकन किया गया है वहीं दूधर आर

सौन्दर्यबोध और सौन्दर्यशास्त्रके सद्व्यक्त कालिदासकी कलाविषयक मायताआका शास्त्रीय धरातलपर व्याख्यापन किया गया है। इस सद्व्यक्त श्री द्विवेदीजीने अपने तत्त्वावेपणमें कालिदासकी लालित्य-योजनाके सम्पृक्त और कालिदास द्वारा प्रयुक्त जनेक पारिभाषिक शब्दोंको प्रस्तुत और व्याख्यायित किया है। प्रत्येकका यह मूल्यांकन निश्चय ही नया मूल्यांकन है। आधुनिक पश्चिमी सौन्दर्यशास्त्रने लालित्य-योजनाके सद्व्यक्तमें जिस दृष्टिवोधका स्वर सौन्दर्य विधानकी प्रक्रिया, पदावली और सौन्दर्यबोधका चिन्तन किया है उसी धरातलपर इस ग्रन्थमें व्याख्यापन किया गया है। पर कालिदासकी जिस लालित्य-योजनाका यहाँ प्रतिपादन हुआ है उसमें भारतीय चिन्तनपरम्परा, सांस्कृतिक चेतना और दार्शनिक एवं आध्यात्मिक परम्पराका नया दृष्टि उपयाजन किया गया है। इसका कारण है। आचार्य द्विवेदीके मतमें स्वकालीन परिवेश और परिप्रेक्ष्यके सद्व्यक्त ही कालिदासकी लालित्य चेतनाका यथायथा प्राप्त किया जा सकता है। अपने कथा-नाटकमें 'राष्ट्रकी समग्र सांस्कृतिक चेतनाको' संप्राण 'अभिव्यक्ति देनेकी कला पर कालिदासका पूर्ण अधिकार था। प्रत्येक लेखकने आरम्भमें ही घोषणा की है कि 'भारतवर्षमें ऋषिया सती, बलाहारा, राजपुरुषो और विचारवाने जो कुछ उत्तम और महान् दिया है, उसका सहस्रों वर्षोंके इतिहासका जो कुछ सौन्दर्य है उसने मनुष्यको पशुसुलभ धरातलसे उठा कर देवत्वमें प्रतिष्ठित करनेकी जितनी विधियाँ साधन किया है उन सबको ललित मोहन और सशर वाणी देनेका काम कालिदासने किया है'।

युगबोध

पृष्ठ दो में लेखकने कहा है कि इस दृष्टिमें बाहरसे भाजनक मानव मण्डलिया—विविध कारणों और उद्देश्योंके लक्ष्य आयी। उनके नाना प्रकारके आचार विचार नृत्य गीत, उत्सव-आयोजन आदिने इस महान् दृष्टि जन मण्डलियोंके बचिन्त्यमें बद्धि भी की। यहाँ आकर व जनमण्डलिया बसकर यहाँका अंग बन गयी। दोनोंके सगमन और समजसन्से यह दृष्टि भारतवाह्य और भारतीय गाना धर्मों और संस्कृतियोंका सगमस्थल बन गया था। यहाँकी संस्कृतिमें अनेक प्रकारके बचिन्त्य आये। नवीन वातावरणमें भावना हाने रहनसे संस्कृति धर्म विद्वांस वाच्य, नाट्य एवं गमस्त अर्थ ललित कलाआम एक प्रकारकी प्रच्छन्न गतिशीलताका प्रादुर्भाव हुआ। कालिदासकी ममभक्तियों दृष्टि और अग्रग्राहिका शक्तिने—साधिका ढंगसे—भारतकी समन्वित और गतिशील चेतना और संस्कृतिक सर्वोत्तमताका ललित रूप देकर—समग्र राष्ट्रीय चेतनाको जीवन्त रूपमें अभिव्यक्त किया।

जिस युगम कालिदास आविभूत हुए थे उस युगक परिवर्तकी चर्चा करते हुए द्विवेदीजीने लिखा है—“(उनके प्रादुर्भावयुग के) पहले भारतवर्षके अनवर महिमान्वित शास्त्राका उद्घोष हो चुका था, कई धार्मिक और आध्यात्मिक आंदोलनाका उदभव जोर बिलय हो चुका था, अनेक कलाएँ प्रौढावस्थाकी प्राप्त कर रद्विबद्धताकी आर अग्रसर हा चुकी थी । वैदिक कमवाण्ड—एक आर उपनिषदाके अद्वैतवाद और दूसरी आर षोड और जन धमके वदविरोधी आदा रनाका सामना कर चुका था, रामायण और महाभारतके शक्तिशाली कथासाहित्यके बाद पौराणिक और निजधरी कथाओका विपुल साहित्य निमित्त हो चुका था, ब्राह्मणग्रन्थानं प्रतिपादित कमवाण्ड प्रधान धमक बाद अन्तरात्म-दगनके पक्षपाता सारर और यागक दानिक मिद्धात जन्म जमा चुके थे, यवनगिल्पाका प्रवेश और तज्जय शक्तिशाली प्रतित्रियाका उमप हा चुका था भारतवर्ष— नयी राष्ट्रीयतामे आतप्रोत था ।”

ऐनिहासिकताप्रापका परिचय दनक अनन्तर श्री द्विवेदीजीन कालिदासर जीवनकालके विषयमें बताया ह कि ‘ उपनिषदाके ज्ञानमार्गी अद्वैत माधनाका रामायणमे माननी आदर्शम मुगरित आदर्शवादका महाभारतस बौद्धिक धरित्रधिकामका, धमसूया और स्मृतियामे ब्राह्मणग्रन्थानुमोदित आचारसहिताका, पुराणास विभिन्न मानव-मणालियामें परिभास मिथक कल्पनाके समृद्ध तत्त्वाका, भरत मुनिने नाटयशास्त्रम नाटकाय व्यवस्थाका पाणुपत आगमारे सृष्टि रहस्यका, साख्य यागस अन्त रद्वित चित्समाधिना सार ररर उहाने अपना जीवनरगा रपावित रिया था’ । इगा कारण उनक कायाम ‘ भारताय धम, दगन शिल्प (कला भी) और साधनामें जो कुछ उदात्त है, जो कुछ दत्त ह जो कुछ महनीय ह और जो कुछ ललित और माहन ह उनका प्रयत्नपूर्वक सजाया सवारा रूप ’ उभरकर सामन जाया ह । गरी कारण उनके शृंगार और प्रेमकी परिणति भा विश्वकी मगल-शाधनास दीपित ह, उनके सहजात भास विनाराका रूप उगसोहन ह, उनके नायक-नायिकाका रूपसौन्दय जडतामे मुक्त और सन् एव गुनक आगेकने ज्योतिर ह । ‘ उनकी वर्णाम भारताका मरान् उदात्त और शात गोभन ’ स्वर मुगरित हुआ ह उसमें इन दगकी मरनाय ‘ मनाया और मरान् आदनन आदर्शीरो रूप मिला ह’ । ये सहा अर्थोंमें हमार राष्ट्रीय कवि ह ।”

श्रुतियाँ

आचार्य हजारप्रसाद द्विवेदीन, प्रथम प्रकरणमें पूर्वोक्त गाना-द्वारा महाकवि-की राष्ट्रीय कवि ररूपमें अहित करनक वा श्रुतीय घोषक कादिकामका

रचनाएँ जन्तगत उनको ७ कृतियाँ परिचय दिया है। उन्होंने अथवा भावमय वाणीमें वाया-नाटकके कथका माराग दत्त हुए तत्कृतियाँके वैशिष्ट्य का संकेत किया है। ऋतुमहार—जीवन दशन दनवाला काव्य न होकर भी अनुरागकी अग्निका प्रतीत करनेवाला और मादन जीवन रसमें धादन्त पूष काय कहा गया है। मेघदूतका जावन-दशन (प० १३ में) बडे काव्यात्मक (माथ ही व्यक्तिनिष्ठ = सज्जेन्द्रितव) पत्रावलीमें—पर दानिक स्वरस मुग्धरित रूपमें—वर्णित है—' व्यक्ति-मनुष्यके हृदयकी व्याकुल वदनाका अगजामें व्याप्त वेदनाकी पृष्ठभूमिमें उभाक साथ एकमेक करके (कालिदान) निखारते हैं। कुछ भी विच्छिन्न नहीं है कुछ नी अजनवी नहीं है। विट्म लेकर पवत तक एक ही 'याकुल बेचना ममुका लहराकी तरह पछाड का-नाकर छोट रही है। एक तारका छुआ और सन्ध्या तार बनना उठने हैं। सब तार मिलकर पूर्ण समातक निमाणका काय करत है। नरलोकम किन्नरलाक तप एक ही व्याकुल अभिलाषभाव उल्लसित हा रता है। मित्रन स्थिति विट्टु है विरह गतिवग है। दोनाके परम्पर आकषणम रूपकी प्रताति होती रहता है। विचारमूत आदर ग्रहण करत है भावना सादय बनती है। विरहमें सौभाग्य बनपता है रूप निखरता है मन निमल हाता है बुद्धि एकताका सजान पाती है। [प० १२] कुमारसम्भवका चचा करत हुए लेखकने उक्त कृतिको समष्टिप्रेम का काय सिद्ध किया है। इस सद्बनमें थी द्विवेणीजीने दानिक परिप्रेषका लकर अपने कथका प्रकट किया है।

कुमारसम्भव क पावती प्रेमका महिमा हजारा आलावक गात रह है। कामहन कायिन रूपनपत्तिकी व्ययता और भातिकतारी वातक साथ-साथ उमाकी तपचयाक पावन पावकमें तपकर ददीप्यमान हेमाग्दल प्राय की महनीयता और आत्प्यता—आलावना-द्वारा बारम्बार—गाया गायी गयी है। परन्तु आलाय द्विदने गुणवन प्रेरणा पाकर कुमारसम्भवके प्रेम का समष्टिप्रेम सिद्ध किया है। पर अपना सिद्ध साजनामें उहाने काव्यात्मक कथनाने—मृश्यत कुमारसम्भवकी उच्चियाते आगनिक स्वापनाका पुष्ट किया है। यहाँ पाशुपत दशन (गवच्छन) का विचारसामासना सहारा भी लिया गया है आर मपुरापासक वाग्दमवतम राधा जिम प्रकार आह्लात्पिनी शक्ति स्वीकृत हैं उसी प्रकार पावती का भा दताया गया है— गिव वाद एन प्रक्ति नहीं बकि विश्वमूर्ति है। पावती निखिल भूतमें व्याप्त ह्लादिनी शक्ति है। गिव और पावताना प्रेम सत्तामान है। वट्ट है प्रयक विष्णु भातर मनुष्यलाकस दवाक तक व्याप्त महाशक्ति का प्रेमलीला है। दवाधिव गिरन ही पुष्प आर स्त्रीक रूपमें अपने

आपरा द्विधा विभक्त किया है। इस पुष्प-वृत्त और स्त्री-वृत्तमें जो पारम्परिक आवरण है वह भगवान् गिबरी आदि सिन्धुभाका ही बिलाज है। एतद्भूतकी ओर जाहृष्ट होकर वे उस प्रथम गिरवरी अवस्थाका ही प्राप्त करना चाहते हैं। विगुद्ध प्रेममें जो अद्वैत भावना आती है वह गिबरी ही अनुभूतिका एक रूप है। श्री महान उद्देश्यको रखकर मन्त्रविने गिब और पावतीका सनातन पुष्पत्व और स्त्रीत्वका प्रतीक बनाया है।

“कुमारसम्भव में कविने अपने जीवन-दानका वृत्त बड़ी पद्ममिकापर रखकर व्यक्त करनेका प्रयास किया है। यागर शाय गिबकी और तपस्याके शाय प्रभवा मित्र हानेपर ही स्त्री और पुष्पका प्रेम ध्येय जाता है। बालिदासने इस मन्त्रायमें यह दिवानेका प्रयास किया है कि त्याग और मोक्षे सामञ्जस्य ही जावन चरित्राय हाता है। एकाद बराग्य, आमुने गिबका दमन नहीं कर सकता। भाग और बराग्यके बराचित सामञ्जस्यमें ही जीवनकी चरित्रायता है। जो प्रेम बबल गाररिक् आनपणपर विभर हाता है जन्तक वह तपस्याकी अगिमें तपकर नहीं निकलगा तबतक वह बच्य है निरर है। पावतीमें तपस्या और प्रेमका सामञ्जस्य है, शिरमें भाग और बराग्यका। बानद्वे ज गाररिक् विषयके आनपणका अधिपता है। मच्छा प्रेम और गहरादमें पाता है। (प० १८)।

श्री प्रकार रघुवज का प्रतिपाद्य बबोद्वे रवाद्रनाथ टाहुक् तपावन नामक उद्धरण (प० २० २३) द्वारा उपयुक्त है। माग्निगिबमिद्र और विद्र-मावगीय दाका महत्त्व जीवन गानके प्रकाशनका शिष्ट नहीं बराग्य या स्वयं ही है। परन्तु बालिदासका गिबविषयक मादनाआता सनातनमें इन दानाका महत्त्व नि गिब्य है। नृयकला, मगोतक्य और चिप्रयग (नाग्द-कला भी)में सम्बद्ध अनेक विषयके जानकार ही नहीं थे—जनक मध्य पश्चित्त पे और बरागिन् चिप्रयार और गायक भी थे। तथा उन दगाआम उनकी मायनाके भी रगे। अभिमानगाहुल्य निबद ही बालिदासका सुवधृष्ट नायक तो है ही, ससारके नायक माग्निमें भा इगद आका गायक हुम है।

आयुष्यर जानकारो

बालिदासने सम्भवमें पावाय्य मनक आलोचक बन्त है कि उनका माग्नि में मानक हुयके मोक्षिक दानाका बालि समाधान गी है। ये उक्ततक धरातपर यिद नास्तीय कि धन्य है। पर 'Agnid' के उक्त माग्नि शक्ति और पानका बालिदासकी गिबका दावरी वस्तु है। इन गिबमें शिबगीने

'कालिदासके अध्ययनके लिए कुछ आवश्यक जानकारी' शोपकके अतगन बताया है कि इस प्रकारकी आलोचना दृष्टि का कारण है। पश्चिमके आलोचक और उनके अनुयायी हिन्दुस्तानवासी भी भारतीय साहित्यकी कुछ मूलभूत मायताया आस्थाया और विश्वासाकी उपेक्षा करते हैं। अतः प्राक्तन भारतीय परिवेशक परिप्रेक्षण सदभवा सही मूल्यांकन कर सकीमें असमर्थ हो उठते हैं। पुनर्जायका सिद्धांत, कमफलभोगका अविचल विश्वास, लिंगगरीरकी परिकल्पना, पुरुषायचतुष्टय ऋणप्रयशाधम जीवनकी सायकता, और दश्य, नद्वर एव जड तत्त्वके अतिरिक्त गान्धत, सत्ता एकरम, चतय तत्त्वम अडिग विद्वानम जादि ऐसी ही मायताएँ हैं तिनमे समग्रत परिचय विना भारतीय-कायनाटकाके स्वरूप और आदगासादका सही परिप्रेक्ष्यम देता नही जा सकता। कालिदासकी कृतियाम प्रतिष्ठित जीवनचित्र और जीवनमत्याका मूल्यांकन ठीक ठीक नही हो पाता। इसी भारतीय दृष्टिके कारण अतद्दुका अभाव भी है। कालिदासक ही नही अधिकांश सद्वृत्त नाटक मुखावासायी हन्जेडी न बन पाये।

इसी सदभवे एक पशका टिबदीजीने आगे चलकर 'त्रिबव्यापक छन्दो-धारा और लालित्य (शीपक) म दार्शनिक चिन्तनके प्रारातलमे अविष स्पष्टताके साथ उपस्थित किया है। उन्हे ऐसा लगता है कि 'कालिदास एव विश्वव्यवस्थाके मूलमें एक विश्व व्यापक छन्द स्वीकार करते हैं जो समष्टिगत चित शक्तिकी सन्नेच्छा या मिसृष्टके अतिरिक्त और कुछ नही है। केवलात्मा प्रत्य विगुद्ध चतय है कर्णल जान रूप। उनकी सिसधाने ही उरो स्त्री और पुष्प रूपम द्विजा विभक्त होनेका पवत किया। ब्रह्मकी इच्छाशक्ति ही समष्टि गत छन्द है जिसने ममस्य भेदापभेदा छादन कर रना है। छादन करता है, इसलिए छन्द है। छन्द अर्थात् इच्छा। ब्रह्मकी इच्छा शक्ति ही वह छन्द है जिसने सृष्टिको नाना वर्णों गद्या और रूपामें रूपायित किया है। उसकी क्रिया शक्तिमे यह विश्व ब्रह्माण्ड दग्गापर हो रहा है। छन्द इच्छा मात्र है गतिमाय है चेतनप्रम है। जहाँ कहा चतयम है वही गति है प्राण है आन है। नृत्यमें छन्द है। नृत्य दवनाश्राका आनुषयन है। कामें प्रवहमान छन्दोधारा ही ब्रह्मकी मन्नेच्छा है। देशमें म्विरोभूत सृष्टि ही ब्रह्मकी क्रिया शक्ति है।' इस छन्दकी और स्पष्टताक साथ समझाने हुग प्रयत्नरने लिना है— छन्द वाई बाह्यस्तु गही है। बाह्य जगनमें तिन रात, ऋतु परिवर्तन और भूचक्रना नियतानुवर्तन चर रहा है। दनाम प्रदनामकी क्रिया नियत तात्पर चल रही है। एव नियतानुवर्तनको हम अनुक्रमता कहेंगे। इदता प्रधान बाह्य जगतम परिदश्य मान अनुक्रमता जय जहताप्रधान मानवके अतजगतम प्रतिभामित अनुक्रमताके

तासे तां मिलाकर चलती है तो लय और तालकी अनुभूति होती है। यही छन्द है। यही विश्वव्यापी छन्दोधारारके साथ अन्तर्जगतकी छन्दोधारारके आनुबन्धकी कसौटी है। "जहाँ वही आकषण है, उल्लास है वही मृष्टिनी इस मूल छन्दोधारारके अनुबन्ध जानेकी प्रवृत्ति है। जहाँ नहीं है वहाँ इस मूल छन्दोधारारका प्रातिकूल्य है। वही वस्तु अगुदर और भरी है।"

लालित्य नयी व्याख्या

हम यहाँ देखते हैं कि आचार्य द्विवेदीजीने लालित्यकी कलात्मक शैलीकी साधारणभूत रसकी एक नयी दार्शनिक व्याख्या उपस्थित की है जिसमें भारतीय दार्शनिक तत्त्वचिन्तनकी दृष्टि विरोधित दिक् (शब्द) दण्डक मायता-व्यथाकी प्रेरणाको आधार बनाकर इच्छागति (स्वातन्त्र्यगति) ज्ञानगति और क्रियागति—शक्तित्रिकके सहज योगम विगुह चतयकी गायक जानके रूपमें अभिव्यक्ति विधानके साथ-साथ ललित वस्तुका उसीका अनुबन्ध बना दिया गया है। उक्त विश्वव्यापी छन्दोधारारके आनुबन्धमें मण्डित सजना ललित वस्तुका और मुग्ध होती है। लालित्य वस्तुतः उसी विश्वव्यापी छन्दोधारारकी गतिमें अनुबन्ध सजनाकी गतिरता है।

ज्ञान, इच्छा और क्रिया चतयधारारकी इन त्रिविध गतिव्यापक विलास बनाते हुए और सजना प्रक्रियामें उनका योगागता विवरण देने हुए आगे कहा गया है— 'मूल चतयधारार कवलात्मारी इच्छागतिना ही रूप है। वह गति मात्र है। क्रियागति स्थितिमात्र है। गति और शक्तिने इन्द्रिय ही रूप बनते हैं। (आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिमें प्रभावित उक्ति जिसमें इनकी और योग तथा कृष्णामक और धनात्मक विद्युत् युग्ममें अपार सजनागति निहित है) गति चित्तत्व है स्थिति अचिन्तत्व। चिद्रूपा गति वाग्दार अचिन्तत्वा स्थितिमें रागी जाती है। चतयधारार वाग्दार ज्ञान (अचिन्त) में स्थित आरम्भमें नाचे की ओर गीची जाती है। वह चल्यित होती है स्थायित्व होता है। जो कुछ विश्व-व्यथामें घट रहा है, वह स्थितिमें भी हो रहा है अन्तर चल्यित यह है कि विश्व-व्यथामें कबल आत्मा की मूल सिग्ना चल्यितो है। पिण्डमें व अचिन्त गति—मायाजय कचुओं का कोणमें—आवृत्त है। वस्तुतः गुणभूत पत चित्तना नाम ही मन्त्र है इच्छागतिना नाम मन्त्र है और क्रियागतिना नाम ही मन्त्र है। (पृ० ५६ उ)

श्री द्विवेदीजीने इस सन्दर्भमें यह भी बताया है कि विश्वव्यापी मण्डिताने अतिचिन्तकी इच्छाकी शैली माना है जो शैलीकी अति-माय्य तत्वका

त्रिविध

खिडकियोंमें खड़ा कर अन्धबस्या और तब वितकका कारण बनाता ह। अतः देग-काल सापेक्ष और परम्परास्वीकृत जनवग विशेषवे समष्टि चित्तकी इच्छाको सौन्दर्य माननेवे लिए विवश होना पडता है। कालिदासने इस सदभमें व्यक्तिचित्तकी इच्छाको ही सौन्दर्य माना ह। “पर उनकी व्यक्ति इच्छा समष्टि व्यापिता इच्छाका विगिष्ट रूप’ ह। समष्टि इच्छा विदवव्यापिनी मगलेच्छाके अनुकूल होनेपर ही व्यक्तिगत इच्छा मायक होती ह। व्यक्तिगत इच्छा उसवे (विश्वव्यापिनी मगलेच्छाके) प्रतिकूल जाकर कुत्सित हो जाती ह। समष्टि इच्छा चेतन घम ह। जा वात चेतन घमक अनुकूल ह वही सुन्दर ह। समष्टि चतना सजनात्मक ह—वह सिसभा ह। व्यक्तिगत इच्छा उसमे अनुकूल रहकर ही चरिताय हाती ह। जिस इच्छामे अनान ह माह ह परोत्सादनवत्ति है वह पाप इच्छा है जडत्वम अभिभूत होनी ह सौन्दर्य उसमे नही रहता। रूप कभी पापवत्तिका उसकावा नही देता। जा दता ह वह रूप नही है। (यदुच्यते पापनि पापवृत्तये न रूपमित्ययमिचारि तद्वच)। [यहाँ आचार्य द्विवेदीजीक वक्तव्यमा अधिक स्पष्ट करनेके लिए मैं इतना और जाडना चाहता हूँ—] जिस रूपको देगोकी भ्रान्तिम देवनेवालेकी पापवत्तिका उसकावा मिलता ह वह दग्ने वाला रूपको सौन्दर्यको दग्ग ही नही पाता वह और कुछ देखता ह। रूपके नामपर भममें कुछ औरका ही रूप समझता या बहता ह। चतयशाराका गजनच्छासे वृत (सजित) रूप सौन्दर्य ता तमयशारी हागा मष्टाकी उस कलाकृतिको देखकर व्यक्तिचित्त तो भौतिक वसियाकी परिधिका पार कर उम वर्यम पहुँच जायगा जहाँ उसवे कल्पित भाव उसी चतयकी गतिमय धारामें विलीन हा जायेंगे। द्विवेदीजीक मतसे कालिदासका पयाम नही था कि व सौन्दर्य बोधकी समस्याओको समझायें। उनका लक्ष्य तो यह था कि इस विश्वासम म् आस्था उपास करे कि सत्रमुच ही काई विद्वामा ह और सचमुच ही उसकी काई मजनेच्छा ह। इसका कारण उनके मनम सदा विद्यागील रहनेवाला सत्त्ववाद ह। कालिदास मानन थे कि ललित सजना उन क्षणोंमें हाती ह जब मया कयाकार—पूण समाहित चित्त होता ह। पूण समाधिक बिना ‘सुन्दर की रचना नही हो सक्नी। पूण समाधिकी यवस्थाम ही चित्त स्वस्थ रहता ह। सत्त्वम्य चित्त ही अनित्य सुन्दर रूपकी रचना करता ह।’ व्यापक परिप्रेय की अपनाकर कालिदासने विद्याशाका भी एक कयाकार हा माना ह।

सहज रूप ही श्रेष्ठ है

इस गापक अन्तगत (मानन सौन्दर्यक अनिवृत्त गितपा) कालिदासन श्री-मगपके सौन्दर्य-मन्त्रभमें सहज (स्वामाधिक और अयत्नज भी) गुणा

अलकाराना आन्तर त्वे हुए उस स्वका महत्ता दो ह 'जो अनायास ही वण, प्रभा, राग, आभिजात्य विलासिता लावण्य, लक्षण, छाया और सीमाव्यवहार निवार देनेमें समर्थ है।' 'कालिदासने नाराय-सौन्दर्यको महिमामण्डित किया है।' वैशिंगार वयक (नरनारा दानामें) प्रबल समर्थक हैं क्योंकि उन अवस्थाम मजने पञ्जाक विश्वव्यापिनी मगलविधायिनी सिमृताका सप्राग आविर्भाव होता है और मूल चतयधाराकी सवाधिक स्पष्ट अभिव्यक्तिसे म्वन—सौन्दर्य, शक्ति, बल सामर्थ्य मजनामक धमनाका सवापिन उभेप होता है। यह अवस्था—अगर्माष्टका अमम्भत मण्णन (अयन मिद्ध महज अलकरण) है (कुमारमम्भव १।३१)। इस प्रकार महाकविने महज स्वका चिच्छक्तिसे विलासभूत यौवनागम मत्ते मण्डित नर-नारी वन्दरका श्रेष्ठ माना है। वही अगराग उपर्य आमण्डन आभूषण आभरण प्रसाधन आदिक द्वारा स्यात्कप दिनाया गया है। उसका कारण है—भारतीय मस्त्रनिता मागय-मपूक दृष्टिमात्र। मागय' और 'समृतिमुक्ता प्रवृत्ति' शोपकवि अतमत् अलकरण आनन्दन, मागयविधान आदिका विस्तार निरचन हुआ है। वही यह भी बताया गया कि कालिदासने महज सौन्दर्य और प्रवृत्तिक रम्य परिवर्तका उत्कृष्टतर प्रतिष्ठाकी पाठपर आमोन किया है। उद्दान प्रावृत्तिक परार्थको श्रेष्ठ उपकरण माना है। प्रवृत्ति उनकी दृष्टि म मानसकी 'एक जावत सगिता है। उन हटा दिया जाय तो मनुष्यका भाव-जगत मरुकातारक समान मूना और नीरस है। कालिदास पायनाक जिय निसग-लित और माहृनका प्रवृत्तिकी उदान पष्टमूमिमें विणय किया है वह नसगिक सौन्दर्य और यनवसु समृद्ध है। यहाँ दिखाया गया है कि एनात्त वगम्य भी एदान्त प्रेमक समान निष्फल है। कए दनरान्त प्रेम कवय तपाजनम पलता है' (पृ० १२१)। कुमारमम्भवका गमस्त तप गोपना प्रवृत्तिकी बमद-भरी गदमे विरगित है। अनिगान गाकुतलम दा तपोरत चित्रित है (एक पृथ्वीर और एर स्वगमें) त्रिनन गबुन्तलाक मुन-शु मना विगालता और सम्भूतता प्राप्त हुई है। इस प्रकार बताया जा सकता है कि— कालिदासने मनुष्यका परिपूता प्रवृत्तिक साधयमें दया है। उनका सभा द्रव्यमें प्रवृत्तिका यह सबन मोनरूप अरय मिन्न जाता है (पृ० १२०, १२३)। एतल प्रवृत्ति भी निरयष्टका छदिरममथी रचना है।

लालित्य कतिपय पद और व्याख्या

श्री विश्वामोहा इन कृतिमें सौन्दर्य-गान और कवय-गम्यत गम्यद कतिपय पदोंका अनुगपान करते हुए उनकी सौन्दर्य-गम्यीय व्याख्या की गयी है। यह

व्याख्या एक ओर भारतीय सौन्दर्य दृष्टिके साधार प्रमाणसि समर्थित की गयी ह और दूसरी ओर अद्यतनतम पश्चिमी सौन्दर्यशास्त्रके परिप्रेक्ष्यमें रखकर सौन्दर्यविषय, लालित्य-सम्पन्न अथचित्राके समानान्तर रूपमें तुलनीय दिग्यायी गयो ह । विनि वेगन, अयथाकरण और अन्वयन शीपकके अन्तगत उपयुक्त तीनों शब्दाकी कालिदासकी लालित्य विषय भाष्यताके सन्दर्भमें गम्भीर विवेचना हुई ह । इसी प्रकरणम प्रकृतिके सौंदर्य और मानवकी कलाकृतिसे सम्पन्न सौंदर्यद्वय के साम्यवैषम्यमूलक गुणधर्मोंकी विश्लेषणात्मक व्याख्या दी गयी ह । प्रसंगत कलात्मक सतनके कालिदाससम्भन प्रक्रियाका भी निरूपण हुआ ह । यह भी सौंदर्यविषयक आधुनिक मीमांसाके धरातलमें विवेचित ह । उपादान उपकरण की (माध्यम या मीडियमकी) प्रकृतिका अनुकूल गुणधर्ममूलक स्वभावको ठीक-ठीक पहचानना और उसका सही-सही उपादान-नयाजन सन्निवसन और स्थापन करना ही विनिवेगन है । प्रस्तुत या वष्य अयवस्तुके कलानिर्मय तथ्यका यथाय और ज्याका त्या चित्रण करनेमें कलाकारको कुछ छोटना पडता ह और कुछ बदलना पडता है । उसे (कलाकारका) कई दार रुद्धियाका आश्रय लेना पडता है । ऐसा करना उसके लिए आवश्यक हो जाता ह । वह इस विवगलाने छुटकारा नहीं पा सकता । इस कौशलको अयथाकरण कह सकते हैं । ऑरेजीमें इसे 'डिस्टॉरशन' कहते हैं (प० ८८ ७९) । इस 'ज्याका-त्या' चित्रणमें अयथाकरण द्वारा सब कुछ साध्य नहीं हो पाता । उत्तम कोटिका चित्रकार उसमें कुछ और जोड़ देता ह (किंचिदन्वितम) । मानसिक भावपरम्पराका उत्पन्न करेकी क्षमताका (मोटे तौरपर) अन्वयन-बौद्धिक कहा जाता ह । इस प्रकरणके आधिकारिक और प्रासंगिक अनुसन्धान एव व्याख्याना हम आचार्य द्विवेदीका मौलिक चिंतन और गाय कह सकते हैं । इसी प्रकार भावानुप्रवेश और लिखितानुभाव शीपकके अन्तगत निरूपित व्याख्या भी मौलिक है । कलाकारके लिए यह आवश्यक ह कि आश्रय या वष्यके भावचित्रको मीडियम (लेख रंग, नृत्य-नाट्य या पद्ययोजना) द्वारा कलासृष्टिमें प्रवेश कराना तो भावानुप्रवेश ह ही—साथ ही यह भी आवश्यक ह कलासृचना या कलासजनाके क्षणमें कलाकार चित्रकार नट-नतक, या कवि-साहित्यकार भी अपना आमन्त्रण करके उसीमें तल्लीन हो जाये । नृत्य-अभिनयके क्षणोंमें जब नतक-नट अभिनेय भारतके साथ एकात्मताका अनुभव करते हुए तल्लीन हो जाता ह तभी भावानुप्रवेश कहा जायेगा । कलाकारका वक्तव्य साथ तमय हाकर भावानुप्रवेश यचना अनिवार्यत आवश्यक ह । और जिस भावानुप्रवेशका क्षणमें चित्रकार चित्र बनाता ह कलाकार कलासृष्टि करता ह सहृदय सामा

जिन्हमें दृबहू उसीया अनुभावन करानेकी क्षमता हा अक्षितानुभवसिता ह ।

‘वाक और अयका साहित्य’ गीपकके अन्तगत बनाया गया ह कि चाग्ता या सौन्दय न तो विषयनिष्ठ धारणामात्र है और न विषयनिष्ठ धममात्र ह— अर्पितु वह एक उभयनिष्ठ धम है । सौन्दर्यमयो द्रष्टव्य वस्तुमें द्रष्टाको आन्दालित करनेवाणी शक्ति भी रहनी चाहिए, साथ ही ऐसी शक्ति या सवन्नतत्त्वना होना भी आवश्यक ह जा द्रष्टव्यके सौन्दय चालित और हिल्लालित हानेकी क्षमता दे सके ।’ प्रहीता और गृहीतव्यके अन्तरतरका आनपण ही ता वह लीला ह जा अनादि गिरतत्व और शक्तिरत्वके सारवत लीगविनासकी व्यक्ति निष्ठ अभिनयक्ति ह” (प० ८९) ।

‘करण विगम और रसास्वात्की प्रक्रिया’ तथा ‘अवापपूर्वा स्मृति और वासना’ गायकार माध्यमस द्विवेगजाने करण विगम पदकी अपना पाग्भापिक व्याहारा देने हुए बताया है कि कलाभजन और कलास्वात्नमें बाह्य पानद्रियाँ अपने भौतिक विषयोंमें पराभुन हाकर मानम लोकके भाव-जगलमें समाहित और तल्लीन हा जाती ह । समाधि काटिका समाहितावस्थामें ही कलाकार सौन्दर्यानुभूति प्राप्त करता ह और उसी अवस्थामें रसानुभविता, रमभाक्ता कलाकार, बिना शिथिलसमाधि हुए कलागृष्टि करता ह । तभी उसी रचनाम वह सामय्य आती ह कि सहृदय मामाजिकव अन्तजगतको उक्त समाधिकी दगा-में पहुँचाकर चरम कलास्वात्न रसास्वात्न करा सकनी ह । तभी द्रष्टा या मामाजिकमें करण विगमकी दगा उत्पन्न की जा सकती ह । अथान उत्कृष्ट कलागृष्टि और कलास्वात्नके लिए रसात्मक कला रचना और रसास्वात्नक लिए करण विगम अनिवायत आवश्यक गत है ।

‘अवापपूर्वा स्मृति और वासना’ में श्री द्विवेगजाने बताया है कि “सनी विषय सब समय स्मरण नहीं रहते, परन्तु सौन्दर्याभावस वस्तुव सागान्धारम व किसी पुरानी स्मृतिवा उभार न्न ह । इसी उभरी हुई स्मृतिवा काग्दाम अवोपपूर्वा कहते हैं अथात जिगकी यात्में विगोप तत्त्वावा स्मरण गही रहता, क्वच निविगोप स्मृतिमात्र रहती है ।” पुरानी स्मृति जमान्तरमानियक्ति गिर पूवजमनाम्भार हो सकती ह । पर उम न माननवात्नके लिए उन्तनि-भरम्भराके प्रमने आगत पारम्परिक जाति-नस्वारकी वासना भी बट हा सकती ह । इग प्रमगमें ता कुछ कहा गया ह उसका साराग भी शिया गया ह—(१) बहिराग में कुछ बातें रम्य और मपूर हाती हैं (२) उन्हें रम्य-भुनतर स्मृतिदी जगता है जो द्रष्टाको परसुगुन बनाता ह (३) व स्मृतिदी अवापपूर्वा हाती ह अथात् पहला पद बनाना सम्भव नहीं ह कि य किस विगप परिम्यितिव नावरूपमें

अवस्थान करती है तथा, (८) वे चित्तका चालित करता है ।

इसी सन्तुष्टि सौन्दर्यकी परिचयात्मक व्याख्या करते हुए बताया गया है कि सुन्दर वस्तुके समग्रके बोधने उत्पन्न अवयवविगत सौन्दर्यानुभूति, वस्तुतः पथक अवयवका विभक्त सौन्दर्यमान न होकर उनमें भिन्न वस्तु है (जसा कि मनो विज्ञानका गस्टाल्ट सिद्धांत मानता है) । सौन्दर्य भाव नीर रस सम्बन्धी अच्छी विवचना करते हुए व्यञ्जनावृत्ति और भावकत्व भोजकत्वका भी इस प्रकरणमें विशेषण किया गया है और भावकत्व वाचकत्वका साहित्य दृष्टिके अधिक अनुकूल बताया गया है । इस प्रकरणका अंतिम अनुच्छेद द्रष्टव्य है— यागी नहीं बताता कि अंतरतरन जो छंदके प्रति, रागके प्रति, रगके प्रति इतना व्याकुल कम्पन उठा करता है वह पराशक्तिकी किस विलासलीलाकी अभिव्यक्ति है । गहराईमें कहीं कुछ छूट गया है, दृष्टयोग ? नादयोग उमें नहीं बता पाते । कहीं न-कहीं अनुराग योगका भी व्याकुल कम्पन और आत्मनिर्बंदन मानव हृदयके अंतरतममें विकसित हो रहा है । उसी छूटे हुए तत्त्वका अनुसंधान शिल्पा करता है । वह अनुभवगम्य है । उसकी प्रतीति ही यथाय है और अनुभूति ही सत्य है । कालिदासमें उसी छूटे हुए तत्त्वका खोजनेका प्रयास किया है— तच्चतसा स्मरति नूनमवाधपूर्वम् । (पं० ११६)

आचार्य द्विवेदीजीने कालिदासकी इसी अवस्था अमूल्यांकित लालित्य योजनाका इस रचनामें नवीन मूल्यांकन किया है । निश्चय ही प्रस्तुत रचना भी द्विवेदीजी-द्वारा कालिदासकी लालित्य-योजनाका एसा मूल्यांकन है जो अद्वैतपूर्व है । उसमें पाण्डित्य है, साम्प्रदान है चित्तन मनन है, मूल्यांकनकी विवचनो मनापाना नवांग बोध है, पूर्व और पश्चिमके प्राप्तन उपलब्धियाका बुद्धिसंगत समजसन है और सज्जात्मक प्रतिभाका विषयनिष्ठ और विषयनिष्ठ— उभयविध उद्देश्य है । यह भी नूनमवाधपूर्व वृत्ति है । कालिदासके नये मूल्यांकन में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है भविष्यतमें भी विशिष्ट स्थान बना रहेगा ।



विराट् ब्रह्माण्ड-निर्णय कोटि कोटि नक्षत्रोंका अग्रिमय आवृत्त नृत्य अनन्त श्रममें निरन्तर उद्भूयमान और विनाशमान नाहा रिका पुत्र विस्मयकारा है पर उनसे अधिक विस्मयकारी है मनुष्य जो नगण्य स्थान-कालमें रहकर इनकी नाप जोरान करने निकल पड़ा है ।

—अशोकके फूल

मधु-सचय

• •

अशोकके फूल

सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा ही जत्र सबसे बड़ा लक्ष्य हा जाता ह ता सत्यपरमे दृष्टि हट जाती ह । प० २८ ।

काम क्रोध आदि मन शक्तिया जिन्हें 'गुरु' कहा जाता ह सुनियन्त्रित होकर परम महायक मित्र बन जाती ह । प० ३० ।

मैं वातूम-भ भी तैल निकालनेका प्रयत्न करता हूँ वगैरें कि वह बालू मुझे अच्छी लग जाये । प० ३३ ।

मनुष्यका अनात, माह कुगस्वार और परमुखापेक्षितामे वचाना ही माहित्यका वास्तविक लक्ष्य ह । प० ४५ ।

पणा और द्वेषमे जो बन्ना ह वः गीत्र ही पतनके गह्वरमें गिर पत्ता ह । प० ४६ ।

प्रेम बनी वस्तु ह, त्याग बनी वस्तु ह और मनुष्य मात्रको वास्तविक 'मनुष्य' बनानेका ज्ञान भी बनी वस्तु ह । प० ४८ ।

गिणारा मुख्य गायन उत्तम गुण ह । प० ६१ ।

सम्बृति मनुष्यका विविध गायनाञ्जली सर्वोत्तम परिणति ह । प० ६४ ।

मैं सम्बलितो किमी देण विनोय या जानि विशेषकी अपनी मोक्षिता नहीं मानता । मेरे विचारमे सारे मसारके मनुष्याकी एक ही मागाय मानव-सम्बृति ही मरती ह । प० ७७ ।

रास्ता गाजन समय भटक जाना, धक जाना या धुँतण पटना, इस बानके गवृत्त न हैं कि रास्ता गाजनकी इच्छा हा नहीं ह । प० ७८ ।

मगारकी समस्त जटिल समस्यारों निय प्रति और भा जटिलतर इमणित हाता जाती ह कि इनकर रिहार करनवालामें मानसिक और बौद्धिक बराबरका धनार ह । प० ८७ ।

बौद्धिक बराबर ही मनुष्यका सम्बल बनाना ह । प० ८७ ।

जिन रिणयति शम्भार अध्वपनमे मनुष्यका मन्त्रिक परिष्कृत और हृत्प

सुसंस्कृत हाता ह, उममें श्रम लगता ह और उसके लिए बाजार आसानीसे नहीं मिलता । प० १६८ ।

हिंदो भारतवर्षके हृदय दशमें स्थित कराडा नर-नारियाके हृदय और मस्तिष्कको खुराक देनेवाली भाषा ह । प० १७० ।

जो साहित्य मनुष्य-समाजको राग शोक दारिद्र्य-अज्ञान तथा परमुखापेक्षितामे बचाकर उममें आत्मदलका संचार करता है वह निश्चय ही अणय निधि ह । प० १८१ ।

सत्य वह नहीं ह जो मुखमे बोलते ह । सत्य वह ह जो मनुष्यके आत्यंतिक कल्याणके लिए किया जाता ह । प० १९० ।

'कल्पलता'

अपने-आपपर अपने-आपके-द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी सस्कृतिकी बडी भारी विशेषता ह । प० ५ ।

अज्ञान मवत्र आदमीको पछाडता ह । और आदमी ह कि सदा उमम लोहा लेनेपर कमर कस ह । प० ६ ।

मनुष्यकी चरितायता प्रेममें ह, मत्रीमें ह त्यागमें है, अपनेको सत्रके मगलक लिए नि गेप भावसे द दनमें ह । प० ७ ।

कालिंगम महान थे क्याकि वे अनासक्त रह मक थे । प० २३ ।

जो हम हा नहीं सकत उमक लिए प्रयत्न करना बकार ह । प० २५ ।

अध्याय बरक पछनानेकी आदत दुरी नहीं ह । प० २६ ।

वाय-क्षेत्रमें—स्वार्योंकी सपपस्थलीमें महान आर्शोंका रक्षा करना बटिन काम ह । प० २८ ।

मनुष्यकी सर्वोच्च वृत्ति यही ह कि बट् मनुष्य ह—हाड चामका पगु नहीं । प० २५९ ।

व्यक्तियान इतिहास बनाये ह व्यक्तियके कारण मरी हुई जातियामें जान आयी ह व्यक्तियके कारण ही जीती हुई जातियाँ नष्ट हा गया ह । सही बात ता यह ह कि व्यक्तियके बिना जानिका कोई अर्थ ही नहीं होता । प० १६१-६२ ।

गायत्र टुनिषा भरके आगाकी कमजारीका पता लगानेकी अपेक्षा अपनी कमजारी का पता आना ज्याना विश्वसनीय हाता ह । प० ३४ ।

कोई नीतरा महान् बस्तु एमो अवश्य ह जिसक ज्ञानसे मनुष्यको जितेन्द्रियता प्राप्त आती ह या प्राप्त करनेकी इच्छा हाती ह । प० ३६ ।

मैं जा भी संचार माय कर रहा हूँ वह सायक ह जा कुछ म बचाना

लिए करता हूँ निरर्थक ह और असफल होनेको वाध्य ह । प० ३८ ।
ब्रह्माण्ड कितना बड़ा ह, यह बड़ा सबाल नहीं है, मनुष्यको वृद्धि कितनी बड़ी
ह, यही बात सबान है । प० ९९ ।

गांधी भागतवर्षके अनेक युगके सचित पुण्यका मयूर फट था । प० १३० ।
'साहित्य-सेवाका अधिकार सबको ह', यह ठीक है पर साहित्य-सेवाका अम
पुस्तक लिखना ही नहीं ह । प० १२८ ।

उपनिषदावे उद्धरण भी जब हम अंगरज्जीमें उद्धृत करते ह, ता अपने ज्ञानका
निवाला प्रकट करते है । प० १२९ ।

साहित्य-सेवा और पुस्तक-लेखकका परस्पर पर्यायवाची हो जाना साहित्यक
लिए बड़ा खतरनाक ह । प० १२८ ।

सारे मानव-समाजको सुंदर बनानेकी सामनाका ही नाम साहित्य है ।
प० १३८ ।

जा जाति कितनी ही अधिक सोदय प्रेमी है, उसमें मनुष्यता भी उतनी ही
अधिक होती है । प० १३८ ।

जो आत्मी दूसरके भावाका आदर करना नहीं जानता उसे दूसरम भी
सद्भावनासरी आगा नहीं करनी चाहिए । प० १४३ ।

मनुष्यतर विष्णु जीविका निवाह करनेके लिए ही नहीं है । प० १४० ।

कुटुंब'

रूप व्यक्तित्व ह नाम समाज-गत्य । प० २ ।

बापण्य योगे जिसका स्वभाव उपहत हो गया ह उसको दृष्टि मग्न हो
जानी ह, वह स्पष्ट नहीं देता पाता । प० ८ ।

मुग्धी वह ह जिसका मन कामों ह दुखी वह ह जिसका मन परलोक ह ।
प० ९ ।

धोला देनेवाला घोसा साता है प्रवचनाका परिणाम हार होता है, दूसराक
रास्तेमें गडवा गानेवालेको बुझा तयार मिलता ह । प० १० ११ ।

जोतता वह ह जिसमें गोप होना है धैर्य होता ह, छांस हाता है सत्य
होता ह पम होता ह । प० ११ ।

देनाकी जदताके साथ दशके निमित्तके व्यवधानका एत प्रमून कारण विन्नी
भाषाका माध्यम ह । प० १५ ।

बड़ा काम करनेके लिए बड़ा हृदय हाना चाहिए । प० १८ ।

ईमानदारी और बुद्धिमानोंके साथ किया हुआ काम कभी व्यय नहीं जाता ।
प० २० ।

बुद्धिमानको स्वेच्छामे सही मागपर चलना चाहिए । विवश होकर किसी
बातको मानना मोहग्रस्त भूढ़ लोगका काम ह । प० २१ ।

सन्ध्यभ्रष्ट जीवन बबल दयनीय ही नहीं होता, वह समाजके लिए हानिजर
भी हाता है । प० ३४ ।

दीनता उम मानसिक दुबलताको कहते ह जो मनुष्यको दूसरेकी दयापर
जोनेका प्रलोभन देती ह । प० ३४ ।

सभी भापाएँ सबकी है । जबतक यह बुद्धि नहीं आती तबतक आशवाएँ
दूर नहीं होगी । प० ४६ ।

बडाके बीच पैदा हुआ बटा बहुत बडा होता है बीनामें बडा औमत बडके
बराबर भी नहीं हो सकता । प० ७५ ।

जिसका लगना सबको लगे वह बवि ह जिसका लगना सिफ उसे ही लगे
औरका नहीं वह पागल ह । लगने लगनेम भद है । जो सबको लगे वह जय
है । जा एकको ही लगे वह जनय ह । जय सामाजिक होता ह । प० ८७ ।

कम लोग जानते हैं कि शम्पाथम कोद हारता नहीं हराया जाता है ।
प० ८७ ।

मनुष्य प्रयाजनाके पीछे दौडनेके लिए नहीं बना ह प्रयोजनसे जो अतीत
धम ह वही मनुष्य ह । प० ९५ ।

शक्ति प्रेम दया, सहानुभूति आदि गुण स्थूल प्रयोजनाको सिद्धि करें ना,
और न करें तो बडे ह और पाग्नीय है । प० ९५ ।

मनुष्य इसलिए मनुष्य ह कि उसमें मनुष्यत्व उम ह । प० ९५ ।

रुचि वस्तुन जतनिहित तत्रवादका भुला देका ही नाम ह । प० १०० ।

वराम्यने मनुष्य असन कर्मोंम निवृत्त होता ह और फिर सत कर्मोंकी जोर
उसकी प्रवृत्ति बन्ती ह इसलिए सदाचारके लिए विवेक और वराम्य दोनोंका
साथ साथ उदय होना आवश्यक है । प० १०२ ।

औषधियाँ और रोगके कीटाणु मनुष्यका समान भावसे प्रभावित करते ह ।
प० १०२ ३ ।

मनुष्य भागके द्वारा शाबत सुग्य नहीं प्राप्त कर सकता त्यागमें ही उसकी
चरितायता ह । प० १०८ ।

जो वान सफल हाती ह वह निश्चय ही धम ह । अधम और सफलता कभी
एक साथ रह ही नहीं सकते । प० १११ ।

वस्तुतः जिनके भीतर आचरणका शक्ति रहती है वही विचारमें निर्भीक और स्पष्ट हुआ करते हैं । पृ० ११८ ।

सतीत्वका स्त्रियाँके लिए ज़ोर समझनेवाला ताकिक विचार साम्प्रदायिक सत्यके विरुद्ध है । पृ० ११९ ।

किसी स्त्रीका मिटाये बिना छोटी बना देनेका उपाय है बड़ी स्त्रीर खींच देना । क्षुद्र अम्बिकाया और अथहीन सक्तीणताआकी क्षुद्रता सिद्ध करनेके लिए तक और गाम्भायका मार्ग बड़ाचिन् टीक नहीं है । सही उपाय है बड़े समयका प्रत्यक्ष कर देना । पृ० १२३ ।

सम्भृतसे निरन्तर प्रेरणा और गान्ध्यार पाने रत्ना परम सौभाग्यकी बात है । परन्तु यह समझना कि सम्भृत कभी इस दगावी राजभाषा बन सकेगी, गलत दमन साचनेका नतीजा है । पृ० १४९ ।

सम्भृतकी उपाय करनेसे हम उस विगल साहित्यका उत्पन्न करनेमें एक दम अगत हो जायेंगे जिसकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है । पृ० १५० ।

'विचार-प्रवाह'

वस्तुतः काव्य-नयी सुगुमार वस्तुका आनेचनार लिए अपने सम्भारसे बहुत ऊपर उठनेकी जरूरत है । फिर व मस्तिष्क चाह शक्ति हों या वाक्यगत । पृ० ८१ ।

विशेष और बराबरी शक्ति के प्रेमसे ही सम्भव है । प्रेम-वस्तुके अभावमें बराबरी और विश्व अन्तिक दर तक टिक नहीं पाने । पृ० ५९ ।

साहित्यम सृज होना (म सरल नहीं कहना) भी मौलिकताका श्रेष्ठ प्रतिमान है । पृ० १०२ ।

मेरा शक्तिमें साहित्यका मौलिकताका प्रतिमान यही समाजकी मात्र शक्तिसे अनुप्राणित, परम्पराप्राप्त गाम्भ्यादृष्टिसे सुसम्भृत और लाकचित्तमें उहड़ ही सुचिन्तित तरवारका सरस रूपमें प्रतिबन्धित करनेमें समय व्यक्तिकी अनिवार्यता है । यह व्यक्तिकी जिनका उच्च और शक्तिमाना हागा, साहित्यकी मौलिकता उठनी उच्च और दम हागा । पृ० १०२ ।

प्रेम समय और लक्ष्य उत्पन्न होता है । नकि साधनाय प्राप्त होती है, श्रद्धाके लिए अम्बिका और निष्ठाकी जरूरत होती है । पृ० १८५ ।

सस्कार यह प्रवृत्त हात है वे विद्वक्ता प्राय ही दसाचने रहते हैं । पृ० १४६ ।

प्रयाजनके अतीत पण्यका हा नाम शीघ्र है, प्रेम है, नकि है—मनुष्यता है । पृ० १५६ ।

जहाँ स्थूल जीवनका स्वाथ समाप्त होता है वही मनुष्यता प्रारम्भ होती है ।
पृ० १५६ ।

मनुष्यके सभी विराट प्रयत्नोके मूलमें कुछ व्यक्तिगत या समूहगत विश्वास होते हैं, परन्तु जब वे उस सस्कारजय प्रयोजनकी सीमा अतिक्रम कर जाते हैं तो उनमें मनुष्यकी विराट एकता और अपार जिजीविषाका ऐश्वर्य प्रकट होता है । पृ० १५७ ।

वाणभट्टकी आत्मकथा

मैं स्त्री शरीरको देव-मन्दिरके समान मानता हूँ । पृ० ८ ।

बुद्धिमान्की नीति मौन होती है । पृ० ५१ ।

क्या ब्राह्मण क्या श्रमण मनुष्यता दोनों ही जगह विरल है । पृ० ६१ ।

पुरुष स्त्रीको शक्ति समयकर ही पण हो सकता है पर स्त्री स्त्रीको शक्ति समझकर अधूरी रह जाती है । पृ० ८४ ।

नारीकी सफलता पुरुषकी बाधनेमें है सायकता उसे मुक्ति देनेमें ।
पृ० ९१ ।

राजनीति भुजगसे भी अधिक कुटिल है असिधारासे भी अधिक दुग्म है
विद्युत् शिखासे भी अधिक चंचल है । पृ० ९९ ।

तुम झूठे शायद घृणा करते हो मैं भी करता हूँ परन्तु जो समाज-यवस्था
झूठको प्रथम देनेके लिए ही तयार की गयी है, उसे मानकर अगर कोई कल्याण
काय करना चाहे, तो तुम्हें झूठका ही आश्रय लेना पड़ेगा । पृ० ९९ ।

एज्जा और अनुराग गणिकाको मूक नहीं बनाते और भी प्रगल्भ बना
देते हैं । पृ० १२१ ।

न तो प्रवृत्तियाँ छिपाना उचित है न उससे डरना कर्तव्य है और न
लज्जित होना युक्तियुक्त है । पृ० ७७ ।

यह उमत्त उत्सव, ये रासक गान, ये श्रु गक सीत्कार, ये अवीर-गुलाल, ये
चचरी और पटह मनुष्यकी किसी मानसिक दुबलताका छिपानेके लिए है, ये दुःख
मुलानेवाली मदिरा है, ये हमारी मानसिक दुबलताके परदे हैं । इनका अस्तित्व
सिद्ध करता है कि मनुष्यका मन रोगी है, उसकी चिन्ता धारा आविल है उसका
पारस्परिक सम्बन्ध दुःखपूर्ण है । पृ० ९४ ।

किसी दुःखी मनुष्यको आवासन दते समय मनुष्य बहुत कुछ बढ़ाकर
बालता है । पृ० ११७ ।

असुराने गृहमें जानेसे लक्ष्मी धरिणी नहीं होती । श्रीटियाके स्पृशे कामधेनु

अपमानित नहा होती । चरित्रहीनके बीच वास करनेमें सरस्वती बलवित्त नहीं होती । पृ० १०९ १० ।

जहाँ बड़ा अपने आपको उत्तम करनेरी, अपने-आपको रखा देनेकी भावना प्रधान है, वही नारी है । जहाँ वहाँ दुःख-सुखकी लाव-लाख धाराओंमें अपनेकी दलित दशाके समान निचाङ्कर दूसरेका तप्त करनेरी भावना प्रबल है, वही 'नारातत्व' है या 'गास्त्रीय' भाषामें बड़ा है तो 'शक्तिव्रत' है । नारी निषेध-रूपा है । वह आनन्द भागके लिए नहीं आती, आनन्द लुटानेके लिए आती है । पृ० १५० ।

चित्त जड़ प्रवृत्तिका चेतनके समगस उत्पन्न विकारमात्र है । पृ० २१४ ।

वस्तुतः कल्मष भी मनुष्यका अपना सत्य है । उसे स्वीकार करके ही वह साधक हो सकता है । दवानेस वह मनुष्यका नष्ट कर देता है । समस्त गुण और अगुण जवतक निर्विकार चित्तमें नारायणका नहीं छौंप दिम जाते, ततक व भार-मात्र है । पृ० २२१ ।

याच्य ही याचके मिलनस गति उत्पन्न हो सकती है । पृ० २४५ ।

स्त्रीक दुःख दूतने गम्भीर होते हैं कि उसके गत्र उसका दण्डमात्र भी नहीं बह सकती । पृ० २५३ ।

छुई-मुईकी तरह मुरगा बनना चितनी बनी गनिका मुसूरुप है । पृ० २६८ ।

एक जाति दूसरीको म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरेका नाच समझता है, इसस बदबुर आर्तिविका कारण क्या ही सकता है । पृ० २३० ।

जा वास्तव है उस दवाना जो अवास्तव है उसका आवरण करना—यही तो अभिनय है । पृ० २८० ।

बचन ही सौत्र्य है आनन्दमन ही मुग्धि है वाचार्थ ही माधुर्य है । नहीं तो यह जावन व्ययका बाप हो जाता । पृ० २८१ ।

धार्मिकवृत्ताएँ नग्नरूपमें प्रकट होकर कुत्तित बन जाती है । पृ० २८१ ।

भारतीय समाज बचनको मत्स्य मानकर ससारका बगुत बनी चीज दी है । पृ० २८१ ।

बागीरप अपने-आपका सम्पूर्णरूप उसमें करलता करत है । पृ० २९१ ।

जिष्ठन धर्म-वधाये नियम और आचार है उनमें धम अटता नहीं । पृ० २९३ ।

'साहित्य-साधक'

साहित्यकी साधना निगिल विवर साथ एवम् अनुभव करनेकी साधना है ।

जा साहित्य नामपाये बरगु लाभ और धृगापर आधारित है यह साहित्य

कहलानेके योग्य नहीं । प० ६ ।

लेखकके वक्तव्यका समास्वादन कराना ही साहित्यिक समालोचकका कर्तव्य है । प० १८ ।

जो साहित्यकार अपने जीवनमें मानव-सहानुभूतिसे परिपूर्ण नहीं है और जीवनके विभिन्न स्तरको स्नेहादृष्टिसे नहीं देख सके वह बड़े साहित्यकी सृष्टि नहीं कर सकता । पृ० १९ ।

सद्भावितक वाद विवादा आवश्यक है । पर उन्हीमें उलझ जाना ठीक नहीं । पृ० १९ ।

हिन्दीके प्रसिद्ध औपन्यासिक प्रेमचन्द शताब्दियोंसे पदरक्षित और अपमानित कृपकाकी आवाज थे । परदम धँद, पद-पदपर लाछित और अपमानित असहाय नारी-जातिकी महिमाके जबरदस्त वकील थे । प० २५ ।

व्यक्तिका आत्मबल उसकी जड़-भूतसे आरुद्ध हो जाता है । जिसके पास ये जड़-व्ययन जितने ही कम होते हैं वह उतनी ही जल्दी सत्यपरायण हो जाता है । प० २५ ।

कविताका क्षेत्र वहाँसे आरम्भ होता है जहाँ दुनियाकी प्रयोजनकी सीमा समाप्त हो जाती है । प० ४७

मुझे ऐसा लगता है कि रूसवादी कविताका केन्द्र बिन्दु वह वस्तु है जिसमें भक्ति-साहित्यमें लीला कहते हैं । रहस्य शब्दका नाम है लीला' समाधान का प० ६८ ।

यथायथा भक्तीकी उपमा बरक बुरके चित्रणको नहीं कहा जा सकता, फिर वह चित्रण कितना भी यथायथा क्या न हो । इसी प्रकार उस चीजका आदर्शवाद नहीं कह सकते जो केवल रूढ़ि-सम्पित सदाचारके उपदेशवादी नामांतर है । प० ९१ ।

जमानेकी अनिवाय तरंगान हम जिस किार का पटवा है यहीमें हम यात्रा शुरू करनी होगी । पाठे लोट जानेके प्रयत्नमें बहादुरी और उद्भटता जितनी भा हा बुद्धिमाना त्रिहूल नहीं है । प० १७२ ।

नये युगका अत्यंत सक्षेपम घताना हा ता कहेंगे यह युग मानवतारा युग है । प० १७६ ।

विचार-विवर्ध

जड़ विषयों अनुरागका 'काम' कहते हैं और भगवद्विषयक अनुरागका 'प्रेम' । प० ३२ ।

वह गिना किन्तु कामको जा दूसराके शोषणमें, अपने स्वाध-ज्ञानमें ही अपनी चरम साधकता समझती है। पृ० ६०।

मनुस्मिन् दष्टि वह नहीं है जो अतिवादिताआने बीच एव मध्यम भाग खोजती फिरती है बकि वह है कि जा अतिवादिताओंकी आवेग-तरङ्ग विचार-धाराका गिनार नहीं है जाती और किसी पक्षर उम मूल स्याने पक्ष सुकती है निमेष बहूत बल देने और अम पक्षाकी उपाया करनेके कारण उक्त अति-वादी दृष्टिमा प्रभाव बढा है। मनुस्मिन् दष्टि स्यानेषोकी दष्टि है। पृ० २५३।

‘घारुषन्ध्रलेख

मनुष्य क्या उस प्रवारकी दुर्गामा आवेष्ट है जाता है? ५७ कौतुकी वस्तु है जा साम्ब युक्ति—नकोका निम्नतर दर दती है, बुद्धि विज्ञाका दवा दती है और ज्ञान कमरा चर-चार कर देती है। पृ० २६।

वाग्देवता यथाममय बला देण वि निमित्त प्रत्याङ्के अणु-भरमाणुमें व्याप्त गतिता जा रहस्य मन और बुद्धिने स्वमें घटित होता है यह विगम्य देवताकी गतिको भिन्न नहीं है। पृ० ६०।

जो कुछ हम जानते हैं जो कुछ हम देखते हैं जो कुछ हम अनुभव करते हैं वह वस्तु हमारे अन्त दरामें स्फुरित होनेवाली मन्त्रादिता ही रूप है। हम देवताके विषय उपासना करते हैं जप करते हैं तपस्या करते हैं वह अन्त-करणमें स्थित उस गतिकी उद्घाटना मात्र है। पृ० ६१।

आध्यात्मिक शक्ति का मयान पाकर भी यदि मनुष्य अन्त दरामें जीव बाह्य जगत्का सामंजस्य नहीं मात्र सुका, तो भयकर तमोगुणाका गिनार हो जाता है। पृ० ६३।

स्मृत पराए एक आवरण-भाव है। इसके भीतर एक भाव परीर है जिसमें भाव स्फुरित प्रवेक शय उद्देष्ट हो रही है। भाव स्फुरत रूप उतरने है। यह जा मनुष्यके परीरर भीतर कल्पना करनेकी अपार शक्ति है अन्त दरामें जगत्-राज्य बुनियादका जा उद्देष्ट है। उदा है वह मिथ्या नरा। भाव ज्ञानमें जो कुछ अनुभूत होता है वह स्मृत जगत्में प्रवेक है सतता है। पृ० ६८।

एक अदभुत गता विमला नाम नहीं है पञ्चविन्त्य स्यात् निरात्म्य स्वभाव है भावभाव—विनिमुरतास्या है। पृ० ६८।

क्या परम गकारता अपार कर्मा, बटार आत्ममन और अनादिन स्यनिष्टा, यही क्या मनुष्यका शिवरता नहीं? पृ० १५७।

यह जो ताम्बूल है यह गिब और गितिका युक्त प्रयत्न विग्रह है। यह गृहस्थ घमका सागान रूप है। भगवानका जब लीला-विस्तारकी इच्छा हुई तो ज्ञानमय विमय वपुने दो त्रिगात्रामें चलकर रूप परिग्रह किया। एक तो उनकी विलान-लीला इच्छाक रूपमें और दूसरी क्रियाके रूपमें अभिव्यक्त हुई। यही कारण है कि ज्ञान इच्छा और क्रियारूपमें यह जगत् निधा विभक्त है। निधा-विभक्त होनेकी सामर्थ्य रखनेवाली इसी गितिका कोई आद्या गति, कोई त्रिपुरा, कोई सीता कोई महामाया कहता है। बात एक ही है। नाम उसके बहुत हो सकते हैं तत्त्व एक ही है। ज्ञानसे निकली हुई दो गात्राएँ—इच्छा और क्रिया—यही अधोमुख त्रिकोण है। यही उच्चगात्रा अधोमुख अत्रत्य है यही त्रिकोणामक जगत् है। इसमें ज्ञान नीचेकी ओर पत्त हुआ है।

पानके पत्तमें यही त्रिकोण लिखा दता है। वह सकते हो कि मायिक जगतका एक छाटा-सा प्रतिमान है। यह उस शक्तिका प्रतीक है जिसने स्यू जगत्में नारी कल्बर धारण किया है। और यह जो पूगीक है जो नीचे दोष और ऊपर सूक्ष्म होता गया है वह गितत्व है। जब क्रिया और इच्छा दोनों ज्ञानकी ओर बन्दे जाती है तो नर-नागके पिण्डमें—इस स्यू कायामें—विमय गितत्वकी ज्याति जगती है। गिब और गितिकी इसी लीलाकी गति मात्रक अधोमुख और उच्चमुख त्रिगात्रामें अक्षिप्त श्री-चक्र कहते हैं बौद्ध-साधक बच कहते हैं। पन्तु ताम्बूल ही गृहस्थना श्री-चक्र है। इसमें कवल गिब-गितिका लीला-विलाम ही नहीं, उनका तन भी विद्यमान है। खदिररा (कत्या) गितिका तेज है बुधा-चूना (चूना) गितत्वका तज है। सा, ताम्बूल-वाटक गृहस्थका भावानकी सिमृता और समस्त जगद्ब्यापा तेजायागना स्मरण ता दिलाता ही है, समारमें रते हुए समार-चक्रसे मुक्त होनेके उपायका भी स्मरण दिलाता है। प० २८५ ८६।

छायेपनम अहंकारका रूप इतना प्रचण्ड होता है कि वह अपनेका ही खण्डित करता रता है। प० ३४२।

कुछ और है कुछ और है। पर क्या है? सीमाबद्ध मन्त्रिककी तरों पडा श्री-गात्रक तीरपत्र गिर मार रही हैं—कुछ और है पर क्या है? प० ३९०।

—मन्त्रलक्ष्मी प्रेमचन्द जैन



एक इण्टरव्यू : कुछ पत्र

*

हरिहर शान्तिनिष्ठेनका ढाकिया है। मस्त हसगर और शानीन। समानोचक उसकी आर भयसे आशाम आशकाम और उत्तुरतास देवता है। चिद्विद्येमें पचहत्तर प्रोसदा साहितिक हाती है कभी-कभी दधान कभी-कभी टाट कभी-कभी अनुनय कभी-कभी प्रनोभन। समानोचक एक एक करत उ हैं पन्ना है उत्तुड़ होता है और आग बन जाता है। मदाभारव-की पोधी खुना है ।

—गमानोचक टाक

एक जलती शाम द्विपेदीजीके साथ

• •

शिवप्रसाद सिंह

गरमियोंमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जब बागों आते ह, हर शाम उनके निवास-स्थानपर एक खासी मजलिस जम जाती ह। भयानक लूज तप दिवनी उममती घामें कहकहोकी बोछारामें नहा जाती ह। धारावा दायरा अजीब अतिवादी छाराको छुने लगता ह। उसके घेरमें हिन्दीके गाय-अनुसन्धानस एकर लिन्वाल्डमोतवाङ्ग, साहित्यिक पुरस्कारमि एकर हिन्दी विभागाध्यक्षानि कचहरी मामले, रपयके अवमू-यनम ऐकर चण्डीगटपर भेंडराते पाकिस्तानी वाद्ययानोंकी भयानक यादें—सभी कुछ सिमट आते ह। ५० विष्णुकान्त गाम्श्री तुलसीके विनय काव्यपर गायके सिलसिलम अयाध्या हो आये। बनक भवनमें बठकर विनयपत्रिकाका पाठ कर आये। हनुमानगणैक हनुमान्वा भी मुना आये। महानके धरणादशामें 'सबल भय रज-नाग' शक्तियाँके धारमें वैरागियाँके अट्ट विन्वागके श्लोकापर टहाव लग रहे ह। ४०० रामपूजन तिवारी आये हैं, सभी 'रीपिस्ट' थे, अब मूर्खियोंपर धाप करते ह। गायद हर 'रीपिस्ट' सभी-न-बभा मूका हा जाता ह, जम बाल्म्यायनजा हो। कहकहे तडतडाने ह। पहले पण्डितजीकी धानामें कबीरकी सागिया, ससृत, प्राकृत, अपभ्रंशकी गून्तियोंके बेल-बूटे टेंकने थ, इपर नमी बविताके कसाद भी उमर रहे हैं, सिफ मडाउमें नहीं, बाकी सजोदगाथ साथ।

नये साहित्यिक प्रति उनका इस गमानका ही नडाआ ह या किसी औरका कि थ आजकल बहुत-सी बातपर निस्सवाब, अपनी गय व्यक्त कर दत हैं। मुझे यह परिवर्तन कुछ इतना ग्रीतिरर लगा कि म उनसे साहित्यिक कुछ अहम ममतापर थ सबाउ कर बदा। भूमिरेर रूपमें प्रायन्त की कि यदि जबाब दिना लाग-गानक द धरें तो ही पूरें। थ एक धग धुन रहे मूंगामें उँगनी दाल। (मन भा मान लिया कि इष्टरभ्यु लेना बकार ह) फिर मुझ अनुयत दग धार—“अच्छा पूछा।

एन इष्टरभ्यु कुछ पत्र

● इधर आपने इतिहास-लेखनके सिलसिलेमे आधुनिक साहित्यको खूब विस्तारसे पढा है। नवलेखनके बारेमे आपकी क्या धारणाएँ बनी ?

हाँ, इधर बहुत-कुछ पढ़ा है, पर अभी भी खूब अच्छी तरह पढनेका अवसर नहीं मिला। कविता कहानीकी बहुत-सी चीजें देखी ह। कुछ काफी अच्छा लगी। महत्त्वपूर्ण। बहुत-सी फैशनकी उपज ह। अनुकरणात्मक। उनमें मुझे अनुभूत सच्चाईका अभाव लगा। मदानजी कहा करते ह कि आजकल कविता तो ह कवि नहीं ह। इसका मतलब ह कि कुछ अच्छी कविताएँ तो मिल जाती ह पर कवियाका कोई विशिष्ट व्यक्तित्व नहीं बन पा रहा ह। कविताके सफलता का देखते जाओ, लगेगा कि बहुत-सी कविताएँ एक-जैसी ह। इहे देखकर मुझे लगा कि आजका कवि अपने अनुभवाके आधारपर कुछ विशिष्ट कुछ अलग नहीं द पा रहा है।

● तो क्या आप मानते हैं कि आजका साहित्य घुरीहीन और विकेन्द्रित है।

मैं इन शब्दाका प्रयोग तो नहीं करूँगा, पर बहुत बिलखाव है यह सही ह। मरा कहना यह नहीं ह कि बिलखाव न हा। वह तो हागा। जीवनमें ही बिलखाव आ गया ह, तो साहित्यमें क्या न हागा। पर अन्ततोगत्वा यदि सब-कुछ पकडसे छूट ही जाये तो फिर साहित्यका प्रयाजन ही क्या रहेगा। मुझे लगता ह कि आजका साहित्यकार किसी भी जीवन-व्यापी महत् मूल्यस सम्बद्ध नहीं रह गया ह। जीवनकी विसर्गति, विघटन और बिलखावके बाच वह खुद दिग्भ्रमित हो गया है और किसी नताजेपर नहीं पहुँच पा रहा है।

● तो आप क्या साहित्यमें सोद्देश्यता आवश्यक मानते हैं ?

सोद्देश्यता पिछले खेवके साहित्यकारोंके लिए एक अनिवाय वस्तु थी, वह एक निश्चित उद्देश्य लेकर साहित्य लिखता था। जैसे प्रेमचंद यशपाल या जनार्दनको ही लो। ये कहानी लिखनेके पहले एक उद्देश्य तय कर लेते थे। उन्हें निश्चित बात कहनी थी। वैसे तो कहानीमे इन्होंने यथायका परिवेग स्वीकार किया, किन्तु यथायगामी यह प्रयत्न भी आइडियलिस्टिक (आदर्शवादी) था। यानी एक 'आइडिया' तय करके उसका अनुसार जीवनको उपस्थित करना। आजका लेखक इस तरहका कोई 'आइडिया' लेकर नहीं चलता। यह ठीक है। क्योंकि आइडिया या उद्देश्य ऊपरसे आरोपित नहीं होना चाहिए, जीवनके भीतरसे फूटना चाहिए। मगर साप काशिश करनेपर भी उसकी रचनाओमे यह फूट नहीं रहा ह।

● इस बातको थोडा और स्पष्ट कीजिए ।

या समझो । भारतकी प्राचीन चित्रकलाका लो । उसमें रंगोंपै पहले बना ली जाती थी यानी छाया तयार करके उसमें रंग भरनेका प्रयत्न किया जाता था । भारत ही क्यों, सारे एशियाकी यह प्रणाली थी कि रंगों तय करके उसमें भरावट की जाती थी । रंग यानी सीधी ब्रह्मरत्ना । चित्रकार इसी मूल रंगोंका आधारपर निश्चित भावके चित्र निर्मित करता था । इसे किधर जितना चुकायें, जितना क्व दें, कि वह शृंगार, रोद, या फिर हास्य या किसी और रस भावकी सृष्टि कर सके यह उसका प्रयत्न होता था । रंगोंका सारी भंगी मूलरंगोंकी दृष्टिमें रंगपर व्यवस्थित की जाती थी । पश्चिमकी प्रणाली भिन्न है । वे लाइट और गैड (प्रकाश-छाया) के संयोजनके द्वारा रंगोंका वाद्य जगानेका प्रयत्न करते हैं । उनकी आधुनिक चित्रकलामें यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है । उनका प्रयत्न होता है कि पहले लाइन तय न हो, प्रकाश और छायाका ऐसी व्यवस्था की जाये कि लाइन स्वयं आ जाय । हमारा आधुनिक साहित्यकार इस पद्धतिको अपना रहा है पर अभाग्यवश उसका सार प्रयत्नाय वास्तविक बाई ठीक सीमा बन नहीं पाती, या उल्टी-सीधी ऐसी बन जाती है कि पाठक विरक्ति अनुभव करने लगता है ।

● आपका मतलब यह है कि लेखक कोई निश्चित 'लाइन' उभार नहीं पा रहे हैं ।

मैं आजकी कहानिया और कविताएँ पढ़ता हूँ तो लगता है कि कुछ बात बनी नहीं । बहुत कहा, पर उसमें कुछ स्पष्ट हावर उभरा नहीं । महात्माजी एक पक्षि है म अपने बेसुरूपतम कर्त्तु कुछ, कुछ कह जाती । आजका एक मरमाय प्रवृत्ति है गायका कमसे कम अपनाय । यह एक अच्छी बात है । नया कवितामें यह प्रवृत्ति मूल है । कमसे कम गायका सच, तथा सम्भरो अधिकसे अधिक अनुमानके लिए छोड़ देना । मगर ऐसा अर्थोत्तरण जिस अपना कि क्व निरर्थक हो जाये । कहानियाँ पढ़ता जाता हूँ तो लगता है कि अनावश्यक बातें बनी जा रही हैं जिनका कही कोई सारतम्य नहीं ।

● यही तो अन्वयिता, अ-कहानीका लक्षण है ।

होगा । पर यह गैड बाँध लो कि जो इन पूरे सिगरेटका समाप्तनम लक्षण है जिनका पाठ समेटनकी बात है यन्तुत वे ही उच्चकोटिका मूल्य कर सकते एक इण्टरव्यू कुछ पत्र

ह, जा अचेन है उनकी पकडम यह खिलराय कभी बंध नहीं पाता । छूट जाता ह ।

● आप नयी कविनामे क्या कुठ ऐसे कवियाका नाम लगे, जो आपको इस सक्षमतावाली तुलापर सटीक उतरते हो ।

क्या नही, गिरिजाबुमार मायुर, भरानीप्रसाद मिश्र (बीमे वे कई यातामें कुछ पुराने लगते ह) सर्वेश्वर, कुँवर नारायण, भारतीय यह क्षमता दिखाई पडती ह ।

● अज्ञेयके वारेमे आपका क्या सयाल है ।

अज्ञेयम दोनो ही प्रवृत्तियाँ दिखाई पडती हैं ।

● और मुक्तिबोध ?

मुक्तिबोधका सकलन 'चादका मुँह टेढा ह मने पना ह । दो तीन कविताएँ निस्त-देह बहुत उच्चवाटिकी हैं, जस 'अंधेरमें' । लेकिन शेष कविताओंको देख कर लगता है कि इनके जगलमें कवि खो गया ह ।

● भारतीयके वारेमे कुठ कहिएगा ?

भारतीने बहुत अच्छा लिखा है, काफी महत्त्वपूर्ण । इधर 'ठण्डा लाहा भी पढा । कई कविताएँ बहुत अच्छी ह । और फिर 'वनुप्रिया । उच्चकोटिकी कृति है । वही-वही भावनाका रग जरूर गाढा हा गया ह, पर भारतीय समय कवि है, इसमें सदेह नहीं ।

अमलम पुरानी परम्पराकी समृद्धि और नवीनकी बौद्धिकताका समन्वय बहुत जरूरी ह । पुरानी परम्परा भाव तक सामिति ह । बौद्धिकताका रूप वहाँ दशनका विषय हो जाता था । जात्रवा कवि बौद्धिकताका पन्थ लेकर अनासक्त सत्यक्षिकी वान तो करता ह पर हा नहीं पाता । परिणामत साहित्यमें न तो भाव-जगत ठीकम प्रतिष्ठित हो पा रहा ह न बौद्धिक विवेक । आधुनिक मनुष्य जिज्ञासुरिपक्ता बुद्धिकी जर अग्रतर हाता चाहता ह पर साहित्यम उसकी प्रशिक्षा क्या हा इसपर बन्द सती ढगमे विचार नहीं कर पा रहा ह ।

● आप बौद्धिक दृष्टिसे साहित्यकी सामर्थ्यका विश्लेषण करके किस नतीजेपर पहुँचना चाहते ह ?

येको मात्र, म कविताको प्रिमिटिव बला' मानता हूँ। संगीत इसका एक छोर है। मात्र शब्द। कवितामें गान और अर्थका योग है। यहाँ गान और अर्थमें कौन प्रधान है, कहना कठिन है, कानाका तुल्यतर योग होता है। कविता में एक गान हटाकर उसका पर्याय नहीं रखा जा सकता। कहानीमें रखा जा सकता है, क्योंकि कहानी अर्थप्रधान है। वह प्रिमिटिव नहीं है, मिक्लिङ्गमें (सम्मिश्रण) जुग हुई चीज है। इसी कारण आधुनिक जावनक दिग्बराव और उलफनाका व्यक्त करनेकी क्षमता भी उसमें कविताकी अपेक्षा अधिक है। कविता छन्दोपेक्ष प्रधान होती है वह साधारणोक्तिरूप चालती है कहानी बिन्दोपेक्ष प्रधान है। वह विशेषोक्तिरूपकी प्रक्रिया है। आधुनिक कवि जब कहानी लिखता है, तब वह कवि धर्मसे च्युत होता है छन्दक बिना कविता नहीं हो सकती। मैं यह मानकर चलता हूँ कि छन्दका अर्थ लग मात्र डगस पिगल नहीं मान लेंगे। कहानी सुनने बड़ी शक्ति उसकी नमनीयता है, रिथम' जिसमें जितना अधिक कव लेनेकी सामर्थ्य है वह उतनी ही उच्चकाटिकी बलाका मूलन कर सकता है। तानपूरम म्बरोने कव'की जा शक्ति है वह हारमोनियम नहीं है। अर्थका प्रधानता तो इतिहासमें भी है कहानीमें भी। पर कहानी इतिहास नहीं है क्योंकि उसमें कव'के कारण एक विशिष्ट शक्ति और सामर्थ्य आ जाती है जो इतिहासमें नहीं होती। आजके कहानीकारोंसे मेरी शिकायत यह है कि वे समस्याअपि टकराकर खुद विवर जात है उन्हें भ्रमण नहीं पात, उनमें कव'का योग है।

● आपने अभी कुछ कवियोंका नाम लिया था, क्या कुछ कहानीकारोंका भी नाम लेंगे, जिनमें आपसे यह 'कव'कर' दिखाई पड़ता है।

क्या नहीं। तुम्हारी कहानियोंमें यह 'कव'कर' है। मद्रू भणारी, उषा श्रियवण, कमलेश्वर, निमल वर्मा और गिहानीमें मुझे यह शमता दिखाई पड़ती है।

● नये साहित्यकारोंमें क्या आपकी कोई शिकायत है ?

मेरी शिकायत यह है कि हिन्दीका साम्प्रतिक 'बनबाल' (पद्यमय) काजी कमजोर होता जा रहा है। नये लोगोंने पत्रपत्र पढ़ते हैं। अपना जो कुछ पुराना साहित्य या वाङ्मय है उसका प्रति अर्थ ही होता जा रही है। परम्परा पान मूलमय है। दूसरी कथाओंके शर्मों भी, चाहे प्राचीन है या नवीन उपासीयता बड़ रही है। इतिहासम कव'का बाद भी कभी ममूड नहीं हो सकता। नये लोगोंमें तो 'नये न पत्र' या 'सोपान का डगन च' गया है।

मेरे एक गिण्य ह, पी एच० डी० । उनका मैंने अभी एक निप्रथ पढ़ा । लिखा ह कि म पी एच्० डी० होना नहीं चाहता था, पर हो गया । यह तो म हा जानता हूँ कि विचारे उस पी एच० डी०के लिए कितने व्यग्र थे । निप्रथ पढ़कर मुझे बड़ा दुःख हुआ कि विचारेका नाहक पी-एच० डी० दे दो, क्योंकि इससे उसे अपने अतपड होनेका रोद लेनेमें बाधा पड रही है । यह हालत ह आज हिंदी माहित्यकाराकी । जयप्रसाय और परिश्रम जहा उपहासकी चीज हा जाये, वहाँ सांस्कृतिक स्तरकी क्या आगा की जा सकती है ?

● इम सांस्कृतिक दरिद्रताका कारण क्या है ?

दरिद्रताका कारण दरिद्रता ह, और क्या ?

● मेरा मतलब यह है कि क्या हिन्दीक्षेत्र पहलेने भी सांस्कृतिक दृष्टिमें ऐसा ही दरिद्र था कि अत्र हो गया है ?

पहले ऐसा दरिद्र नहीं था । जब हुआ ह । कारण यह है कि हम अपनी विरासतके प्रति अचेत ह । यानी कपूत । यह कितने दुःखकी बात है कि बाप दादाके इतने बड़े उत्तराधिकारमें हम कट गये ह और अपने मोखलपनका विगापनकी चीज मानते ह ।

● क्या आधुनिक स्थितियामें आप यह मानते हैं कि कोई भारतीय मम्त्रति नामक चीज हो सकती है ?

क्या नहीं हो सकती ? सर्वोत्तमको रूप देनेका प्रयास ही सस्कृति ह । क्या आज भारतके पाम कुछ भी ऐसा नहा, जिमरो रूप दिया जाये । माना पहलेम बहुत भिन्नता आ गयी ह पर जो ह वह क्वापि तिरस्करणीय नहीं ह । जिमक पाम अपनी कोई जीवन शक्ति नहीं है वार्ड दान नहीं ह, स्वकीय पद्धति नहीं ह वह कभी काइ बड़ी चीज द सकना ह इसमें मुझे सन्देह है । जो अपनी इस सस्कृतिका नगी समय रहे ह व ऐम ही लटकते रहग, इसमें वार्ड गार नहीं । माना कि आज बहुत परेगानी ह भुवमरी है, बेरोजगारी ह—पर “लाग मर रहे ह ऐसा चिल्लानेसे क्या लाभ होनका है । यह सत्र कम खतम हा आगिर इमके लिए भी कुछ करा, कुछ बताओ, चिल्लाना भर ता साहित्यकारका दायित्व नहीं ह ।

● प्राय कहा जाता है कि सन् साठसे बाद नवलेखनम एक परिवर्तन आया है । रचनाजाम विचाराव कुण्ठा, सन्याम, निमगतिके स्वर ज्यादा सुन्दर शए हैं । इमका कारण गैंग चीनी आत्मण और कॅरलमें साम्यवादी

सरकारको वर्धास्तगी-जैसी घटनाओंम खोजते हैं। क्या आप इससे सहमत हैं ?

त्रिलकुल नहीं। ये दाना वारण फालतू है, यदि ये प्रवृत्तियाँ साहित्यमें या जीवनमें बड़ी ह तो इसलिए कि सन्नचित्तको लग रहा है कि इस दामें चीजें जैसी चलनी चाहिए नहीं चल रही ह। यह अपने प्रति अपना ही शोभ ह। म इसमें उपर्युक्त घटनाओंका कोई प्रभाव नहीं देखता।

७ किन्तु जैसी स्थिति चल रही है, यानी घोर निराशाजनक, उसमें क्या आपको नहीं लगता कि साहित्य सिर्फ 'अंधेरेमें चीख' बनकर रह जायेगा ?

कसी बाहिषात बात ह। मैं तो भाई घोर जागवादी हूँ। इसलिए मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि यह सब निराधार और बकवासमान ह। तुम क्या समझते हो ये सब जो लोग लिख रहे हैं, वे लेखक हैं ? इनमेंसे बहुत-से नये लेखक जीनेवाले नहीं ह। बल्कि इनमें बहुत-से सरकारी नौकरियाम चले जायेंगे। बहुत-से बड़ा पहुँचेंगे, जहाँ वे अनुशासन हीन भीड़पर लाठी-चाक करायेंगे। बहुत-से काम घघा ठीक होने ही लिखना-पढ़ना छोड़ देंगे। सारी निराशा हवा हो जायेगी। साहित्य 'अंधेरेमें चीख' बनी नहीं बना है, बनी नहीं बनेगा। अच्छे-अच्छे लोग आने रहते ह और आयेंगे, जिनमें जीवने दृढ़ बद्ध मूल्योंके प्रति आस्था होगी। और वे साहित्यको सही दिशाकी ओर ले जायेंगे।

८ क्या आधुनिक भारतीय साहित्यकारको राजनीतिमें कोई खतरा है ?

मुझे तो नहीं लगता। अभीतक तो यहाँ साहित्यकार ही राजनीतिकोकी निष्ठा करता रहा ह। किसी राजनीतिकने साहित्यकारके गिलाफ गायद कुछ नहीं बना। बात यह है कि राजनीति और साहित्यकारको एक-दूसरेका विरोधी समझनेकी धारणा पुराना ह। आजकी सही राजनीति साहित्यको अलग करके नहीं चलनी। राजनशाकी यही विशेषता है। एक ही मूत्रभूत विचारधारा साहित्य और राजनीति दानाम अपने-अपने दामे काम करनी ह। हाँ, जहाँ तानाशाही ह यहाँ साहित्यकारको खतर खतरा ह। जग आजरल चीनमें साहित्यकारपर दबाव डाला जा रहा ह और मुनिवर्गिदिशापर बढा किया जा रहा ह भारतमें ऐसी स्थिति बिल्कुल नहीं ह।

९ गुटबन्दी बरके मूल्य या सही तरीकेम अपना विनापन या पुरस्कार तथा सम्मानादि पानेके प्रयत्नाके बारम आपको क्या राय है ?

म पर माना ह कि पुषिम (गुटबन्दी) मध्ययुगीन मनोवृत्ति ह। बिल्-

कुल जाधुनिक विरोधी। स्वतंत्र विचारका आधुनिक साहित्यकार गुट क्या बनायेगा भला ! गुटसे शक्ति पानेका प्रयत्न बिलकुल असाहित्यिक ह। यह बने आश्चयकी बात ह कि जो साहित्य रचनामें कोई पूर्वनिश्चित 'लाइन'को मानकर नहीं चलना चाहते, वे 'लाइन' बनाकर चलना चाहते हैं।

● किन्तु ऐसा प्रयत्न सिर्फ नये लोग ही तो नहीं करते ?

जो भी करता हो, वह मध्ययुगीन है।

● पुरानी पीढी और नयी पीढीके बीचके तनावके बारेमें आपकी क्या राय है ?

पुरानी परिपाटीवाले निरदृश्य साहित्यिक प्रयत्नोंको दाद नहीं देते, नयोको लगता है पुराने रास्ता राककर खड़े ह। हिंदास पुरानी पीढीवाले प्राय सहते ही है। मुझे नहीं याद आता कि कभी पुरानाने नयोंके खिलाफ कोई 'पम्फलेट' निकलवाया, या 'मैनिफेस्टो' छपा।

● कल बातचीतके मिलमिलेमें आपने कहा था कि साहित्यकाराको पुरस्कार-सम्मान आदि नहीं मिलना चाहिए, ऐसा क्यों ?

मैं अपने निजी अनुभवों द्वारा इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि ये पुरस्कार वगैरह बंद कर दिये जाने चाहिए। पुरस्काराको देनेमें जो तटस्थता बरती जानी चाहिए, वह नहीं बरती जा रही ह। इसमें हानि ही हो रही ह। साहित्यकार अपनेको निर्मोही और तटस्थ तो कहते बहुत ह, पर उनके मोह और आसक्तिकी कोई सीमा नहीं रहता। हर हिंदी साहित्यकार अपने अलावा विसा औरको कुछ नहीं समझना। उसके घनिष्ठतम सायियोंमें से भी किसी एक्को पुरस्कृत कर दो, तो शेष बुरा मानकर पीछे पड़ जाते ह। दूर बाघवर, 'बोट' बटोरकर पाये जानेवाले पुरस्कारासे साहित्यका कोई हित नहीं होगा।

● इधर नवलेखनवाले प्राध्यापकोंके खिलाफ और कुछ कूट प्राध्यापक नवलेखकोंके खिलाफ हाथ धोकर पड़े हैं, ऐसा क्यों ?

यह हिंदीका दुर्भाग्य ही है और क्या कहें। प्राध्यापकोंके प्रति विद्रोह असलमें पढ़ने लिखनेके प्रति विद्रोहका ही रूप ह। अध्यापकोंकी कमजोरी यह ह कि वह अध्यापनको पैसा बनाकर उसीमें कूपमण्डूकवत जी रहा ह। साहित्य उनके लिए वृत्ति ह, जीविका। वे परिश्रममें बचनेके लिए नयी वस्तुको ग्रहण करना नहीं चाहते। अमलम साहित्यका अध्यापन और साहित्य रचना दोनों

एक-दूसरेके पूरक हूँ। प्राध्यापकका साहित्यको 'प्रांपर पसपविटव म दलनका प्रयत्न करना चाहिए। अनुसंधान और ऐतिहासिक व्याख्याका अपना एक महत्त्व होता है। इतिहास एक अनन्त प्रक्रिया है। वार्ड भी अनुमानायक 'इतिहास' नहीं कह सकता। अपने विचारामें मोहग्रस्त होकर नये विचारको स्वीकार न करना भी मध्ययुगीन मनोवृत्तिका परिचायक है। प्राध्यापकका काम है कि वह अनासक्त भावसे नये साहित्यको ऐतिहासिक परिप्रेष्यमें रखकर देखे। जो लोग नये साहित्यका दमनेका अवसर नहीं निकाल पाते और अपने ऐतिहासिक अनुसंधानामें लगे रहनेके कारण नयाको दाद नहीं दे पाते, वे नयो द्वारा निर्दिष्ट हा, मह भा स्वस्य प्रवृत्ति नहीं है।



विन्दुस लेकर पथहतक एक ही व्याकुल वेदना समझकी सहरोकी तरह पछाड़ सा-साकर लौट रही है। एक छारकी छुओ और सहस्रो वार छन छना उठते हैं। सब वार मिलकर पूण सगीतके निर्माणका काय करते हैं। नरनोकग लेकर विन्दरलोक तक एक ही व्याकुल अभिनाय उन्नमित हो रहा है। मिलन स्थितिबिन्दु है विरह गति-वेग है। दोनोंके परस्पर आकषणम रूपकी प्रतीति होती रहती है विचार मूर्त्त आकार ग्रहण करते हैं भावना सौन्दर्य बनती है। विरहमें सौभाग्य बनपता है रूप निरररदा है मन निमल होता है बुद्धि एरताका संग्राम करती है।

—कालिदासकी साहित्य योजना

पता एक पत्र अनेक

• •

१, एल्विन रोड, इलाहाबाद

भाई हजारीप्रसादजी

शुभाशीष ।

बहुत दिनोंसे आपका कोई समाचार नहीं मिला, मैं भी अपना चिन्तनीय अस्वस्थताके कारण कुछ न लिख सकी । इधर दो माससे इजेकशन ठे रही हूँ । अभीतक स्वयं लिखने पढ़नेमें असमर्थ हूँ । किन्तु आशा ही नहीं विश्वास है कि सूरकी परम्परा बनाये रखनेका श्रेय मुझे न मिलेगा ।

एक साहित्यिक योजनाके सम्बन्धमें मुझे आपके सहयोगकी आवश्यकता है । स्वयं भुक्त भोगी हानके कारण हिन्दी साहित्यकाराकी दयनीय स्थितिस आप विशेष परिचित हैं । हमारी साहित्यिक सस्थाएँ इस विषयमें उदासीन हैं । साहित्यकारोंका भी ऐसा कोई संगठन नहीं जो हमें एक-दूसरके सुख दुःखासे परिचित करा सके, तथा पारस्परिक सहयोग और सहायताके अवसर दे सके । पन्तजाकी लम्बी बीमारी और जनेन्द्र, निराला-जय साहित्यिकाक बाधित सकटने इस अभावकी अनुभूतिको इतना तीव्र बना दिया है कि एक साहित्यकार ससदकी आयोजना अनिवाय हो उठी । साहित्यिक बंधुओंको सहयोग तथा सहायता दानके अतिरिक्त ससद उनकी पुस्तकाका प्रकाशन भी करेगी, तथा लेखकोंको पर्याप्त पुरस्कार दानके उपरान्त बची हुई आय साहित्यिक सहायक निधिके रूपमें संचित रहेगी, जिससे आवश्यकतानुसार साहित्यिक बंधुओंको सहायता दी जा सकेगी । इस ससदकी सदस्यता स्वीकार करनेमें आपको आपत्ति न हागा, ऐसा विश्वास है । आपका उत्तर आनपर इस सम्बन्धमें विस्तारसे लिखूंगा ।

आशा है, आप सपरिवार प्रसन्न हागे ।

शुभच्छुवा,
महादेवी

*

थड़ेय भया,

प्रणाम । कल सच्चा समय आपकी बाणी सुननेकी मिली । बहुत आनन्द मिला । आपने तो जने मुये और अय श्राताआदा भी शान्तिनिवेदनकी यात्रा ही करा दी ।

और मुने बोलुव हा रहा था, मेरो ही भाँति आप नो कहीं अपनी बाणा सुनकर राय रह ह ।

रथिओबालाको कौन समझाये कि सुनाने योग्य ऐसी ही वस्तु है । कुछ हो, उठाने यह सीमाय निया, इसके लिए मैं उनका अनुगृह्यत हूँ ।

रथियाक निवन्तउत्तान आपक नामके साथ 'ढाकटर पद जोडा था । आपक इस पदका ही योग्य बढा । पर जिन्होंने यह गुणप्राहकता दिवाया है, उन्हें मैं बधाइ दना चाहता हूँ ।

आशा है आप आनन्द हैं । इधर मैं दबास रागका बहुत कष्ट उठा रहा हूँ । इसीसे आपके प्रेमासिक्क लिए लिखनका प्रयत्न करनेपर भी लिख नही सका । आपकी कशरताने मेरो बिगता समयकर मुये क्षमा किया हागा ।

नया काशी गये हैं । और सब कुशल हैं ।

स्नहाकित,
मियारामशरण

*

बिन्को, उ० प्र०
३२४२

माई सायब,

अब तो आपका पत्र लिखनेमें भी डर लगता है । जान पड़ता है तुम बहुत बढ हा गये हा । और सबकुच इसमें शांति भी नही । तथापि मर निरुट ता तुम सारा हो और उगा कामें रहोगे । मेरे निवन्त काका मूय अधिक ह ।

बिन्कमारता पत्रिका आपकी प्रकाशित हा गयी, यह जानकर प्रसन्नता हुई । कम लिगुं कि बद् देवनेकी मिलती ही अच्छा हाता । यहाँ लिखा तो दस लूंगा । भ्रमनेको मैं नहीं लिख रहा ।

एत इष्टरब्द कुछ पत्र

यह भी न समझिएगा कि 'भैरवी पर कुछ लिखनेके लिए तकाजा करने आया हूँ। वह यथासमय अपने आप हो जायेगा। हा इतना ही कहने आया हूँ कि जहाँ आपकी दृष्टि हिंदीके अर्थ सेवकापर इतनी स्निग्ध एवं स्नेहाद्रु बनी रहती है, वहाँ मुझे भी एक कोना मिले।

मेरी दृष्टिमें आपकी आलाचनाआका मूल्य सर्वाधिक है। न जाने मेरा मन क्या कहता है कि तुम्हारी ही आलोचनाएँ सर्वाधिक उत्कृष्ट होती हैं। convincing होती है, उत्कृष्ट भले चाहे न हा। मेरा मन तुम्हारी हर बातमें 'हाँ करनेको कहता है। इसीलिए, यदि अपने सम्भवमें तुमने कुछ सुननेको उत्सुक होजो तो अनुचित तो नहीं है। तुम सा पथप्रदशक मुझे मिल जाता, तो जो समय इधर उधर लिखकर म नष्ट करता हूँ, साथक हो जाता। क्योंकि जिस श्रमकी सराहना विद्वान् नहीं करते, वह व्यर्थ ही होता है।

आप अब सुचित्त हागे। कभी-कभी पत्र पानेका अधिकारी अपनेको मानूँ क्या ? इतना हक तो मुझे मिलना चाहिए, पुराने परिचयके नाते ही सही।

माई—
सोहनलाल द्विवेदी

*

रत्नरुद्र
कार्तिक गुबला ७, स० २००० वि०

प्रिय श्री द्विवेदीजी,

आपका कृपापत्र पाकर घबरा हुआ। आपन जिस तत्पर सहयोगकी आशा थी उस कितना सहृदयतासे आपने प्रदान किया है, यह आप जैसे विद्वान्के अनुरूप ही है। आप इस विषयके मार्गदर्शक पण्डित हैं, आपका प्रतिपादन हम सबके लिए पानवद्धक हागा, ऐसा आशा है।

मुझे तो श्री नाथूरामजीसे पता हुआ कि आप ज्यातिपके भी आचार्य और पूण मुभी हैं। भारतय ज्यातिपशास्त्रका दक्षिण विभ्रम सवतपर ५१० पृष्ठ यदि आप संपादनात्मक में कुछ लिखनेका कष्ट करें तो बड़ा अनुग्रह हा। इस विषयपर एक विवादास्पद लख मेर पास मन्त्रीजीकी ओरसे भेजा गया है उस अनलोचनाय भेजता हूँ। आशा है आप शास्त्राय दक्षिण इत्तरपर प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे।

हिंदा विश्वभारतीके लिए मैं कुछ भेजूंगा। इस समय मद्यपि चारा ओरसे कायसि घिरा है फिर भी आपका अनुरोध माननीय है। हिमालय नामका एक छाटा लेख आपक देखनेके लिए भेज रहा हूँ।

भवदीय,
वासुदेव शरण

*

आरा (बिहार)
४ अक्टूबर १९४३

प्रिय द्विवेणीजी,

आज, अभी आपका सन्देश लेकर माधवजी आये थे। और वे कुछ ही देर बन्दर चले गये। उारा जाना बहुत खला, जीवनमें ऐसे कम अवसर आय हैं।

आपका बियाग तो इतना नहीं महसूस हुआ था, 'गाय' इसलिए कि उसके लिए हृत्प्य तयार था, अथवा इसलिए कि आपस परिचय 'प्रगाढ़' नहीं हुआ था या इसलिए कि आपका व्यक्तित्व उतना कामल नहीं लगा था, नहीं है—उसपर बौद्धिकताका कठोर कवच चढ़ा है। फिर भी उस परिचयको इतना माना जा सकता था कि उसको व्यक्तता का वाक्या द्वारा करनेका चला अपर्याप्त समझी जाती।

पर यह दो वाक्य छाटे-स पत्रमें दो स्थानापर थे इसान्ति यह पत्र लिखनेकी प्रेरणा हुई।

आपके व्यक्तित्वका सौन्दर्य (गरिमा नहीं) उनको सक्रिय करने, घातचोत परते रन्तने है इसे, जहाँ आप अपनको सुन्दर दर्शित करना चाहें, न भूलें। आपका नाम और Personality 'दोनों हा घाला देनेका है। आप ऊपरसे गिानी और सोये-साले हैं, पर नीतरस निनात गम्भीर और जटिल। पर पर जब आप चुपचाप बठे थे सा मुझे तो एक बार य आगारा हुई कि 'म देना जा रहा हूँ।' मैं आपस सब कहूँ कि मैंने हिंदी भाषामें इतन विनष्ट-सरल व्याख्यान 'गाय' कभी नहीं सुने है। 'काय-कारणकी नीर-घ्न परम्परा'—नाया जसे कही अर्थात् जानती हा नहीं, उसक लिए कुछ भा दुबक' नहीं है—अपि वागधि-पमसुवक कथन तद् विदधीत विम्मयम्। और कायदे रसप्रणकी, तथा उसकी व्याख्याकी, य एतक सानता जितन कम आलाचनोंको प्राप्त हाता है।

एन इन्टरव्यू कुछ पत्र

४७१

आपने जब पूछा कि क्या मैंने 'हिंदी साहित्यकी भूमिका' पढ़ी है, तो मैं बड़े सकोचमें पढ़ गया क्योंकि उसे मैं आचोपात्त नहीं पढ़ सका था। बात यह है कि मैंने हिंदी साहित्य 'वाक्यायदा नहीं पढ़ा, इसलिए मेरा तत्सम्बन्धी ज्ञान नितान्त अपूर्ण है। इसीलिए उसके विभिन्न युगोंक सम्बन्धमें जिज्ञासा भी कम है। फिर भी जिस लेखकको हम अच्छा समझते हैं उसका कृतिया मयासक्ति पढ़ना वक्तव्य ही जाता है।

आपने कवि रवीन्द्रके ससगसे बहुत कुछ पाया है—आग्रहहीन सरलता, व्यापक दृष्टिकोण उदार भारतायता और सबसे ज्यादा भक्ति-काव्यके हृदयसे परिचय। आपका 'कबीर' पढ़ डाला। प्रारम्भमें आपकी भयकर रिसच पढ़तासे भय लगा, धीरे धीरे रस मिलने लगा। पुस्तक सहज ही हिंदीके अत्यंतम आलोचना ग्रंथोंमें गिनने योग्य है उसका स्थान मुकुलजीके 'तुलसीदास के सच' है। एक कमी लगती है—कबीर as a poet पर कुछ अधिक लिखा जा सकता था। जिसे 'कला (रचना कौशल)' कहते हैं वह अनुभूतिका प्रगट करनेकी शलीका ही दूसरा नाम है, अनुभूति ही उसका स्वरूप निर्धारित करती है। जहाँ अनुभूतिस भिन्न कारण उसे प्रभावित करते हैं, वही वह कृत्रिम हो जाती है। कबीरमें यदि कृत्रिमता नहीं है तो उनकी शैली भावानुगामिनी होगी, और उससे उनके 'साहित्यिक मूल्यका निर्धारण सम्भव होना चाहिए। हिंदी साहित्य पर Religion का अधिक प्रभाव रहा है। भक्ति काव्य सुन्दर है, सत्ताकी वाणी महनीय है, पर साथ ही हमें सम्वृतक Secular साहित्यसे भी प्रेरणा लेना चाहिए। हिंदीका यह पक्ष—साकेत, पथिक, कामायनी भी—कमजोर ही है। परतमें भी स्वस्थ Secular realism का अभाव है।

आज इतना हा।

आपका,
देवराज

*

घोक, गया
२० १२ ४३

धामन्,

प्रतिमा भाभी साहबासे मेरा प्रणाम बहिष्णा यही रवीन्द्र भाई साह्य और दोनोका मुझे कुल बातें याद हैं। बज्ज अच्छी है।

४३२

शांतिनिवेदनमे शिवालिङ्ग

यमिय चक्रवर्ती अगुआ लिखते हैं। कुछ चीजें पहले देगी, फिमल गयी थी।
 इधर फिर देखीं, गनीमत है। प्रभाव पडा।

आप प्रसन्न होंगे। महात्माजीके छुट जानेक बाद में शांतिनिकेतन आऊंगा।

आपका

सूयकान्त त्रिपाठी 'निराला'

पुा मुझे श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, दारागज, प्रयागकी माफत जवाब
 दीजिएगा।

निराला

*

हरिजन निवास,

बिम बे, दिल्ली

१३ १ ४४

प्रिय भाई जजारीप्रसादजी,

सुप्रेम नमस्कार। 'विश्वभारती'क अंक ४ में आपका आरावाला भाषण
 देना। बडा ही सुन्दर ह। बधाई। केवल एक जगह कुछ सगाधन करनेको जो
 चाह रहा है। आपने (पृष्ठ ३१८) कहा है—'मैं आशा करता हूँ कि आपका
 युवक समुदाय साधन मात्र ह।' महाराज। इतना वह समझदार ही तो हमारे
 साहित्यका अहोभाग्य। इससे तो विपरीत ही देखनेमें आता है। वह तो छन्दके
 लिए ही छन्द लिखता ह। प्रगतिगालताक नामपर आज क्या-क्या हा रहा ह
 इससे आप अपरिचित नहीं होंगे। 'इतना समझदार अवश्य है' के स्थानपर
 'इतना समझदार हा' और 'केवल छन्द नहीं लिखता' का जगह 'केवल छन्दके
 लिए छन्द न लिखे और यह जाने कि इत्यादि' सगाधन करनेको जो चाहता
 है। आशा ह इस आप मेरा विनाद नहीं समर्थेगे।

आप एक महाना हुआ, मैंने आपको एक पत्र लिखा था। उसका उत्तर
 नहीं मिला। पत्र चापद पहुँचा ही न हो। 'विश्वभारती' न आनेकी शिकायत
 थी। अरु भा नहा आ रही है। केवल ३ अंक पहले आये थे। केन्द्रिस्तपर
 आपका मरा नाम बदलना मूल गये।

अक्षय गतिमान आजकल कहाँ है? क्यों न कुछ दिन हमारे हरिजन
 निवासको इलाय करें। प्रायना काजिएगा। आशा ह प्रसन्न होंगे।

आपका सस्नह,

वियागीहरि

*

एक इष्टरव्य एक पत्र

प्रिय द्विवेदीजी,

आपका पत्र मिला। सुख और सतोष मिला। परिवारमें इन शव यात्राओं की विषाद भरी छायामें आपके पत्रकी सात्वना भरी किरण बहुत सुखकर नात हुई। इधर श्री कृष्णकिंकरजीका भी एक पत्र मिला था जिसमें उठाने कुछ पुस्तकें चाही थी। मैं अपनी बयवस्यामें उह कुछ भी नहीं भेज सका। क्या अब भी वे शान्तिनिकेतनमें हें या चीनक लिए रवाना हा गये? क्या अभी भी उहें पुस्तकें भेजी जा सकती है? मायवर तान गुन शानजासे मेरा नमस्कार कहिए। विश्वभारती मिली थी। अनेक घयमाद। उसमें प्रवाशित आपका विश्वविद्यालयका लेख मैने अपनी बलासमें पढाया ह और एम० ए० के विद्यार्थियोंको बहुत रुचिकर हुआ ह। आजकल आप क्या लिय रहे हैं? मेरे प्रवाशक बहुत ही सापरवाह ह। मैं उहें चारुमित्रा भेजनके लिए दो बार स्मरण दिला चका पर अभीतक उहाणे वह पुस्तक गायद आपके पास नहीं भेजी। तीसरा बार मैं खद लेकर आपके पास भेजूंगा।

अपने कुण्ड समाचार लिखें।

आपका
रामकुमार

*

प्रिय द्विवेदीजी,

२५ ५ ४४

बबीर तुलसी-नानक दादूका सग्रह मिला, सग्रह अच्छा हुआ है, लेकिन कितना ही छूट गया भी ह। सग्रहमें शृंगार, प्रकृति वणन, करुणा आदिक नमूनाका भी काफी देना ह, इसलिए उन्हें छाडना नहीं चाहिए।

चिट्ठी में अपने सिद्ध युगक सग्रहके कुछ नमूने भेजना चाहता था, मगर गडल करनेमें समय लगाना ठीक नहीं, खयाल छाड देना पडा। चौरासी सिद्धाओं से यागींद्र, रामसिंह लक्ष्मीचंद, अच्युतहमान (1100 A D) आदिकी कविताआका सग्रह कर चुका हूँ। 1X 1X शताब्दी का सौ पद्याकी होगी। मैने उदयनारायणका अप्राप्य कवियाके बारेमें लिख दिया ह, वह मदद करेगा, यदि प्रति बनारस, प्रयागमें हांगी। आगरा जयपुरमें हा तो भी लिखें। अन्तमें अच्युतहमानके सदेशरामका नमूना—

जइ अवरु उगि लइ राय पुनि रगियइ ।
 अह निनेहठ अगु जइ आभगियइ ॥
 यदि अवर छाडै रग, फिनु रगियई ।
 जो निस्नेहइ अग हाइ, अम्भगियइ ॥
 अह हारिज्जइ दविणु, जिणिवि पुणु भिट्टियइ ।
 पिय विरत्त जइ चित्त, पहिय किमि बाहियइ ॥
 जा हारिज्जइ घनहिं जीति पुनि भेंटियइ ।
 प्रिय विरत्त हू चित्त पधिव किमि परियइ ॥१०१॥
 “केगन कर सवरण न घन कुसुमहिं रच्चऊँ,
 काजल बह कपालहिं, जो नयनमि धरऊँ ।
 जो प्रिय आशा समहिं अगे मास चर ।
 विरह हुताश झलवकयो सा दुगुनाउ फर ॥१०६॥

आपका

राहुल माकृत्यायन

★

गुरुवार, २८ जुलाई ४४

प्रिय भाईजा,

पत्रिकाकी दानों कापियाँ मिली । आपकी इस गानकार कामयाबीपर कितनी
 मुबारकबाद हूँ । तार भेजनेका जो चाहता हूँ । हर निहायम आपके और गान्ति-
 निवेदनके धानकी हूँ । बाकी तारीफ़ आपके मुँहपर करूँगा ताकि आप पबरा
 जायें । मेरे बचनका अतिशयोक्ति समझें और आपका प्रयाग कागज़का तगाके
 यावजूद प्रबल हाता जाये । माहनलाल भाई मुझे अच्छा तरह याद हूँ । उनका
 छत्र मिलत ही मेने जा कुछ सम्भव था कह दिया और उन्हें इतिला दी । क्या
 उन्हें मेरा पत्र नहीं मिला । गन्सागराका बात मेन बाकी स्पष्ट कर दो । आप
 जान-बूझकर मुझ छेड़त हूँ, आपने मेरी सन् १०४० में मुझ को दानों काप
 भेजे थे या भिजयाय थे । उनका कौमल मुझ अनी अना करना हूँ । कौमल
 किताबोंपर दख नहीं है । अगर अब ना आप न समझें या अपन अनायम
 मनाश्रीं भेजें हूँगा । किसी दुनबायद लिए इस्तमाल हातीं या मैं कहता आरका
 दोन सहा, मगर यह भा था नहीं हूँ । हुनया बटा दोजिए । मुझ दूररागे पैस
 बगूल करके आपका दन है । अपना तरखम नहीं । हमारे अब ५ सालका लटका

एक इष्टरव्यु मुछ पत्र

४३५

है, उसका नाम परोक्षित है। इसका अलावा एक लड़की ८ महानेकी, उसका नाम शबनम रखा है। पिताजी इस शब्दका अनुवाद कर देना चाहते हैं। काम कश जारा है। मने अपने पहले खतमें आपसे भी यही सवाल पूछा था। जवाब का इंतजार है। मेरा इरादा सितम्बरमें आपके चरण छूनेका जरूर ह लेकिन अभी पक्की तरहस नहीं कह सकता। आप मुझे अलमस्त कहते हैं। काश आपको बता सकता कि आप कितने बडे अलमस्त हैं? आपके साथ बिताया एक एक क्षण मेरे लिए अमृत था। आपकी अलमस्तीके पीछे वेदना बहुत ज्यादा है, इसीलिए उच्चतर ह। आप ललित साहित्यके मैदानमें नहीं उतरते, यह देशका अभाग्य ह।

धलराज

*

स्टेला विला, पियोसाफिकल कॉलोनी

जुहू, बम्बई।

५ १ ४५

पूज्य भाईजी

सस्नेह नमस्कार।

मल्लिकजी मिले हागे, मेरे बारेमें बहुत कुछ बताया होगा। और आपने मुझे कुछ-कुछ जरूर याद किया होगा।

यह बताइए कि पुराने जमानेमें रूपकका नाटक-कलामें क्या स्थान था। रूपक क्या होते थे, किस जमानेमें लिखे जाते थे और यह नाटकस विभिन्न थे या नहीं, इनकी क्या विशेषताएँ थी। अगर बता सकें कुछ, विस्तारस, तो ठूपा होगी।

यहाँ कुछ ऐसा बँध गया हूँ कि हिल नहीं सकता। लेकिन अजीब बात ह कि आपका लिए थ्रडा और प्रम जरा भी कम नहीं हुआ। आपको बार बार याद करनमें जरा भी मेहनत नहीं करनी पडती। अपनी क्षुद्रताका अहसास जरूर होता ह। लेकिन इसे कम करनेकी कोई तजवीज आप पग नहीं करते। यह भा नहीं कि अगर म नहीं आ सका तो आप हा दा चार दिनोंके लिए यहाँ आ जायें। यह शकत ह कि सिफ छोटे बड़वाले लोग ही गाड़ीमें सफर कर सकते हैं। मने आपस भी उच बड़वालोंका बडी सुविधासे रेलमें सफर करत दखा ह।

गुलु यहाँ अच्छी तरहस ह।

धलराज

*

मायवर,

लेख भेजनेक लिए हृदयसे आभारी हूँ। मुझे अकिंचनपर आपकी इतनी कृपा है, यह देखकर श्रद्धासे मन-ही-मन आपका नमस्कार करता हूँ।

'नया साहित्य में आपका लेख पढ़ा। निश्चय ही ऐसे सनेज लेखोंका आवश्यकता है जो चिरकालसे साते हुए हमारे देशको जगा सकें।

'हंस'का जनवरी अंक दस-बारह दिनमें प्रेसका लिया जायेगा। इस अंकसे सन् '४६ का आरम्भ होगा। आपको किसी रचनाक बिना मूना रहेगा। पुन लेखका माँग करत हुए ता जामें हिचक मालूम होती है, इसीलिए आपसे अपनी कोई नवान कविता भेजनेका अनुरोध करता हूँ। अत्यन्त कृपा होगी।

अपने पिछले पत्रमें आपने यह अमिलापा प्रकट की थी कि 'हंस'में सम्पादकाय टिप्पणियाँ और जाया करें। इस विषयमें आपका परामश चाहता हूँ। मुझे ता हर महान सम्पादकीय टिप्पणियोंके लिए विषय ही अस नहीं मिलते। राजनीतिक विषयोंपर मैं टिप्पणियाँ देना नहीं चाहता क्योंकि इसस 'हंस' परिवारमें अवारण ही बमनस्य पलनेकी आगका है। साहित्यक क्षेत्रमें अगर हम एक हैं तो राजनीतिक क्षेत्रमें विरोधाका बोधमें लाकर आजका अपनी एकताको धाति पहुँचाना मैं कलत समझता हूँ। इसीलिए राजनीतिक टिप्पणियाँ देना बन्द कर लिया है। 'गाय' यही कारण है कि 'हंस'में कम्युनिस्ट भी लिखते हैं और काँग्रेस भी, क्योंकि सभी स्वाधीनताकागो साहित्यकी रचनाके कायमें निष्ठाक हकर हाथ बँटा सकते हैं। राजनीतिक क्षेत्र छूट जानेपर तुरत हमारा ध्यान साहित्यिक क्षेत्रकी मरगरमियों, गालिया और साहित्य-सम्मेलनोंकी ओर जाता है। वह भी कुछ अधिक हाते नहीं, कभी-कभार हो जान हैं तो उनपर टिप्पणी भी बली जाती है। अब रही यात साहित्यिक समस्याओंकी। सा पहली यात ता आप मुझे ऐसा साहित्यिक समस्याओंकी टालिका भेजनेका कृपा करें जिनपर मैं अध्ययन करके कुछ लिख सकूँ। मुझे स्वयं विषय कृपत नो। ता इतनी कृपा ता आप मुझपर अवश्य करें। ऐस विषय जिनपर प्रगतिवादीको स्पष्ट गति का उद्घाटन आवश्यक है। इसमें एक कठिनाई यह है कि सभी प्रगतिवादी सभी समस्याओंपर एक-स विचार नहीं रगत और न य समभव है। इसलिए 'हंस'क सम्पादकायको प्रगतिवादीको प्रामाणिक स्थिति मानता भा अधिक टाल न होगा। ये अधिकत अधिक मरे निम्नो विचार है सकत है। इसलिए कना कना यह विचार भी मनमें आता है कि सम्पादकीयका स्वम्भ हा उपा लिया

एन इण्टरन्यू कुछ पत्र

जाये और 'हस'का भिन्न भिन्न विचारधाराआके सघपका क्षेत्र (open forum) बना दिया जाये । लेकिन फिर सम्पादकीयकी आवश्यकता भी सामने आती ह । इसलिए आप ऐसे अधिकसे अधिक विषय मुझे भेजें जिनपर चिन्तन अपेक्षित ह ।

यदि म आपको यशपालकी 'दि या' और 'निराला जी की 'प्रभावती' भेजूं तो उनका आलोचनात्मक परिचय (जय घोषेके समान) लिखनेका अवकाश आपका रहेगा ?

उत्तर अवश्य दें और जनवरी अक्के लिए कुछ भेजें भी अवश्य ।

सादर,

आपका विनम्र सेवक
अमतराय

*

एविजवीशन रा०, पटना
५ १२ ४६

मा०यवर,

आपका यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आजकल म पटना कॉलेजके हिन्दी विभागमें आ गया हूँ । एम० ए० में सत्रमतके special paper को पढा रहा हूँ । इसी सम्बन्धमें कुछ बातें पूछनी थी । आशा ह जो वाट दे रहा हूँ उमके लिए आप क्षमा करेंगे ।

१ आचार्य श्रित्तिमाहन सनने चार भागमें कबीरकी रचनाओका संग्रह किया है । यह संग्रह कहाँस मिल सकता ह ? क्या यह ग्रन्थ सटिप्पण ह ?

२ रामसुमार वमाके संग्रहका छाडकर ऐसे कौन-से संग्रह ह जो सटिप्पण ह ? (बलवेडियर प्रेसर संग्रहका भी छाडकर)

३ कबीरकी रचनाआका अगरेजीमें अनुवाद ह या नहीं यदि ह तो कहाँसे प्राप्य ह ?

४ 100 poems of Kabir (Trans by Tagore) प्राप्य ह या नहीं, यदि ह तो कहाँस ?

५ दादूपर आचार्य महाशयका बंगलामें जा ग्रन्थ है वह कहाँस मिल सकता ह ? Medieval Mysticism पर उनकी पुस्तक कहाँस प्राप्य ह ?

६ दूसर सत्र कवियाका रचनाओक प्रामाणिक संग्रहोक नाम (मीराको छोड दें, बलवेडियर प्रेस और सुन्दर ग्रन्थावलोका भा) अनुवाद प्रातिस्थान इत्यादि ।

७ कबीर और मूरदासपर आपकी पुस्तकें सम्प्रति प्राप्य हैं या नहीं—हैं तो कहांसे ? बम्बईका पूरा पता भेजें । 'कबीर' तो पुस्तकालयमें भी है, (मेरी अपनी प्रति बहुत तिनोसे शायद है) पर 'मूरदास' नहीं मिल रहा है—मुझे कुछ दिनांक लिए उसकी प्रति अवश्य चाहिए, यदि out of print हो ।

आपसे और बातें भी पूछनी हैं लेकिन एक धारके लिए इतना ही बहुत है । मैं आपसे साग्रह अनुरोध करूंगा कि कबीरकी समस्त प्रामाणिक रचनाओंके संग्रहका सम्पादन आप अपने हाथमें लें । ऐस संग्रहोका महत्त्व तभी होगा जब साथमें विशद टीका भी हो । जायसीका जंगरेजा अनुवाद हो चुका है, उसे अभी छाड़ दिया जा सकता है मोरा और मुदरदामने भा सटाक सस्करण सुलभ है किन्तु दूसरे सत्ताकी वाणियोका एकत्र संग्रह होना चाहिए—लेकिन वह भी सटाक है । 'मूर सागर का सम्पादन न होना हिंदीके लिए लज्जाका विषय है । ना० प्र० स० से जिस प्रस्तावित सस्करणके कुछ भाग निकल हैं उस तो बंद ही कर देना चाहिए । भटकीली छपाईके बदले यदि पदोका अर्थ दिया जाये तभी उसकी कोई उपयोगिता होगी ।

तुलसी-साहित्य इस दृष्टिसे सचमुच ही सौभाग्यमाली है यह हमारे लिए भी कम सौभाग्यकी बात नहीं । रीतिकालकी भी प्रायः समस्त पसिद्ध रचनाएँ टीका टिप्पणीके साथ छप चुकी हैं या छप रही हैं । लेकिन सान साहित्यकी बिल्लाक गलमें भी तो किसानका घण्टी बाँधनी ही चाहिए । यदि आप इसका बोटा नहीं उठा लें तो हम मूषकके मूषक ही ठहरें ।

क्या मैं उम्मीद करूँ कि आप शीघ्र ही पत्रोत्तर देकर अनुगृहीत करेंगे ?

विनीत
नलिन

★

श्री राष्ट्रभाषा विद्यालय
गायपाट, काशी
ता० १० १२ ४६

प्रियतर त्रिगोत्री,

इतने तिनोँ तक पुपधार बडे रत्नेके साथ धारने साक्षा ही कि तिराता जयन्ता तथा अभिनयन पदकी धारना गार्डमें पत्र गयी । पर हम लोग कुछ

एक इष्टरव्यू कुछ पत्र

४७*

न कुछ काम करते रहे हैं और अब वह स्थिति पहुँच गयी है कि आपके समीप कायकी एक स्पष्ट-सौ रूपरेखा लेकर उपस्थित हो सकें ।

आरम्भिक वक्तव्य तथा निराला अभिनन्दन ग्रन्थके सम्पादक मण्डलमें आपका गुम नाम दिया गया है । ग्रन्थके लिए आपका एक लेख 'निरालाजीके निबन्ध और समीक्षा' पर ता होगा ही, दो-तीन विषय ऐसे हैं जिनपर शान्तिनिकेतनसे ही सामग्री मिल सकती है । आधुनिक चानी और आधुनिक एशियाई अथवा जापानी साहित्यपर दो-तीन लेखोंकी व्यवस्था आप ही करेंगे तो होगी । रूसी, योरॅपीय तथा अँगरेजी साहित्यके लिए हम राहुलजीको लिख रहे हैं । अमेरिका के नवीन साहित्यपर हमारे यहाँ (काशा विश्वविद्यालय) के एक अमेरिका प्रवासी अध्यापक सग्रह काय करेंगे ।

आप यह भी सुझानेका कृपा करें कि लेख और लेखक-सूचीमें क्या क्या बेशी है । उसमें परिवर्द्धन या परिष्कार किस रूपमें किया जाय ।

अभिनन्दन ग्रन्थके लिए नवीन कलाके द्योतक कतिपय चित्र भी सम्भवतः शान्तिनिकेतन-वे-द्रस मिल सकेंगे । इसके लिए हम (यदि आवश्यक ही तो) आवश्यक मूल्य भी चुकानेकी चेष्टा करेंगे ।

अब सग्रहके लिए एक प्रतिनिधि मण्डल बडे दिनोंके अवसरपर कलकत्ता जायेगा । उसको भा आपका सहयोग वाञ्छित होगा । दो-तीन दिनोंके लिए आप कलकत्ता जायेंगे तभी काम बनेगा । प्रतिनिधि मण्डलके कलकत्ता जानेकी नियम आदि हम आपको सूचित करेंगे । इस बीच आपका पत्र प्रतीक्षित रहेगा । आपके पत्र सहयोगक विना इस अनुष्ठानकी सफलता सिद्ध्य ही रहगी ।

विशेष सब प्रसन्नता है । आशा है आप स्वस्थ और सान्द्र ह ।

आपका

नन्ददुलारे वाजपेयी

पुन पत्र लिखते लिखते स्मरण आया कि आप हिन्दी साहित्य सम्मेलनक कराँची अधिवेशनमें सम्भवतः अवश्य हो जायेंगे—साहित्य-परिषदक अध्यक्षकी हमियतमें । तब तो आपको शायद २४।१२ की ही खाना होना पडे । कृपया लिखें कि २३ और २४ के दिन आप कलकत्तेके जयन्ती सम्बन्धी कायकी द सकेंगे या नहीं ?

न० वाजपेयी

*

प्रियवर द्विवेणीजी,

विश्वभारतीका वह अक मिला जिसमें 'पाकिस्तान'की आलोचना आपने कृपापूर्वक लिखी। अनेक धन्यवाद।

ताते और कुतियाके सम्बन्धमें मुझे एक बात अवश्य निवेदन करनी है। ये दोनों पात्र स्टेजपर सफलतापूर्वक आ सकने हैं। विदेशीय रगमचपर यह हाता है और इस सम्बन्धमें मैंने थोड़ा बहुत पता भी है। परन्तु ये दोनों पात्र असली न हाकर नकली होते हैं। तातेका पिजरा और नकली पिजरा रहता है। रगमचपर किसी 'दिग'के निकट पिजरा टांगा जाता है और 'दिग'क पाछस आत्मी बोलता है जो दिखाई न देनेके कारण तातका बोलना ही जान पड़ता है। कुतिया भी नकली रहती है उसकी भा भोंके लिए एक छोटा-सी मगान त्रिम पात्रक साथ वह कुतिया रहती है उससे पाकेटमें छिपी रहती है और वह पात्र समय समयपर उस दावता रहता है जिससे भों भोंकी आवाज निकलती है। हाँ, इतना अन्तर अवश्य करना होगा कि कुतिया दौडती और चन्गी न लिगाई जाकर पात्रके गोत्रमें दिखायी जाये। यह अन्तर रगमचक प्रबन्धकर्ता सहजमें कर सकते हैं। विदेशोंमें तो इस नाटकस भी कठिन नाटक रगमचपर खेला जा सकते हैं। मेरी बनी इच्छा है कि शिन्धीका एक सुन्दर रगमच निर्मित हो, जो 'रिवान्चिग हा', परन्तु समय ही नहीं मिलता।

अब मैं आपका अपने कुछ ऐसे नाटक भेजूगा जिनमें एक अन्तमें एक ही दृश्य है और जो 'गमच्यार्म' तक सरलताय बही भी खेल सकते हैं। इनमेंसे अधिकांश हाल ही में प्रकाशित हुए हैं।

विधान परिषद्के लिए मैं यहाँ आया हूँ। ता० ३ मईकी विधान-परिषद् समाप्त हो रहा है। इसका बाद जबलपुर जाऊंगा और अब दो मास कराराव उसी आर रहूँगा।

विश्वास है आप प्रगल्भ हैं। पुन धन्यवाद।

भवनीय
गोविन्द दाम

*

पूज्य पण्डितजी,

आपको पत्र लिखत हुए सकोच होता है क्याकि आप बहुकृत्य बहुकरणीय होनेके नाते अत्यधिक यस्त होते हैं। कुछ दिन जो आपक पास रहकर आपका अप्रत्याशित स्नेह पाया था उसाक कारण जो भूल हो गयी कि आपको यहाँ आकर सहजभावसे कई पत्र लिख गया उनमें एक Taking liberties की भावना थी जिसका शायद मुझे अधिकार न था अतः क्षमा करें।

और सब बातोंका उत्तर तो प्रकट है किंतु एक कष्ट आपको उठाना ही होगा। आपने 'भारतीय पुनर्जागरणकी भूमिका के प्रारम्भमें एक वक्तव्य दिया था, सो यहाँ खो गया है। वह फिर लिखकर कृपया शीघ्रातिशीघ्र भेज दें। जहाँ तक मुझे ध्यान है उसमें शायद निष्पत्तरूपसे लिखनेपर आपने प्रकाश डाला था। आशा है इसमें निराश न करेंगे।

एक बात और। अच्छा सा मजाक है। प० श्रीराम गर्मा थे तो पहलेसे ही क्रुद्ध कि मैं कम्युनिस्ट हूँ, परंतु शान्तिनिकेतनमें मिलनेके बादसे अधिक नाराज हैं—ऐसा सुना है। और जिस जिसने यह बात मुझसे कही है उसका कहना है कि आपने भी पण्डितजीसे जाने अनजाने क्या कह दिया है कि वे और खोल गये हैं। हम तो जानते हैं कि आप भी प्रच्छन्न कम्युनिस्ट विरोधी हैं। और सबसे श्रेष्ठ है कि अब महा आघे कम्युनिस्ट तो मुझे कम्युनिस्ट मानते हैं और दूसरे आघे petit bourgeois, क्या इलाज है? तिवारीजी, तोमरजी, बिबरजीकी नगस्कार। दोष कुशल है।

सस्नेह

रागेय राघव

★

१११४ बागमुजफ्फरख़ाँ, आगरा

३ ७ ४७

पूज्य पण्डितजी

प्रणाम।

कृपापत्र। धन्यवाद।

मित्रान को क्या उसपर विश्वास करके तो आपको शायद ही लिखा। कितनी Classic भाषामें आपपर प्रहार किया। हार गये आप। सीधे आप ही

का ता लिखा, किसी औरसे तो बहा भी नहा न ? ऐसी बातें कहनेवाले क्या बारासे पढ़ेंगे हा मैं भलोभाति परिचित हूँ । क्षमा करें बर्नाडशसि निसोंने कहा था—*I have some Complaints against you* उसने कहा था—*So have many* आप भी ऐसे ही लिख दें । प० रामपूजनजी तिवारीका २२ ५ ४७ का पत्र रत्ता हूँ जिसके दूसरे वाक्यमें उन्होंने यह लिखा ह कि वे मुझे लिखनेकी सोच रहे थे । मैंने बिना सोचे उन्हें उत्तर दिया था । फिर मुझे उनका उत्तर नहीं मिला । आगरमें भी लगातार न रह पानक कारण बाफ्री डाक अस्त व्यस्त रहती ह । कभी-कभी शलत जगहार पत्र Readdress कर दिये जाते ह । उन्हें फिर लिखता हूँ । मैं पत्र लिखनेका आदो हूँ । फिर उन्हें उत्तर न देता ?

खेद ह आपकी आगाव अनुरूप मैं आजकल प्रसन्न नहीं हूँ । चिन्तित हूँ । शांतिनिकेतन आनेमें कुछ देरी होगी । भरतपुरमें भयानक जाट भेव दगा हा रहा हूँ—गुना ही होगा । मैं गाँवमें मिलकर चल् दनवाला था । वत्र २६ ता० का पत्र मिला ह—गाव न आया । २७ को News ह गाँवमें आग लगना, हत्या इत्यादि । आगरा बधानारी गाटीमें खतरा लगा ह । बारी लूटी गर्वी थी । आगरमें भेव इक्ट्ठे हा रहे हैं । भाग भागकर । Prices shoot up कर गयी हैं । पानीक नोचे आग ह । भार्वा पत्रोत्तर प्राप्त करना मरा मर्ग पहना काम ह । फिर दो सालके लिए आगरका इन्तजाम करव, काम Wind up करनेमें दा हीन न्दि लमेंगे । फिर हो आऊँगा ।

समितिके निणयस सूचित करेंगे ?

इपया उत्तर दें । शांतिनिकेतनस पत्र यहाँ ६ दिनमें आता ह । आज माद का लिखा ह । सबका ययायाग्य—

सनेह
रागेय राधव

*

टीकमग (१९४७)

३७५७

प्रिय शिबजी,

सादर प्रणाम ।

इपा पत्र मिला । शिवागव आम-यास यति आप शोरोदावाग यपारंग ता बरी इपा हंगो । एक सप्ताह पूव सूचना मिल जाय ता मैं अपने ब्रह्मचर्यके

एक इष्टरव्यू कुछ पत्र

४८३

साहित्यिक बंधुओका भी आपसे मिलनेके लिए योता दे सकूंगा । ऐसे अवसर धार-धार नहीं मिलते । मुझे उदूका वह कविता ठीक ठीक याद नही आ रही

“कि हिलमिल बैठ लें दो चार दिन हम
त्रयामत की घड़ी सर पर खड़ी ह”

वैसे अपने सिद्धांतानुसार तो ‘अजरामरवत प्राणो’ ही ठीक है । शायद अपने अपने स्थानपर दोनों ही भाव ठीक ह ।

साहित्यकी दुनियाकी उपमा थड क्लासमें आपने खूब दी । उसमें ‘देखते नही हा, डबाढा है ।’ कहनेवाले भी बहुत से ह । पर चिरजीव चतुर्वेदीका तो उसपर पैतृ अधिकार होगा—आपक नाते—और मेरे आशीर्वादका टिकिट भी साधम हागा । अभी कल हा मेरे एक पुराने साथी श्री चंद्रवल्लभजी शास्त्रीक सुपद शोभाचंद्रजीकी प्रथम पुस्तक एकलय बम्बईसे छपकर आयी ह । रजिस्ट्री से आपकी सवाम आज भिजवा रहा हूँ । कृपया पढ लीजिए और अपना आशीर्वाद भी भेजिए । शाभाचंद्र हानहार युवक ह । प्राइवेट तौरपर First Division म बी० ए० पास किया ह—जो बहुत मुश्किल ह । सस्कृतका भी साधारणत अच्छा ज्ञान ह उन्हें । आपके प्रशंसक और भक्त है ।

मेर अनक मित्राक पुत्र मेरे comrade बन गये ह । चि० चतुर्वेदी भी मेरा comrade बनगा ।

हम लोग अपनी स्प्रिटका तरोताजा बनाये रखें और वयावृद्धाकी सूचामें नाम लिखानेम इनकार कर दें तो नवयुवक मण्डली हमारे साथ रहेगी । [इस नुसखेमें घूंटता + घूतताकी कुठ-कुठ मात्रा जीर चाहिए ।] श्री जनेन्द्रजी मुने ‘अकाल युवा’ कहते हैं । प्राइवेट तौरपर मन नुसखा मुजरब आपको बतला दिया ह । गायनीय प्रयत्नत ।]

बिनात
बनारसीदास

पुनश्च भगीरथ तथा गगाके विषयमें मुझे मसाला चाहिए । साहित्य गगा नामक एक लेख लिखनेका विचार ह । कुछ लेख आपकी सवामें दा पैकटा-द्वारा भेजे जा रह ह । कृपया उनका सदुपयोग कर लीजिए । पहुँच लिखिए । इस बाबमें ९॥ हजार प्रतिमा इन ट्रेबटाकी वितरणाय भेज चुका हूँ । इस द्वाारा विशुद्ध साहित्य निगरिणोंमें अस्सी रुपयमें अरिक् पोस्टेज व्यय हुआ, छपाईका खच अलग था ही और घरक कई व्यक्ति इनक पैर इत्यादि करनेमें लगे रहे ।

इस शरीर मुक्तमें गूढ़ सात्त्विक भाजनका सदावत नहीं-बहोस कभी कमा तो
हाना ही चाहिए। यदि साधन-सम्पन्न व्यक्ति कुछ नहीं करते तो हम शराब लोग
ही अपनी शक्ति अनुसार कुछ करें। दशहरेक आस-पाममें ही सधयमय जीवनका
प्रारम्भ करना है। लेख लिखकर आजीविका चलाना कोई आसान काम नहीं।

शायद मन आपका नहीं लिखा कि श्रीशाल्मियानोंने साताहिय नवयुग में
सात सौ रुपये मासिकपर मुझे बुलाया था पर मैंने अपनी कलम बेचना नामुनासिब
समझा।

अपना 'असंस्कृत' होना मुझे बहुत अमरता है और मुश्किल यह है कि
संस्कृत—समझार संस्कृत—आसानोसे नहीं मिलते। दगिए फ़ोराजावादमें
कोई मिलता है या नहीं।

जावनन नवान अध्यायमें प्रारम्भ करते हुए मुझे उत्साह और ह्य है।
पूज कक्का क्का करत थे, 'कभी धो घना, कभी मुट्टो भर चना ता कभी यह
भी मना' जा कुछ हागा ठीक ही होगा।

★

चिरगांव (शांति)

पूज्य भया,

३० ११ ४७

प्रणाम। सुभाग्य और समान्तरणीयजनन समान्तरस प्रमन्नता स्वाभाविक है।
श्रिती साहित्य सम्मलनके निगयस मगलाप्रमाल पारितापिकनी है प्रतिष्ठा नहीं
बढ़ो वरन् समस्त हिन्दी प्रेमिया और सबकोंका गौरव बढ़ा है। इन अवसरपर
मेरा सादर प्रणाम कृपया स्वीकार कीजिए।

आगा है आप सानंद और स्वस्थ हैं। एक ही दो श्रिमें मर्ी राय
कृष्णासजी, श्री मुमिप्रानन्दन पठ और अनेयजी पधार रहे हैं। अपना
अस्वास्थ्य एग न अवसरपर विशेष पीडा पहुँचाता है। इधर दवायन साथ ज्वर
भी रहे रहकर अपना बल बार-बार दिगा रहा है, सा भी मेर-जत्र जनर।
पर मुझे विश्वास है कि इस कठिन प्रसंगसे आप सब वायुजनका पुनर्जागनात्राके
मन्तर पार पा जाऊँगा। अभी जीवनमें कितने ही सकल्प पूर नहीं हुए, जिनमें
एक गान्तिनिवृत्तकी यात्रा भी है।

धन कुशल है। भया ममस्कार बहते हैं।

आपका

मियारामररण

★

सहृदय बंधुवर, प्रणाम ।

कल 'हिमालय'में आपका लेख ('जनताका अन्त स्पर्दन') पढा । आपने मेरे मत-युक्तो अपने गम्भीर चिंतनका मनोबल दे दिया । आपकी माहस्यिक साधनामें जो सामाजिक शुभचिंतना है उसीके कारण आपकी गुणग्राहकताने मेरे दीर्घ कष्टको भी एक आवाज दे दी । मैं सचमुच कृतज्ञ हूँ । आपका समर्थन पाकर मेरी भावनाको एक गम्भीर ममस्थल मिल गया है । इन दिनों मैं जिस मनोजगतमें भ्रमण कर रहा हूँ उसका रसात्मक परिचय मन अपनी नयी पुस्तक (पथ चिह्न) में देनेका प्रयत्न किया है । पुस्तक अभी प्रकाशित नहीं हुई है, किन्तु उसकी अग्रिम प्रति लेकर वातावरणमें घूमा हूँ, लोकासं मिली हूँ । लोकाको पुस्तक बहुत पसंद आयी । चतुर्वेदीनाको पुस्तकका एकाध वाक्य सुनाया था । वे मुग्ध हो गये । पुस्तक हाथमें आ जानेपर वे भी उसपर विस्तारसे लिखेंगे ।

प्रकाशित हो जानपर अथवा उसकी अग्रिम प्रति लेकर मेरा विचार शांति निवेदन आनेका है । इस धार मेरी बातें अधिक स्पष्ट रूपमें आपको सामने आ सकेंगी । पुस्तकके अनुसार कुछ रचनात्मक कार्य भी देखना चाहता हूँ । मिलने पर विचार विनिमयका सुयोग पाऊँगा । कृपया सूचित करें कि शांतिनिवेदन अभी कबतक खुला है ? छुट्टियाँ शुरू होनेके पहले एक बार गुरुदेवक 'जगती पारावार किनारे का मनोप सप्ताह देखकर अपनी यात्रा सुफल कर लूँगा ।

अस्वस्थताके कारण आप करवाची नहीं जा सके । अस्वस्थ हाते हुए भी आप गृहस्थी, अध्यापन, साहित्य और समाजके स्नेह सम्पाननमें सन्तुष्ट हैं, आपकी इस कमनिष्ठापर कौन नहीं निछावर हा जायेगा । आपकी परेणानियाँ मन देखी हैं, धैर्यम भला कितने लोग अपनको जागरूक और सक्रिय रख सकते हैं । प्रभु सत्त्व आपका अपना प्रेमबल प्रदान करते रहेंगे ।

इन दिना आपका स्वास्थ्य क्या है ?

आशा है आप सपरिवार प्रसन्न हैं । गृहिणियोंको सादर नमस् । बच्चाको प्यार और आशास ।

मित्राको यथा योग्य ।

आपका आत्माय
शांतिप्रिय द्विवेदी

*

धार्मिकीय पण्डितजी,

'कवि की कविता क्या मिली, नव-वर्षका नव सन्देश प्राप्त हो गया। मैं तो अभातक क-योकेशनवाले दृश्यमें ही डूब उतरा रहा हूँ। बबुआवाला चित्र गायन आगामी क-की बहुमूल्य स्मृति बन जाय। उसे सूमके घनकी भाँति संजो कर रखूंगा। यद्यपि मेरा जो नहीं भरा, साल गाउनके बगलमें अक-कर सने हानेका हसरत ता अभातक जी में भरी ही ह, उस समय मेरा पोज देखकर आप बिसमिल्लाह कर उठते। बकरीक दूधमें गुड डालकर पिलानेवाला मेरी अन्नपूर्णा भाभी कहीं वह मनहर दृश्य देख लेतीं ता बाग-बाग हो जाती। ऐसे आनन्दके क्षण सरलतासे कल्पनामें नहीं लाये जा सकते। मैं बादमें साचता रहा कि उन्हें रखनऊ न लाकर आपने मूल अवश्य की, क्योंकि उस दगामें नारदकी नारदायी सिल उठता। एक-आध और करतब दखनेका मित्र जाते। म धागा करता हूँ कि घान कूटनेका अस्त्र मेरे लिए हस्वमामूल सुरभित हागा। सच मानिए, रखनऊक वे चार तिन अपनी चारतामें अनोख बन पने हैं, सम्भव है प्रबोधपूर्व पारमित्रता आकलन भी कोई संयोग ही हो।

या ता रखनऊका दृश्य विलकुल ही अप्रत्यागित न था, पर इतने शीघ्र इस गुम घड़ीका दगाक बन सकूँगा, यह साच न पाया था। मैं अपने दुभाग्यकी प-पता तो कर लेता हूँ, सौभाग्यकी नहीं कर पाता। बिना इस घटनाके कालिदास के भावग्यिराणि जननांतर सौहृदानि'का अप टीक टीक समग न पाता। जैसे जन तिन बातन जाते हैं, वह सुयोग सचमुच हा सयाग मालूम पड़ता ह और बहु मूल्य हाता जाता ह। उस तिन यति देवसभाक सन्ध्योंमें विराजमान हानके कारण आप पारस्परिक सौहा विनिमयमें अधिक व्यस्त न रहे हाग ता सराजिनीजीकी उम भव्यमूर्ति (अब तो अन्तिम)को आजीवन न भूल सकेंग। अब समझमें आ रहा ह कि उनको वह दासि, वह तेज, वह भावविह्वलता, सचमुच हा दोषक 'सभाला था। भगवती और योणापाणि'क उस मधुर समन्वयने, उक्त उत्सवमें जा सञ्जीवना सचारित कर दी थी, वह अथ इतिहासकी बात बन चुकी हैं। ऐसे ऐतिहासिक महापवकी तो आपने भी कभी कल्पना न की होगी। द्विती प्रातिकी आप चाहे मन्त्य न प्रदान करना चाहें (यद्यपि मेरे लिए यह भा वम ऐतिहासिक मन्त्यकी नहीं) पर महोत्सवकी गुणताका यह जाग्रत्यमान दृश्य सम्भवत आप भी इय वारक मानव जीवनमें विस्मरण न कर सकेंग। गुणककी प-हें मूर्तके द- सम्भवत परममट्टारिकाक व ममच और आमायतापण दो- आरकी

एक एकरव्यू कुछ पत्र

सबसे बड़ी निधि हाने । इसीलिए उपयुक्त हास्यात्मक व्यंजनाको भुलाकर, मेरे इस कथनमें हादिक सत्य है कि उस दृश्यके दृग्-रूपमें भाभीजी तथा शांति निकेतनकी सुहृद मण्डलीका होना परमावश्यक था । वाजपेयीजी तो प्रत्येक पल पर बनते—मिटते नजर आते । उस दिनके अनुभवसे अक्डकर कह सकता हूँ कि अभिनेता हानेमे दशक होना कही बडे सौभाग्यका चिह्न है । अब तो आप अब य हा दवे छिपे मेरे भाग्यकी सराहना करेंगे, ईर्ष्याविश ही सही । उस चित्र पटका वणन मैंने अपने कालेजके सम्भाषणोंमें जिस तमयताके साथ किया ह, यदि आप श्राताओंमें हाते तो ध्यानचन्दकी ठाय ठाय भूल जाते । मौका लगा तो आपका भी सुनाऊँगा और यह भा कि लाल गाउन किसको बैसा टिल रहा था । अब कभा ऐसा मौका आया तो भाभीजीका स्वय लिवाकर लाऊंगा और एक लाल गाउनिया भी बनवाकर साथ लेता आऊँगा । नारदस बत्कर दूसरा कोई खिभाव तो अब मिलना नहीं ह, हृदसे हृद बीरबल बा जाऊँगा ।

अब उस पचडेको बाद कहें और कुछ स्वायकी बात कहें, वैसे भी माकी पुलक इम प्रकार उटल देना आत्मसयमका अभाव कहा जायेगा, विशेषकर आजके यात्रिक युगमें । और मैं किधी न किमी तरह गम्भीर बननेका उपक्रम कर रहा हू । इतनी गम्भीरता जो वाशीक महताकी सभाभ मेरा रोव जमा दे । आपने मुझे इतने थाडे-स परिचयम ही इतना धृष्ट बना दिया ह कि साक्षात्कार होनेपर वृत्त सी आगल वाते भी बक जाता हू कही भविष्यमें इसका ग्यामि याजा न दना पड । यह भयका तत्त्व किसी-न किसी अक्षमें सदा मरे साथ लगा रहता ह, शायद इसका मूल आदिम सम्वार ह ।

एक विचित्र बात, अभी जब आपका पत्र आया तो उसे पढकर सभी परिवार कुछ क्षणाके लिए 'मग्न रहे चाला' बन गया । चित्र और कविताका स्वर स्वय थीमतीजी उपस्थित हुई और ऐसा रस ले-लेकर पत्रन सर्गी, जैसे वाणभट्ट की निडनियाका अभिनय देखकर आयी ही और उसे सबका सुनाती फिर रही हा । म पत्र और चित्र सिरहाने रखकर सो गया और स्वप्नमें देखता हूँ कि आपन थामदभागदत्त सप्ताह सुननेका निश्चय किया ह और श्राताओंमें मैं सबसे आगे बैठा हुआ, साँस रोक्कर प्रारम्भकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ । इस हँसी न समझिएगा, सचमुच ही आज आपके पत्रके साप यह स्वप्नरूपमें दबसयाग घटित हुआ । यद्यपि मैं आध्यात्मिकताका विशेष कायल नहीं, पर इस स्वप्नसे अनायास ही मन प्रसन्न हा उठा ह, जो हलका हा गया ह । सम्भव ह इसका कारण यह हा कि आजकल मैं नियमसे थीमद्भागवतका पाठ कर रहा हू, केवल त्रिभुक्त भावस पागीवाला पद प्राप्त करनेकी अहम्मयना मुझमें नहीं ।

इस स्पेटमें स्वायवाले बात तो छुटी ही जा रही है इन गरमोकी छुट्टिमा में मुझे थोसिस समाप्त करनी ही है, अब ता उसे पूरा न करनेका अपयग मैं अपने सिरपर नहीं लेता । भारतीय परम्परामें भक्तगण सदासे अपनी भूलाको भगवान्के सिर मन्ते आये हैं । इस रूपकस चिडिआ नहों, लौकिक रूपक जल्दीमें भूसा नहीं पाया है । इसी स्वायवस में पुन गान्तिनिकेतन-वासका विचार कर रहा है । या भी अपमें एक मास नियमसे आपके साथ रहनेका विचार व्रतका रूप ले बैठा ह । आप लिखिए कि इस सिर दन्के लिए तैयार है या नही ? भाभीजीस चर्चा न कीजिएगा नहों तो गुडके पासल आना गुरु हो जायेंगे । धीर मेरी भरम्मत हागी सो अलगसे, पिछली बार तो दुम दबाकर निकल आया पर अबकी एक भी हथकण्डे नहीं चलनेके । जहाँतक भूसे यात्रा जाता है आपने इस प्रीप्समें वागो वासका विचार कर रखा है । मैं अभीसे आपक लिए वहाँ पर एक साक-सुपरे वेंगलेका प्रवच कर रहा हूँ, पर वह इसी गतरर कि सिद्धाय मा गगा-स्नानमें सम्मिलित हुआ करेगे । आपको बहू भी इसरार कर रही हैं कि भाभीजीसे भेटना सुपाग जुटाया ही जाये । वे पुतासे बढाईका काम सोखना चाहती है । वरुण साह्य निय पत्तलका बनाया शबला धारण करत है और पास-पडोसके लोग भी सतकी बढाईपर मुग्य है । भूसे तो वह विगेप पसन्द आपन नहीं पा पर श्राभतीजी धुरी तरह रोपी हुई है । अपने बलात्मक पानने लिए क्या कहे ? यदि आपने काशीमें प्रीप्स-वास किमा तो उन्हें भी भाभीजीके दसानाका सुयोग या सीभाग्य प्राप्त हो सवेगा, और इस ही हन्तडमें मेरी भी जान बच जायेंगे । आगा ह इस दुविष सुयोगका सुय आप मेरे हापसे ग जाने देंग । चाहता है कि आपके अखाडका सतमार कहला सनेका गौरव प्राप्त कर सनूँ । हीसला तो यह है कि कभी बडे बडे ज्योतिषाचार्योंकी भी भात द सनूँ । पर वह एक जमनी बात नही है । आगा ह मेरी गटनपर जरा भी सूरिमायत नहों दिसायेंगे और एक दगकमें इस दुनियामें रहने सपस मुडोल तो बना ही देंगे ।

भाभीजीकी मेरा साष्टाग प्रणाम । बसुआने भाभीजीका एक सुन्दर चित्र और सतनऊके अय चित्र भी नेजनकी बहे धे, सपमें पुत्तल तिसन, मुन्नी, मुना और सिद्धायका भी । श्रपदा याद गिला दें । इस चित्रक लिए फोटोग्राफर महोदयको धन्यवाद । बच्चोंको सुप्तन बकरूकी स्नेह आगिय । बासपेदीजी, बिकरजी, कात्रिजी और प्रधानजी आनि सुहृदोंके मेरा स्नेहाभिवान्न कहिएगा । गिति बापु, मारटर दा, गुमाइजा तथा हरिदास बाबुकी प्रणाम । सपस बाबुछ भी स्नेहाभिवान्न कहें । सग्जन आनका निमन्त्रा पुन दोहराता हूँ । आपको

एव इष्टरव्यू पुछ पत्र

वह, आपकी तथा भाभीजीसे प्रणाम निवेदित करती हैं, और ऊपा, अरुण वर्ण चरणस्य बहते हैं ।

'अशोकके फूल' सचमुच ही नहीं मिले, हो सकता है पोस्ट आफिसकी भूल हो । आशा है मेरी भूलोंको गमा करते रहेंगे ।

विनीत
कुमन

*

प्रमाण

२७ ४ ४९

प्रियवर हजारीप्रसादजी,

आपकी सेवामें दो एक दिनमें लोकायन सस्कुति पीठका विमान भेज सकेंगा । लोकायनकी मुद्राभारती 'लोकचेतना' का पहला अंक जुलाई पहली तारीखको निकालनका विचार है । आपमें अनुरोध है कि पहल अक्के लिए दो पृष्ठका या कुछ अधिकका एक लेख अवश्य भेजनेकी कृपा करें । हम छोटे छोटे निबन्धों या अर्थाई पद्य तकके दे रहे हैं । आपसे मैं चाहता हूँ आप कुछ भारतीय सस्कुति और वापूजीको लेकर लिखें—'आजकल'में आपका लेख मुझे बहुत पसन्द आया । उसीको आप अधिक सबल संगठित रूप देकर अवश्य लिखनेकी कृपा करें । आपके द्वारा मुझे अप्रत्यक्ष रूपसे गुरुदेवका भी आशीर्वाद मिल जायगा । मैं चाहता हूँ प्रत्येक अंकमें आप मुझे कुछ-न-कुछ अवश्य दें—अगले अंकमें गुरुदेवपर आपकी लेखनीमे चाहता हूँ । हिन्दीमें आजकल अच्छे निबन्ध मिलना कितना कठिन है आपको शान्त है । शान्तिनिवेदन (विश्वभारती)क आचार्य हा मेरी रक्षा कर सकते हैं । अतः आपसे मेरा आग्रह है कि आप 'लोकचेतना'को अपने आशीर्वादका गौरव प्रदान करें ।

'स्वणकिरण' 'स्वणमूलि'—मेरी १० प्रकाशित रचनाएँ शायद आपकी अभी नहीं मिली होंगी । लीडर प्रेसमें आजकल Stock taking हो रहा है—मैं साधता हूँ इसा सप्ताहमें आपको दोनों पुस्तकें अवश्य मिल जायेंगी ।

मैं ७वें मईको अल्मोडा जा रहा हूँ । जुलाई प्रथम सप्ताहमें लौटूँगा । जूनक प्रथम सप्ताहमें मुझे प्रेसमें सामग्री देनी होगी । आशा है उससे पहले ही आपका आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो सकेगा । मेरा पता—मेरा नाम, अल्मोडा (कुमाऊँ पर्वत) । सत्याचे पास अभी धनका अभाव है, फिर भी सत्या अपने

बालरणीय साहित्यिकोंकी यथाशक्ति सेवा करना चाहती ह। सदस्यताके लिए बगले पत्रमें लिखूंगा।

आगा ह आप सानंद और सकुशल हैं। कई वर्षोंके बाद अबके आपसे मिलनेपर अत्यन्त आनंद हुआ। जाशा है आप सदा वृषामाव बनाये रहेंगे। जुलाईके बाद जब भी आप प्रयाग जायें आप मेरे साथ ठहरकर तस्याको गौरव प्रदान करें। कष्टके लिए क्षमा चाहता हूँ।

आपका
सुमित्रानन्दन पन्त

*

ब्रजकिशोर घाम पटना

३० १ ४९

मायबरेय,

कोटिंग प्रगाम।

लखनऊ विद्वद्विद्यालयने अभी-अभी डॉक्टरके उपाधि देकर अपना तथा हिंदीका जो सम्मान किया ह उसक लिए—कृछ उपाधि पानेक लिए नहीं—मेरी हार्थिक बधाई स्वीकार करें।

आप कागो नहीं गये इसके पीछे क्या बातें हैं यह सब हमारे महाक डॉ० मिथ्या सुना रहे थे जो कागो विद्वद्विद्यालयक कौट आदिके सदस्य हैं। सुना था लखनऊसे भी आपको बुलावा आया है, यहाँकी भी चर्चा चल रही है। मुझसे बातें होती ह तो क दता हूँ कि द्विवेदीजी नहीं चाहते कि दूसराने लिए वे मुलम हों, इसीलिए सुदूर शान्तिनिकेतनमें बठे हुए हैं और उन्हें बहसि दिगाना असम्भव ह। कल ही हमार प्रिन्सिपल साहब कह रहे थे कि वे यहाँ सरकारका लिय रहे हे कि हिन्दी विभागमें आपको बुलाया जाये। पर जब आप कासो नहीं गये तो मरण में क्यों आने लगे मला ?

बबोरपर जो नयो पुस्तक लिख रहे हैं वह अभी प्रेषमें गयी या नहीं ? शिबिभोहन याबून बणवपमपर कोई नयो कृताव लिखी ह क्या ? अगर लिखी हे तो कहीसे प्राप्त हो सक्ती ह ? पहले भी नियेन कर चुका हूँ फिरसे स्मरण नितो हूँ—भूरपर जो आपका पुस्तक छनो थो और अब अधाप्य ह, उसका नवीन तस्करण आवश्यक है। थाप उन अपनी रचनाभामें महत्वपूण नहीं समसते फिर भी उसका यभार विद्यापियके लिए बहुत हा अनुविषयजनक सिद्ध हो रहा ह।

एव इष्टरव्यू कुछ पत्र

४९१

आदरणीय,

बहुत लज्जित हूँ कि आपके पत्रका उत्तर तीन सप्ताह बाद दे रहा हूँ। जिन दिनों आपका पत्र और कविता मिली, मैं बाहर गया हुआ था। लौटकर आनेके बाद बहुत व्यस्त रहा और इसके बाद कुछ अस्वस्थ सा हो गया। रोज़ सोचता था कि आपको लिखूँ और रोज़ टलता जाता था।

आपका पत्र पढ़कर मेरी आँखके आगे फिर वह दिन एकदम घूम गया जिस दिन मैं प्रयागसे बम्बई आया था। जाड़ेके दिन थे। सुबहका कुहरा मुनिर्वसिटीपर फैला हुआ था और उस कुहरेमें धुंधली आकृतियाँ दीख रही थीं उन पुलिसके सिपाहियोंकी जो विश्वविद्यालयके फाटकोपर बंदूक लिये पहरा दे रहे थे। पता नहीं क्यों आनेके पहले मैं बहुत दुःखी था कि विश्वविद्यालयका भविष्य न जाने क्या होनेवाला है। कितने ही लोग बड़ी बड़ी सरकारी नौकरियाँ छोड़कर इसीलिए अध्यापक हुए थे कि उसमें एक विशिष्ट प्रकारका गौरव और आत्म सम्मान बना रहता है। पिछले तीन चार वर्षोंसे यह लगन लगा कि अब आसार अच्छे नहीं। जिस दिन समाचार पत्रमें बनारस विश्वविद्यालयका समाचार पढ़ा तो मनपर बहुत गहरा आघात हुआ। पता नहीं आगे क्या हमारे देशको क्या क्या देखना होगा।

लेकिन आपको तो मैंने सदासे गुरुवन माना है। इस तमाम उथल-पुथलके बीच आप जितने शांत और सौम्य बने रहे, वह बिना किसी आंतरिक निष्ठाके सम्भव नहीं। आपके व्यक्तित्वकी इस गरिमाका हम सब आपके अनुज सक्कटमय परिस्थितियोंमें अपने व्यक्तित्वमें निवाह सनेंगे, इसका आशीर्वात् दीजिए।

कविता कई बार पढ़ी। इन तमाम सदर्भोंमें इस कविताने बहुत आरवासन दिया। दीपावलीके अक्षमें यह कविता दे रहा हूँ और प्रयास करूँगा कि इसका साथ गुरुदेवकी स्वयंकी बनाया हुई कोई कलाकृति दे सकूँ।

मेरे प्रणाम लीजिए।

स्नेहाबादी,
धर्मवीर भारती

*

लेखक

- १ डॉ० धर्मवीर भारती, सम्पादक धर्मयुग, पो० बा० २१३, टाटमस भाँव
इण्डिया, बम्बई ।
- २ डॉ० विद्यानिवास मिश्र, सूरतसदन, अलहदादपुर, गोरखपुर ।
- ३ श्री बलराज साहनी, सुप्रसिद्ध अभिनेता । गतिनिकेतनमें द्विवेणीजीके
सहयोगा रह ।
- ४ श्रीमती भारती मिश्र, द्विवेणीजीकी पुत्री, १६ ए बालोगज गिरस,
बम्बई १९ ।
- ५ शिवानी, सुपरिचित कपालेविका, प्रायरी लाज, ननाता ।
- ६ श्रीमती मालती तिवारी, द्विवेणीजीकी पुत्री, १९, रटाफ क्वान्ट,
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हजाराबा ।
- ७ श्री सीताराम मेकमरिया, प्रसिद्ध ममात्रसेवी और साहित्यप्रेमी, बम्बई ।
- ८ श्री विवेकीराय, निबन्धलेखक, हिन्दी विभाग, डिप्टी कालेज, गाजीपुर ।
- ९ डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, भाषाशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय ।
- १० डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, हिन्दी विभागाध्यक्ष, भागलपुर विश्वविद्यालय ।
- ११ डॉ० बैलागचन्द्र भाटिया, हिन्दी विभाग, मुस्लिम विश्वविद्यालय,
बनारस ।
- १२ डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी, एफ ८।१ माडल टाउन, गिल्ली-९ ।
- १३ डॉ० वासुदेव सिंह, हिन्दी विभाग, वासी विद्यापीठ बाराणसी ।
- १४ डॉ० श्यामसुन्दर गुप्त, हिन्दी विभाग, का० हि० वि०, बाराणसी ।
- १५ डॉ० नागेंद्रनाथ उपाध्याय, हिन्दी विभाग, का० हि० वि०, बाराणसी ।
- १६ डॉ० रघुवन्श, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबा ।
- १७ डॉ० रमेशचन्द्र तल मेघ, सीडर इकाज, पञ्जाब यूनि० से०, टाबा कालि,
बाराणसी ।
- १८ डॉ० रामनुरेश त्रिपाठी, संस्कृत विभाग, मुस्लिम विश्व०, बनारस ।
- १९ डॉ० रामदत्त मिश्र, ई ४।११ए, माडल टाउन, गिल्ली ९ ।
- २० डॉ० गम्मुनाथसिंह, हिन्दी विभाग बाराणसी संस्कृत विश्व०, बाराणसी ।

- २१ श्री ठाकुर प्रसाद सिंह, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ ।
- २२ डॉ० प्रभाकर माचवे, १२० रवीन्द्र नगर, दिल्ली ११ ।
- २३ डॉ० देवराज उपाध्याय ।
- २४ आचार्य नलिन विलोचन शर्मा (स्वर्गीय) ।
- २५ डॉ० भगवतशरण उपाध्याय । सी-२२०, महानगर, लखनऊ ।
- २६ डॉ० वल्लभ सिंह, हिंदी विभाग, का० हि० वि० वाराणसी ।
- २७ श्री मधुरेश, जंगरजी विभाग, मदनलाल कालेज, बसौली, बदायूँ ।
- २८ डा० देवराज, भारतीय दशन विभागाध्यक्ष, का० हि० वि०, वाराणसी ।
- २९ श्री नेमिचन्द्र जैन, आई ४७, जगपुरा एक्स्टेशन, नयी दिल्ली-१४ ।
- ३० श्री नवलकिशोर, ६४ भूपालपुरा उदयपुर ।
- ३१ श्री कुँवरनारायण, ४ शहनूब रोड, लखनऊ ।
- ३२ श्री कृष्णनाथ, समाज शास्त्र विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी ।
- ३३ डॉ० त्रिभुवन सिंह, हिंदी विभाग, का० हि० वि०, वाराणसी ।
- ३४ डॉ० कृष्ण विहारो मिश्र, ७ था हरिमोहन राय रोड, कलकत्ता १५ ।
- ३५ श्रीरमेशचन्द्र शाह, जंगरजी विभाग, गवतमेण्ट ट्रिपो कॉलेज, सीधो म० प्र० ।
- ३६ श्रीमती विनोदिनी सिंह, द्विवेदी साहित्यरी गोष्ठागारा, बिहार विश्व
विद्यालय मुजफ्फरपुर ।
- ३७ श्री परशुराम चतुर्वेदी, सुप्रसिद्ध सन्त साहित्य मगन, बकौल, बलिया ।
- ३८ श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, सुप्रसिद्ध पत्रकार, फीरोजाबाद ।
- ३९ श्री इलाचन्द्र जोशी, प्रसिद्ध उपमासकार, साकाशवाणी, इलाहाबाद ।
- ४० डॉ० रवीन्द्र भ्रमर, हिंदी विभाग, मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।
- ४१ सुश्री सुधा राजपाली, मूर साहित्यकी शोध छात्रा, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी ।
- ४२ डॉ० हिरण्मय, रीडर, हिंदी विभाग, मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर ।
- ४३ डॉ० श्याम तिवारी, ना० प्र० सभा वाराणसी ।
- ४४ डॉ० श्यामनन्दन किशोर, हिंदी विभाग, बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर ।
- ४५ डा० काशीनाथ सिंह, हिंदी विभाग का० हि० वि०, वाराणसी ।
- ४६ पं० कल्याणपति त्रिपाठी, प्राचार्य शिक्षण विद्यालय, वाराणसीम सहस्रत
विश्वविद्यालय, वाराणसी ।
- ४७ श्री प्रेमचन्द जैन, शोध छात्र, हिंदी विभाग, का० हि० वि० विद्यालय,
वाराणसी ।



